ऋषभायण

महाकाव्य

महाकाव्य रचनाकार

काव्य श्री डा० छोटे लाल 'नागेन्द्र'

महाकाव्य सम्बन्धी कार्यकारी विवरण

ग्रन्थ कल्पनाकार व विषय सामग्री

संकलनकर्ता व समायोजक	—	सौभाग्य मल जैन (काला) सआदत गंज, लखनऊ
प्रकाशक	—	राकेश कुमार, आगेज कु० विजय कुमार, प्रमेश कु० लखनऊ
महाकाव्य रचनाकार	—	काव्य श्री डा० छोटे लाल नागेन्द्र, रामपुर
काव्य निर्देशक व विशेष प्रभावक	—	काव्य श्री स्व० कल्याण कुमार जैन "शशि" रामपुर
प्रकाशन संयोजक	—	अनिल जैन, "जैन भवन" दिनदार पुरा, मुरादाबाद
मुद्रक	—	सच्ची बात प्रिंटर्स, दरीबा पान, मुरादाबाद
कला एवं ब्लाक	—	कैपिटल ब्लाक वर्क्स, लखनऊ

समर्पण

धर्म भावना से ओतप्रोत पूज्य पिता जी स्व. राजमल जी, मातेश्वरी स्व. गुलाब बाई जी, बड़े भैया स्व. ज्ञान चन्द जी की स्मृति में :

श्रद्धेय कविवर स्व. कल्याण कुमार जैन "शशि" जिन्होंने इस महाकाव्य रचना में अमूल्य योगदान दिया तथा जन जन को सादर समर्पित

स्व. शशि को सादर समर्पित

शशि एक ऐसे काव्य सम्राट
कि जिसके सामने वर्णमाला के अक्षर
अपने आप क्रमबद्ध होकर
शब्दों में बदल जाते ।
और वे शब्द अनायास
पंक्तिबद्ध हो छन्दों में ढल जाते ।
चेतना की विशेष अवस्था में
शशि तुमने शब्दों को बजा दिया है
एक सार्थक मूर्त भजन,
और यह भजन गूंजेगा गगन-गगन
वे शब्दों से जब खेलते
तो शब्द अपने नये-नये रूप
और अर्थ प्रकट कर जाते
शब्दों के इस चतुर चितेरे
शशि को शब्दों में श्रद्धांजलि
नहीं है सम्भव
इसलिये मेरी निशब्द व मौन
श्रद्धांजलि स्वीकार करें ।

—अनिल जैन
मुरादाबाद

॥ विषय सूची ॥

विषय	पृष्ठ संख्या
आशीर्वाद एव परिचय	१ से १५ तक
महाकाव्य सम्बन्धी कार्यकारी विवरण	
समर्पण	
स्व. शशि जी को सादर समर्पित कविता	
आचार्य विमल सागर जी महाराज का आशीर्वाद	
आचार्य बाहुबली जी महाराज का आशीर्वाद	
सुबल सागर जी महाराज का आशीर्वाद	
उपाध्याय मुनि भरत जी महाराज का आशीर्वाद	
आर्यिका स्याद्वाद मती माता जी का आशीर्वाद	
ग्रन्थ के कल्पनाकार श्री सौभाग्यमल जी का जीवन परिचय	
निर्देशक स्व श्री कल्याण कुमार जैन "शशि" का जीवन परिचय	
काव्य श्री छोटे लाल शर्मा "नागेन्द्र" का जीवन परिचय	
कल्पना से काव्यकृति तक	१६
समाहित सुगन्ध	२१
ऋषभायण एक अनूठा महाकाव्य	२२
पुरोवाक्	३०
एक कथ्य	३३
चेतन प्रकाश पाटनी का लेख	३४
अनुपम महाकृति	३६
सम्मतियाँ	३८

प्रथम खण्ड

	विषय	पृ. स		विषय	पृ स.
१.	मंगलाचरण	१	६.	अयोध्या वर्णन	५३
२.	भोगभूमि वर्णन	१२	७.	स्वप्न वर्णन	६०
३	कर्म भूमि वर्णन	२७	८	गर्भ अवतरण वर्णन	७१
४	नाभिराज वर्णन	३२	९	जन्म महोत्सव वर्णन	८०
५.	देव कर्तव्य वर्णन	३९	१०.	कैशोर्य वर्णन	९४

	विषय	पृ स
	द्वितीय खण्ड	
१.	विवाह वर्णन	१००
२.	मिलनोत्सव वर्णन	१११
३	गृहस्थ जीवन वर्णन	११७
४.	सन्तति जन्म वर्णन	१२५
५.	सन्तति शिक्षा वर्णन	१३७
६.	लोक व्यवस्था वर्णन	१४८
७	राज्याभिषेक वर्णन	१६२
	तृतीय खण्ड	
१.	नृपति ऋषभ वर्णन	१८३
२.	ऋषभ त्याग वर्णन	१९४
३	ऋषभ प्रस्थान वर्णन	२१२
४.	ऋषभ दीक्षा वर्णन	२२६
५	भगवान मुनि दशा वर्णन	२३६
६.	श्रेयान्स तीर्थ दान वर्णन	२५२
७.	केवल्य प्राप्ति वर्णन	२६५
	चतुर्थ खण्ड	
१.	समवशरण वर्णन	२७४
२.	भरतागमन वर्णन	२८६
३	धर्मचक्र वर्णन	३०३
४	दिव्य उपदेश वर्णन	३११
५.	गृहस्थ उपदेश वर्णन	३२८
६	मुनि उपदेश वर्णन	३३३
	पंचम खण्ड	
१	विजय मत्रणा वर्णन	३४६
२.	विजय अभियान वर्णन	३५६

	विषय	पृ. सं.
३.	भाई बहिनों का वैराग्य वर्णन	३७२
४	दूत सदेश वर्णन	३८५
५.	युद्ध निर्णय वर्णन	३९५
६	युद्ध भूमि वर्णन	४०३
७	युद्ध निश्चय वर्णन	४१२
८	युद्ध वर्णन	४२३
	षष्ठ खण्ड	
१	भरत राज्याभिषेक वर्णन	४४०
२.	चतुर्थ वर्ण व्यवस्था वर्णन	४४९
३.	भरत स्वप्न वर्णन	४५८
४.	भरत विदेह वृत्ति वर्णन	४६५
५.	स्वयवर वर्णन	४७६
६.	युवराज जयकुमार युद्ध वर्णन	४८५
७.	भरत न्याय वर्णन	४९८
	सप्तम खण्ड	
१	भरत कैलाश आगमन वर्णन	५०७
२	निर्वाण महोत्सव वर्णन	५१५
३.	भरत दीक्षा वर्णन	५३१
	अष्टम खण्ड	
१	आदि प्रभु से वीर प्रभु तथा श्रमण परम्परा वर्णन	५४२
२	वीर प्रभु से वर्तमान वीतराग मत परम्परा वर्णन	५५०
३	आरती, भजन, गुणानुवाद	५५८
४	आदिनाथ की विविध मूर्तियो की वन्दना	५६०

प्रकाशक · सौभाग्यमल जैन, सआदत गज, लखनऊ (उ० प्र०)

मुद्रक · सच्ची वान प्रिंटर्स, तम्बोली गली, मुरादाबाद ।

श्री सौभाग्यमल जैन
लखनऊ
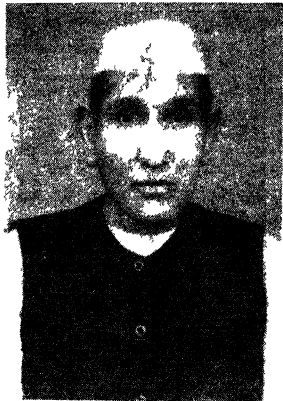
श्रीमती शान्ति देवी जैन
धर्मपत्नि सौभाग्यमल जैन
लखनऊ
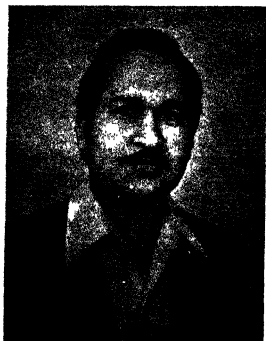
काव्य श्री छोटे लाल "नागेन्द्र"
रामपुर

स्व० श्री कल्याण कुमार जैन "शशि"
रामपुर

सन्मार्ग दिवाकर, वात्सल्यमूर्ति श्री १०८ आचार्य विमल सागर जी महाराज का आशीर्वाद

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

जन मानस के लिये सुख एवं शान्ति का प्रदायक नया साहित्य सृजन नई भाषा, शैली, नई संगीत लहरियो में निबद्ध ऋषभायण नई चेतना प्रदान करने वाला अनुपम ग्रन्थ है।

इस ऋषभायण की पद्य रचना का आधार स्तम्भ आदिनाथ पुराण है। सोभागमल जी ने अपने अथक प्रयास करके जैन संस्कृति के प्रचारार्थ एक अनुपम कार्य करवाया है। इन्हे हमारा शुभाशीर्वाद है। जो भी इसे श्रद्धा भक्ति से पठन-पाठन, श्रवण करेगा वह रत्नत्रय को प्राप्त कर सुख शान्ति को प्राप्त करेगा।

—आचार्य विमल सागर

श्री तपोनिधि १०८ आचार्य सुबलसागर जी महाराज जी का आशीर्वाद

॥ श्री वीतरागाय नम ॥

सद्धर्म प्रेमी, धर्मानुरागी, धर्म वत्सल, गुरुभक्तजन—

सौभाग्यमल जी, शान्ति देवी जी आदि सपरिवार को—

४५ श्री १०८ आचार्य सुबल सागर मुनि महाराज श्री का तथा सघस्थ अन्य त्यागियों का सद्धर्म वृद्धिरस्तु शुभाशीर्वाद।

आपका पत्र व पत्रिका दोनो मिले। पढकर बहुत ही आनन्द हुआ। आर्य परम्परातर्गत 'ऋषभायण' ग्रन्थ छपाने का काम आप लोगो ने हाथ मे ली है। यह बहुत ही खुशी की बात है। 'ज्ञानेन पुसा सकलार्थ सिद्धि' सूक्ति के अनुसार ज्ञान से साथ ही साथ ज्ञान दान से सर्व अर्थों का अर्थात् सर्व प्रयोजनो की सिद्धि हो जाती है। आप जैसे लोगो ने अपने नश्वर सम्पत्ति दान रूपी भूमि मे बोने के बाद वटवृक्ष के छाया के समाम महान फलदायक होता हैं। हमारा यही शुभाशीर्वाद है कि आप लोग हमेशा चार प्रकार के दान मे तत्पर रहे और आपका आत्म कल्याण कर ले।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

पूज्य श्री १०८ आ. बाहुबली जी का

आशीर्वाद

स विश्व चक्षुर्वृषभोऽर्चित्त सता ।
समग्रविधात्मव पुनिरञ्जन ॥
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो ।
जिनो जितक्षुल्लुकवादिशासनः ॥

प पू श्री १०८ सद्धर्म प्रवर्तनक आचार्य रत्न बाहुबली जी महाराज की "ऋषभायण महाकाव्य" पर पावन समीक्षा ।

यह "ऋषभायण महाकाव्य" जिन वाणी का आभरण है । बेला की सुन्दरता फूलो से होती है, स्त्री की सुन्दरता सुशील से होती है, और भाषा की सुन्दरता काव्य से होती है । जिस मानव के वचन मे मधुरता, सत्यता, मन मे निर्मलता, बुद्धि मे समीक्षा और भाषा मे काव्य है, उसका जीवन उज्जवल होता है ।

मोक्षरूपी महल मे लगी हुई मोहरूपी आर्गल को तोडने मे अभिक्षणज्ञानोपयोग, अरिहत भक्ति ही कारण है । "ऋषभायण महाकाव्य" के रचियता डा. नागेन्द्र जी, आपका जैन और जैनेत्तर ग्रन्थो का सूक्ष्म अध्ययन अभिक्षणज्ञानोपयोग तथा भाषा का आभरण स्पष्ट दिखाई देता है । आपने जिनवाणी की अनमोल सेवा की है इसी प्रकार आप जिनवाणी की सेवा करते रहे यही आपको सद्धर्मवृद्धिरस्तु आशीर्वाद है ।

आचार्य बाहुबली जी महाराज

उपाध्याय मुनि भरत सागर जी महाराज का आशीर्वाद

"स्वाध्याय परम तप"

आज का मानव स्वाध्याय से अपरिचित रुक्षता को अपनाये हुए अन्धकार की ओर अग्रसर है ऐसे समय मे नई पद्धति से सच्चे आगम का बोध कराने वाला एक अनुपम ग्रन्थ "ऋषभायण" रचनाकर सौभाग्यमल जी ने उत्तम कार्य किया है। उन्हे हमारा पूर्ण आशीर्वाद है।

यह ग्रन्थ सर्वजनोपयोगी बने। सच्चे धर्म का मर्म सर्वजन को विदित हो। सर्व जन समुदाय घर-घर में इसका अविरत पठन-श्रवण मनन कर तथा णमोकार मंत्र वा भक्तामर आदि के समान "ऋषभायण" का भी अखड पाठ करे। जो भी इसका अखड व प्रतिदिन पाठ करगे वे सुख समृद्धि को प्राप्त कर समस्त दुखो का क्षय करेंगे मुक्ति के भाजन बनेंगे।

उपाध्याय मुनि भरत सागर
पट्ट शिष्य
१०८ आचार्य विमल सागर जी महाराज

१०५ आर्यिका स्याद्वादमती माता जी का आशीर्वाद

।। श्री वीतरागाय नम ।।

संगीत जीवन मे शक्ति एवं भक्ति के अकुर वाला एक अद्भुत अमृत रसायन है। वर्तमान में सगीत के माध्यम से भक्ति की अमर गुनगुनाहट से वर बाजार मन्दिर गूंजते दिखाई देते है। भक्ति की अमरदायिनी लय कर्णों के साथ एक अनुपम सस्कार छोडती हुई हृदय मन्दिर मे भक्ति की लहर दौडती है।

वर्तमान अवस्थानुसार शैली बदलना आवश्यक है सिद्धान्त नही। इसी उद्देश्य को लेकर जन-जन मे महापुरुषो के जीवन एव धर्म जागृति-धर्म प्रचारणार्थ "ऋषभायण" ग्रन्थ की सगीतमय रचना का अद्भुत कार्य हुआ है। इसमे कुल आठ खडो मे आदिनाथ प्रभु का जीवन दर्शन-ऋषभ प्रभु द्वारा ब्राह्मी-सुन्दरी को अक विद्या, ब्राह्मी लिपि, असि, मसि, कृषि आदि षट्कार्य, भरत चक्रवर्ती की न्याय प्रियता, बाहुबली का ससार से वैराग्य तथा आदि प्रभु के पचकल्याणको का सुन्दर चित्रण है। इसका पठन-पाठन श्रवण चिन्तन करने से आत्मशक्ति, अन्तर्ज्योति प्रस्फुटित होती है। सदगृहस्थों का कर्तव्य है घर घर मे प्रतिदिन इसका पाठ करे। समय समय पर अखन्ड पाठ कर विशेष अनुष्ठान करने से सर्वसिद्धि को प्राप्त करे। श्री सौभाग्यमल जी ग्रन्थ के प्रेरक हैं आपको हमारा आर्शीवाद है।

१०५ आर्यिका स्याद्वादमती माता जी
प्रमुख शिष्या
१०८ आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज

ग्रन्थ के कल्पनाकार व प्रकाशक
श्री सौभाग्यमल जी का जीवन परिचय

भारत एक त्याग प्रधान देश है। यहा की मिट्टी मे त्यागी एव सरल वृत्ति के पुरुषो का जन्म सदैव से होता रहा है। उनमे से ही हम पाते है श्री सौभाग्यमल जैन को। उनके पिता श्री राजमल जी काला दूदू निवासी थे। माता का नाम गुलाब बाई था। दोनो ही अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के थे।

उनका जन्म सन १६१८ ई० मे राजस्थान राज्य व जयपुर के पास दूदू नामक ग्राम मे हुआ था। उनका पालन पोषण परिवार मे प्रचलित धार्मिक कार्यो के मध्य हुआ अत उनमे धार्मिक भावना का विकास हुआ। सभी कार्य धर्म की भावना से प्रभावित होकर करने लगे। बाल्यकाल गाव मे बीता पाठशाला का अभाव होने के कारण शिक्षा सुचारु रूप मे नही हो सकी अत साधारण हिन्दी उर्दू, मुडिया का ज्ञान हो सका। माता एवं पिताजी के धार्मिक सस्कारो ने मन पर गहरी छाप डाली धर्म के प्रति गहरी रुचि व आस्था ने जन्म लिया। सन १६४८ ई० मे विवाह श्रीमती शान्ति देवी के साथ हुआ। वह भी अत्यन्त निश्छल एव धार्मिक प्रवृति की महिला है।

वह अल्प आयु मे ही लखनऊ आ गये थे बहुत अल्प पू जी से व्यवसाय आरम्भ किया था। कठोर परिश्रम, लगन व ईमानदारी से अपने व्यवसाय को आगे बढाया। वर्तमान मे व्यवसाय बहुत उन्नति की ओर अग्रसर है। लखनऊ किराना कम्पनी, पवन ट्रेडर्स, विशाल ट्रेडर्स, भारत किराना स्टोर, पचशील ट्रेडर्स एव जैन आयुर्वेदिक्स जैसे प्रतिष्ठान निरन्तर उन्नति की ओर है। व्यवसाय के साथ-साथ सदा धर्म के प्रति अनुराग व आस्था बनी रही।

धर्म एवं जनसेवा के प्रति अनुराग

धर्म के प्रति उनका अनुराग सदा रहा धार्मिक कार्य अकेले नही करते है सबको साथ लेकर चलने की प्रवृति है जरा भी किसी ने अपेक्षा की तुरन्त तैयार

हो जाते। दान देने की भावना सदा बनी रहती है। जीवन सादा, सरल ग्राडम्बर हीन ग्रौर व्यसन रहित है भारतवर्ष के सभी तीर्थों की यात्रायें की हैं अब भी तीर्थ यात्रायें करते रहते है वर्ष में ३ से ४ महीने तीर्थ यात्रा में ही व्यतीत करते हैं। यहाँ तक कि लंदन में पच कल्याणक होने पर वहाँ की यात्रा करने गये व दान दिया।

दिगम्बर जैन धर्म की रक्षा किस प्रकार ग्रक्षुण्ण रहे इसकी सदा चिन्ता रहती है धार्मिक ग्रनुष्ठान मे जाना देखना समझना साधुग्रों विद्वानों की सेवा करना जैसे कार्यो द्वारा धर्म की प्रभावना में सहायक होते हैं। पंडितों विद्वानों को समय देना एवं उनकी सहायता करना परम कर्तव्य मानते हैं। सबके प्रति समानता का व्यवहार रखते हैं प्रत्येक की सहायता के लिए शक्ति ग्रनुसार तत्पर रहते हैं।

शिक्षा के प्रति स्वयं न शिक्षित होने पर भी विशेष ग्रनुराग है। गरीब विद्यार्थियों को शिक्षा की व्यवस्था करते हैं उन्हें पुस्तके व ग्रार्थिक सहायता देते है। धार्मिक विद्यालयों को दान देते हैं। निजो पुस्तकों का ग्रच्छा संग्रह है।

निशुल्क चिकित्सालय चलाने मे योगदान देते हैं औषधिदान करते रहते है 'जीवदया' सस्था के मत्री है। सभी सस्थाग्रो को दान देते रहते हैं।

जैन धर्म प्रवर्धिनी सभा, दिगम्बर जैन युवा परिषद, श्री ग्रखिल विश्व जैन मिशन जैसी सस्थाग्रो के संरक्षक हैं। श्रावस्ती तीर्थ क्षेत्र कमेटी के ग्रध्यक्ष हैं। वहाँ के विकास कार्य मे सलग्न है उसके लिए दिनरात परिश्रम करते हैं। १३ वर्ष से व्यवसाय से ग्रवकाश लेकर धर्म कार्यों मे रत है। शान्ति पूर्वक धर्म बुद्धि से जीवन यापन करते है इसका प्रभाव सभी परिवार पर पडा है सभी पुत्र पूरा सहयोग धर्म कार्यों मे देते है। सोनागिर जी, समनेद शिखर जी, महावीरजी को विशेष दान दिये रामनगर तीर्थ क्षेत्र के लिए दान दिया। दान की भावना हमेशा बनी रहती है। गुप्तदान निरन्तर करते रहते है।

धार्मिक पुस्तके छपवाते है तथा निःशुल्क बाँटते है। धर्म की प्रभावना मे ही समय व्यतीत करते है। इसी भावना का फल ऋषभायन महाकाव्य है।

महाकाव्य ऋषभायन की रचना के लिए ग्रटूट लगन एव मेहनत से काम किया है। इस कार्य को सम्पन्न करानें हेतु कितनी ही बार यात्राये की हैं विज्ञजनों से परामर्श भी किया है।

श्री शशि जी एवं रचनाकार डा. नागेन्द्र जी के प्रयत्न से इतनी सशक्त व प्रेरणादायनी रचना प्रस्तुत हो सकी है। इस रचना द्वारा श्री सौभाग्यमल जी की हार्दिक इच्छा मूर्तरूप ले सकी है।

हर्षित जैन, मुरादाबाद

स्व. श्री कल्याण कुमार जैन शशि का जीवन परिचय

स्व. "काव्य श्री" श्री कल्याण कुमार जैन शशि साहित्यकार एवं स्वतन्त्रता संग्राम सैनानी का जन्म ८ मार्च १९०८ ई० को रामपुर के एक छोटे से कासलीबाल गोत्रीय खण्डेलवाल जैन परिवार मे हुआ था। इनके पिता का नाम बटटू लाल जैन व माता का नाम नारायनी देवी जैन था। उनकी शिक्षा बहुत साधारण रही।

उन्होंने सन १९२५ में कविता लिखना शुरु किया और सन १९२७ में उनकी एक रचना दिल्ली के "शुद्धि समाचार" पत्र मे प्रथम बार प्रकाशित हुई थी और १९२९ में मुरादाबाद (उ० प्र०) मे सत्याग्रह शिविर के अध्यक्ष रहे, तथा १९३० में असहयोग आन्दोलन मे भाग लिया और एक बम कांड मे नम्बर १९३० से २८ जून, १९३१ तक रावलपिंडीमेजेल यातना सही।

कलम, खराद, मुर्दा अजायबघर, मेरी अराधना, हृदय की आग "जब्त", जैन विवाह विधान, हिन्दी भक्ताम्बर स्त्रोत, पंखुरियां, गोम्टेश्वर, धरती के फूल तथा अनेकों तीर्थ क्षेत्रों की पूजने इत्यादि २२ प्रकाशित पुस्तकें है। एव २५,००० रचनाये तथा लगभग ८००० विवाह सेहरे लिखे है जो अद्वीय है।

सम्बद्ध संस्थाएँ -

(१) जैन इण्टर कालेज रामपुर के प्रबन्ध समिति के सदस्य तथा वर्तमान मे अध्यक्ष थे।

(२) कन्या इन्टर कालेज खारी कुंआ रामपुर की प्रबन्ध समिति के आजीवन सदस्य एवं वर्षो से उपाध्यक्ष पद पर आसीन थे।

(३) उत्तर प्रदेश जिला बरेली में रामनगर स्थित दिगम्बर जैन अहिच्छत्र पार्श्वनाथ तीर्थ क्षेत्र की कार्य समिति के आजीवन सदस्य तथा वर्षों तक प्रचार मत्री रहे।

(४) रामपुर की वरिष्ठ संस्था ज्ञान मन्दिर पुस्तकालय के संस्थापक और बाद मे प्रबन्ध समिति के सदस्य एव महत्वपूर्ण पदो पर आसीन रहे।

अभिनन्दन :-

श्री शशि जी के समय-समय पर पचास के लगभग एक से बढ़कर एक अभिनन्दन हुए जिनमें प्रमुख निम्न है —

(१) वर्ष १९७२ मे अहिच्छत्र पार्श्वनाथ पूजन पर पुष्पा देवी जैन ट्रस्ट कलकत्ता द्वारा पुरस्कृत एवं अभिनन्दन किया गया।

(२) वर्ष १९७४ को रामपुर की वरिष्ठ संस्था ज्ञान मन्दिर द्वारा सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया।

(३) वर्ष १९७५ में राज्यपाल महामहिम डा० चन्नारेडी द्वारा अभिनन्दन किया गया।

(४) वर्ष १९८१ मे "इमारे अदब उर्दू अन्जुमन" की ओर से अभिनन्दन किया गया तथा एक शील्ड व दुशाला भेट हुआ।

(५) मार्च १९८२ में राजस्थान के कोटा शहर में कवि सम्मान समारोह में आप को "कवि मनीषी" से सम्बोधित किया गया तथा अभिनन्दन पत्र व एक विशेष बेटलाग भेट किया गया।

(६) वर्ष १९८३ मे अखिल भारतीय साहित्य परिषद लखनऊ द्वारा काव्य श्री की उपाधि से विभूषित किया गया।

इसके अतिरक्त अनेको अभिनन्दन पत्र शील्ड एव पुरस्कारो से शशि जी के घर का एक कमरा शोभायमान हो रहा है।

श्री शशि जी की एक पुस्तक "अर्न्तनाद" तथा दो बाल गीत पुस्तके प्रेस में छप गई हैं जो शीघ्र ही जन-जन के हाथ में आने वाली है तथा उनका बहुत सारा साहित्य व रचनाये उनकी व्यक्तिगत डायरियों में अंकित है जो अप्रकाशित है जिन्हे प्रकाश का इन्तजार है जो राष्ट्र व समाज के हित मे बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी।

ऐसे "काव्य श्री" श्री कल्याण कुमार जैन शशि साहित्यकार स्वतन्त्रता संग्राम सैनानी का एक साधारण सी स्कूटर दुर्घटना में मामूली सी सिर मे चोट लगने से ६ सितम्बर १९८८ को प्रात: ५-४५ पर आल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट देहली मे स्वर्गवास हो गया। शशि जी ने अपने लेखन से जिस तरह साहित्य का भन्डार लिखा है उसे सम्पूर्ण साहित्य जगत सदैव याद रखेगा।

रामकुमार जैन, रामपुर

डा० छोटे लाल शर्मा "नागेन्द्र" का जीवन परिचय

"सत्संकल्प-संवाहक कवि : डॉ. नागेन्द्र"

अपनी सांस्कृतिक विरासत एवं मूल्यवान भारतीय परम्परा के प्रति अगाध निष्ठा एवं दृढ विश्वास की पूंजी को बमुमूल्य धरोहर के रूप में अपनाकर आधुनिकता एवं प्रगतिशीलता की ओर सत्संकल्प युक्त आग्रह सहित अग्रसर होते हुये अपनी पृथक पहचान बनाने मे सर्वथा समर्थ हिन्दी साहित्य के युवा किन्तु सशक्त हस्ताक्षर का नाम है— डॉ० 'नागेन्द्र' । डॉ० छोटे लाल शर्मा 'नागेन्द्र' बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है ।

उत्तर प्रदेश के बदायू जनपद के रिसौली नामक गॉव मे स्व० श्री रामदास शर्मा के गृह मे ११ जुलाई १९४६ ई० को एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में जन्मे श्री छोटे लाल शर्मा ने बचपन मे ही पारिवारिक सुख का अनुभव नही किया । अल्हडता एव मस्ती भरे विद्यार्थी जीवन मे ही 'नागेन्द्र' ने सन १९६३ ई० से सत्तरह वर्ष की अवस्था मे ही कविता के माध्यम से अपनी भावनाओ को अभिव्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया । काव्य सृजन मे नित-नये आयामो का स्पर्श करते हुये युवा कवि ने शैक्षिक जीवन मे भी सफलता अर्जन करके एम० ए० (हिन्दी) के उपरान्त आगरा विश्वविद्यालय मे सन १९८७ ई० मे "हिन्दी वीर काव्य परम्परा और मुशी कल्याण राय का कल्याण तरग" विषय पर पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की ।

प्रकाशित कृतियां —

'स्वर-गगा (गीत सग्रह), 'अशु म नी' (घनाक्षरी सग्रह), 'जय नेमिनाथ' (खण्ड काव्य), 'ऋषभायण' (महाकाव्य), 'चन्द्रप्रभ', 'जीवन और साहित्य' (समीक्षा) ।

इनके अतिरिक्त डॉ नागेन्द्र के ५०० से अधिक गीत, ग़ज़ल, कविताएँ, निबन्ध, समीक्षाएँ आदि ५० से अधिक प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके है ।

डॉ० नागेन्द्र की साहित्यिक उपलब्धियों को स्वीकृति प्रदान करते हुये ५ अक्टूबर १९८६ को उड़ीसा के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री बी० एन० पाण्डेय द्वारा सम्मानिम किया गया था। काव्योपलब्धियों के इसी क्रम मे ५ नवम्बर १९८७ को लखनऊ मे डॉ. नागेन्द्र को 'काव्य श्री' उपाधि से अलंकृत किया गया। साहित्य जगत मे भी डॉ नागेन्द्र की यथेष्ठ चर्चा हुई है।

'ऋषभायण' (महाकाव्य) कविवर नागेन्द्र की नवीनतम काव्यकृति है। जिसका कथाफलक अत्यन्त विस्तृत एव व्यापक है। इसमे रचयिता ने साहित्यिक ऐतिहासिक प्रामाणिकता से परिपुष्ट, प्रसाद-गुण सम्पन्न प्रवाहयुक्त एवं उदात्त-शैली में अहिसामयी श्रमण-सस्कृति के सम्वाहक प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ या ऋषभदेव के प्रभविष्णुता से समन्वित चरित्र को एव पूर्व एव पश्चात् की दो दो पीढियो की चरित्रावली को अत्यन्त कुशलता से चित्रित किया है। महाकाव्य की गरिमा को जिस सहजता मे डॉ. नागेन्द्र की लेखनी से निसृत 'ऋषभायन' मे अनुस्यूत किया गया है, वह अपने आप मे एक विशिष्ठता है। वर्णनात्मक के साथ साथ छन्द वैविध्य, यत्र-तत्र आलकारिक सौन्दर्य और काव्यात्मक प्रवाह बनाये रखने मे कवि पूर्णत सफल रहा है।

प्रियवर डॉ. 'नागेन्द्र' राष्ट्रीय चेतना के मन्त्रोच्चार से भारतीय परिवेश को गुजरित करने मे अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ लगे है। राष्ट्र के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत करने के सत्सकल्प से अनुप्राणित 'ऋषभायण' हिन्दी प्रबन्ध काव्य परम्परा की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

डा० धनप्रकाश मिश्र
मेरठ

कल्पना से काव्यकृति तक

अधिकतर और अधिकाशत: जीवन के थोडे से घटनाक्रम को लेकर ही उसके किसी भाव को मूलरूप से घटनाक्रम की धुरी मानकर हम उसका मूल्यांकन करते है लेकिन इस विराट विस्तृत दुर्गम रहस्यमय कल्पनातीत ब्रह्मांड में समय की अविछिन्न धारा मे किसी घटना का मूल सिर्फ वहाँ नही होता वरन् एक बहुत बडे क्रम मे निमित्त कारण बनने मे युगो व्यतीत हो जाते है।

मैने एक ऐसे परिवार मे जन्म लिया जहा की सस्कृति में, जहां के संस्कारो मे, जहाँ के वातावरण मे, जहाँ की सुगन्ध मे धर्म मूल रूप मे विद्यमान था, जहाँ लोरी मे भी स्त्रिया भजन गाया करती है। ऐसे परिवेश मे धर्म जीवन मे घुल मिल गया। इसके बाद बचपन और यौवन सब कठोर परिश्रम, व्यापारिक उन्नति करने मे व्यतीत हुआ इसी अन्तराल मे ५०-६० वर्षो मे बहुत कुछ बदला, बहुत कुछ खोया पाया, बहुत से निकट के लोग साथ छोड गये, बहुतो ने नयी दुनिया देखी, तरह-तरह के वैज्ञानिक चमत्कार हो गये लेकिन धर्म की मूल भावना, आदीश्वर का दिखाया हुआ मार्ग वैसा ही रहा और रहेगा।

मुझे लगता है व मेरा विश्वास है कि यह काव्यकृति ऋषभायण की कल्पना और रूप आकृति लेना मेरे कई जन्मों के पुण्य कर्मो का फल है और इसमे सभी पूर्वजों और इष्टदेव का आशीर्वाद समझे क्योकि ऋषभायण की कल्पना करना और बात है और लिखना और बात है क्योकि बडे-बडे ऋषि-मुनि तपस्वी इन्द्र देवगण भी उनकी गुण गाथा को न कह पाये। महा आचार्य मानतुंग स्वामी ने लिखा है—

"सोह तथापि तव भक्ति वशान्मुनीश
कर्तुं स्तव विगत भक्ति रपि प्रवृत
प्रीत्यात्मवीर्य मवि चार्य मृगो मृगेन्द्र
नाभ्येति कि निज शिशो परिपाल नार्थम"

भगवन जैसे कोई प्रलयकालीन समुद्र को भुजाओं से पार नही कर सकता वैसे ही मैं भी आपकी स्तुति नही करु सकता, आपके गुणों का वर्णन असम्भव है अथः केवल भक्ति के कारण अनुवाद कर रहा हूँ। आगे भी उन्होंने कहा कि हे भगवान कोयल में बोलने की शक्ति का निमित्त आम्र बौर है उसी प्रकार मुझमे आपकी भक्ति निमित्त के कारण है। परन्तु मेरे पास तो सिर्फ कल्पना और इच्छा के अलावा कुछ भी नही।

एक अमिट चिंगारी हृदय मे दबी थी कि ऋषभदेव का एक ऐसा काव्य-ग्रंथ तैयार कराया जाये जो अपमे आप मे सपूर्ण प्रकाश हो।

इसी बीच स्वर्गीय शशि जी दक्षिण की धार्मिक यात्रा मे साथ थे यात्रा के बीच-बीच मे इस विषय पर लम्बी वार्ताए होतो। वह स्वय महान आशुकवि थे और आध्यात्मिक रस मे डूबी हुई कविताए लिखते थे। उन्होंने परामर्श दिया कि वह स्वयं तो नही लिख सकते परन्तु एक अन्य कवि रामपुर के श्री छोटे लाल जी नागेन्द्र है वह इस कार्य को सम्पूर्ण कर सकते हैं। मै अपने मन मे ऊहापोह लिये उनके पास गया पर मन मे यही शका थी कि और कवियो की तरह इनकी भाषा क्लिष्ट न हो पर जब उन्होंने अपनी कई रचनाओं का मधुर कंठ से पाठ किया तो मै वास्तव मे मन्त्रमुग्ध हो गया। उनकी कविता में गतिशीलता, लयात्मकता, मधुरता व सौन्दर्य बोध था। सब बात सुन्दर लगी पर जैन न होने के कारण ऋषभदेव के व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे उनका ज्ञान अत्यन्त अल्प था इतने अल्पज्ञान से कविता का निर्माण तो संभव था परन्तु महाकाव्य की अक्षुण्ण धारा सभव न थी। जिस ऋषभदेव के जीवन चरित पर चारो योग और जैन इतिहास, मुनिचर्या गृहस्ताचार्य व समस्त जैन दर्शन आधारित हो तो ऐसे अल्पज्ञान से कुछ नही हो सकता लेकिन एक बात आश्चर्य जनक थी वह यह कि एक विद्यार्थी जिसमे जिज्ञासा और अटूट परिश्रम करने की लगन हो, उसी तरह उन्होने कहा मैं अध्ययन द्वारा ऋषभदेव के सम्बन्ध मे समस्त जानकारी प्राप्त करूंगा, लेकिन वे किस प्रकार अध्ययन करे, किन-किन शास्त्रों का अध्ययन करे कि उनको सम्पूर्ण जैन दर्शन और

ऋषभदेव के जीवन के सम्बन्ध मे ज्ञात हो सके। सब सदर्भ ग्रन्थ जुटाना मेरी जिम्मेदारी बन गये और मै अपने मन मे सोचने लगा हे! ऋषभदेव प्रभु तुम्हारी जीवन गाथा को लिखवाने मे अभी मेरे को अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी कि इस महान काव्य श्री नागेन्द्र को सम्पूर्णतः सब प्रकार से ऋषभदेव की जीवन गाथा का परिचय कराऊँ क्योकि अगर कुछ छूटता है तो उसका उत्तरदायित्व केवल मेरा होगा इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण कथा वस्तु विषय सूची व किस विषय का कितना आकार प्रकार हो व वर्तमान के सदर्भ मे जनमानस मे उसकी उपयोगिता रूचि व ग्रहस्थ जीवन मे अपने कर्त्तव्यो व धर्म के प्रति आस्था बनी रहे इन सब बातो का भी ध्याना रखना होगा। ऋषभायन महाकाव्य की संगीतात्मकता का भी ख्याल रखने पर विशेष रूप मे बल देना भी मैने अत्यन्त जरूरी समझा क्योंकि इसका रामायण की तरह पाठ जन मानस मे अत्यन्त रूचिकर व लोकप्रिय होगा जिसमे घर-घर मे धार्मिक वातावरण बन सकेगा जोकि आजकल की सबसे बडी आवश्यकता है। इन सभी बातो को सोचता और बारम्बार ऋषभदेव प्रभु से सफलता की कामना करता।

अब मेरी दिनचर्या मे केन्द्रीय भूमिका केवल उपरोक्त बातो व ऋषभदेव और उनके चिंतन मनन मे ही डूबा रहता तथा ऋषभदेव से सम्बन्धित जो भी साहित्य उपलब्ध हो सकता वह सभी साहित्य ढढकर उपलब्ध कराया और उसे पढकर मनन करके तथा आवश्यक निर्देश देते हुए डा० नागेन्द्र को दे दिया तथा मै बहुत आश्चर्य चकित व रोमाचित हो गया जब मैंने देखा कि डा० नागेन्द्र ने इन सभी ग्रन्थो का अध्ययन व मनन एक विद्यार्थी की तरह बहुत विनम्र होकर गहन गम्भीरता से करा और इसी सब मे कई वर्ष बीत गये और अब उनको कविता लिखने के लिये कोई प्रयास नही करना है बल्कि उनकी अन्तर आत्मा से स्वय कविता फूटने लगती है।

इसी बीच ग्रन्थ के सम्बन्ध मे अनेकों मुनिमहाराज, विद्वानो, पण्डितों व

लेखकों से विचार विमर्श चलता रहता। इस युग के महान आशुकवि व जैन साहित्य के लोकप्रिय कवि श्री कल्याण कुमार जी जैन शशि का और डा० नागेन्द्र की एक दूसरे के प्रति गहरी आस्था व सानिध्य के कारण ही उनकी रचना मे इतनी चमक और सजीवता दृष्टिगोचर होती है। डा० नागेन्द्र नें अपनी समस्त चेतना को एकाग्र करके व पूर्ण मनोयोग से वर्षों की सतत साधना से ग्रन्थ को पूरा किया और इसमें "शशि" जी का विशेष सहयोग एव निर्देशन रहा जिन्होंने इस ग्रन्थ को अतिम रूप दिया और जहाँ जो भी कोई त्रुटियाँ या कमी थी उसे सही करा और उसकी रूप सज्जा मे प्रमुख भूमिका निभाई और शायद उनके बिना यह ग्रन्थ इतने सुन्दर रूप में न आ पाता।

ग्रन्थ लिखकर पूर्ण हो गया था अब ग्रन्थ मे जो भी त्रुटियाँ रह गयी थी उनका विश्लेषण किया गया तथा प्रत्येक का परिशोधन किया और परिष्कृत करके उसको टाइप कराया गया अब पाण्डुलिपि तैयार थी।

मै इसको छपवाने कई जगह गया और कई प्रेस व प्रकाशन सस्थानों के कुटेशन भी मेरे पास थे परन्तु मेरा हृदय जम नही रहा था क्योंकि मै चाहता था यह काव्य ग्रन्थ स्वर्गीय आशु कवि श्री कल्याण कुमार जी जैन 'शशि' के सानिध्य मे ही छपे क्योंकि उनको ही प्रूफ रीडिग और अन्तिम रूप देने का महत्वपूर्ण कार्य करना था। इसके साथ ही साथ इतने बडे अक्षरों मे छपाई भी एक मुख्य समस्या बन कर सामने आई अन्त मे मुद्रण का सभी कार्य अपने दामाद चि० अनिल कुमार जी जैन ने करवाने की जिम्मेदारी ली क्योंकि प्रारम्भ से ही ग्रन्थ के विषय मे उनसे विचार विमर्श चलता रहता था व उन्होने कई सुन्दर सुझाव दिये।

ग्रन्थ छपने मे दो वर्ष से अधिक समय बीत गया इसके कई कारण हो गये एक तो जो कागज हमने चयन किया था वह समय पर उपलब्ध न हुआ। इसके अतिरिक्त प्रूफ रीडिग के लिये मुरादाबाद से रामपुर जाना-आना पडता था इस

सम्बन्ध में मैं श्री कल्याण कुमार जी जैन "शशि" जी की जितनी प्रशंसा और आभार प्रकट किया जाये कम है। उन्होंने सम्पूर्ण ग्रन्थ को बिना बिलम्ब किये पूरा कराया और अन्तिम रूप प्रदान करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, मुझे अत्यन्त दुख है कि इसके प्रकाशन/ उद्घाटन के समय वह सशरीर उपस्थित नही है।

इस ग्रन्थ में अनेकों लोगों ने बहुत सहयोग किया है जैसे धर्मचन्द जी शास्त्री "सघस्थ" इतिहास रत्न डा कस्तूर चन्द जी कासलीवाल जिन्होंने सिद्धांत सम्बंधी संशोधन किये। मै पूज्य क्षुल्लक श्री सन्मति सागर जी महाराज तथा सभी विद्वानों एवं गुणी जनों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने समय-२ पर अपना अमूल्य सहयोग दिया है। मै प्रकाशन प्रेस "सच्ची बात प्रिंटर्स" का अत्यत आभारी हूँ जिन्होंने १८ न० टाइप मे इस काव्य को छापा जिससे कि हर आयु वर्ग का पाठक इसका स्वाध्याय कर सके व इनकी कम्पोजीटर मधु भटनागर को भी स्नेह व धर्म वृद्धि की कामना करता हूँ जिसने बड़ी लगन व परिश्रम से कार्य किया। मैं श्री दीपक भार्गव कैपिटल ब्लाक वर्क्स लखनऊ की प्रशसा करता हूँ जिन्होंने ग्रन्थ में महत्वपूर्ण चित्र सज्जा की है। इन सभी का मैं बड़ी विनम्रता व आदर से आभार प्रकट करता हूँ।

इसके अतिरिक्त इस अत्यत विस्तार वाले सकल ब्रह्मांड मे उपस्थित समस्त प्राकृतिक व दैविक शक्तियो ने, जिनसे मै अपरिचित हूँ, मेरा सहयोग किया और जिनके कारण ऋषभायन ग्रन्थ की रचना सम्भव हो सकी, उन सभी के प्रति मैं नत-मस्तक हूँ।

मैं अपने घर मे अपने चारो पुत्र राकेश, जागेश, विजय व प्रमेश जिन्होने इसका प्रकाशन कराया को भी स्नेह व आशीर्वाद देता हूँ। इस सबमे अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शान्ती देवी जैन का भी सहयोग रहा जब मेरा साहस कम होने लगता तो समय-समय पर उन्होंने मेरा ढाढस बँधाया और इस कार्य को पूरा करने की प्रेरणा दी।

यह ऋषभायन ग्रन्थ आपके सामने प्रस्तुत है, मेरी प्रभु से प्रार्थना है व हृदय से भावना है कि यह ग्रन्थ जन-जन का धर्म मार्ग प्रशस्त करे।

सौभाग्यमल जैन

समाहित सुगन्ध

मैंने अपनी योग्यता व समझ के अनुसार ऋषभायण महाकाव्य का निर्देशन किया है और इस बात का विशेष ध्यान दिया कि यह महाकाव्य अधिक से अधिक सरल व हृदयग्राही बन सके।

मेरे निर्देशन की सुगन्ध जो इस महाकाव्य मे समाहित है उसकी प्रतीति आपको मेरे अस्तित्व की याद दिलाती रहेगी।

श्री सौभाग्य जी के भागीरथ प्रयास व लगन के कारण ऋषभायन महाकाव्य की कल्पना साकार हो सकी इसके लिये मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। काव्य के चतुर चितेरे व मर्मज्ञ विद्वान डा० नागेन्द्र को इस रचना के लिये हिन्दी व जैन साहित्य सदा आदर पूर्वक स्मरण रखेगा मै प्रभु से उनकी मंगल कामना करता हूँ।

ऋषभायण के सम्बन्ध मे कुछ पंक्तियाँ :—

ऋषभायण मे प्रभु ऋषभ का चरित्र महान।
जिसका कविवर नागेन्द्र ने किया मनोहर गान।।
और श्री सौभाग्य जी को प्रकाशन करने का सम्मान।
ऋषभायण मे प्रभु ऋषभ का चरित्र महान।।
जो जन इसका भक्ति सहित करेगा पावन गान।
आधि-व्याधि व्यापे नही उसको शक्ति करे प्रदान।।
सब दुख मिटेंगे मिल जाएगा उसको सुख का वरदान।
ऋषभायण में प्रभु ऋषभ का चरित्र महान।।
यह अद्भुत, अदृश्य, अगम, अनन्त गुणो की अनुपम खान।
नही समय गमाओ हो एकाग्र चित्त सुनो धर ध्यान।।
इसको सुनकर कर्म कटेंगे पा जाओगे आत्म ज्ञान।
ऋषभायण में प्रभु ऋषभ का चरित्र महान।।

—कल्याण कुमार जैन 'शशि'

प्रस्तावना

ऋषभायण एक अनूठा महाकाव्य

ऋषभदेव वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर हैं। उनके युग को बीते करोड़ो अरबो वर्ष हो गये। वे इस युग के प्रथम धर्मोपदेष्टा ही नही, प्रथम श्रेष्ठ वैज्ञानिक भी थे। उन्होने जीवन की प्रत्येक गतिविधि को सर्वप्रथम अपने जीवन में उतारा और फिर जन-जन को उसे जीवन मे उतारने की प्रेरणा दी।

भगवान ऋषभदेव ने सर्वप्रथम अपने आपको विवाह सूत्र मे बाँध करके गृहस्थधर्म का पालन किया और मानव समाज को उसी के अनुसार चलने को कहा तथा गृहस्थ धर्म का किस प्रकार पालन किया जा सकता है उसका उदाहरण प्रस्तुत किया। उनकी जीवन शैली अनुकरणीय थी। उन्होने अपनी दोनो पुत्रियाँ ब्राह्मी एव सुन्दरी को अक्षर-विद्या एव अक-विद्या में पारगत करके सर्वप्रथम स्त्री शिक्षा का सूत्रपात किया। वास्तव मे ऋषभदेव के जीवन की प्रत्येक घटना भविष्य के लिये मार्गदृष्टा का कार्य करती है।

विश्व के इस आदि महापुरुष के जीवन पर देश की सभी भाषाओं मे अपार साहित्य मिलता है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश एव हिन्दी आदि भाषाओं मे अनेक कवियो ने काव्य की अनेक धाराओं में विपुल साहित्य रचा है। सस्कृत भाषा में निबद्ध आचार्य जिनसेन का आदिपुराण एव भट्टारक सकलकीर्ति का ऋषभनाथ चरित्र आदिनाथ के जीवन को जानने एव समझने के लिये महत्वपूर्ण कृतियाँ है। रचनाये तथा अपभ्रश भाषा मे निबद्ध महाकवि पुष्पदन्त का महापुराण जैसी

हिन्दी भाषा मे ऋषभदेव के जीवन को प्रस्तुत करने का सर्वप्रथम श्रेय महाकवि ब्र० जिनदास को जाता है। इसके पश्चात आमेर (जयपुर) के कवि अजयराज ने सवत् १७९७ मे ऋषभदेव तीर्थंकर के जीवन को छन्दोबद्ध किया।

लेकिन दोनो ही कृतियाँ अभी तक अप्रकाशित है। अजयराज के कुछ ही वर्षों पश्चात महाकवि दौलतराम कासलीवाल जयपुर ने आदिनाथ पुराण को हिन्दी गद्य मे निबद्ध करने का गौरव प्राप्त किया व उदयपुर के प्रतिष्ठाचार्य पं० मोतीलाल जी मार्तण्ड ने अभी कुछ वर्षों पहले ही ऋषभदेव चरित को काव्य रूप में रचना की थी। प० जी का यह काव्य भी प्रकाशित होकर जनसाधारण के सामने आ चुका है।

ऋषभायण एक महाकाव्य :—

यह काव्य ग्रन्थ लखनऊ निवासी श्री सौभाग्यमल जैन की कल्पना का साकार रूप है क्योंकि उन्होने ही समस्त विषय सामग्री एकत्र की। इस प्रकार हिन्दी भाषा मे चार रचनाओ के पश्चात ऋषभायन पाचवी काव्यकृति है जिसको निबद्ध करने का गौरव डा० नागेन्द्र जी को प्राप्त हुआ तथा जैन जगत और भारतीय जगत के ख्याति प्राप्त क्राति कारी स्वतन्त्रता सेनानी श्री कल्याण कुमार जैन 'शशि' ने निर्देशन किया जिन्होने अपने जीवन काल मे लगभग २५ हजार कवितायें एवम् जैन धर्म सम्बधी पुस्तके तथा जन कल्याण कारी पुस्तके लिखी और जीवन भर धर्म व समाज सेवा की।

ऋषभायण महाप्रभु ऋषभदेव के जीवन पर निबद्ध एक नवीनतम महाकाव्य है जिसमे उनके महान जीवन के दर्शन किये जा सकते है। आधुनिक काव्य शैली मे निबद्ध प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव के जीवन का प्रारम्भ से अन्त तक वर्णन किया गया है। उन्होने अपने पूरे काव्य को आठ खण्डो मे विभक्त किया है। सभी खण्ड समान छन्दो वाले है। इस तरह पूरा काव्य धारा प्रवाह चलता है। वर्णन मे सरसता, रोचकता एव माधुर्य है तथा छन्दों के परिवर्तन से वह सुरूचिपूर्ण बन गया है। पूरा काव्य गेय शैली मे निबद्ध है इसलिये पाठक जब उसे गाकर पढने लगता है तो सारा वातावरण आध्यात्म एव भक्ति रस से ओतप्रोत बन जाता है।

ऋषभायण एक अनूठा महाकाव्य है। स्वयं कवि ने भी अपने इस काव्य को कितने ही स्थानो पर महाकाव्य लिखा है। उसमे महाकाव्योचित सभी लक्षण विद्यमान हैं। उसके नायक महाप्रभु ऋषभदेव हैं। प्रतिनायक आठ कर्मों का समूह

है जिनका ऋषभदेव अपनी अपूर्व तपस्या के द्वारा घात करके निर्वाण प्राप्त करते है। महाकाव्य मे उतने ही अध्याय है जितने कम से कम एक महाकाव्य में होने चाहिये। वैसे उनके अध्याय मे छोटे-छोटे अध्याय और है जिनमे जीवन की विभिन्न घटनाओं का वर्णन किया गया है। ऋषभदेव के इस महाकाव्य को सुनने से ही पुण्य बन्ध होता है। मन निर्मल बन जाता है और उसके पास किसी प्रकार के कष्ट नही आ सकते।

महाकाव्य विविध छन्दो एव अलकारो से युक्त है। वह एक अच्छे उद्देश्य से लिखा गया काव्य है जिसमे प्रकृति वर्णन है तथा अन्य सभी घटनाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है।

काव्य का प्रारम्भ पच परमेष्ठी स्तवन के रूप मे प्रारम्भ होकर णमोकार महामत्र के महात्म्य वर्णन से समाप्त होता है कि उसका थाह पाना भी कठिन है। और जो मानव इस निधि को पा लेता है उसको पाने के लिये फिर बचता ही क्या है।

> इस महामत्र का फल पाकर, पाना कुछ रहता शेष नही।
> जो इस निधि को पा लेता है लगता जग उसे विशेष नही।।

इसलिये वे कहते है —

> रण राजनीति जग यश वैभव साहित्य कला सब कुछ पाता।
> यह महामत्र का ही प्रभाव सुरराज इन्द्र तक ललचाता।।

ऋषभायण कोई साधारण काव्य नही है और न इसके नायक ही सामान्य व्यक्ति है। इस काव्य के नायक ही नही किन्तु अन्य पात्र भी उत्कृष्ट श्रेणी के है इसलिए उनकी गाथा का कथन ही मगलकारी होता है।

> गाथा यह मगलकारी है, मनवाछित फल की दाता है।
> श्रद्धा समेत यह अपनावे, यह गाथा भाग्य विधाता है।।
> इस सरल कथा के धन्य पात्र, सात्विक श्रद्धा के सागर है।
> जीवन मे इन्हे उतारे हम, गुण इनके जगत उजागर है।।

महाकाव्य के सभी वर्णन एक से एक सुन्दर है। जैसे फूलों के बगीचे में से किसी एक फूल को चुनना कठिन है वैसे ही इस महाकाव्य में से उत्तम प्रसंगों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना भी मुझे कठिन लग रहा है। फिर भी कुछ अच्छे वर्णन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

मरुदेवी के नयन मे झलके जल के बिन्दु।
रोम रोम बतला रहा, उमड़ रहा है सिन्धु॥
श्री नाभिराय स्वीकार रहे, था मूल ब्याज अब पाया है।
अब तक खुशियों का पर्वत था, पर्वत ने शीश उठाया है॥

ऋषभ कुमार का राज्याभिषेक हुआ चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। उनके प्रति सबकी सहज श्रद्धा थी। उन्होंने गाँव बसाये, दस गाँवों के मध्य एक बडा गाँव बसाया, व्यापार के लिए मण्डियाँ बनायी और सबको नागरिकता का पाठ पढाया। सामाजिक जीवन प्रारम्भ हुआ तीनों वर्णों की स्थापना हुई। ये वर्ण थे क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। किसी ने किसी प्रकार का अपराध किया तो उसे धिक् इतना मात्र दण्ड बहुत बडा दण्ड होता था ऐसा सीधा सरल जीवन जनता का था ब्राह्मण वर्ण की तो स्थापना आगे चलकर उन्ही के पुत्र सम्राट भरत ने की थी और दण्ड तनु का विधान बनाया और उसी के अनुसार सबको चलने के लिए आदेश दिया और अपराधियों को तनु दण्ड भी दिया जाने लगा।

षट कर्म पर उठा भवन, उस में धर्म व्यवस्था थी।
सब निज सीमा में कर्म करे, अति सुन्दर वर्ण व्यवस्था थी॥

इस प्रकार पूरा महाकाव्य अत्यधिक सुन्दर एवं सुगन्धित फूलों से गूथा हुआ एक गुलदस्ता है जिसका सभी भाग मनोहर लगता है तथा किसको अधिक सुन्दर कहें और किसको कम इसका निर्णय करना कठिन लगता है।

ऋषभदेव किस प्रकार प्रजापालन की चिन्ता में डूबने लगे इसका कवि ने विस्तृत वर्णन किया है और महाराजा ऋषभदेव के हृदय के मर्म को खोल कर रख दिया है।

राजा और प्रजा मे है, जब तक ममता का भाव नही।
तब तक न राज्य का हित सभव, जब तक ममता का भाव नही ।।
राजा यदि सुन्दर सरवर है तो जनता रम्य किनारा है।
राजा रजनी का सुभग गगन, तो जनता सुन्दर तारा है।।

वे इस युग के प्रथम राजा थे इसलिये उन्होने अपने राज्य को आदर्श राज्य के रूप मे उपस्थित किया। चारो ओर शांति थी। अमन चैन था। किसी वस्तु का अभाव नही था। राजा और प्रजा का सबन्ध पिता पुत्र जैसा था। कवि ने इन्ही भावो को अपने काव्य मे निम्न प्रकार गूथा है।

महाराजा ऋषभदेव ने लाखो वर्ष तक शासन किया। एक दिन उनकी राज्य सभा मे नीलाजना अप्सरा का नृत्य हो रहा था नृत्य के मध्य नीलाजना की मृत्यु देख कर ऋषभदेव का मन अशान्त हो गया। उन्होने ससार की नश्वरता पर चिन्तन किया और अन्त मे मुक्ति मार्ग का पथिक बनने का निर्णय कर लिया। ऋषभदेव अन्त मे तपस्वी जीवन बिताने का दृढ सकल्प करते है क्योकि बिना तपस्या के मोक्ष महल तक प हुचना सभव नही है —

तप कर ही स्वर्ग निखरता है, तप की महिमा का पार नही।
जो तप को नही समझ पाया, उसका होगा निस्तार नही ।।

भाव अनुभाव जग सुख साधनो का त्याग।
मनोवृत्ति शुद्धता का एक भाव जगा है।।

राग-द्वेष, क्रोध, घृणा क्षण क्षण जीत कर।
मोह ममता का बस टूट रहा तागा है।।

कोई भी न मन मीत, बन कर मन जीत।
मन की मनोज्ञता मे ध्यान एक लागा है।।

घोर तपस्या के पश्चात ऋषभदेव को कैवल्य हो गया। कवि ने इन सबका वहुत ही सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है :—

जय सत्य जय सत्य पथ, जय सत्य रथ जय सत्य हो।
जय जगत अशरण शरण, जय जगत नित्य अनित्य हो ॥

काव्य मे आगे और भी रोचक वर्णन है। पचम खण्ड पूरा का पूरा भरत बाहुबलि से सम्बन्धित है। हम यहाँ केवल एक उदाहरण प्रस्तुत करके पाठको को पूरे अध्याय को मनोयोग पूर्वक अध्ययन करने का आग्रह करते हैं जिससे काव्य के पात्रों के भावो के उतार-चढाव का अच्छी तरह पता चल सके।

दोनो के सिर जब टकराये, तब भीषण हाहाकार हुआ।
जैसे दो बादल टकराये, नभ मे स्वर अपरम्पार हुआ ॥
अथवा सागर की रग लहरें, टकराकर कूल गिराती हो।
अपने तन का ज्यो बल विक्रम, दर्शाती रोर मचाती हो ॥

इसी तरह षष्ट खण्ड में सम्राट भरत का राज्यभिषेक, उनके द्वारा चातुवर्ण व्यवस्था, भरत का स्वप्न वर्णन, स्वयवर वर्णन, युवराज जयकुमार वर्णन, भरत न्याय वर्णन सभी मे कवि ने जो सौष्ठव एव मनमोहकता प्रदान की है वह उसकी लेखनी एव कल्पना शक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण है। सप्तम खण्ड यद्यपि अन्य खण्डो की तुलना मे छोटा है लेकिन वह काव्य के मक्खन के समान है जिसमे सारे खण्डो का सार है। अन्त मे कवि ने निम्न पक्तियो के साथ अपने विशाल महाकाव्य को समाप्त किया है :—

मेरा नही कछु ऋषभ का कल्याणकारी चरित है।
तप त्याग संयम शील की, मृदु पवन की सचरित है ॥
अभिलाष हैं नागेन्द्र की हिसा अधर्म विनाश हो।
प्रभु ऋषभ पावन चरित पर श्रद्धा सहित विश्वास हो ॥

ऋषभायण महाकाव्य में अपने वर्ण्य विषय के अतिरिक्त प्राकृतिक वर्णन भी खूब हुआ है। कवि ने नदी, पर्वत, रात्रि, दिवस, संध्या, प्रभात, सूर्य, चन्द्रमा आदि के प्राकृतिक सौन्दर्य कवि ने अपनी कलम चलाने मे कोई कसर नही छोडी।

सध्या को यह सूर्य कह गया मतवाली होकर मत सोना।
मैं अभी लौट कर आता हूँ, मेरी स्मृति मे रत होना॥
सूरज मुस्कराता चला गया, सध्या का कर मे कर लेकर।
औ कुमुद समूहो के मग मे, रात्रि को रहना आज्ञा देकर॥

जब वसन्त ऋतु आती है तो चारो ओर सुन्दरता ही सुन्दरता दिखाई देती है। उस समय धरती की शोभा तो निराली ही बन जाती है।

धरती ने साडी पहनी है, गिनती रगो की कैसे हो।
अनगिनत रगो मे रगी हुई, होली की शोभा जैसी हो॥

हिन्दी जगत उनकी इस महती उपयोगी कृति पाकर गौरवान्वित हुआ है और इससे ऋषभदेव के जीवन पर लिखे गये काव्यो मे एक और वृद्धि हुई है।

प्रकाशक के सम्बन्ध में दो शब्द

प्रस्तुत महाकाव्य के कल्पनाकार एवम् प्रकाशक लखनऊ निवासी श्री सौभाग्यमल जैन है। वास्तव मे इसके प्रणयन मे उनकी मुख्य प्रेरणा रही है। श्री जैन ने अपने निजी पुस्तकालय तथा अन्य जगहों से ऋषभायण की रचना करवाने सम्बन्धी ग्रन्थ उपलब्ध करवाये ओर महत्वपूर्ण घटनाओ को उभारने के लिए विशेष रूप से प्रेरित किया। निरतर रामपुर जाकर डा० नागेन्द्र जी को महाकाव्य सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध कराते रहे। इसलिये श्री जैन का इस महान प्रयास के लिये मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। मैं जानता हूँ कि वे इसके प्रकाशन के लिये विगत ३-४ वर्ष से चिन्तित थे और अपना अधिकांश समय इसी के प्रकाशन मे लगाया है। श्री सौभाग्यमल जी राजस्थानी हैं। मूलत. दूदू निवासी है। इनका

बचपन अभावों में बीता था। जो कुछ उन्होंने अपने आपको ऊँचा उठाया है वह स्वयं अपने अथक कठोर प रिश्रम, लगन एव निष्ठा का फल है। वर्तमान में आपने किराना, जड़ी बूटी व्यवसाय में उल्लेखनीय सफलता प्राप्तकी। विगत १४ वर्षों से अपना समस्त जीवन समाज एवं धर्म की सेवा में लगा रखा है, कई धार्मिक क्षेत्रों के संरक्षक एवं संस्थाओं के अध्यक्ष हैं। सदा दान धर्म मे तत्पर रहते हैं। सरल स्वभावी एवं शान्त परिणामी हैं। ऋषभायन के पूर्व भी आपने कितनी ही पुस्तकों का निस्वार्थ भाव से प्रकाशन कराया है। प्राचीन युग में भी श्रेष्ठिजन विद्वानों से साहित्य निर्माण करने को प्रेरणा करते थे और उन्हे सब प्रकार का सहयोग देते थे जिससे बहुत से ग्रन्थों की रचना हो सकी थीं जिनका उल्लेख ग्रन्थ प्रशस्तियों में मिलता है। ऐसा ही कार्य श्री सौभाग्यमल जी ने वर्तमान युग में किया है जो पूर्णत. प्रशमनीय ही नही है अपितु अनुकरणीय भी है। श्री सौभाग्यमल जी जैन साहित्य के प्रकाशन मे इसी प्रकार सतत प्रयत्न करते रहे यही मेरी हार्दिक भावना है। मै इस पुण्यशील कार्य के लिए उनका पुन. अभिनन्दन करता हूँ।

८६७, अमृत कलश
बरकत नगर, किसान मार्ग
टोंक फाटक, जयपुर-१५

डा. कस्तूर चन्द कासलीवाल
निदेशक
श्री महावीर ग्रथ शोध सस्थान

॥ पुरोवाक ॥

अनन्त गुणधारी चरित्र देश और काल की सीमा से परे होते हैं। हमारे ज्ञानी पूर्वज अपने सात्विक पराक्रम से धर्म, विज्ञान, पौरुष और समन्वय के क्षेत्र में जो आदर्श स्थापित कर गऐ है, उस आलोक युक्त आदर्श को जीवन मे प्रत्यक्ष देखना, जीवन मे आदर्शों को उतारना तथा भावी पीढियों के सचार योग्य वातावरण तैयार करना हमारा कर्त्तव्य है।

भगवान आदिनाथ का नाम ऋषभदेव या वृषभदेव भी है। जैन वाङमय मे तो ऋषभदेव की चर्चा विश्वरमता से मिलती है, हिन्दू पुराण साहित्य विशेषकर श्रीमद् भागवत महापुराण मे ऋषभदेव का चरित्र बडी शालीनता से प्रस्तुत किया गया। वे आठवे अवतार माने गये है। उनका परिचय जैन-वाङमय से मिलता जुलता ही प्रस्तुत किया गया है। जिसका पराक्रम अद्वितीय होता है उसका यश किसी देश या काल विशेष की सकुचित परिधियों मे निबन्धित होकर नही रहता है। यही कारण है कि श्रमण सस्कृति के आदि उन्नायक आदि के तप, त्याग, गुण और पराक्रम से प्रभावित होकर मूर्तिकारो ने मूर्ति गढी, श्रद्धालुओं ने मन्दिरो की स्थापना, विचारकों ने उनके चरित्र का मनन-चिन्तन किया और कवियो ने अपनी सुललित मनोरम कल्पनाओ से काव्य रचना कर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये है इतिहास ज्यो-ज्यो आगे बढता जा रहा है त्यो-त्यो ऋषभदेव का चरित्र और अधिक जनोपयोगी और आदर्श होता जा रहा है।

महाप्राण ऋषभदेव का युग सतुलन का युग है। इस सतुलन मे सकारात्मकता बढे इस हेतु असि-कृषि-मसि आदि का विकास होता है और राग मूलक प्रवृत्तियो मे क्षय प्रारम्भ होता है। समयानुकूल आचरण, त्याग पूर्वक भोग, भोग का उद्देश्य साधना के परम साधनो सयोजन और सर्वहित कामना मे स्वय अर्पित

करना ही जीवन के लिये काम्य है। समवशरण, मुनि उपदेश, गृहस्थ उपदेश, द्वादश भावना, षड् आवश्यक कर्म, रत्नत्रय आदि की विस्तृत चर्चा इसी उद्देश्य से की गई है कि श्रमण-संस्कृति के आदर्श भूत अगों से भली भांति परिचित हुआ जा सके। स्मरण रहे कि शास्त्र और काव्य की पद्धति मे अन्तर होता है। काव्य में प्रसंगानुसार बात कही जाती है जबकि शास्त्र में एकरसता से बात कहते चलते है, विचारो को प्रस्तुत करते हैं। शुष्क बात को सरसता से करना ही काव्य की कला है।

भौतिकता से आक्रान्त युग मे अपरिग्रह और अहिसा की बात जब कोरा आदर्श सी लगती है तब इस प्रकार की इतिहास सम्मत पौराणिक घटनायें अन्धकार में प्रकाश-द्वीप की भाँति हैं। तामसी और राजसी मनोवृत्ति का लय सात्विक मनोवृत्ति मे कैसे हो, जीवन का दुर्लभ आदर्श कैसे मिले, कमलवत् जीवन कैसे जिआ जाये, आचरण मे आदर्श की दीप्ति कैसे हो, स्थूल से सूक्ष्म की ओर कैसे जाया जाये और धर्म के प्रति हृदय में अनुराग कैसे उत्पन्न हो आदि जैसे शताधिक प्रश्नों के समाधान स्वत होते चले है। सर्वत्र इस लक्ष्य पर दृष्टि केन्द्रित रखी गई है कि कही भी ऐसी भाषा का प्रयोग न हो जिसे सर्वसाधारण को हृदयगम करने मे असुविधा हो।

रामपुर हिन्दी साहित्य के पुरोधा कवि श्री कल्याण कुमार जी जैन 'शशि' की सतत प्रेरणा और श्रमण साहित्य की जानकारियो ने जब मन को उद्वेलित किया तो काव्य धारा प्रवहमान हो चली। 'ऋषभायण' महाकाव्य के प्रणयन मे 'काव्य श्री' शशि जी के महत्वपूर्ण योगदान को सदा स्मरण रक्खा जाएगा। वे प्रति पग सजगता के साथ रहे है। उनके सम्बल से कही पाव डगमगा नही सके। मैं अत्यन्त विनम्र मन से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। काव्य की समस्त विधाओ मे मुझे उनसे सशोधन तथा मार्ग दर्शन मिलता रहा है।

जैन धर्म के श्लाघनीय धर्मवीर एवं दानवीर श्री सौभाग्यमल जैन के मन में भगवान आदिनाथ के प्रति अपार श्रद्धा है। इस असीमित श्रद्धा एवं आस्था का प्रकट रूप 'ऋषभायण' महाकाव्य है। आपकी इच्छा, सतत लगन व प्रेरणा के अभाव मे 'ऋषभायण' की रचना सम्भव नही थी। मैं श्री सौभाग्यमल जैन की धर्मप्राण श्रद्धा के प्रति श्रद्धालु हूँ। जिन्होंने विशालकाय महाकाव्य को प्रकाशित कर इतिहास प्रसिद्ध काय किया है। मैं श्री जैन की साहित्य-प्रियता और गुण ग्राहकता के प्रित नत-नम्र हूँ।

एक बार पुन: प्रेरणा स्रोत श्री शशि जी एवं जैन धर्म के सजग श्रावक श्री सौभाग्यमल जैन के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके मूर्तिमन्त प्रयास से 'ऋषभायण' महाकाव्य पाठकों के समक्ष आ सका है। शुभस्तु।

वसन्त पचमी वि० स० २०४४

विनीत :

डा० नागेन्द्र

-: एक कथ्य :-

महाकाव्य ऋषभायण आपके हाथो मे है। इसमें प्रथम तीर्थंकर प्रभु आदि नाथ की सम्पूर्ण जीवन गाथा है। यह गाथा उच्च से उच्चतर व उच्चतम अवस्था प्राप्त करने की सतत प्रक्रिया है। जीव-मात्र को उच्चतम अवस्था प्राप्त करने के लिए इसी प्रक्रिया से गुजरना होगा।

इस महान ग्रन्थ के उद्‌भव होने मे लेखक निर्देशक, प्रकाशक व अन्य लोगो ने बहुत सहयोग दिया है। वे सभी प्रशसा के पात्र हैं व धार्मिक कार्य मे सहयोग करने के कारण पुण्य के भागी हैं।

इसका श्रेय श्री सौभाग्यमल जैन लखनऊ निवासी को है क्योकि उन्ही की कल्पना का साकार रूप आपके सामने इस पुस्तक मे प्रकट हो रहा है। जैसे एक कुशल वास्तुकार अपने मानचित्र मे मकान के स्वामी की रूचि व कल्पना का भवन समायोजित करता है तथा कारीगर बनाता है वहाँ मकान का स्वामी ही प्रमुख होता है तथा वास्तुकार व अन्य सहयोगी होते हैं या इसे ऐसे समझना होगा यदि आप एक अनपढ व्यक्ति के बताये भावो को उसके कहे अनुसार लिख दें तब आपने मात्र उसके मनोभावों को लिपिबद्ध किया है।

असीम धर्म श्रद्धा, अथक परिश्रम व सूक्ष्म दृष्टि व गहन अध्ययन तथा जनहित की भावना के कारण इतनी सुन्दर लोक रजित मन भावन धर्म मार्ग की ओर प्रशस्त करने वाली यह अनुपम काव्य रचना जो डा नागेन्द्र द्वारा रचित व आशुकवि श्री शशि जी द्वारा पोषित है। पाठको के अज्ञान तिमिर को नष्ट कर जन-जन को नवदृष्टि प्रदान करेगी यही श्री सौभाग्य जी की भावना है व मेरी प्रभु से प्रार्थना है।

अनिल जैन
जैन भवन
दिनदार पुरा, मुरादाबाद

ऋषभायण "एक विशिष्ट दृष्टि"

आज जैन धर्म की प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध है। अब भगवान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक नहीं माना जाता, उनसे पूर्व ऋषभदेव, अजिनाथ, अरिष्ट नेमि और पार्श्वनाथ के अस्तित्व के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरों के नामों का उल्लेख प्राप्त है। डॉ याकोबी और डॉ. राधाकृष्णन ने ऋषभदेव को जैनधर्म का संस्थापक स्वीकार किया है। जैन परम्परा ऋषभदेव को वर्तमान युग के चतुर्विंशति तीर्थंकरों में आद्य तीर्थंकर मानती हैं। हिन्दू परम्परा ऋषभदेव को आठवें अवतार के रूप में गौरव देती है। बौद्धों में भी ऋषभदेव की प्रथम जैन तीर्थंकर होने की मान्यता प्रचलित है।

जैन परम्परा यह मानती है कि सृष्टि एक बार सुख से दुःख की ओर गतिशील होती है तो फिर दु.ख से सुख की ओर। पहली स्थिति को अवसर्पिणीकाल और दूसरी को उत्सर्पिणीकाल कहते हैं। प्रत्येक के छह खण्ड हैं— १. अतिसुखरूप २. सुखरूप ३. सुखदुःखरूप ४. दु:खसुखरूप ५. दु:खरूप ६. अतिदु:खरूप। ऋषभदेव अवसर्पिणी काल के तीसरे खण्ड मे हुए। अब उस काल का पाँचवां खण्ड चल रहा है। अतः उन्हें हुए लाखों करोड़ों वर्ष हो गए। हिन्दू मान्यता के अनुसार ऋषभदेव मनु की पाँचवी पीढ़ी में सतयुग के अन्त मे हुए। अब तक २८ सतयुग बीत चुके हैं, इससे भी उनके समय की प्राचीनता का अनुमान लगता है। अत जैन धर्म की प्राचीनता असंदिग्ध है। एक मान्यता के अनुसार आर्य लोग जब मध्य भारत में आए तब यहाँ जैन लोग मौजूद थे। ऋषभदेव के बाद जैनों के २३ तीर्थंकर और हुए। उन्ही महावीर का शासन चल रहा है।

लाखों-करोडो वर्ष पूर्व हुए जैन धर्म के आद्य प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव को नायक बनाकर तत्समप्रधान हिन्दी खड़ी बोली में रचित 'ऋषभायण' नामका यह महाकाव्य मेरी जानकारी में अपने ढग का पहला सुप्रयत्न है। साहित्यिक, काव्यप्रेमी

लखनऊ निवासी श्रीमान् सौभाग्यमल जी जैन की भावना के अनुरूप कविताचार्य श्री कल्याण कुमार जी 'शशि' के मार्गदर्शन में डॉ. नागेन्द्र जी ने जैन परम्परा के विस्तृत इतिहास को ऋषभदेव के नायकत्व में समेटा है। एक अजैन कवि के लिए निश्चय ही यह एक चुनौती भरा अनुष्ठान था जिसे नागेन्द्र जी ने सफलता पूर्वक सम्पन्न किया है।

महाकाव्य के आठ खण्डों में भगवान ऋषभदेव के जन्म से पूर्व की स्थितियों का दिग्दर्शन करते हुए उनके पाँच कल्याणकों का प्रमुखतः तथा लोक व्यवस्था, समवसरण, भरत बाहुबली युद्ध, अर्ककीर्ति एवं जयकुमार संघर्ष का प्रसंगतः विस्तृत रोचक वर्णन प्रसादगुण परिपूर्ण शैली में किया है। आठवें खण्ड में ऋषभदेव के बाद भगवान महावीर तक और फिर आधुनिक काल की श्रमण परम्परा का संक्षिप्त निदर्शन कराकर महाकाव्य को अद्यतन जानकारी से परिपूर्ण किया है।

हिंसा, आतंक और पारस्परिक विद्वेष के इस दौर में ऋषभदेव का 'अहिंसा दर्शन' कितना उपयोगी, प्रासंगिक और सार्थक है, इस पर पृथक टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं। महाकाव्यकार ने जैन विचार और आचार परम्परा का तथा जैन जीवनादर्शन का संग्रन्थन बडे ही प्रभावशाली एवं विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत किया है। जैन मतावलम्बियों के लिए तो यह महाकाव्य गौरवग्रंथ सिद्ध होगा ही परन्तु जैन धर्म की जिज्ञासा रखने वाले सभी पाठकों के लिए भी यह उपादेय सिद्ध होगा।

मैं रचियता डा० नागेन्द्र जी को साधुवाद देता हू और कामना करता हू कि उनकी लेखनी इसी प्रकार अन्य प्रेरक इतिहास पुरुषों को भी अपनी रचनाओ का नायक बना कर प्रस्तुत करें।

ग्रन्थ के प्रकाशक महोदय श्रीमान् सौभाग्यमल जी जैन का अभिनन्दन करता हूँ और श्रमण संस्कृति में उनकी रूचि की दिनानुदिन वृद्धि की कामना करता हूँ। इति शुभम्

चेतन प्रकाश पाटनी
प्रो० जोधपुर विश्वविद्यालय

॥ अनुपम महाकृति ॥

भ० ऋषभ देव का जन्म भोग भूमि के अन्त समय तथा कर्म भूमि के प्रारम्भिक काल इन दोनो कालो की सन्धि के बीच हुआ था। तब मानवी जीवन में एक समस्या उपस्थित हुई कि कैसे जिये ?

युवराज ऋषभदेव ने अवधि ज्ञान से विदेह क्षेत्र में सतत प्रवाह मान कर्म भूमि की रीति जानकर उनने लौकिक जीवन जीने के लिए असि, मसि, कृषि आदि षटकर्म और धर्ममक जीवन जीने के लिए देव पूजा गुरुपासना आदि दैनिक षट-कर्म और आत्मिक सुख शान्ति के लिए आध्यात्म विद्या का उपदेश दिया और सब प्रकार की विद्या बताई।

दर्शन विचार को प्रधानता देता है तो धर्म आचार की। दर्शन का अर्थ है सत्य का साक्षात्कार करना और धर्म का अर्थ है उस सत्य को जीवन मे उतारना, दर्शन हमें राह दिखाता है तो धर्म उस राह पर चलने को प्रेरित करता है अधिक क्या कहू धर्म दर्शन की प्रयोगशाला हैं इस प्रयोगशाला के प्रथम छात्र थे भ० ऋषभदेव जिन्होंने अपने स्वंय पर प्रयोग कर कृत्य-२ हो गये।

ऋषभायण नामक महाकाव्य डा० नागेन्द्र जी ने लिखा है उसे इस युग में एक महान अनूठी कृति के रुप मे प्रस्तुत किया है।

इस महाकाव्य में आपने बडी ही सरसता के माध्यम से आगम एव पुराणों विशेषत: जिनसेनाचार्य सचेत महापुराण के आधार पर प्रस्तुत किया है।

ऋषभायण महाकाव्य के सम्बन्ध में सच में कहा जाय तो अब तक प्रकाशित काव्यो मे सिरमौर है, श्रमण संस्कृति के अग्रदूत भ० ऋषभदेव के जीवन का नही, अपितु समाज व्यवस्था पर सूक्ष्म दृष्टि से कवि महोदय ने कल्पना को साकार किया

है। डा० नागेन्द्र जी उच्च कोटि के साहित्यकार हैं ऐसा इस कृति से ज्ञात हुआ। गूदडी के लाल को आदरणीय श्री शशि जी ने ढूंढा तथा उनका कल्याणकारी उपयोग किया। लेखक के साथ इस कार्य के सृजनकर्त्ता श्री सौभाग्यमल जी ही हैं। जिनकी प्रेरणा से इस महाकाव्य का सृजन हुआ। भाई सा० धर्मनिष्ठ, मुनिभक्त तो हैं ही साथ ही धर्म ग्रन्थों के अध्ययन में रूचि रखते हैं। आपने अनेकों जैन ग्रन्थों का स्वाध्याय कर जैनागम का ज्ञान प्राप्त किया। इस ग्रन्थ के लेखक डा० नागेन्द्र जी को जो मार्गदर्शन एवं सामग्री दी उसी से महाकाव्य की कल्पना को साकार किया गया। इसमे कोई अतिशयोक्ति नही कि काला जी इस महाकाव्य की जड ही हैं। श्री सौभाग्यमल जी ने अथक प्रयत्न किया तन, मन, धन से इस महाकाव्य के निर्माण मे अनेक वर्षों तक आप इस महायज्ञ मे लगे रहे तब इस काव्य को पूर्ण रूप दे सके। आपने आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज के तृतीय पट्टाधीश आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज के पास आकर इस महाकाव्य के लिए मार्ग दर्शन लिया आचार्य श्री ने इस महाकाव्य को पूर्ण आशीर्वाद दिया था। इस महाकाव्य के कल्पनाकार श्री सौभाग्यमल जी लखाऊ से कई बार मेरे पास आए तथा इस महाकाव्य के सम्बन्ध में मार्ग दर्शन लिया। इस काव्य को शुरु से अन्त तक हमने पूर्ण अवलोकन किया, प्रसगवश सशोधन की आवश्यकता पडी तो सम्पादन महोदय ने इसमे आवश्यक संशोधन किया। अब यह कृति ससार में अद्वितीय कृति के रूप मे सामने आई है। स्व० मनीषी आशुकवि श्री शशि जी का अभूतपूर्व योगदान सराहनीय है।

इस महाकाव्य को जैन समाज ही नही बल्कि जैनेतर साहित्य मे अनुपम कृति का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा। इस काव्य की साज सज्जा, प्रिंटिंग, चित्र आदि भी सराहनीय है। मैं देवाधिदेव श्री महावीर प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि लेखक व प्रकाशक बन्धु दीर्घ काल तक जिनवाणी माँ की सेवा करते हुए अपने जीवन को सफल बनावे।

धर्मचन्द शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, प्रतिष्ठाचार्य
(संघस्थ आचार्य धर्मसागर जी)

॥ सम्मतियाँ ॥

आप के १४-२-८८ के पत्र से श्री १००८ ऋषभदेव भगवान के यशस्वी एवं ऐतिहासिक जीवन से सम्बन्धित, डा नागेन्द्र द्वारा रचित 'ऋषभायण' महाकाव्य के प्रकाशन का समाचार विदित कर मुझे हार्दिक सुख तथा सन्तोष का अनुभव हुआ। भारतीय गौरव पुरुषों के जीवन तथा कर्म की ठीक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुति एक महान पुण्य कार्य है। हठ धर्मिता से रहित, अहिंसा एव मानव प्रेम पर आधारित श्रमण संस्कृति का प्रचार व प्रसार राष्ट्रीय हित मे तो है ही विश्व मंगलकारी भी है।

इस महान मगल कार्य की सफलता के लिये मेरी भरपूर शुभ कामनाऐं।

ज्ञानी जैल सिंह
(भूतपूर्व राष्ट्रपति, भारत)

यह श्रमण संस्कृति की अहिंसामयी नीति के प्रसार के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता का भी परिचायक है। मैं आशा करता हूँ कि जिस तरह श्री राम के व्यक्तित्व की गरिमा से "रामायण" महाकाव्य विश्व प्रधान हुआ है उसी प्रकार श्री ऋषभ देव के व्यक्तित्व की पराकाष्टा को जन-जन में फैलाने मे "ऋषभायण" अपना नैतिक कर्तव्य सपादन करने मे सफल सिद्ध होगा। इस महाकाव्य के प्रथम सस्करण के प्रकाशन के शुभ अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभाशसा व्यक्त करता हूँ।

विशम्भर नाथ पाण्डे
गवर्नर उडीसा

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आप "ऋषभायण" महाकाव्य का प्रकाशन करा रहे है। इससे अहिंसामयी "श्रमण सस्कृति" का प्रचार होगा, जिससे राष्ट्र मे अहिंसामयी समाज का विकास होगा।

हाफिज मौहम्मद सिद्दीक
ससद सदस्य

ऋषभायण सूर्य की भांति आगामी पीढ़ी के संस्कारों को उद्दीप्त एवं प्रकाशमान करने में सहायक होगी। —आयुर्वेदाचार्य पं. भैया शास्त्री, शिवपुरी (मध्य प्रदेश)

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को नायक के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास सराहनीय है।
—भरत कुमार, सम्पादक अहिंसा, बम्बई

आज के कम्प्यूटर युग में समीचीन आदर्शों एवं आस्थाओं का संस्थापक आपका महाकाव्य जन जन को उपादेय होगा। —पं. चन्दन लाल जैन शास्त्री
ट्रस्टी श्री भ. यशकीर्ति दि. जैन बोर्डिंग, प्रतापगढ राजस्थान

ऋषभायण भगवान ऋषभदेव के कार्यों को जनसाधारण तक पहुचाने में सार्थक हो सकती है। —डा. महेन्द्र कुमार M. A. P. H. D. प्राचार्य छतरपुर, मध्यप्रदेश

यह कृति प्रकाशित होने पर जन-जन में आत्मोत्थान की भावना जागृत करेगी।
—सेठ निर्मल चन्द सोनी, अजमेर

ऋषभायन धर्म, सस्कृति एव साहित्य का अनूठा समन्वित दर्पण है।
—कपूर चन्द जैन 'इन्दु', एतमादपुर आगरा

जैन संस्कृति के मूल आधार भगवान ऋषभनाथ के चरित्र चित्रण की यह रचना अनूठा प्रयास है। —धर्म प्रकाश शास्त्री महामत्री, अवागढ एटा उत्तर प्रदेश

यह महाकाव्य रामायण की भाति लोग मधुर स्वर में पढकर आनदित होगे।
—नाथुलाल बाकलीवाल, जयपुर

ऋषभायण जैन धर्म के सिद्धान्तों का अधिक से अधिक प्रचार व प्रसार कर सके।
—इन्दर चन्द जैन, डाली गज, लखनऊ

ऋषभायण महाकाव्य की भाषा ओजपूर्ण माधुर्य, रस, अलकार व सरल शब्दो से सुशोभित है। —श्री नन्दन कुमार सिघई, श्री महावीर दि. जैन सस्कृत
महाविद्यालय ललितपुर

यह महाकाव्य जैन साहित्य ही नही हिन्दी साहित्य मे भी अपना विशिष्ट स्थान बनायेगा। —नरेश चन्द जैन, क्षेत्रीय अध्यक्ष भारतीय जैन मिलन लखनऊ

गागर में सागर भर दिया है और अद्वितीय एव जनोपयोगी ग्रन्थ की रचना हुई है। — निर्वाण चन्द जैन, सयुक्त महामत्री, श्री भारतीय दिगम्बर महासभा

भगवान ऋषभदेव द्वारा युगों-युगो पूर्व अध्यात्म व अहिंसा को जीवन के शाश्वत मूल्यों के रूप मे स्थापित किया गया था उसी का इस काव्य ग्रन्थ में चित्रण हुआ है। —निर्मल कुमार सेठी अध्यक्ष, दि महासभा, लखनऊ

यह सुन्दर महाकाव्य आध्यात्मिक प्रचार प्रसार का साधन बने।
—नद किशोर जैन M.A, चौक लखनऊ

मागलिक रस धार मे अवगाहन कर कोई भी प्राणी कल्याण पा सकता है।
—महेन्द्र कुमार प्रचन्डिया, पी एच. डी. डी. लिट., अलीगढ

आठ खण्डो मे लिखा यह ग्रन्थ हिन्दी ससार मे जैन साहित्य की निधि हो कर जैन धर्म के प्रचार एव प्रसार मे सहायक होगा। —महेन्द्र कुमार 'महेश' शास्त्री
सह सम्पादक, जैन गजट, सदर मेरठ

ऋषभायण ग्रन्थ समाज मे विशेष स्थान प्राप्त करेगा। —भगत राम जैन मत्री
अखिल भारतीय दि जैन परिषद्, दिल्ली

ऋषभायन महाकाव्य को अधिक से अधिक लोग पढकर ज्ञान एव पुण्य अर्जित करेंगे।
—अनन्त प्रकाश जैन अध्यक्ष जैन धर्म प्रवर्धनी सभा, लखनऊ

आद्योपात सजीव सम्यक् वर्णन कवि की महान और अनूठी कृति का जीता जागता उदाहरण है।—प बाबू लाल जैन शास्त्री अध्यक्ष श्री दि जैन समाज महमूदाबाद
सीतापुर

इस ग्रन्थ मे जो विषय सकलित किये गये है वे सारभूत होने के कारण जनमानस को गभीर चिन्तन के लिए प्रेरित करने मे सक्षम होगे। —सुमेर चन्द जैन पाटनी
डाली गज, लखनऊ

आदिपुरुष आदि तीर्थंकर पर उल्लेखनीय सुन्दर काव्य हिन्दी मे उपलब्ध हुआ है। प्रयत्न श्लाघ्य है। —दरबारी लाल कोठिया, रीडर जैन दर्शन, वाराणसी

महाकाव्यगत विशेषताओ को लिए हुए ऋषभायण महाकाव्य जैन समाज के बीच निरन्तर पठनीय महान कृति के रूप मे सदैव आदरणीय रहेगा।
—विमल कुमार जैन सरोसा, एम. ए शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य, टीकमगढ, मध्य प्रदेश

आज के आस्थाशून्य वातावरण मे एक ऐसा वाग्दीप प्रज्ज्वलित किया है जो चिरकाल तक अपनी बोधपूर्ण रश्मियो से रसिको के अन्तर्देश को आलोकित करता रहेगा।
—डा. भगवान शरण भारद्वाज, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बरेली
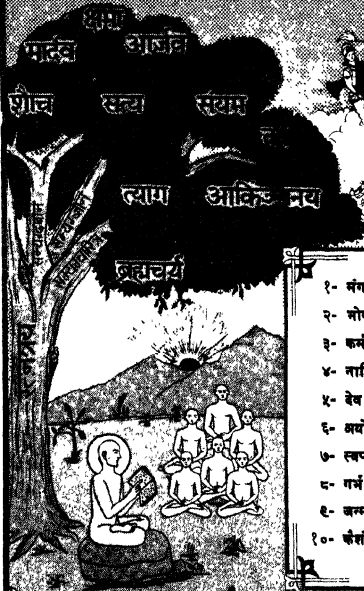
ऋषभायण
प्रथम खण्ड
क्षमा
मार्दव
आर्जव
शौच
सत्य
संयम
त्याग
ब्रह्मचर्य
१- मंगलाचरण
२- भोग भूमि वर्णन
३- कर्म भूमि वर्णन
४- नाभिराज वर्णन
५- देव कर्तव्य वर्णन
६- अयोध्या वर्णन
७- स्वप्न वर्णन
८- गर्भ अवतरण वर्णन
९- जन्म महोत्सव वर्णन
१०- कैशोर्य वर्णन

卐 मंगलाचरण 卐

त्रिकाल मर्मज्ञ, त्रिलोक स्वामी,
सर्वात्म–यामी, भव दुःख हर्ता।
अपार महिमाद्रि, अनन्त गरिमा,
नूतन मधुरिमा, सुख विश्व-कर्त्ता॥

कल्याण कारी, प्रभु मन्मथारी,
हो निर्विकारी, प्रभु तुम सुधाकर।
भव दुःख त्राता, तुम ही विधाता,
समझ में न आता तुम सा प्रभाकर॥

हूँ द्वार आया, पर संग माया,
कृत ने नचाया, कृपाकर बचा लो।
दशोदिशि अन्धेरा, न दिखता सवेरा,
बहुत बार टेरा, दयाकर बचालो॥

नीतिज्ञ तुम हो, सर्वज्ञ तुम हो,
सर्वत्र तुम हो, कुछ तो विचारो।
भवों से छुड़ाओ, सुखद पथ सुझाओ,
जिनागम दिखाओ, दयाकर उबारो॥

वृषभेश तुम हो, ऋषभेश तुम हो,
अमरेश तुम हो, जग पूज्य-बन्धो।
अर्हंत तुम हो, भगवंत तुम हो,
अय मोक्षदाता, सुख शान्ति सिन्धो॥

अरिहन्तों को कर नमस्कार, सिद्धों को शीश नवाता हूँ।
आचार्य वृन्द के चरणों में, श्रद्धा के सुमन चढ़ाता हूँ॥

मांगलिक बिन्दु वर उपाध्याय, चरणों में नमस्कार मेरा।
जो लोक-लोक में साधु सन्त, वर्णों में नमस्कार मेरा॥

अरिहन्त सिद्ध, केवल ज्ञानी, हैं साधु परम मंगलकारी।
मैं सदा शरण आऊँ इनकी, हो जायें अन्तर अविकारी॥

जो नमस्कार का विश्वासी, वह ही जग में जय पाता है।
बल का-संयम से, सेवा से, श्रद्धा से जग में नाता है॥

बल प्राप्त हेतु, ये 'णमोकार', भव में यह मन्त्र दिवाकर है।
ये दिशा-दिशा दे रहा प्रभा, निशिवासर प्रकट प्रभाकर है॥

ये मन्त्र शिरोमणि णमोकार, अन्तर्मन से अविकारी है।
ये जैन-लोक का जीवन है, दुख नाशक मंगलकारी है॥

श्री सिद्ध शिला के प्रांगण तक, यह महा मन्त्र ले जाता है।
इसका माध्यम मन्थन महात्म्य, शिव का स्वरूप दर्शाता है॥

महिमाद्य कल्प तरु आद्य मंत्र, यह सार्वभौम कहलाता है।
इसका श्रद्धायुत शुभस्मरण, संकट तत्काल मिटाता है॥

यह निर्विकार, यह निर्विवाद, इसकी रचना हितकारी है।
यह पूर्णतया वैज्ञानिक है, बीजाक्षर सत्ताधारी है॥

पापों का ये ही अन्तक है, जो भी जन इसको ध्याता है।
भव के वैभव को तजता है, वह सिद्ध शिला पर जाता है॥

भव व्याधि नहीं रहती कोई, साधन समस्त पा जाता है।
आत्मानन्दी रस में विलीन, निर्मल महान पद पाता है॥

हो अष्टकर्म से पूर्ण मुक्त, वह मुक्ति लक्ष्मी पाता है।
परिपूर्ण अष्टगुण से होकर, सर-सम्यक् ज्ञान नहाता है॥

इस महामन्त्र का फल पाकर, पाना कुछ रहता शेष नहीं।
जो इस निधि को पा लेता है, लगता जग उसे विशेष नहीं॥

ये अशरण शरण मुक्तिदाता, वृत्तियाँ मनोरम होती हैं।
सिद्धियाँ जागकर जगती की, साधक चरणों को धोती हैं॥

इस महामन्त्र के साधक को, जग कुसुमोपम हो जाता है।
बढ़ जाता उर में ज्ञान-कोश, भव राग-रोग सो जाता है॥

इस महामंत्र को पाकर ही, चौदह कुलकर जग धन्य हुये।
इस णमोकार को अपनाकर, श्री नाभिराय पग वन्द्य हुये॥

जो आदिनाथ के पिता हुये, जग में यश वैभव पाया है।
इस महा मंत्र की माया-जो, जग भर ने शीश झुकाया है॥

इस बीज मंत्र को पाकर ही, प्रभु ऋषभदेव मतिवान हुये।
जिनको पाकर जग झूम उठा, ये वृषभदेव छविवान हुये॥

षड्ज्ञान दिया, लिपि ज्ञान दिया, मति देकर जन बलवान किये।
उनके श्रुति पूर्ण ज्ञान द्वारा, जन ने अनेक संधान किये॥

ऐसा नूतन प्रकाश, पाकर, पग-पग पर सूर्य उतर आया।
पाया जग ने निज अमलान्तर, अथवा सद्भाव सुघर पाया॥

इस महामंत्र को साथ लिये, प्रति पग पर जयमाला पायी।
इस महामंत्र ने दिया तोष, सर्वत्र हुआ जग सुखदायी॥

रण, राजनीति, जग, यश, वैभव, साहित्य, कला सब कुछ पाया।
यह महामंत्र का ही प्रताप, सुरराज इंद्र तक ललचाया॥

नागेन्द्र, श्रेष्ठ सौधर्म इन्द्र, चरणों में बारम्बार झुके।
पद-रज-प्रताप से कुछ पायें, सेवा में बारम्बार रुके ।।

इस पूत मंत्र को पाकर ही, प्रभु सम्यक्ज्ञानी कहलाये।
सारे जग को सन्देश दिया, भव बन्धन, देख न अकुलाये ।।

इस श्रेष्ठ मंत्र से अहं भाव, बस छुये नहीं ये ध्यान रहे।
मैं श्रेष्ठ मंत्र का साधक हूँ, इसका न रंच अभिमान रहे ।।

जब भरत नृपति में अहं भाव, आकर सागर बन लहराया।
जगजीत भरत की हार हुयी, जो घाव न अब तक भर पाया ।।

वर बाहुबली हो निरभिमान, ले शरण मंत्र की रण उतरे।
हो निर्विकार फिर विजय मिली, मानो गंगा-जल से निखरे ।।

भव का बन्धन यह विजय, हार, थे बाहुबली ये जान गये।
वे महामंत्र की शरण गये, मानो पथ को पहचान गये ।।

भरतेश समय रहते चेते, फिर महामंत्र स्वीकार किया।
मानों रण-आँगन जाने को, दृढ़ कवच अनूठा धार लिया ।।

यह मंत्र धर्म उद्धारक है, जन मन की वृत्ति सुधारक है।
अन्तर में श्रेष्ठ विचारक है, सात्विक भावों का धारक है ।।

भरतेश पुत्र वर अर्ककीर्ति, यौवन के मद में फूल गये।
इस महामंत्र का आराधन, सामान्य समझकर भूल गये ।।

जो जय कुमार, सेवक इनका, पर महामंत्र आराधक था।
वह अर्ककीर्ति को जयकुमार, लालसा पंथ का बाधक था ।।

इस मूल मंत्र के सेवक को, वरमाला का अधिकार मिला।
उस एक निष्ठ, जिन सेवक को, जयमाला का सुखसार मिला ।।

जिस जिस ने श्रेष्ठ मंत्र साधा, वह भव सागर के पार गया।
भव में उसने न कष्ट भोगा, जीवन ही वह पा गया नया॥

—: कवित्त :—

णमोकार के सदृश मंत्र, तंत्र, यंत्र नहीं,
नर का शरण्य यही जग में कहाता है।
रहे परतन्त्रता न, भोगता स्वतंत्रता है,
जिसका भी इससे कि नाता जुड़ जाता है॥
जान लेता जग भेद, खेद उसको न कहीं,
अन्तर में भाव निर्वेद जग जाता है।
जन्म-जन्मान्तर का मैल छुट जाता बस,
जो भी एक बार इस सर में नहाता है॥

इस महामंत्र के पालन से, जन-अमलान्तर हो जाता है।
जग जाती है मानवी वृत्ति, साधक सागर हो जाता है॥
जगती अन्तर में ज्ञान ज्योति, सत्-असत् दिखाई पड़ता है।
करणीय कौन करणीय नहीं, सत् तथ्य लखाई पड़ता है॥
समता का भाव जाग जाता, हिंसादि क्रूरता सो जाती।
सेवा की वृत्ति जागकर के, अन्तर का आंगन धो जाती॥
शुचिता, ऋजतारू नम्रतामय, रसवती लतायें उग आतीं।
फिर दयामयी मंगलकारी, अन्तस्थल में रस सरसातीं॥
कोई न शत्रु फिर दिखता है, सब अपने-अपने होते हैं।
सब को समान सुख मिल जाये, ऐसे सुख साधन बोते हैं॥

जो जग का सुख साधन करते, वे खुद ही साधन पाते हैं।
जो दुःख दूसरों को देते, जीवन भर कष्ट उठाते हैं।।

जो औरों को कलपाता है, वह कभी नहीं कल पाता है।
सर्वत्र कलपता रहता है, वह पग-पग पर अकुलाता है।।

मिथ्या मोहादि कारणों से, जग के सुख आते जाते हैं।
जो मूढ़ और अज्ञानी हैं, दुष्कर्मों का फल पाते हैं।।

मिथ्यादि मोह से छुटकारा, बस ज्ञान दीप दिलवाता है।
भ्रम की सपने सी रजनी में, मोहक पंकज खिल जाता है।।

यह ज्ञान दीप जलता न सहज, गुरु कृपा परम लोकोत्तर है।
गुरु के समान जग अन्य कौन, गुरु ही अज्ञान विनश्वर है।।

आचार्य वृन्द, तप-त्यागव्रती, वर शास्त्र-धर्म के ज्ञाता भी।
गुरु का प्रसाद पा बड़े हुये, नीतिज्ञ, विज्ञ जन-त्राता भी।।

कैसे यह जीवन धन्य बने, गुरु ही सन्मार्ग सुझाता है।
जग के जीवन का एक अर्थ, गुरु के चरणों से नाता है।।

सच न्याय, शील, समता, ममता, गुरु कृपा-वृक्ष के ही फल हैं।
गुरु ज्ञान बिना, गुरु कृपा बिना, सब यत्न यहाँ पर निष्फल हैं।।

वर स्याद्वाद, वर अनेकान्त, परिपक्व वृक्ष का फल जानो।
जो तज न सका मिथ्यादि-मोह, जीवन उसका निष्फल मानो।।

सब में निज को, निज को सब में, सम दृष्टि सदा देखा करता।
वह ज्ञानी नम्र अहिंसक है, सब के मन में समता भरता।।

यदि जीवन मधुर बनाना है, गुरु-शरण हमें जाना होगा।
गुरु सम्मत मार्ग ग्रहण करके, श्रद्धा समेत पाना होगा।।

शिवता न कहीं खोजी जाती, शिवता तो पायी जाती है।
शिवता जीवन का परम लक्ष्य, शिवता अपनाई जाती है ॥
सत् बिना नहीं सुन्दर शिवत्व, सत् अपनाना हित चिन्तन है।
सत् बिना कहाँ है, जिन् साधन, सत् से सरसाता जीवन है ॥

—: कवित्त :—

सत्य, शिव, सुन्दर मिलें जो एक बिन्दु पर,
जीवन अनंतता का सिन्धु बन जाता है।
मांगलिक रवि का प्रकाश फूटता है भव्य,
कर्तव्य शीलता का भाव उमगाता है ॥
अहं अर्थ हीनता की दिशा मंद होती आप,
जागरूकता का ही प्रभाव मुसकाता है।
सरसाता नेह बरसाता समता का मेह,
जग उर-गेह ज्ञान जब हरषाता है ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञान बिना नरता नहीं, नरता बिना न मान।
बिना मान जीवन नहीं, जग में ज्ञान महान ॥
क्या पाया, क्या खो गया, किस-किस की अभिलाष।
सब कुछ ही बेकार है, यदि न ज्ञान विश्वास ॥
पास न जिसके ज्ञान है, उससे बड़ा न दीन।
पाया जिसने ज्ञान है, उससे कौन प्रवीन ॥
ज्ञान प्राप्ति हित जगत में, जो भी करता त्याग।
ऐसे त्यागी से सदा, करता जग अनुराग ॥

—: कवित्त :—

बैठिये जी ज्ञान के सुसज्जित विमान पर,
भाव-बोध के ही साथ तानिये वितान को।

कौन तत्व हेय और कौन तत्व हेय नहीं,
सावधान हो के, साधना है सदा ध्यान को॥

निजता के परता के मध्य में न आये कुछ,
दूर रखना है सदा मान अभिमान को।

धन, यश, मदमान, बल प्रभुता से बड़ा,
मानना धरा पे सदा भगवान ज्ञान को॥

जन ज्ञान साधना के द्वारा, भगवान यहीं बन जाता है।
रवि किरण ज्ञान की जो पाता, वह इस स्वरूप को पाता है॥

नाता सच्चा है ज्ञानी से, अभिमानी से क्या पाना है।
अज्ञानी तो भटका फिरता, इसका जग में न ठिकाना है॥

अज्ञान घना घन अंधकार, कब सत्य दिखाई देता है।
मिथ्यादि तमस् को पा प्रमाण, हँमता जन अपना लेता है॥

जब ज्ञान सूर्य आता समक्ष, मिथ्यादि नैन मिच जाते हैं।
अज्ञान तमस् को श्री करके, सोचते हुये पछताते हैं॥

दुख सुख की जब होती वर्षा, रोता हरषाता रहता है।
मिल सका समय से ज्ञान नहीं, आकुल पछताता रहता है।

कोटियाँ ज्ञान की पृथक्-पृथक्, साधना आदि से मिलती हैं।
जैसे कि सूर्य के हँसने पर, अगणित कलिकायें खिलती हैं॥

क्रम-क्रम से होकर के विकसित, आनन्द सरसता जाता है।
होने लगते हैं सब विभोर, रस और बरसता जाता है ।।

श्रद्धा विशेष तो ज्ञानी के, अन्तर में उमगा करती है।
आत्मानन्द की भक्ति सरस, मानस को रस से भरती है ।।

श्रद्धा-विश्वास जगाती है, विश्वास सदा फलदायक है।
श्रद्धा के साथ भक्ति रहती, ये ही सुख शान्ति प्रदायक है ।।

जन-जन श्रद्धा के आदि पात्र, प्रभु आदिनाथ जग स्वामी हैं।
भगवान भक्ति के आदि बिन्दु, जन जन के अन्तर्यामी हैं ।।

जिनके चरणों में जग भर का, श्रद्धा से झुकता माथा है।
हितकर "ऋषभायन" महाकाव्य, उनके जीवन की गाथा है ।।

गाथा यह मंगलकारी है, मन वाँछित फल की दाता है।
श्रद्धा समेत यह अपनायें, यह गाथा भाग्य विधाता है ।।

यह भक्ति रसामृत सिन्धु सरस, जो चाहें जितना पान करो।
जय अभिमत फल दातार प्रभो, निज ऋषभ देव का ध्यान करो ।।

इस सरस कथा के धन्य पात्र, सात्विक श्रद्धा के सागर हैं।
जीवन में इन्हें उतारें हम, गुण इनके जगत उजागर हैं ।।

सत, समता, शील, अपरिग्रह का, जीवन में व्रत को पाला है।
है, कौन पुष्प अति आर्कषक, इनका जीवन जयमाला है ।।

नारियों, देवियों ने पूजा, चारित्र मनोहर इनका है।
तप, त्याग और संयम व्रत में, आर्यिका रूप वर इनका है ।।

जिस तरह उतरती जल धारा, बलखाती बढ़ती जाती है।
इस भाँति प्रभो की वर गाथा, लतिका भी बढ़ती जाती है ।।

जिस तरह धार के दोनों तट, सुन्दरता हाटें जगती है।
इस भांति सरस 'ऋषभायन' में, जीवन धारायें लगती है ।।

जिस तरह तटों पर कई बिन्दु, युग युग से पूजे जाते हैं।
त्यों कई कथा के पात्र सिन्धु, युग युग से पूजे जाते हैं ।।

जिस तरह रम्य गंगाधारा, सागर में मोती देती है।
इस भांति सरस 'ऋषभायन' ये, निर्वाण मोक्ष फल देती है ।।

इस जन्म और जन्मान्तर के, कष्टों के पुंज घटाती है।
इस 'ऋषभायन' की मधुर कथा, सुख साधन हर्ष लुटाती है ।।

जो सुख साधन के इच्छुक हों, श्रद्धा से सहज इधर आयें।
वर भक्ति-सिन्धु अवगाहन कर, नौका से सहज उतर जायें ।।

प्रभु ऋषभ देव की गाथा का, विस्तार सहज 'ऋषभायन' में।
जैसे श्री राम कथा वर्णित, वर चरित सहित 'रामायन' में ।।

गाथा में अमृत घुला हुआ, इस तट आयेगा, पायेगा।
गाथा की सहज मधुरता से, सन्तुष्ट हृदय हरषायेगा ।।

अन्तर का कलुष मिटाने में, औषधि यह अति गुणकारी है।
जिसके भी मन में श्रद्धा वह, 'ऋषभायन' का अधिकारी है ।।

॥ हरिगीतिका ॥

प्रभु ऋषभ का वर चरित है, धर ध्यान बस पढ़ जाइये।
सच, शील, सात्विक ज्ञान से, भव-सीढ़ियां, चढ़ जाइये ।।

'नागेन्द्र' कवि की ये भणिति, यदि सहज जन को भायगी।
मम सृष्टि जन मनंरजिनी, अभिलाषित सुख को पायगी ।।

जो कुछ सरस, प्रभु का चरित, चातुर्य कुछ इसमें नहीं।
बुध विज्ञ देखें भक्त जन, माधुर्य कुछ इसमें कहीं।।

सरसता को प्राप्त कर, अन्तर सरस कर लीजिये।
पीजिये अमृत समक्ष, आशीष कवि को दीजिये।।

निज शक्ति से, वर भक्ति का, कवि चरित का वर्णन करे।
जन सुरूचि से शुभ भणिति का, शुचि मांगलिक प्रणयन करे।।

जिस चरित ने इस जगत का, हर भांति से मंगल किया।
वह चरित गाने को मधुर, 'नागेन्द्र' ने है व्रत लिया।।

क्या काम हो सकता नहीं, प्रभु की कृपा जब साथ है।
कैसे कहूँ बलहीन हूँ, जो आदि से ही नाथ है।।

जिसकी कृपा लवलेश से, अगणित सुकवि वर गा गये।
जन मन सहजता पा गया, ऐसा सुरस बरसा गये।।

आतिथ्य मम स्वीकार कर, इस ऋषभघर में आइये।
नीरस-सरस जो कुछ बना, रूचि से तनिक चख जाइये।।

'नागेन्द्र' का इसमें न कुछ, है अमर गाथा ऋषभ की।
जन अभिलाषित पाये यहाँ, जय हो सदा प्रभु वृषभ की।।

भोग भूमि वर्णन

॥ दोहा ॥

आदि अन्त या मध्य हो, या हो काल विशेष।
साथ भारती मम रहे, दो वरदान जिनेश॥

ऋषभ चरित विख्यात है, यह अनन्त आकाश।
दे प्रसाद माँ भारती, भरें नया उल्लास॥

गंगा धारा सा विमल, प्रभु का चरित महान।
प्रभु पूरेंगे आश मम, मैं न सुकवि विद्वान॥

भक्ति भाव वश कर रहा, ऋषभ नाथ गुणगान।
अखिल विश्व को पूज्य हैं, भक्तों को सुख खान॥

जिन आगम आधार से, अर्पित काव्य महान।
यदि प्रमाद वश चूक हो, शोध पढ़ो विद्वान॥

सुख हेतु विश्व लालायित है, साधन हर व्यक्ति जुटाता है।
जितनी जिसमें सामर्थ्य रही, वह उतनी शक्ति लगाता है॥

मन वांछित सुख कब मिल पाता, जीवन क्रम नहीं टूट पाता।
कल कल में बस बेकल रहता, यों ही है व्यक्ति टूट जाता॥

सुख भेद पूर्ण है एक गांठ, खुलना जिसका है सहज नहीं।
ढूंढते छोर, जाता जीवन, मिल पाता है सुख सहज नहीं॥

सुख तो स्वतंत्रता में सीमित, परवशता में खोजा करते।
घृत बिन्दु मिलेंगे पानी में, जन बार-बार सोचा करते॥

बालू से तेल नहीं मिलता, अम्बर में पुष्प नहीं देखा।
होकर परतंत्र धरातल पर, कोई सुखवन्त नहीं देखा॥

परिग्रही साधना के समान, सुख साधन बहुत जुटाते हैं।
कुछ और यत्न कर सकते हैं, लालच में आयु लुटाते हैं॥

जब और - और की चाहत में, दुख का सागर लहराता है।
तब जगह ढूंढते फिरते हैं, जब धाराधर ठहराता है॥

सुख तो अपने अन्तर में है, जग में सुख ढूंढा करते हैं।
धन, मान, काम-परिपूर्ति आदि, कचरे से अन्तर भरते हैं॥

सद्वृत्ति दबाकर अन्तर में, बहिरातर घूमा करते हैं।
हीरे, मोती, पन्ने पाकर, इनमें ही झूमा करते हैं॥

सुख सिन्धु खोजते फिरते हैं, अज्ञान तिमिर की छाया में।
आत्मा रवि आप छिपा देते, जड़ता पुद्गल की माया में॥

अज्ञान छोड़ने में सुख है, यह नहीं समझ में आता है।
छूटने मात्र के चक्कर में, जन और उलझता जाता है॥

यह चक्र सघन होता इतना, उलझन ही जीवन बन जाती।
दुख रण में कैसे सुख पायें, यह शपथ चुनौती बन आती॥

नव्यता खोजने का चक्कर, परवशता बनता जाता है।
पीड़ा कुंठा लाचारी का, घन आप सघनता पाता है॥

चारित्र तथा अपरिग्रह तज, जड़ता में क्या सुख पाओगे।
भव के अरण्य रोदन में, तुम स्वयमेव टूटते जाओगे॥

—: कवित्त :—

परवशता से न सुख की अनुभूति होती,
पीड़ा के, प्रवंचना के सिन्धु लहराते हैं।
बीत जाती उम्र सुख खोजते ही खोजते है,
मृत्यु के, अतृप्ति के ही घन घहराते हैं॥
निज करतूति की न देखते हैं गति, मति,
बाद में तो युग को ही दोषी ठहराते हैं।
हो कर स्ववश जो भी शोधते है सुख बिन्दु,
धरती पे वही सुख - केतु फहराते हैं॥
सुख विद्यमान जन की ही निजता में सदा,
बोलो उसे खोजने को कहाँ - कहाँ जाओगे।
जाओगे जहाँ भी जहाँ थक - थक चूर होगे,
घटाकार विश्व में न सुख शोध पाओगे॥
पाओगे अतृप्ति बस परवशता में यहाँ,
निजता को छोड़ सब को ही आजमाओगे।
जो भी ढूंढना है तुम्हें ढूंढो अपने में सदा,
निजता मे डूबे बिना सदा पछताओगे॥
जिससे मन को कुछ शान्ति मिले, गाथा वह भव्य सुनाता हूँ।
कुछ सूत्र मिलें सुख - साधन के, उनको निज स्वर मे गाता हूँ॥
जिसमें न राग, जिसमें न रोष, जिसमें न दोष, मन भावन है।
हिंसा न क्रूरता की बातें, हर भांति कथा यह पावन है।

करणीय कौन करणीय नहीं, यह पावन कथा बताती है।
मिथ्यात्व मोह कैसे त्यागें, यह भली भांति समझाती है।।

यह पावन सरसित धारा है, थोड़ा भी जो रस पी लेगा।
पायेगा मन में शान्ति अधिक, वह निर्मल मन हो जी लेगा।।

यह गाथा सुन्दर उपवन है, जो पुष्प एक भी चूमेगा।
संतोष गन्ध में रमा हुआ, जीवन भर सुख से झूमेगा।।

यह गाथा शुभता की माला, हर मोती अद्भुत ज्योति भरा।
यह कथा आदि प्रभुवर की है, हर अंश रम्यता से निखरा।।

यह सरस कथा मनहारी है, जड़ता को दूर भगाती है।
शीलता, सत्यता, न्याय और, अपरिग्रह ज्ञान जगाती है।।

समता, ममता, अद्भुत क्षमता, जन के मन में जग जायेगी।
शुचि दया, प्रेम की रस मयता, जन जन मन में पग जायेगी।।

मन वांछित जन पा जायेगा, इस सर में आप नहा कर के।
सर्वत्र तृप्ति ही पायेगा, रस को अन्तर में पाकर के।।

अभिमान-मान की नाशक है, तामसी वृत्ति संशोधक है।
सब राग, रोष मिथ्यादि, मोह, हिंसादि वृत्ति अवरोधक है।।

जो शोधेगा वह पायेगा, केवल बातों का काम नहीं।
प्रभु ऋषभ देव आराधन से, मिलता किसको सुखधाम नहीं।।

।। दोहा ।।

ऋषभ कथा कलमष हरण, ज्यों सुरसरि का नीर।
जो इस तट पर आ गया, उसे कहाँ भव पीर।।

प्रभुवर ने भू पर किये, जन हित कार्य महान।
जिसमें कुछ वर्णित यहाँ, पढ़ें सभी विद्वान ॥

॥ हरिगीतिका ॥

श्रद्धा सहित अब बैठिये, होती कथा आरम्भ है।
वर भक्ति उर में लाइये, गाथा सरस रस कुम्भ है ॥
मन को हटाकर जगत से, अब गाँठ मन की खोलिये।
गाइये "नागेन्द्र" यश जय, ऋषभ की जय बोलिये ॥

॥ दोहा ॥

भोग भूमि वर्णन सरस, पढ़े सुने सविलास।
श्रद्धा से रूचिकर सदा, पौराणिक इतिहास ॥
भोग भूमि के काल में, कल्प वृक्ष नौ एक।
तत्युगीन जन जाति के, थे जीवन की टेक ॥
गुण के ही आधार पर, हैं वृक्षों के नाम।
जीवन यापन स्रोत में, करें न कोई काम ॥
सुख सीमा निस्सीम है, सुकवि कल्पनातीत।
भोग रहे आनन्द सब, मुक्त सभी जग-मीत ॥

जो कल्प द्रुमों की गुण गाथा, उसको कह पाना सरल नहीं।
विश्वास करेगा वह कैसे, जिसका अन्तर तल तरल नहीं ॥
ग्रह-अंग नाम का कल्प वृक्ष, सब को सुख साध जुटाता था।
जिनमें रहते थे सुघर मिथुन, हर मिथुन मधुर सुख पाता था ॥

तरु भाजनांग बहु सुखद पात्र, बहुमूल्य जुटाया करता था।
जिनके अयोग से जन मानस, वांछित फल पाया करता था।।

भोजनांग नाम के कल्प वृक्ष, अमृत सम भोजन देते थे।
बल आयु तेज वर्द्धक, सुपाच्य मन वांछित भोजन देते थे।।

पयअंग नाम के कल्प वृक्ष, बल बर्द्धक पेय जुटाते थे।
मानों जीवन को उपयोगी, तत्वों की राशि लुटाते थे।।

वस्त्रांग नाम के कल्प वृक्ष, तरु आप आप उपजाते थे।
है कौन वस्त्र किसको समुचित, जन-जन तक तरु पहुंचाते थे।।

तरु भूषणांग अतिशय शोभित, जन जन के अंग सजाते थे।
अत्यन्त मनोहर आभूषण, केयूर वलय उपजाते थे।।

मालांग वृक्ष श्रीमाल सदृश, पुष्पों की माल रचाते थे।
जन जन को अर्पित मालाओं, द्वारा सुख सिन्धु जगाते थे।।

दीपांग वृक्ष ज्यों श्रेष्ठ सूर्य, पग-पग प्रकाश बिलसाता था।
दिन रात बिखरता मणि प्रकाश, सर्वत्र आप जन पाता था।।

प्रिय ज्योतिरांग का श्रेष्ठ वृक्ष, अद्‌भुत नव ज्योति जगाता था।
बहु तेजवान, जन वर्चस्वी, पाकर प्रकाश बन जाता था।।

वाद्यांग नाम का कल्प वृक्ष, संगीत कलायें सिखलाता।
किस तरह काव्य रचना होती, इसके रहस्य भी बतलाता।।

किस तरह वाद्य यंत्रों द्वारा, आनन्द असीम बरसता है।
लय, ताल और स्वर के द्वारा, कैसे आनन्द सरसता है।।

ये परम रम्य दस कल्प वृक्ष, गुण खानि आप रत्नाकर थे।
ये अद्‌भुत वृक्ष प्रभाकर थे, जन जन के लिये सुधाकर थे।।

इनके रहते इस धरती पर, कोई भी नहीं असुविधा थी।
सुख भोग भूमि के भोग रहे, कोई भी कहीं न दुविधा थी ॥

॥ दोहा ॥

भोग भूमि वर काल में, होता रहा विकास।
कुलकर कुल देता रहा, युग को नया प्रकाश ॥

चौदह कुल कर हुये, हैं सकल ज्ञान के पुंज।
जिनसे युग बनता रहा, सुखद कला का कुंज ॥

ज्ञान राशि धारा सुघर, चौदह कुलकर मूर्ति।
परम्परा करती रही, जन इच्छा की पूर्ति ॥

कुलकर अनुभव ज्ञान के, सचमुच सिंधु अगाध।
ये जन जीवन कर सके, धरती पर निर्बाध ॥

कुलकर गाथा अति सुखद, सुन पावें जन तोष।
पढ़ें हृदय सन्तोष हो, करें त्याग मद रोष ॥

जब ज्योतिरांग की ज्योति प्रखर, धीरे-धीरे हो मन्द चली।
तब सूर्य चन्द्र की आभायें, जग प्रकट हुयीं ज्यों सुघर कली ॥

तब प्रति श्रुति कुलकर ने सबको, सारा रहस्य बतलाया है।
युग परिवर्तन हो रहा आप, सब काल देव की माया है ॥

तेजांग वृक्ष जब मन्द पड़ा, तारा समूह दीखने लगा।
सन्मति कुलकर से यह रहस्य, जन आप सहज सीखने लगा ॥

क्षेमंकर कुलकर ने बोधा, हिंसक पशुओं से खेल न हो।
ये पात्र दया के हैं अवश्य, लेकिन इन सबसे मेल न हो ॥

इनसे डरना कायरता है, जीना दुष्कर हो जायेगा।
अपनी सीमा में रहें सभी, जीवन सुन्दर हो जायेगा।।

चौथे कुलकर क्षेमम्वर ने, हिंसक पशुओं से रक्षा की।
डण्डा धारण की बात कही, पशुओं से आत्म सुरक्षा की।।

हिंसक पशु सदा अहिंसक को, आतंकित रूप दिखाते हैं।
लेकिन सज्जन जीवों के प्रति, करुणार्द्र पंथ अपनाते हैं।।

सीमंकर कुलकर ने जन को, वृक्षों की महिमा बतलायी।
उपलब्ध फलों को जन पाये, वृक्षों की सीमा सुखदायी।।

सीमंधर कुलकर ने सब को, आपसी मेल का मंत्र दिया।
जन का जीवन सुखदायक हो, मानों यह अद्‌भुत यंत्र दिया।।

घर बना-बना कर सभी रहें, सीमा का पालन किये हुये।
अपनों से अधिक दूसरों का, जन सुख का साधन किये हुये।।

युग धन्यश्रेष्ठ उत्तम वाहन, जन हित चिन्ता के साधक थे।
कैसे हित साधन हो पाये, भावना श्रेष्ठ आराधक थे।।

हाथी घोड़े या ऊँट आदि, जन जन को सुलभ कराये हैं।
आने जाने के ये साधन, जन जन को ही बतलाये हैं।।

श्री चक्षुमान ने लोगों में, वात्सल्य भाव उपजाया है।
जो थे ममत्व से अज्ञ बने, उसका महत्व बतलाया है।।

जग श्रेष्ठ यशस्वी कुलकर ने, देखा जन नाम न रखते हैं।
हैं बिना नाम के नर नारी, गुमनाम अनामी लगते हैं।।

शुभ नामकरण की श्रेष्ठ प्रथा, इस युग से ही आरम्भ हुयी।
जो आज तलक हैं बनी हुयीं, वह इस युग में प्रारम्भ हुयी।।

अभिचन्द्र श्रेष्ठ कुलकर जी ने, निशि में रजनीश दिखा करके।
लालन पालन का ज्ञान दिया, हँसने की कला सिखा करके।।

चन्द्राभ श्रेष्ठिवर कुलकर ने, मोहादिक भाव मिटाये हैं।
जग स्वयं निराकुल रहने के, फिर मंत्र विचित्र सिखाये हैं।।

कुलकर मरुदेव बताया है, जल आदि बड़े गुणकारी हैं।
इन का समुचित उपयोग करो, इनकी महिमा शुभकारी हैं।।

वर्षा से नदियाँ उमड़ चलीं, सामान्य लोग घबराये हैं।
तैरना सिखाकर कुलकर ने, जल के भय आदि मिटाये हैं।।

तेरहवें कुलकर प्रसेनजित, बलवान और ज्ञानी ध्यानी।
किस समय कौन करणीय यहाँ, यह राह भली विधि पहचानी।।

उपचार आदि की बहुविधियाँ, कुलकर ने सबको समझायीं।
जीवन सुखमय किस भाँति बने, यह सारी विधियाँ दरशायीं।।

चौदहवे कुलकर नाभिराय, व्यवहार ज्ञान के स्वामी थे।
तन से, मन से, धन वैभव से, सब के सच्चे हितकामी थे।।

जग नाभि-कला को जान गया, श्री नाभिराय की माया से।
लोगों ने सचमुच सुख पाया, सुख की इस ठंडी छाया से।।

ये कल्प वृक्ष हो रहे क्षीण, जन जन का मन अकुलाया था।
फल वाले वृक्ष खड़े कितने, उनका उपयोग बताया था।।

श्री नाभिराय बड़ भागी के, सुत ऋषभदेव यशवान हुये।
सारे जग को प्रकाश दाता, सर्वत्र पूज्य भगवान हुये।।

जितनी जिसके मन में इच्छा, उतना ही सुख पा जाता था।
आनन्द भोग के लिये कभी, कोई न कहीं अकुलाता था।।

चिन्ता सुख साधन हेतु नहीं, चिन्ता थी कैसे भोग करें।
सब के सब ही आनन्द मग्न, किसको प्रस्तुत संयोग करें ॥

घर, अन्न, वस्त्र, जल आदि वस्तु, इच्छानुसार जन पाता था।
सुख भवन सुसज्जित देख-देख, सुख भोग भाव बढ़ जाता था ॥

कल-कल करती सरिता कहती, आओ शीतल जल और पियो।
सुन्दर छवि सुधर किनारों की, देखते - देखते और जिओ ॥

सूरज की निर्मल किरणें आ, जीने की चाह जगा जातीं।
अन्तर में नव सौन्दर्य जगा, अन्तस्तल को दुलरा जातीं ॥

सब ओर अतुल वैभव बिखरा, संग्रह की कोई चाह न थी।
कब कितना वैभव भोग लिया, जन को बिल्कुल परवाह न थी ॥

कोसों फैले आनंद-भवन, कुछ सुन्दरता का पार नहीं।
है दौड़-दौड़ थक गयी बहुत, पासकी कल्पना द्वार नहीं ॥

नभ चुम्भी सुन्दर राज भवन, जो मन को बहुत लुभाते हैं।
उपमा किससे दें भवनों की, आकर जब देव सजाते हैं ॥

जल स्रोत उमंगों से लगते, आनन्द सरसता लगता है।
नभ से तरु गुल्म लताओं से, आनन्द बरसता लगता है ॥

वैलासिक जीवन के साधन, होते जितने उपलब्ध यहाँ।
इस तरह सृष्टि के अँचल में, साधन होते उपलब्ध कहाँ ॥

भवनों के ऊपर सजी हुयी, मणि-युक्त ध्वजा फहराती थीं।
मानो अनन्त आकाश बीच, सरितायें ज्यों लहराती थीं ॥

द्वारों पर कृत्रिम चित्र बने, चित्रों में जीवन की झांकी।
ज्यों की त्यों अंकित कर दी है, जैसी अन्तर तम में आंकी ॥

अगणित नग, मोती, पन्ना हैं, हीरों के संग में जड़े हुये।
सोने चांदी के विविध पत्र, खम्भों द्वारों पर मढ़े हुये।।

प्रत्येक भवन के सप्त द्वार, जो सप्त खण्ड में शोभित हैं।
मानों सब स्वर्गों के समान, अतिशोभित हैं, आलोकित हैं।।

हर खण्ड लिये अपनी शोभा, अपना ही रंग दिखाता है।
ज्यों हर स्वर सप्त स्वरों द्वारा, जन मन का हृदय रिझाता है।।

प्रत्येक द्वार पर शोभा पट, हैं शब्द कोश के अक्षर से।
अक्षर तो सदा अमर होते, गुंजायमान मुखरित स्वर से।।

भवनों में जो ऐश्वर्य भरा, वह और अधिकतर हो जाये।
इसलिये सुसज्जित द्वारों पर, सुन्दर - सुन्दर पट लटकाये।।

पिंजड़ों में पलते विहग वृन्द, शुभ 'णमोकार' उच्चार रहे।
जो अपने मंगल शब्दों में, कर मंगलमय झंकार रहे।।

भवनों को उपवन घेर रहे, उपवन में सजी वाटिकायें।
कृत्रिम हैं लेकिन सच जैसी, शोभायमान सर, सरितायें।।

जब तब होता नौका विहार, ले नाव हँसिनी सी सुन्दर।
शोभा दूनी करती चलती, नौकाएँ प्रतिबिम्बित जल पर।।

मन्थर गति से चलती नौका, बढ़ती आनन्द बढ़ाती सी।
फैलते अलापों के स्वर में, जीवन का रस सरसाती सी।।

स्वर मादकता भरता जाता, टकरा कर मस्त बहारों से।
नौका बल खाती इठलाती, धारा में चली किनारों से।।

रूचिकर फूलों की है सुगन्ध, मोहक मलयानिल बिखर रही।
जैसे श्यामल मेघों में मिल, चंचलता चमकी निखर रही।।

कूलों के पेड़ों की छाया, लग रही साथ में चलती सी।
अथवा घन गर्जन से बदली, उठती हो आंखें मलती सी॥
जड़ चेतन सब सुधि बुधि भूले, आनन्द राग से जगे हुये।
स्वागत में कोई फल पाये, अनुराग रंग से पगे हुये॥

—: कवित्त :—

राग, अनुराग या विराग का न भाग कहीं,
मन माने भोग के अनूप योग पाते थे।
जब कभी भोग हेतु जागता था भाव नया,
दस कल्प वृक्ष आप वस्तु उपजाते थे॥

वस्तु न्यूनता का नाम किसी ने भी सुना नहीं,
मानों भोगी पास भोग-योग मंडराते थे।
उज्वला प्रकृति के निहार रम्य वैभव को,
देव लोकवासी मन में ही ललचाते थे॥

विज्ञान ज्ञान इसकी महिमा, बल वैभव का कुछ पार नहीं।
विज्ञानी पाले सब रहस्य, पा सका अभी अधिकार नहीं॥
विज्ञान आज जो सुविधा में, जन को उपलब्ध कराता है।
भौतिक सुख - जग का निर्माता, अपने करको बतलाता है॥

लेकिन सब सीमित मात्रा में, जन को उपलब्ध करा पाता।
कुछ पाते हैं, कुछ तरस रहे, अधिकांश दुःख ही बरसाता॥
पर भोग भूमि के शुचि युग में, था कहीं कमी का नाम नहीं।
थी प्रकृति तृप्ति देती सब कुछ, करना जन को कुछ काम नहीं॥

दस कल्प वृक्ष थे भूतल पर, जो चाहो वह मिल जाता था।
सब कुछ मन वांछित देते थे, भोगों का इनसे नाता था।।

जो पुरुष रह रहे भवनों में, थे देव न उनकी समता में।
बल में, विक्रम में, दृढ़ता में, सत्यता, निष्ठता, क्षमता में।।

धीरज साहस से पग इनके, जिनका गुण लक्ष्य सुगमता है।
वक्षस्थल दृढ़ हिमगिरि जैसा, किंचित भी नहीं विषमता है।।

निश्चय प्रति लगन सदृश बाँहें, पाये बिन इनको शान्ति कहाँ ?
जब सत्य धरातल है इनका, तब क्रान्ति कहाँ, उद्भ्रान्ति कहाँ ?

शुभ कर्म धर्म सी हैं आँखें, जिनमें सब को सद्भाव भरा।
जो चला देख करके पग को, डग मगा न सकती उसे धरा।।

जिह्वा मृदुता का पान किये, खुलते अमृत बरसाती है।
हर अन्तर को शीतल करती, इच्छाओं को सरसाती है।।

ऐसे युग में ये हैं जन्में, सर्वत्र पूर्णता दर्शित है।
जीवन में समरस नव जीवन, सुन्दर नूतनता विकसित है।।

है कौन भोग इस दुनिया का, इनने न प्रसाद लिया जिसका।
वह कौन वापिका कौन नदी, इनने जल नहीं पिया जिसका।।

फल फूल और तृण भोग किये, मिष्ठान और पकवान लिये।
यह सम्भव है देवों ने भी, जिनके न कभी रसपान किये।।

गजरथ का स्वाद् लिया इनने, फिर पवन पुत्र दौड़ाये हैं।
साकार गोद में हँस-हँस कर, शुभ सपने सफल बनाये हैं।।

जलयान या कि हो वायुयान, इच्छानुकूल सब में घूमे।
बन उपवन पुष्प वाटिका की, शोभा को देख-देख झूमे।।

जो योग्य कल्पना के फल हैं, उन सब को भोग रहे हैं ये।
जिस तरह भोग में भाग बने, मिलते संयोग रहे हैं ये।।

भू-प्रकृति नटी, सागर, सरिता, नक्षत्र, चन्द्र, रवि चमक रहे।
गिरि के गर्वीले मस्तक पर, ये मुकुट अनूठे दमक रहे।।

खानों में जो अद्‌भुत वैभव, सागर तरंग की मुद्रायें।
लकदक अगणित शोभित मणियाँ, इठलाती पुष्पित लतिकायें।।

जब तब मेघों का रूप नवल, इतना मन हर कहते न बने।
उस पर फिर इन्द्रधनुष शोभा, देखते बिना रहते न बने।।

उपयुक्त समय आती ऋतुयें, उतने ही नवल भोग आते।
उत्सव आते हैं, संग-संग, खुशियों के नये योग आते।।

तब प्रकृति नटी भी भांति-भांति, सजकर के धूम मचाती है।
घर में आंगन में, अँचल में, मनमाना नृत्य रचाती है।।

हर ओर संचरित मृदुल पवन, जीवन उपहार लुटाती सी।
भोगों के श्रम के स्वेद बिन्दु, उनका आवेग मिटाती सी।।

इस भांति अकृत्रिम रूप और, फिर रूप अनोखा बनावटी।
बन रहे भोग के सब प्रेरक, मानव निर्मित या प्रकृति नटी।।

आनंद सरोवर में डूबे, उस समय जोकि नारी नर थे।
सुख सरिता अमित समा जाये, इनके अन्तर तो सागर थे।।

॥ दोहा ॥

है सतयुग के आदि में, भोग भूमि विस्तार।
स्वर्गिक, सुख सब भोगते, विस्तृत विविध प्रकार।।

दिशा-दिशा आनंद है, सुख की सरस हिलोर।
पग-पग पर आनंद रस, जन जन हर्ष विभोर॥

भोग भूमि वर्णन हुआ, जैसे नवल प्रभात।
कर्म क्षेत्र है सामने, गई अँधेरी रात॥

जय जिनेन्द्र कह जो पढ़े, या जो सुने समोद।
ऋषभदेव आशीष से, बढ़ता जाय प्रमोद॥

भोग भूमि वर्णन

॥ दोहा ॥

पूर्व भवों में जिन्होंने, दिये पात्र को दान।
भोग भूमि में भोगते, वे ही भोग महान ॥

दश प्रकार के प्राप्त हैं, इसमें भोग विलास।
विविध भांति उपलब्ध हैं, यहाँ हर्ष-उल्लास ॥

सामग्री सब तरह की, इच्छा के अनुसार।
कल्प वृक्ष देते स्वयं, सबरस विविध प्रकार ॥

रोम रोप में व्याप्त है, सब के समता भाव।
किसी तरह का नहीं है, रञ्च अभाव-दुराव ॥

भोग भूमि के लोक की महिमा अपरम्पार।
कोई इस सुख-सिन्धु का पा न सका है पार ॥

★

यह भोग भूमि यह कल्प वृक्ष प्रस्तुत जिनका यह वर्णन है।
सम्पूर्ण सुखों के साधन है, इनका विस्तार चिरन्तन है ॥

यह वृक्ष वनस्पति काय नहीं, सुरगण इनको न रचाते हैं।
यह स्वय सिद्ध अपने द्वारा, सब को सब रस पहुंचाते हैं ॥

जो दानी-जन मरणोपरान्त, शुभ जन्म यहाँ पर लेते हैं।
यह कल्प वृक्ष उन जीवों को, इनसे जो चाहो देते हैं ॥

यह कल्प वृक्ष आतृप्ति केन्द्र, इनमें अतृप्ति का नाम नहीं।
सब इनसे वांछित फल पाते, कोई अभाव का काम नही ॥

सम्पूर्ण दिशाएँ आलोकित, यह कल्प वृक्ष कर लेते हैं।
कब प्रात हुआ कब रात हुई, आभास न होने देते हैं।।
अतिशय महमाद्रि अनादि निधन, ये कल्प वृक्ष कहलाते हैं।
मन वांछित फल देना इनका, स्वाभाविक धर्म बताते हैं।।

इन विविध कल्प वृक्षों ने जो, फल दाता लक्षण पाये हैं।
उर्वर पृथ्वी के सार भूत गुण, तत्व उभर कर आये हैं।।
हर प्राणी की जिज्ञासाएँ, तत्काल स्वरूप दिखाती हैं।
भोजन वस्त्रादि पदार्थों में, सब परिवर्तित हो जाती हैं।।

प्राणी मन चीती सामग्री, वृक्षों द्वारा पा जाते हैं।
इस तरह यहाँ के सभी जीव, आमोद प्रमोद मनाते हैं।।
इस भोग भूमि में उगी घास, रस धारा बन कर बहती है।
यह सदाधार युत रस सुगंध, अंगुल-रस पूरित रहती है।।

इन भोग भूमि के वृक्षों में, रत्नों के ढेर दमकते हैं।
सर्वत्र अनेकों रङ्गों में, मनमोहक फूल महकते हैं।।
इस भोग भूमि का यह अनूप, शुभ रूप एकसा रहता है।
जो यहां गर्भ मे आता है, पीड़ा दुख तनिक न सहता है।।

फिर एक साथ ही बाल वृन्द, शुभ जन्म समय पर पाते हैं।
फिर उनचास दिन बाद स्वयं, दम्पत्ति ग्रहस्थ बन जाते हैं।।
जो जन्म यहाँ पर लेता है, होता कोमल स्वाभाव धारी।
सब नर नारी सुख सचारी, महिमा धारी मंगल कारी।।

उपसर्ग परीषह वेदनीय, संकट इनको न सताते हैं।
लेश्या, अनिष्ट संयोग रोग, वियोग करीब न आते हैं।।

गृहांग कल्प वृक्ष
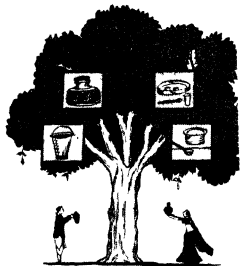
भाजनांग कल्प वृक्ष

भोजनांग कल्प वृक्ष
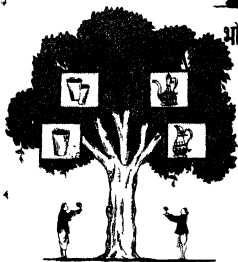
पानांग कल्प वृक्ष

वस्त्रांग कल्प वृक्ष

तन्द्रा निद्रा आलस प्रमाद, इनमें जीवन न गँवाते हैं।
सब योग प्राप्त इनको अनाघ, इनमें आनन्द मनाते हैं।।

तिल मात्र असमता यहाँ नहीं, कोई निर्जन धनवान नहीं।
सब पर समानता का बल है, कोई निर्बल बलवान नहीं।।

सब प्रात काल के रवि समान, देदीपमान यश धारी हैं।
सब पुण्य - दान से फलीभूत, सर्वतो भद्र अधिकारी हैं।।

वाणी में मिश्री घुली हुई, सब पुण्य बन्ध अनुरागी हैं।
प्रत्येक कलादि मे निपुण-दक्ष, सौभाग्यवान बड़ भागी हैं।।

यह कल्प वृक्ष कल्पनातीत, निरुपम विधियों से सज्जित है।
जो भोग भूमि के वासी है, ये उनके लिये विसर्जित है।।

इस भोग भूमि के श्रेष्ठत्व का, शब्दों में पार न पाते हैं।
सर्वत्र सुखद साम्राज्य यहाँ, पुण्यार्जन के फल खाते हैं।।

निर्मम अभिष्ट संयेण रोग, अनुयोग करीब न आते हैं।
आकुलता रहित निराकुलता, यह कल्प वृक्ष सरसाते हैं।।

इन भोग भूमियों का जीवन, अनुपम विशालतम होता है।
आलस प्रमाद मे पड़ा हुआ, कोई न यहाँ पर सोता हैं।।

कोई भी किञ्चित कृपण नहीं, या कोई साहूकार नहीं।
सब निर्विकार निर्मल अपार, कालुषता भरे विचार नहीं।।

अति महिमावान अनादि निधन, जो कल्प वृक्ष कहलाते हैं।
इनके ही नीचे मनोनीत, सब प्राणी हर्ष मनाते हैं।।

आमोद प्रमोद विनोद सहित, सब मिलकर हँसते गाते हैं।
इसमें अकाल मृत्यु नहीं, सब पूरी आयु बिताते हैं।।

यह चक्र वर्तियों से ज्यादा, अपना यश ध्वज फहराते हैं।
वाराच संहनन वज्रवृषभ, यह महामहिम कहलाते हैं।।

इस सुख सागर की महिमा का, संसारी पार न पाते हैं।
जो भव समुद्र मे भटक रहे, इससे वञ्चित रह जाते हैं।।

इस भोग भूमि के पशु पक्षी, जीवन सानन्द बिताते हैं।
वे स्वयं न पीड़ा पाते हैं, न पीड़ा कभी पहुचाते हैं।।

जो पात्र दान का पोषक है, अथवा करता अनुमोदन है।
इसके प्रतिफल का इस प्रकार, आगम शास्त्रों मे वर्णन है।।

इस भोग भूमियों जैसा सुख, स्वर्गो में कहीं न मिलता है।
सम्पूर्ण सुखों का पुण्य पुष्प, इस भोग भूमि मे खिलता है।।

स्वर्गों मे देव दूसरों के, वैभव से ईर्षा करते हैं।
इस भोग भूमि में समता के, आनन्दित झरने झरते हैं।।

इस भोग भूमि की रचना का, इतना विस्तृत नीलाम्बर है।
जिसकि उपमाओं मे नगण्य, निस्सीम समस्त चराचर है।।

॥ दोहा ॥

भोग भूमि के नाम पर, योग भूमि का सार।
कवि ने वर्णन किया है, उड़न शक्ति अनुसार।।

महिमा का सम्भव नहीं, आद्योपान्श बखान।
हस्ताक्षर से रहित है, चित्रण आलीशान।।

भोग भूमि मे मुखर है, पुण्य कर्म परमार्थ।
पात्र दान का उदित है, चतुरारन फलितार्थ।।
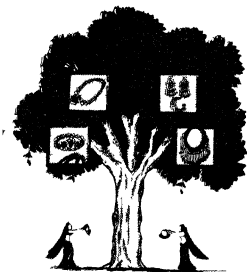
भूषरांग कल्पवृक्ष
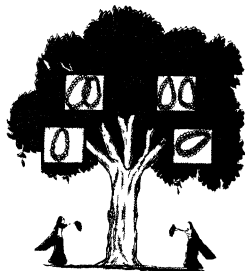
मालांग कल्पवृक्ष
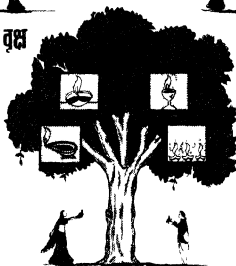
दीपांग कल्पवृक्ष
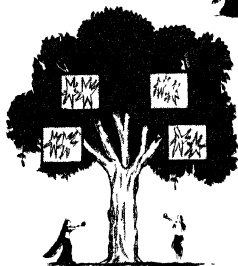
ज्योतिरांग कल्पवृक्ष
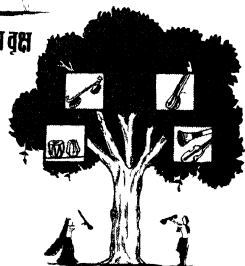
वाद्यांग कल्पवृक्ष

कर्म भूमि वर्णन

॥ दोहा ॥

सब से काल महान है, इसकी बड़ी उड़ान।
काल ज्ञान विज्ञान है, काल बड़ा बलवान ॥

कभी दिवस होते बड़े, कभी बड़ी है रात।
दुख सुख से छोटी बड़ी, समय समय की बात ॥

वैसे सब सुन्दर यहाँ, इसका ओर न छोर।
पर जो चाहे सो करे, यह सब का सिर मौर ॥

भोग भूमि पहले बनी, कर्मभूमि पश्चात्।
कितना विविध विचित्र है, समय चक्र विख्यात ॥

प्रकृति सुन्दरी भी धरे, क्षण-क्षण सुन्दर वेश।
पर परिवर्तित रूप से, सब कुछ समय विशेष ॥

यह प्रकृति नदी, है रूपवती, अँचल परिवर्तन शीला है।
जो कुछ जगती में दीख रहा, यह सब इसकी ही लीला है ॥

उगता है सूरज लाल-लाल, भर देता जीवन में लाली।
पीकर प्रकाश कलियाँ हँसती, जीवन पाती डाली-डाली ॥

भौरों की चल पड़ती बरात, मधुपान हेतु इठलाती सी।
सूरज की किरणें मधु-ग्रह में, हलचल करती मदमाती सी ॥

ले गंध वायु बनती चंचल, गति में मन्थरता आ जाती।
हर दिशा-दिशा हर आँगन में, मृदुगन्ध महकती छा जाती ॥

वन, बाग, भूमि, पर्वत के सिर, सरिता, सरिता के कूल मधुर।
सुन्दर प्रभात की बेला में, भर रहे हर्ष रवि के अंकुर॥

पर ऐसा होता नित्य नहीं, पग एक साथ उठते न कभी।
जो आज खुशी के कारण है, शायद कल साथ चलें न सभी॥

सब एक साथ जन्में न यहाँ, जाना है सब को, संग नहीं।
देख लो सूर्य का ही प्रकाश, सम भाव एक भी रंग नहीं॥

कम कौन रंगीला है प्रकाश, हर जगह रंग दिखलाता है।
यह रंग तितलियों के पर में, कलियों में जा मुस्काता है॥

है कहीं वही अमृत-दाता, है गरल विनाशक वही कही।
कब कौन अचम्भा कर दे यह, इसकी संरचना ज्ञात नहीं॥

संध्या, प्रातः निशि-वासर में, पर्वत, मरु, सागर सरिता में।
नूतनता ही नूतनता है, नक्षत्र - चन्द्रमा - सविता में।

है एक ओर सागर अनन्त, तो एक ओर है नीर नहीं।
हैं कहीं खुले मैदान पड़े, तो पर्वत की प्राचीर कहीं॥

फल-फूल-कन्द-जल अन्न आदि, इनमें समानता कहीं नहीं।
इस भाँति वृद्ध, नर, नारि, बाल, इनमें समानता नहीं कहीं॥

है कहीं दूर तक खेत हरे, बन राशि, फूल मालायें हैं।
हैं कहीं घाटियाँ बड़ी-बड़ी, लगती सुन्दर बालायें हैं॥

जो रूप इस समय देख रहे, क्षण भर में देखें बदला है।
सम्भवतः सारा भूमण्डल, परिवर्तन का कठपुतला है॥

रहती न आयु भी एक सदा, यौवन तो आता जाता है।
प्रति पग नूतनता देख देख, वह फूला नहीं समाता है॥

किरणें कहतीं हैं बढ़ों मगर, आवश्यक हो तो झुकना है।
मुस्काते बढ़ो कन्टकों में, डर कर न राह में रुकना है॥
पर्वत से खड़े रहो तनकर, बाधा से खौफ न खाना है।
उपकारी धर्म पंथ पर चल, शुभ कर्मों का फल पाना है॥

डालियाँ बतातीं मानव को, फलवान बनो तो झुक जाओ।
आये आँधी यदि वेगवती, झलो, न तनिक भी भय खाओ॥
फ़सलों से सीखे निर्जन में, जग हेतु फूलना फलना है।
जीवन को तपकर जीना है, संध्या में रवि सम ढलना है॥

नदियों ने जीवन-दान-सीख, चुपके - चुपके सिखलाई है।
फूलों ने अन्तर की खुशबू, बिखरा करके दिखलाई है॥
हैं भूमि - गर्भ में रत्न भरे, सागर में भरे पड़े मोती।
हीरा-पन्ना, मणि माणिक की, अन्तर में ज्योति उदित होती॥

मानव पाकर एकाध अँश, सरिताओं सा इठलाये क्यों ?
लहरों सी बढ़ती पीड़ा को, पाकर के जन अकुलाय क्यों ?
इस तरह मौन शिक्षाओं से, मानव बल का उत्कर्ष हुआ।
प्रेरणा कर्म की पाना ही, मानव मनका आदर्श हुआ॥

सुख और, नये हों, और नये, इस भाँति कर्म का भाव जगा।
बन, मेघ, नदी, सागर, भू से, आगे बढ़ने का चाव जगा॥
फिर कर्म क्षेत्र खुल गया बड़ा, कितने ही साधन निकल पड़े।
सूरज की किरणों को पाकर, हिमखण्ड स्वयं ही पिघल पड़े॥

आखिर क्यों आया परिवर्तन, मन में विचार यह आता है।
इस जिज्ञासा का सहज भेद, जिन-शास्त्र-ज्ञान बतलाता है॥

॥ दोहा ॥

हैं सब ही यह जानते, जग में काल अभेद ।
अवसर्पिण उत्सर्पिणी, शास्त्र कहें दो भेद ॥

दोनों भागों के पृथक, छः छः हैं अनुभाग ।
इस प्रकार बारह हुये, कल्प काल के भाग ॥

अर्ध कल्प में है प्रकृति, करती अति उत्कर्ष ।
और अर्ध के कल्प में, करती है अपकर्ष ॥

अवगाहन, रुचि, स्वास्थ्य औ, रूप आयु उत्कर्ष ।
इनमें जब हो हीनता, तब करते अपकर्ष ॥

वर्तमान अवसर्पिणी, काल खण्ड का रूप ।
दुषमा नामक भाग है, समय चक्र अनुरूप ॥

कौन काल से हैं बड़ी, इनमें लघु है कौन ।
कौन काल सीमा कहे, वक्ता कहते मौन ॥

काल-रूप-सब जीव में, करते सदा निवास ।
जब तब अवसर प्राप्तकर, करते प्रकट प्रकाश ॥

मैं ही भोगूं भोगे न और, या औरों को कम भोग मिले ।
मिल जाये सब कुछ मुझको ही, केवल मुझको संयोग मिले ॥

जन में जब जगता भाव उक्त, युक्तियाँ जुटाता फिरता है ।
सुख साधन और जुटाने को, मन को भटकाता फिरता है ॥

एकत्रित सुख साधन करना, जग में कुछ ऐसी बात नहीं ।
जोड़ें पर ऐसे ही साधन, दिन में हो जाये रात नहीं ॥

फल तेरा है पर मैं भोगूं, यह पाप वृत्ति कहलाती है।
यह पाप वृत्ति आगे बढ़कर, जगती का उर दहलाती है।।

अधिकार दूसरों के छीने, वह कहाँ भाग्यशाली होगा।
बलहीनों को बलहीन करे, वह कैसे यशशाली होगा।।

पर भोग काल में जन-जन में, भोगों के हित संघर्ष न था।
जो था वह उनको अतिशय था, सब कुछ था, पर उत्कर्ष न था।।

इसलिये कर्म की ज्योति जगी, जग में नूतनता रस बरसे।
मन से वाणी से, सम्बल से, अन्तर की सुन्दरता सरसे।।

पुरुषार्थ आदि की चाह जगी, जग में कुछ राहें नयी खुली।
नूतन सी दीखी प्रकृति नटी, मानो आँखे हो अभी धुलीं।।

सब ओर जगा नूतन प्रकाश, फैली जिससे लाली - लाली।
जन लगा विचरने अँचल में, श्री के हित बन कर श्री माली।।

॥ दोहा ॥

कर्म भाव इस भाँति से, पाकर परम प्रकाश।
कुन्द कली सा खिल पड़ा, जन मन बसा विकास।।

विविध भाँति साधन जुटे, जगा एकता भाव।
सबसे ही स्वीकृत लगे, नव जीवन प्रस्ताव।।

कर्म भूमि वर्णन रूचिर, मंगलमय सुख कोष।
रोष-राग उर से तजें, तब कवि उर संतोष।।

नाभिराज वर्णन

॥ दोहा ॥

नाभिराज महाराज को, करके प्रथम प्रणाम।
गाकर पावन चरित को, वाणी करूं ललाम ॥

जिनकी अनुपम सुमति से, सृष्टि हुयी है धन्य।
बुद्धि खोज पायी कहाँ, नाभिराज सा अन्य ॥

वे पूर्वज जिनने किये, जीवन दाता कर्म।
उनके अनुगामी बनें, यही हमारा धर्म ॥

पाकर जिन का बुद्धि बल, बढ़ी पीढ़ियाँ मूल।
जिनके प्रखर प्रकाश से, बना सभी अनुकूल ॥

रक्षक जीवन पंथ के, हैं आदर्श अनेक।
उन पर हम चलते रहें, यह ही विमल विवेक ॥

सभी चाहते सिन्धु-सुख, जितना जिसमें ज्ञान।
वही विज्ञ विद्वान सुख, जिसमें पर का ध्यान ॥

नाभिराज महाराज ने, किये सुभाषित कर्म।
उन कर्मों में छिपा है, अनेकान्त का मर्म ॥

श्री नाभिराज विख्यात नृपति, उनकी मैं कथा सुनाता हूँ।
जो नये नये आदर्श दिये, उनके प्रति शीश झुकाता हूँ ॥

प्रभु ऋषभ देव के पूज्य पिता, जो ज्ञान-खान विद्वान हुये।
निज के भोगों के लिये नहीं, जन के हित को वरदान हुये ॥

इस युग के चौदहवें कुलकर (मनु) श्री नाभिराय

चौदह कुलकर (मनु) एवं उनका संक्षिप्त परिचय

(१) **कुलकर प्रतिश्रुति** :—पत्नी—स्वयप्रभा 'इनके समय में आषाढ सुदी १५ के दिन सूर्य व चन्द्रमा दिखे तथा ज्योतिराग कल्पवृक्ष की ज्योति मंद होने पर इन्होने लोगों को बताया कि यह ज्योतिषी देवो के प्रभामय विमान है ।

(२) **कुलकर सन्मति** :—पत्नी यशस्विनी 'ज्योतिराग कल्पवृक्ष प्राय नष्ट हो रहे थे तथा आकाश मे ग्रह, नक्षत्र, तारो के दर्शन होने लगे तब इन्होने विशिष्ट ज्ञान से बताया कि यह भी ज्योतिषी विमान है ।

(३) **क्षेमकर कुलकर** :—पत्नी सुनन्दा 'इनके समय मे सिंह, भेडिये आदि भयकर वाणी बोलने लगे तो इन्होने समझाया कि अब इन पशुओ से खेल क्रीडा मत करो ।

(४) **क्षेमंकर कुलकर** —पत्नी विमला 'इनके समय मे सिंह, भालू, भेडिया आदि का भय बढने लगा तो उनके क्रूर होने की बात बताकर डडा आदि से भगाने की शिक्षा दी तथा दीपाग कल्पवृक्षा की प्रभा क्षीण होने पर दीप प्रज्जवलित करने का उपाय बताया ।

(५) **सीमकर कुलकर** :—पत्नी मनोहारी 'इन्होंने लोगो को उपदेश दिया कि वृक्षो से अपनी सीमानुसार इच्छा पूर्ति करो ।'

(६) **सीमधर कुलकर** :—पत्नी यशोधरा 'इन्होने मनुष्यो को विभिन्न सीमाओ तथा घरो मे रहने का उपदेश दिया साथ ही आपसी कलह न करने को प्रेरित किया ।'

(७) **विमलवाहन कुलकर** :—पत्नी सुमति 'इन्होने दूर तक जाने के लिए हाथी, घोडा, रथ आदि का प्रयोग करना बताया ।'

(८) **चक्षुषमान कुलकर** :—पत्नी वसुन्धरा 'इनसे पहले लोग अपने शिशुओ का मुख नही देख पाते थे परन्तु शिशुओ को देखकर लोग भयभीत हुए तो इन्होने समझाया कि यह तुम्हारे पुत्र पुत्री है इनका प्रेम से पालन-पोषण करो ।

(६) **यशस्वी कुलकर** :—पत्नी कातमाला 'इन्होने जीवित पुत्र-पुत्री का नाम रखना बताया ।'

(१०) **अभिचन्द्र कुलकर** :—पत्नी श्रीमती 'इन्होंने शिशुओ के लालन पालन तथा उन्हे रात्रि मे चन्द्रमा दिखाकर क्रीडा करने और बोलने का अभ्यास कराया ।

(इन उपरोक्त १० कुलकरो के समय तक दण्ड विधान हा और मा मे रहा ।)

(११) **चन्द्राभ कुलकर** :—पत्नी सुन्दरी प्रभावती 'इनके समय मे शिशु अधिक समय तक जीने लगे तब इन्होंने निराकुल रहने का उपाय बताया ।'

(१२) **मरुदेव कुलकर** —पत्नी सत्या 'इनके समय मे बरसात अधिक होने से चालीस नदियाँ बहने लगी तब जल मे तैरकर पार जाने आने की विधि समझायी ।'

(१३) **प्रसेनजित कुलकर** —पत्नी अमृतमती 'इन्होने प्रसूत बच्चो की जरायु निकालने के उपाय तथा जीवन सम्बन्धी अन्य उपाय बताये ।'

(१४) **नाभिराय कुलकर** :—पत्नी मरुदेवा 'इन्होने उत्पन्न बच्चो की नाभि मे लगे नाल को दूर करने की विधि बताई । इन्ही के समय मे भोजनांग कल्पवृक्ष नष्ट हो गये जिससे जनता को उदर पूर्ति हेतु पेडो के स्वादिष्ट फल खाने, धान्य का पकाकर खाने, ईख को दातो से चूसकर या घानी मे पेरकर रस पीने की शिक्षा दी तभी से इनके वश का नाम इक्ष्वाकु वश पडा । इन्ही के पुत्र प्रथम तीर्थकर ऋषभनाथ हुए वैसे तो कुल चौदह ही कुलकर होते हैं । परन्तु आदि युग मे जीवन सम्बन्धी अनेक उपाय लागू करने पर वे पन्द्रहवे कुलकर मनु प्रजापति भी कहलाये । इन्ही के पुत्र भरत चक्रवर्ती सम्राट हुए उन्हे वर्ण व्यवस्था लागू करने पर सोलहवे कुलकर भी कहते हैं । ऋषभनाथ भगवान तक दण्ड हा-मा-धिक ही था तत्पश्चात् भरत चक्रवर्ती ने तनु दण्ड लागू किया ।

मद्यांग आदि यह कल्प वृक्ष, नामानुसार फल देते थे।
जितनी जिसको आवश्यकता, मन वांछित फल ले लेते थे॥

धीरे - धीरे जब परिवर्तन, बाहर भीतर दीखने लगा।
जीवन नौका का संचालन, कुलकर मति से सीखने लगा॥

जिनने शंकाकुल मानव को, आलोक पंथ दिखलाये हैं।
ऐसे ही कुशल मार्ग दर्शक, चौदह कुलकर कहलाये हैं॥

जीवन उपाय जानते सभी, इसलिये सभी मनु कहलाये।
उपकारी समाधान के पथ, इन मनुओं ने ही दिखलाये॥

गंगा, यमुना औ सिन्धु नदी, इनके तट सब को भाये हैं।
चौदह कुलकर या मनुओं ने, शुभ जन्म यहीं पर पाये हैं॥

यह भूमि सदा से है उर्वर, जिसने देखी ललचाया है।
वह भाग्यवान कितना, जिसने निज जन्म यहाँ पर पाया है॥

अधिकांश अन्न उत्पन्न यहां, जलवायु यहाँ की अनुपम है।
अन्दर बाहर सब एक सदृश, व्यवहार-उदार मृदुल तम है॥

इसलिये अनेकों महापुरुष, इस दुर्लभ भू पर आये हैं।
इतिहास पुराणों में जिनके, शुचि सुन्दर चरित सुहाये हैं॥

है कौन नदी जो रखती हो, गंगा के जल सी पावनता।
इतने महान जो जन्में हो, इनकी क्या उपमा, क्या समता॥

चौदह कुलकर ज्ञानी महान, अन्दर बाहर समता पायी।
जन-जन के हित साधन को ही, मानों इनने ममता पायी॥

आकाश लोक, भूलोक आदि, जो जहाँ अपेक्षित हितकारी।
सामान्य व्यक्ति के लिये सुलभ, कुलकर की कृतियाँ उपकारी॥

प्रतिश्रुति से लेकर नाभिराज, सब हुये वंश के अनुक्रम से।
जिनसे जगजीवन धन्य हुआ, मति से क्षमता से, विक्रम से ॥

श्री नाभिराज ने पूज्य पिता, जिनको प्रसेनजित कहते थे।
अपनी महान क्षमताओं से, चर्चित आकर्षित रहते थे ॥

श्री नाभिराज सा सुत पाकर, प्रमुदित प्रसेनजित हरषाये।
मानों उनके गृह मन्दिर पर, वरदान पुण्य के मंडराये ॥

बढ़ चले कुंवर, बढ़ चले कुंवर, होकर के मंगल वरदानी।
ज्यों-ज्यों बढ़ते, त्यों-त्यों बढ़ती, मांगलिक भावना कल्यानी ॥

ज्यों हुये बड़े त्यों हुये व्यस्त, जग प्राणि-मात्र सेवा व्रत मे।
है वही धन्य बढ़ता जाता, अन्तर से जन सेवा कृत में ॥

श्री नाभिराज जब कुँवर हुये, पाया फल सबने मनचीता।
छवि से, बल से, मति से, व्रत से, सेवा से सबका उर जीता ॥

तब-तब उमंग में अंग-अंग, मुखरित हो बढ़ता दिखता था।
जिस ओर अंग का रंग बढ़ा, आनन्द उमड़ता दिखता था ॥

मन में आया प्रसेनजित के, अब तो विवाह रच ले सुत का।
सब इष्ट जनों ने भी मिलकर, कर दिया समर्थन इस श्रुत का ॥

श्रीमान् नृपति हैं आप धन्य, यह उचित समय का चिन्तन है।
है पाणिग्रहण के योग्य कुँवर, इस निर्णय का अभिनन्दन है ॥

कितनी ही राज सुताओं के, प्रस्ताव बड़े सुन्दर आये।
सम्बन्ध बड़े आकर्षक थे, पर नहीं नृपति के मन भाये ॥

जब मरु देवी शुभ रूपवती, मधु-मृदुल-प्रभा लावण्य मयी।
आया प्रस्ताव हुयी तब ही, शुभ भाग्यवती आनन्दमयी ॥

चल पड़ी विहँसती वर यात्रा, आनन्द युक्त झूमती हुयी।
थी मृदुल पवन बह रही मंद, रस युक्त कली चूमती हुयी।।

देखी इन्द्रों ने वर यात्रा, उर में आनन्द अपार हुआ।
देवता इन्द्र चल पड़े संग, नभ चुम्भी जय जय कार हुआ।।

अप्सरा वृन्द संगीत बद्ध, मनमोहक नृत्य दिखाता है।
मंजीर और नूपुर छवि संग, रागों का रंग सुहाता है।।

आनन्द सरस ऐसा बरसा, देवता मनुज सब भूल गये।
पाकर रजनी में मृदुल पवन, कलिका समूह सब फूल गये।।

वर पक्ष हो कि या वधू पक्ष, रस तो बरसा है समता से।
दोनों का पाणिग्रहण हुआ, दोनों पक्षों की ममता से।।

मिलते ही दोनों एक हुये, ज्यों संग क्षीर के नीर मिले।
ज्यों हँस हँसिनी प्रमुदित हो, एकान्त नदी के तीर मिले।।

इन्द्रादिक जो भी अतिथि यहाँ, सब हैं स्वागत से आभारी।
थी पाणिग्रहण के बाद हुयी, घर को चलने की तैयारी।।

नर नारी और नृपति ने मिल, वरयात्रा का सम्मान किया।
पाकर आतिथ्य सुजनता से, वरयात्रा ने प्रस्थान किया।।

देवता वृन्द निज लोक गये, वरयात्रा नगर लौट आयी।
उस नगरी के घर आँगन में, आयी इठलाती तरुणायी।।

जय नाभिराज! जय मरुदेवी, नगरी में जय-गुंजार हुयी।
हर द्वार-द्वार, हर गली-गली, आनन्द पूर्ण बौछार हुयी।।

तब नृपति सोचने लगे आप, कोई सुन्दर सा भवन बने।
श्री नाभिराज औ मरुदेवी, जिसमें भोगें आनन्द सने।।

प्रासाद मनोहर सा नक्शा, कल्पना लोक में बुना गया।
सरयू तट नगर अयोध्या का, थल महा मनोहर चुना गया ॥

स्वच्छन्द नदी सरयू बहती, अतिशीत स्वच्छ मृदु जल वाली।
जो भी इसके तट पर रहता, करती सुस्वास्थ्य की रखवाली ॥

उर्वरा भूमि वह कहलाती, जिससे कि धनिकता आती है।
ज्यों ज्यों निर्धनता जाती है, सज्जनता भी अपनाती है ॥

ऐसी पावन सरयू भू पर, सर्वतोभद्र प्रासाद बना।
जिसमें रह कर नव दम्पत्ति का, साकार हुआ सुख का सपना ॥

राजा ने सोचा एक दिवस, है नाभिराज में यह क्षमता।
कर सकते हैं अब हित चिन्तन, रख सकते हैं सब पर समता ॥

अब राज्य भार सौंपूँ उनको, है पुत्र योग्य अवसर दे दूँ।
होकर के मैं अब तपो-निष्ठ, वैराग्य भरा चिन्तन ले लूँ ॥

यह सोचा नृप ने अन्तर में, दृढ़ता पूर्वक यह ठान लिया।
किस समय कौन निर्णय लेना, उपयुक्त समय पहचान लिया ॥

तब एक दिवस राजेश्वर ने, सुत नाभिराज को बुलवाया।
आते ही नाभिराज सुत ने, पितु के चरणों में सिर नाया ॥

उगता सूरज सा पुत्र लगा, राजा को छवि दीखी बाँकी।
कहने से पहले उतर गयी, राजा के अन्तर में झाँकी ॥

प्रिय पुत्र योग्य हो, सक्षम हो, इस धरती के शृंगार बनो।
कर्त्तव्य मार्ग सब खुल जायें, ऐसे अनुपम आधार बनो ॥

कहने का यह आशय मेरा, अब यह जागीर तुम्हारी है।
बस महाराज के बाद सदा, युवराज बड़ा, अधिकारी है ॥

आ गया बुढ़ापा देख रहे, अब आना शेष बुलावा है।
जग और-और की चाह प्रखर, जीवन के लिये भुलावा है।।

यह सारा राज्य तुम्हारा है, अब तुम्हें इसे अपनाना है।
जो शेष बचा जीवन उसको, तप द्वारा सफल बनाना है।।

सुन पूज्य पिता की अभिलाषा, श्री नाभिराज कुछ सकुचाये।
अति विनय सहित निर्णय लेकर, यह भाव पिता से दरशाये।।

हे पूज्य पिता जो आज्ञा दें, स्वीकार उसे मैं करता हूँ।
श्री चरण पकड़ लेकर आज्ञा, बस एक निवेदन करता हूँ।।

श्री पूज्य पिता जायें न कहीं, सेवा का भार संभालूँगा।
सेवा करके पद कमलों की, जीवन को सफल बनालूँगा।।

त्रुटि हो जायेगी अगर कहीं, तो वह दुलार से सुधरेगी।
अनुशासित रहकर मति मेरी, सेवा पथ पर ही विचरेगी।।

संकल्प सत्य कर दिया प्रकट, प्रिय पुत्र दुबारा निर्णय क्या ?
जो पड़े बदलना बार-बार, हे पुत्र हमारा निर्णय क्या ?

कहते-कहते चुप हुये नृपति, भर आया नयनों में पानी।
सब ओर धूम से दीख चली, राज्याभिषेक की अगवानी।।

हर द्वार, नगर चौराहे ने, अनुपम ही रूप बनाया है।
जितनी जिसमें सामर्थ्य रही, उतना ही गेह सजाया है।।

शुभ दिवस और शुभ घड़ी देख, राज्याभिषेक कर दिया गया।
युवराज आज महाराज हुआ, शुभ ताज शीश धर दिया गया।।

बन कर प्रसेनजित तपोनिष्ठ, लग गये मोक्ष के साधन में।
श्री नाभिराज महाराज इधर, रूचि लेने लगे प्रशासन में।।

॥ दोहा ॥

महाराज निश्चय किया, कर मन में संकल्प।
जन-सेवाओं से बड़ा, कोई नहीं विकल्प ॥
जन जन के मन में बसा, महाराज का राज।
दिन-दिन विकसित हो चला, अपने आप समाज ॥
नाभिराज वर्णन सुनो, श्रोतागण सविलास।
नाभि पुत्र ने पूर्ण की, जन जन की अभिलाष ॥

देव कर्त्तव्य वर्णन

॥ दोहा ॥

और न कोई भाव है, जग - कर्त्तव्य समान ।
इसके ही व्यवहार से, मनुज बने भगवान ॥

जितनी जिसमें शक्ति है, कर्म करे अनुरूप ।
इसी कर्म की शक्ति से, रंक हुये हैं भूप ॥

इन्द्रादिक सब देव हैं, कहते कर्म रसाल ।
आदि अन्त तक कर्म की, है श्रृंखला विशाल ॥

अकरणीय कब कौन है, क्या कब है करणीय ।
जो इसको पहिचानता, वह जग में कमनीय ॥

कुछ दिन ही प्यारा लगे, नर नारी का चर्म ।
किन्तु सदा प्यारा लगे, नर नारी का धर्म ॥

यदपि भोग सब हैं सुलभ, फिर भी करते कर्म ।
इन्द्रादिक सब जानते, कुशल कर्म का मर्म ॥

मरूदेवी औ नाभि का, पाकर कर्म प्रभाव ।
इन्द्रादिक में भी जगा, धर्म कर्म का भाव ॥

सुरराज इन्द्र सिंहासन पर, बैठे विचार में लीन हुये ।
कितने सेवा के लिये खड़े, कर्त्तव्य भाव आधीन हुये ॥

अप्सरा वृन्द है एक ओर, जिनके पैरों में थिरकन है ।
इनके पैरों की थिरक नहीं, देवत्व हृदय की धड़कन है ॥

मधु-मादक पात्र रखे कितने, जी चाहे जितना पान करो।
अथवा अपनी इच्छाओं का, सम्मान करो, उत्थान करो॥

है कौन भोग जो सुलभ नहीं, सुरराज इन्द्र के शासन में।
अगणित प्रभु सत्ता में सिमटी, अनुशासन के सिंहासन में॥

जो भी विलास की सामग्री, अप्सरा पंक्ति की ओर रखी।
व्यन्तर हों याकि भुवनवासी, वह कौन वस्तु इनने न चखी॥

कितने ही रक्षक खड़े हुये, आज्ञा को शीश झुकाये हैं।
जग में इन्द्रादिक देवों के, इनने ही मान बढ़ाये हैं॥

सुरराज इन्द्र की दोनों दिशि, मंचों की सजी कतारें हैं।
इस इन्द्र लोक की रक्षा को, कर मे रक्षक तलवारें हैं॥

है दिशा-दिशा मंगल-मंगल, द्वारे पर नौबत बजती हैं।
होते हैं नित नूतन उत्सव, जिनके हित महफिल सजती हैं॥

बोले कुबेर से इन्द्रराज, वह दिन अब आने वाला है।
जो रिक्त रहा आनन्द सिन्धु, अब रस बरसाने वाला है॥

धरती पर पहिले तीर्थंकर, हैं लेने वाले जन्म सखे।
भर पूर चलो सेवा कर लें, शुभजन्म बना ले जन्म सखे॥

कब-कब आते हैं तीर्थंकर, देवता भली विधि जान रहे।
आया है सेवा का अवसर वे, भली भाँति पहचान रहे॥

बोले कुबेर हे! पूज्य देव, तुम अवधि ज्ञान के ज्ञाता हो।
हम सबके प्रभु शुभ चिन्तक हो, तुम अक्षय सुख के दाता हो॥

जन श्रेष्ठ जो कि तीर्थंकर है, जग को पवित्र करने आते।
मानवता एवं आत्मधर्म, अन्तर्तम में भरने आते॥

होगी पग-पग पर नयी दृष्टि, जग नव प्रभात सा चमकेगा।
मानवता पाकर नया रूप, हिमगिरि सा मस्तक दमकेगा ।।

पाकर के तीर्थंकर को जग, पा जाता मुक्ति सरलता है।
धर्मोन्नति उत्तम परिणति का, शुभ वातावरण बदलता है ।।

तीर्थंकरोति इति तीर्थंकर, आलोक अलौकिक वाहक है।
एकत्रित जो अज्ञान तिमिर, उसका सम्पूर्ण विनाशक है ।।

तुम सच कहते हो प्रिय कुबेर, यह अवसर मंगलकारी है।
सेवक सेवा कर स्वामी की, मांगलिक दृष्टि अधिकारी है ।।

हो किस प्रकार सेवा स्वागत, इस धर्मोदय बलशाली का।
सब ढूंढ रहे हैं नया रूप, स्वागत की नई प्रणाली का ।।

सोचते यही हम सब मिलकर, सुन्दर सा भवन रचा डालें।
मन, वाणी और कर्म से हम, स्वागत की धूम मचा डालें ।।

सेवा के अवसर जीवन में, बस कभी-कभी ही आते हैं।
जो बुद्धिमान होते हैं वे, अवसर को नहीं गँवाते हैं ।।

इस लिये समय रहते चेतो, जिससे न पड़े फिर पछताना।
अक्सर वे ही पछताते हैं, जिनने न समय को पहचाना ।।

तो सुनो कहीं क्या करना है, तुम इस विचार पर ध्यान धरो।
जो लक्ष्य दिया जाता तुम को, बस उस पर ही प्रस्थान करो ।।

तब है यथार्थ तन, बल, वैभव, जिससे प्राणी उपकार करे।
अथवा समुचित सेवा द्वारा, शत् शत् स्वागत सत्कार करे ।।

तुम सब को होगा खूब याद, कुछ दिन पहले बारात गये।
तब मनुज लोक मे हम सबने, भोगे थे कुछ आनन्द नये ।।

उन दम्पत्ति ने निज सेवा से, नृप के अन्तर को जीता है।
उन दोनों की सेवा समक्ष, अब तक तो जग ये रीता है।।

उनके पुण्यों का ही फल है, जो देव लोक तक जा पहुँचा।
तीर्थंकर उनका सुत होगा, अब वह मुहूर्त भी आ पहुँचा।।

हे देव राज बहु समय गया, सेवा का अवसर मिला नहीं।
जीवन के मान सरोवर में, सेवा का पंकज खिला नहीं।।

हम बहुत भाग्यशाली हैं सब, जीवन अब धन्य बनाना है।
जो मिला महोत्सव का अवसर, इसका कर्त्तव्य निभाना है।।

जो आज्ञा हो हे नाथ! कहो, दम खम रहते हम पूर्ण करें।
पाकर के स्वामी के बल को, हे दया सिन्धु सम्पूर्ण करें।।

है प्रणतपाल तीर्थंकर की कुछ, कथा जन्म की बतलाओ।
मन में जो कुछ जिज्ञासा है, संक्षिप्त उसे भी दर्शाओ।।

सुनकर प्रसन्न अति, देवराज, बोले मैं कथा सुनाता हूँ।
इतनी खुशियाँ हैं अन्तर में, मैं फूला नहीं समाता हूँ।।

होकर सब बैठें सावधान, यह कथा कर्म रस गीली है।
प्रेरणा परक लालित्यमयी, आनन्द पूर्ण गर्वीली है।।

यह भूमि लोक है स्वयं सिद्ध, होता इसका निर्माण नहीं।
यह स्वयं शक्ति से संचालित, करता कोई कल्याण नहीं।।

नदियाँ बहतीं हैं नित्य आप, कल-कल कल नाद सुनाती सी।
अम्बर की निशि ओढ़नी ओढ़, तारों की लड़ी लुटाती सी।।

होकर के अन्तर में विभोर, सागर अगाध लहराता है।
अन्जाने में जब तब आकर, नभ में बादल घहराता है।।

है भूमि लोक में एक द्वीप, जो असंख्यात कहलाता है।
जो अपनी अद्भुत शोभा से, जन-जन का मन हरषाता है॥

सरवर में जैसे कमल खिला, यों जम्बूद्वीप सुधरता में।
है भूमि लोक में और नहीं, इसके समान सुन्दरता में॥

हिमवान आदि हैं कुलगिरि के, इनमें सुमेरु का क्या कहना।
सर्वांग सुन्दरी के तन पर, शोभाय मान जैसे गहना॥

पर्वत सुमेर की दक्षिण दिशि, गन्धिल सा देश सुहाना है।
इस सुधा देश को सबने ही, देवत्व लोक सम माना है॥

ज्यों हो मन्दिर का शीर्षभाग, यों गिरि विजयार्थ सुहाता है।
उत्तर दिशि में जो अलकापुर, शोभा अद्भुत दिखलाता है॥

अलकापुर नामक नगरी में, अतिबल नृप थे महिमाधारी।
रानी जिनकी थी मनोहरा, थी रूपवती अति मनहारी॥

राजा रानी के पुण्यों की, सब ओर लतायें लहरायीं।
मानों पाकर उपयुक्त समय, जल भरी घटायें घिर आयीं॥

जिस तरह समय पाकर तरुवर, फलवान स्वयं कहलाते हैं।
ज्यों मन्द पवन से कलि का-चय, सम्पूर्ण सुमन बन जाते हैं॥

इस पुण्यवान अतिबल ने भी, इक सुन्दर सा सुत पाया था।
केवल दम्पत्ति नहीं नृप का, सम्पूर्ण नगर हरषाया था॥

थी गली-गली आनंद लहर, घर-घर में बजे बधावे थे।
खुशियों के सिन्धु नृपति द्वारे, सब को ही लगे बुलावे थे॥

धीरे - धीरे बढ़ चला पुत्र, पाकर आशीषों की छाया।
थी क्रम-क्रम से बढ़ चली आप, सम्वेग, वेग काया - माया॥

आ पहुँचा नृप को चौथापन, जिसने उसको सन्देश दिया।
क्यों कर वह भार रखे निज पर, जिसने जग को उपदेश दिया ॥

पहले सुत को युवराज किया, सेवा की वृत्ति परख डाली।
धीरे - धीरे अर्पित कर दी, सम्पूर्ण राज्य की रखवाली ॥

जब हुये महाबल नृपति सुधर, वह दिन सूरज सा आ धमका।
सिंहासन गिरि की चोटी तक, खिलता सूरज सा जा चमका ॥

अतिबल राजा दे राज-पाट, जिन दीक्षा से अनुरक्त हुये।
औ महाबली अतिबल के सुत, तब राज्य भार से युक्त हुये ॥

अतिबल-सुत के थे चार सचिव, जो अति कुशाग्र कहलाते थे।
जिनमें इक स्वयं बुद्धि भी थे, जो इनमें चतुर कहाते थे ॥

शुभ समय सोचकर स्वयं बुद्धि, श्री गिरि सुमेरु की ओर चले।
जिनवर चिन्तन-कर, मन्दिर को, होकर आनन्द विभोर चले ॥

सोचा मन में जा दर्शन कर, अन्तर की तपन बुझा डालूं।
जो राज-काज में मिला नहीं, जाकर सुमेरु गिरि पर पालूं ॥

घूमते-घूमते शान्ति मिली, चित वृत्ति हुई गंगाजल सी।
हो गये अति प्रखर स्वयं बुद्धि, बढ़ गयी शक्ति अन्तस्तल की ॥

सौमनस सुखद वन में बैठे, भौतिकता का कुछ ज्ञान न था।
तब स्वयं बुद्धि के अन्तर में, अज्ञान न था, अभिमान न था ॥

आदित्य, अरिजय नामक ऋषि, उस बन में आकर प्रकट हुये।
गाते जितेन्द्र प्रभु की महिमा, श्री स्वयं बुद्धि के निकट हुये ॥

तब स्वयं बुद्धि ने अन्तर से, दोनों मुनियों का मान किया।
सौभाग्य बड़ा दर्शन पाये, शुभ अवसर धर्म प्रधान दिया ॥

मुनिराज आज सब कुछ पाया, इच्छा अब कोई और नहीं।
सब जगह दीखती जिन शोभा, अतिरिक्त आज है ठौर नहीं ॥

हे! पूज्यनीय हे! वन्दनीय, जग में प्रकाश करने वाले।
जन जन के मन में बसा हुआ, तुम अंधकार हरने वाले ॥

वह कौन तत्व जिनको पाकर, रहता कुछ पाना शेष नही।
फिर देश-काल के बंधन का, रहता जिसपर परिवेश नहीं ॥

वह तत्व आत्म चिन्तन ही है, वह ही जग में परिणामी है।
उसको पाकर जन जो पाता, वह ही तो जन-हित-कामी है ॥

सुन स्वयं-बुद्ध ने प्रश्न किया, जागी मन में जिज्ञासा है।
मम नृपति महाबल कैसे हैं, सुन लूँ मेरी अभिलाषा है ॥

मुनि श्रेष्ठ प्रश्न सुन पुलकित हो, बोले जिज्ञासा उत्तम है।
श्री नृपति महाबल का जीवन, महिमा मण्डित सर्वोत्तम है ॥

सर्वांग नृपति वर सुन्दर हैं, कोई न दुखी है शासन में।
सब प्रजा बहुत आनन्दित है, रह कर जिनके अनुशासन में ॥

॥ दोहा ॥

कहे गये हैं शास्त्र में, दो ही भेद रसाल।
भव्याभव्य प्रसिद्ध हैं, जग में जीव विशाल ॥

भव्य जीव जग श्रेष्ठ हैं, जो उज्वल चिरकाल।
इससे ही उन्नत हुआ, मानवता का भाल ॥

है अभव्य जग जीव की, महिमा नहीं विशेष।
चल अज्ञानी पंथ पर, भोगे शेष कलेश ॥

जब तक जन जगता नहीं, ले जागृति की प्रीति।
तब तक जग मिटता नहीं, क्लेश आदि भयभीति ।।

वह ही जीवन धन्य है, जो खोजे सुख सिन्धु।
जो जग के रसपान को, बाँट रहा रस बिन्दु ।।

है भव्य जीव, जग श्रेष्ठ-कर्म, जन के जीवन के तारे हैं।
इस समय महाबल वीर नृपति, सारे ही जग में न्यारे हैं ।।

यह नृप भविष्य दसवें भव में, पहिले जिन तीर्थंकर होंगे।
जो अखिल विश्व के उद्धारक, जन मन के विश्वेश्वर होंगे ।।

इन से फैलेगी जगत शान्ति, भय आदि स्वयं मिट जायेंगे।
पाकर के पथ सुख शान्ति पूर्ण, आनन्द - युक्त हरषायेंगे ।।

सुन स्वयं बुद्ध यश की गाथा, हर्षातिरेक से अकुलाये।
कह सके एक भी शब्द नहीं, आँखों में अश्रु उतर आये ।।

तपसी मुनिवर विस्तार सहित, गाथा रस में तल्लीन हुये।
श्री नृपति महाबल का चरित्र, कहने में मुनिवर लीन हुये ।।

हे स्वयंबुद्ध अद्भुत ज्ञानी, जिज्ञासा बड़ी मनोहर है।
ऐसी मनहरता के समान, नृप का चरित्र भी सुन्दर है ।।

गन्धिल प्रदेश में सिंह नगर, नामक इक सुन्दर नगरी थी।
शोभायमान आलोकमान, यश के अमृत की गगरी थी ।।

श्रीषेण नाम के नृप वर ने, जनता के मन को जीता था।
श्री सिंह नगर का हरवासी, आनंद सुधा रस पीता था ।।

जय वर्मा, श्री वर्मा दो सुत, राजा ने नेत्रों सम वाले।
वात्सल्य-सुधा रस के प्याले, लालन-पालन द्वारा ढाले ।।

श्री वर्मा नामक लघु सुत को, साम्राज्य भार सब सौंप दिया।
उपयुक्त आयु पाकर नृप ने, अनुराग त्याग वैराग्य लिया॥

जय वर्मा ने सर्वस्व त्याग, जिनव्रत जीवन में धार लिया।
तमसा वृत जग से स्वयं निकल, तन से मन का शृंगार किया॥

निज-निज रस में होकर विलीन, सुख की सीमा की ओर चले।
दोनों अपनी दिशि में मानों, चन्दा की ओर चकोर चले॥

जय वर्मा मुनिवर ध्यान धरे, बैठे पद्मासन लीन हुये।
कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हेतु, तप साधन में लवलीन हुये॥

मुनिवर ने इक विद्याधर को, नभ में विहार करते देखा।
उसके जीवन के वैभव को, रस सागर में भरते देखा॥

जग गया योग का प्रबल काम, अन्तर को अति विह्वल पाया।
सब ओर निहारा, किन्तु कहीं, सुख वैभव नहीं निकट आया॥

जय वर्मा का तप भंग हुआ, केवल विचार के आने से।
खण्डित तप तो खण्डित ही है, अब क्या होगा पछताने से॥

इस समय भयंकर एक नाग, बांबी से आप निकल आया।
डस लिया डिगे जय वर्मा को, दूषित विचार का फल पाया॥

सह सके गरल का कोप नहीं, हो गयी लोप तन की माया।
उड़ गया हँस हँसता-हँसता, मिट्टी थी मिट्टी की काया॥

रह गयी भोग वैभव इच्छा, इच्छा ने नृपति जन्म पाया।
श्रीनृपति महाबल होकर के, भोगों से मन को हरषाया॥

कहते - कहते मुनिवर ज्ञानी, स्वयंमेव बुद्ध से फिर बोले।
होकर प्रबुद्ध तुम और सुनो, मुनिवर ने अधरामृत खोले॥

राजा के अगले जीवन की, घटना अत्यन्त मनोहर है।
घटनाये जीवन देती हैं, क्या सुन्दर और असुन्दर है।।

सुनिये भविष्य सूचक सपने, राजा ने आज निहारे हैं।
जिनके फल मैंने निज मति से, कहिये जो भेद विचारे हैं।।

फंस गये नृपति तो कीचड़ में, जिसका कारण मंत्रीवर हैं।
पा जाये चाहें पद कोई, सब के चरित्र कब सुन्दर हैं।।

दूषित चरित्र को देख स्वयं, राजा के प्रति कुछ अकुलाये।
तीनों सचिवों को दे प्रबोध, राजा को स्वच्छ बचा लाये।।

आकर पाया शुभ सिंहासन, सर्वत्र पुनः जयकार हुआ।
श्री नृपति महाबल का उर से, था पिता तुल्य सत्कार हुआ।।

दूसरा स्वप्न देखा नृप ने, प्रतिक्षण दीपक हो मलिन रहा।
राजा के जीवन की धारा, कटता जैसे हो पुलिन रहा।।

हे बुद्धि-श्रेष्ठ ! स्वप्नों का फल, पूछें तो उनको बतलाना।
है प्रथम स्वप्न मंगलकारी, ऐसा तुम उनको जतलाना।।

दूसरा स्वप्न है महा अशुभ, कुछ ही प्रकाश अब शेष रहा।
है एक मास जीवन बाकी, जो शुभ कर्मों में शेष रहा।।

तुमसे सुनकर स्वप्नों का फल, होगा राजा को रोष नहीं।
जिसका मंत्री हो स्वयंबुद्ध, होता हैं उसको क्लेश नहीं।।

देकर तुम समयोचित सुझाव, मंगल कर्मों की ओर चलो।
जिससे जग जीवन धन्य बने, ऐसे धर्मों की ओर चलो।।

॥ दोहा ॥

इस प्रकार कह कर कथा, मुनि वर किया विहार ।
श्रेष्ठ ज्ञान पाने लगा, स्वयं-हृदय विस्तार ॥

स्वयं-बुद्ध ने भी किया, उस बन में प्रस्थान ।
निकट नृपति के आ गये, चढ़कर बुद्धि विमान ॥

नृपति प्रतीक्षा लीन थे, मन को किये निढाल ।
सुख-दुख क्रम-क्रम भाव से, भरते नैन विशाल ॥

स्वयं-बुद्ध से सचिव को, पाकर हुये निहाल ।
स्वप्नों का फल जानकर, हर्ष हुआ तत्काल ॥

हो शेष मास भर का जीवन, शुभ कर्म कौन वह छोड़ेगा ।
भौतिक सुख की आकांक्षा को, क्या सोच प्राण को जोड़ेगा ॥

आया जब अष्टान्हिका पर्व, राजा को हर्ष महान हुआ ।
नृप के द्वारा जिन मन्दिर में, यह उत्सव धर्म प्रधान हुआ ॥

शुभ "णमोकार" जपते-जपते, राजा ने तन का त्याग किया ।
प्रस्थान स्वर्ग की ओर किया, जिन वर प्रभु में अनुराग किया ॥

ईशान स्वर्ग में श्री वर्मा, ललितांग नाम के देव हुये ।
धरती के सेवक की महिमा, स्वर्ग में देव स्वयमेव हुये ॥

जिनवर की पावन पूजा से, स्वर्गिक भोगों का भोग मिला ।
जिनवर के परम अनुग्रह ने, अगणित भोगों का योग मिला ॥

ललितांग देव को स्वयं-प्रभा, नामक देवी का भोग मिला ।
अतृप्त वासना सागर में यह, भवमोहक संयोग मिला ॥

पाकर के स्वयं-प्रभा को वह, मन में फूला न समाता था।
वह तरह-तरह से भोगों के, संयोग मधुर उपजाता था॥

॥ दोहा ॥

स्वयं प्रभा के भोग की, उर में आश विशेष।
उर माला मुरझा रही, आयु रही कुछ शेष॥

चिन्ता घन गरजन हुआ, नैनों से बरसात।
अपने - अपने दूर हैं, हैं समान दिन रात॥

देवों ने ललितांग के, करके उर का शोध।
'जिन' विचार में लीन हो, ऐसा दिया प्रबोध॥

किसी चैत्य में बैठ कर, कर जिन प्रभु का ध्यान।
प्राण त्याग के समय पर, णमोकार वरदान॥

स्वयं प्रभा के भोग का, शेष रहा उत्साह।
मनुज योनि में ले गयी, यही भोग की चाह॥

भोगों के अनुराग का, भव-भटकन परिणाम।
मिट्टी में मिलता रहा, नर जीवन निष्काम॥

हे देवराज है यह मधुर कथा, हम सुनते नहीं अघाते हैं।
सुनते जाते जितनी गाथा, उतने ललचाते जाते हैं॥

उत्सुकता मन में जागृत है, सुनने का लोभ नहीं कम है।
दोनों दिशि जीत रहे अपनी, अब वह कहिये, जो उत्तम है॥

प्रिय देव-जाति हो सावधान, मेरी वाणी का श्रवण करे।
होकर सचेत निज कर्म ओर, आनंद सिन्धु में रमण करे॥

इस भाँति पूज्य श्री ऋषभदेव, जीवन की कथा मनोहर है।
उसका उतना आनंद घना, जितना जो बड़ा सुहृदवर है ।।

मैं जान रहा हूं अमर पुत्र, तव - उर की जो इच्छायें हैं।
बल की, श्रम की, सुख की, दुख की, सब की अपनी कक्षायें हैं ।।

दसवें भव में प्रभु ऋषभदेव, अहिमिन्द्र श्रेष्ठ कहलाये हैं।
अहिमिन्द्र यही स्वर्गिक सुख के, भोगते धरा पर आये हैं ।।

भव ऋषभदेव के जितने भी, सब के सब ही करणीय हुये।
मानव जिनसे सब कुछ सीखें, जीवन में बस रमणीय हुये ।।

कैसे जीवन बनता मिटता, कैसे जीवन सोना होता।
कैसे भर जाता खुशियों से, कैसे केवल रोना होता ।।

इसलिये पूर्व भव गाथा ये, तुम सबको आज सुनायी हैं।
होकर प्रसन्न सुन ली गाथा, अब शेष कर्म पहुँचाई हैं ।।

जय देवराज ! जय देवराज !!, हमने जीवन फल पाया है।
हमने जो कुछ भी है पाया, यह तप-प्रताप की माया है ।।

हो सकें, कर्म से डिगें न हम, ऐसी प्रेरणा जगा दी है।
जीवन सुन्दर होता जाये, कुछ ऐसी लगन लगा दी है ।।

जो कुछ यश वैभव भोग रहे, जितना बल भरा पराक्रम है।
यह सब सुकर्म की महिमा है, बाकी मिथ्या भ्रम ही भ्रम है ।।

हे पूज्यपाद, हे प्रणत पाल, जय - माल तुम्हारी वाणी है।
आशीष तुम्हारा मंगलमय, तव कृपा दृष्टि कल्याणी है ।।

॥ दोहा ॥

सर्व देव कर्त्तव्य हित, पाकर परम प्रसाद ।
हँसी खुशी चेतन हुये, उर में भर आह्लाद ॥

जीवन निधि पाने चले, लेकर कर्म कुदाल ।
नींव और गहरी किये, झुके न जिससे भाल ॥

सुभग प्रेरणा प्राप्त कर, भर कर उर उत्साह ।
कर्म-धार गतिमय हुयी, जीवन नदी प्रवाह ॥

इन्द्र प्रेरणा बन गयी, देव कर्म का हेतु ।
देव लोक नर लोक में, कर्म सन्धियाँ सेतु ॥

जो यह शुचि वर्णन पढ़े, करे हृदय में ध्यान ।
ऋषभ देव रक्षा करे, जग में पाये मान ॥

अयोध्या वर्णन

-: दोहा :-

धन्य भूमि का भाग वह, जहाँ अयोध्या धाम।
ऋषभ देव जन्में जहाँ, उसको सहस प्रणाम ।।

नाभिराज मरुदेवि सम, हुआ कौन जग अन्य।
जिसके सुत को प्राप्त कर, हुयी सृष्टि जग धन्य ।।

ऋषभ देव सम जगत में, और न हुआ कृपालु।
जगती जन अभिलाष हैं, सब पर रहें दयालु ।।

ऋषभ देव-शुभ कर्म का, पाकर जगत प्रसाद।
कर्म सुरति में रम रहा, लेकर जन आह्लाद ।।

मात पिता वह धन्य हैं, धन्य वहाँ है गेह।
जिसका सुत हो ऋषभ सा, उर में भरे सनेह ।।

सौ पुत्रों से है भला, माता का सुत एक।
जगती हित जिसमें जगे, प्रेरक विमल विवेक ।।

सुनो सुकवि 'नागेन्द्र' के, उर यह ही अभिलाष।
जग में विमल कृतित्व का, फैले विमल प्रकाश ।।

चौदवें कुल कर नाभिराज, मेघों का धर्म निभाते थे।
भू से सिंचित कर नीर बिन्दु, धारा भू पर बरसाते थे ।।

था मोह न उनके जीवन में, धारा से चढ़ते जाते थे।
जो आता उनके निकट त्रिषित, शीतलतम नीर पिलाते थे ।।

सब कुछ जनता से पाकर के, सब कुछ जनता के लिये दिया।
वे तो जनता के लिये जिये, जनना का जन-जन उन्हें जिया ।।

जनता को था सुत सम पाला, सुख-दुख का हर दम ध्यान रखा।
सब को बढ़ने के बिन्दु दिये, सब की क्षमता का मान रखा ।।

कब किमको कौन अपेक्षित है, राजा को इस का ध्यान रहा।
अपनी सुख सुविधा से ज्यादा, जिन मर्यादा का मान रहा ।।

जैसे माली हर पौधे की, चिन्ता करता है अन्तर से।
पाकर के अवसर पौधे भी, देते प्रसून है सुन्दर से ।।

किस पौधे को है प्यास लगी, किसकी कब खाद उपेक्षित है।
सब को आधार मिल रहा है, या कोई कहीं अपेक्षित है ।।

केवल पुरुषों, या पातों की, या फल पाने की चाह नहीं।
सेवा का रहता भाव सदा, उपजाता उर में दाह नहीं ।।

माली की अगणित सेवायें, शुचि कर्म भाव उपजाती हैं।
सेवा से जग में सब मिलता, यह मूल मंत्र बतलाती हैं ।।

यह मंत्र सीख कर, नाभिराज, सेवा, हित जीवन-दान दिया।
बदले में जन मन से उनने, यश, वैभव, औ सम्मान लिया ।।

कौशल प्रदेश में इक नगरी, सुन्दर - सुन्दर भवनों वाली।
साकेतपुरी जग ने जानी, करता सरयू तट रखवाली ।।

राजा के अद्भुत कौशल से, कौशला और धनवान हुयी।
शुचि पुण्यवान राजा पाकर, कौशला और छविवान हुयी ।।

सरयू की धारा में अमृत, जो पीता जीवन पा जाता।
एक ही दिवस में जीवन का, मानों आनन्द समा जाता ।।

हो चले कर्म से युक्त मनुज, हर ओर बसी हरियाली थी।
इसलिये अयोध्या में दिशि-दिशि, खुशहाली ही खुशहाली थी ॥

राजा ने निज निर्मल मति से, सब को समता का भाग दिया।
क्या किसके लिये अपेक्षित है, सब को यह पुण्य पराग दिया ॥

अब कल्प वृक्ष हो चुके नष्ट, जीवन की सुविधा भार हुयी।
जो जीवन कल तक सोना था, उसकी महिमा पतझार हुयी ॥

व्याकुलता उर-उर व्यापी थी, कैसे नौका चालन होगा।
अब तक तो भोगा स्वर्ग भोग, कैसे जीवन पालन होगा ॥

थी हुयी कर्म की मूठ नहीं, फल का पाना तो सपना है।
किसका कब कौन सहायक है, जग में कब कोई अपना है ॥

इस तरह दुखित जनता को लख, श्री नाभिराय अति अकुलाये।
ज्यों देख बिलखता संतति को, संरक्षक आँसू भर लाये ॥

उनने कर सब को सम्बोधित, जीवन रहस्य यों बतलाया।
यह प्रकृति बड़ी है शक्तिमती, इसकी है यह प्रकटी माया ॥

यह कल्प वृक्ष थे इसके फल, जिनसे सुख सुविधायें पायीं।
कुछ हुआ कर्म का भान नहीं, जब मिटे वृत्तियाँ अकुलायीं ॥

कुछ सोच करो मत मन में अब, चिन्ता से कल का क्षय होगा।
जगती में बल क्षय होने से, जीवन-धरती कटु मय होगा ॥

भयभीत कभी इस जगती में, पा सके सृष्टि का नेह नहीं।
अन्तर में जिसके नेह नहीं, जगती में उसकी गेह नहीं ॥

जब गेह नेह से हो सूना, उसमें क्या उजियाला होगा।
जो चाहे आये या जाये,-घर का कब रखवाला होगा ॥

इसलिये एक ही युक्ति बड़ी, इसको जनहित में अपनाओ।
आसरा कल्पवृक्षों का तज, अपने ही बल को प्रकटाओ।।

अपने भुजबल की बात और, अपने का भाव निराला है।
अपने हाथों का मानों जल खारा, अमृत का प्याला है।।

अपने पर ही विश्वास करो, अपना बल ही सच्चा बल है।
जो अपने बल पर जीता है, उसका मजबूत धरातल है।।

यह प्रकृति जिसे हम देख रहे, अपने बल से बलशाली है।
जगती को जीवन दान दिया, सब से अनुपम गतिवाली है।।

सागर - सीता - सर - सुभर - भरे, पर्वत निज बल से बड़े हुये।
सरितायें जो भर काट चुकीं, तट अपने बल पर खड़े हुये।।

रश्मियाँ सहारा कब तकती, चन्दा किसके बल से चलता।
तारे आवांछित घूम रहे, सूरज अपने श्रम से ढलता।।

तुम बुद्धिमान हो कर के भी, बैठे अब तक हत-आश लिये।
यह कल्प वृक्ष ही फल देंगे, अब तक बैठे विश्वास लिये।।

तुम उठो बहुत बल है तुम में, तुम जिस दिशि-हाथ उठा दोगे।
पर्वत कितना ही हो ऊँचा, चरणों में उसे झुका लोगे।।

कह उठी सभा हे नाथ धन्य, तुम ही आधार हमारे हो।
भ्रम के सागर में डूबों के, तुम ही तो एक सहारे हो।।

बोले नृप तुम सब अपने हो, अपनों का हित स्वाभाविक है।
मंजिल तक पहुँचा दे सब को, वह ही तो सच्चा नाविक है।।

देखो फसले लहलहा रहीं, इनसे इच्छित वरदान चुनों।
जो जो उपयोगी हो तुम को, वह मनवांछित वरदान चुनों।।

है कौन मूल किस हेतु बनी, किसका कैसे उपयोग करे ?
यह मुझसे सीखो आकर के, किस का कैसे अब भोग करें ?
जो चाहोगे पा जाओगे, जिसकी तुम इच्छा रखते हो।
कुछ प्राप्ति हेतु अपने उर की, ताकत को नहीं परखते हो ॥

॥ दोहा ॥

सब के मुख पंकज खिले, सुन जन हित की बात।
सूरज चमका ज्ञान का, बीती भ्रम की रात ॥
धीरे-धीरे हो चला, सुन्दर सृष्टि विकास।
किसे नहीं पथ सूझता, पाकर परम प्रकाश ॥
देव लोक तक जा चुकी, मनुज लोक की बात।
बुद्धि कर्म के योग से, खिला सुभग जलजात ॥

सुरराज इन्द्र की आज्ञा से, देवों का दल तैयार हुआ।
नव नगर आज निर्मित होगा, आदेश तुरत स्वीकार हुआ ॥
श्री-पति कुबेर दलपति बनकर, आगे - आगे हो सजग चले।
आज्ञा के सूत्रों में बँध कर, वैसे सब होकर अलग चले ॥
देवों के उर अभिलाष यही, हम सारी कला दिखा डालें।
जो कुछ भी जीवन में सीखा, सारा आदर्श निभा डालें ॥
श्री आदि नाथ की सेवा से, यदि थोड़ा सा भी सुख पाया।
तब देव योनि में यह जीवन, लगता है नव जीवन लाया ॥
सेवा के अवसर जीवन में, भोगों से कम ही आते हैं।
जो ऐसे अवसर खो देते, वे जीवन भर पछताते हैं ॥

देखा कुबेर श्री नायक वर, सरयू के तट पर आये हैं।
उतरे विमान ज्यो धरती पर, रगीन सघन घन छाये हैं॥

सब ओर लगा खुशियाँ बिखरी, उत्साह सिन्धु था उमड़ रहा।
अथवा अद्‌भुत वर्षा के हित, भावुक अन्तर था घुमड़ रहा॥

नायक कुबेर ने कहा तभी, पहले से हम यह सुनते हैं।
यह श्रेष्ठ भूमि सरयू तट की, नव नगर हेतु हम चुनते हैं॥

बुनियादो की मजबूती की, धरती को रेखांकित कर लें।
आगे चल कर पछताना हो, पहिले सब कुछ निश्चित कर ले॥

अब इस नव निर्मित नगरी मे, सुन्दर प्रासाद बनाना है।
जिसकी समता मिल सके नही, ऐसी प्रतिभा दर्शाना है॥

—: दोहा :—

निश्चय कर के देव सब, हुये कर्म मे लीन।
गये दिवस या रात कब, पायी शक्ति नवीन॥

तनिक समय मे हो गया, नया नगर निर्माण।
धरती की शोभा बढ़ी, हुआ परम कल्याण॥

नगर नया निर्मित हुआ, रहा अयोध्या नाम।
जो जन के मन का हुआ, पावन श्रद्धा धाम॥

शोभा क्या कवि कह सके, उसे न इतना ज्ञान।
कौन कमी होगी वहाँ, जन्मे जब भगवान॥

स्वर्ग लोक की कल्पना, पृथ्वी पर साकार।
कर्म, बुद्धि औ वृत्ति की, महिमा अगम अपार॥

श्री नाभिराज औ मरुदेवी, इनके समीप सुरराज हुये।
श्री नाभिराय निज करनी से, इन्द्रादिक के सरताज हुये ।।

सुरराज इन्द्र ने विनती की, तुम सम अब कोई अन्य नहीं।
सेवा जबतक सब कर न सका, होगा जन तब तक धन्य नहीं ।।

हे नाथ निवेदन स्वीकारों, नव नगर आज स्वीकार करो।
देवाधि पूज्य, नरराज श्रेष्ठ, मेरा सपना साकार करो ।।

प्रासाद नये में पग धारो, प्राणों का नव संचार करो।
सर्वस्व तुम्हीं को अर्पित है, यह नगरी अंगीकार करो ।।

धरती पर जो नर सृष्टि श्रेष्ट, सेवा हित सब वासी होंगे।
लेकर प्रसाद पा दिव्य दृष्टि, सब के सब सुख राशी होंगे ।।

–: दोहा :–

देव राज की प्रार्थना, कर नृप ने स्वीकार।
मरुदेवी के साथ में, करने लगे विहार ।।

सुधा-सरित बहने लगी, करे मधुर जन पान।
हम क्या हैं क्या-क्या करें, यह है सब को ध्यान ।।

मान आदि विसराय के, पढ़े अयोध्या खण्ड।
ज्ञान बढ़े निज आत्म में, जागे कर्म प्रचण्ड ।।

स्वप्न वर्णन

—: दोहा :—

चतुर प्रकृति ने हाथ में, रक्खी शक्ति समेट।
कभी निरंकुश छोड़ती, रखती कभी लपेट ॥

हम फिर भी इस प्रकृति पर, करते हैं विश्वास।
बिना घात चूके नहीं, रखे बनाकर दास ॥

स्वप्न आदि सब प्रकृति के, घेरे है सब अंग।
पता नहीं कब दे हमें, दगा अनोखा रंग ॥

कभी-कभी यह रंग ही, चमकाता है भाल।
पग पुजते हैं जगत में, गले पड़े बन माल ॥

कौन रंग में झूठ है, कौन रंग में सांच।
यदि ज्ञानी तो जांच ले, कौन रंग में आंच ॥

दीखता दूर से भव्य नगर, आंखों में बसता सा जाता।
आनन्द सरसता त्यों ज्यादा, ज्यों-ज्यों है जन बढ़ता जाता ॥

है मध्य भाग में अति ऊंचा, इक भवन कई खण्डों वाला।
हर खण्ड लिये अद्भुत शोभा, है रूप स्वयं ही रखवाला ॥

है शीर्ष भाग पर स्वर्ण कलश, जिनकी आभा सूरज सम है।
उन पर फहराते तोरण हैं, शोभायमान छवि उत्तम है ॥

है नगर भाग भी देवोपम, सुख सुविधाओं से पूर रहा।
देखा जिसने यह नगर नहीं, वह जीवन सुख से दूर रहा ॥

कौशलाधीश नृप नाभिराय, श्री मरुदेवी पटरानी है।
केवल सुख भोगी नहीं सकल, जगती-जन के हित दानी है।।

राजा रानी ने निश्चय कर, जीवों पर दया उतारी है।
इसलिये इन्होंने समझा है, जग को अपनी फुलवारी है।।

जगती के सारे जीवों को, ममता के धागे में पोया।
वह कौन घाव जीवों का है, जिसको स्वयमेव नहीं धोया।।

सब के ही नृपति समीपी हैं, सब पर सम प्यार लुटाया है।
यह मनुष्यता की, ममता की, सब राज्य धर्म की माया है।।

राजा में और प्रजा जन में, ज्यों देह प्राण का नाता है।
अथवा राजा हैं पिता तुल्य, मरुदेवी रानी माता है।।

—: दोहा :—

गली-गली में हो रही, नृप की जय जयकार।
वाणी से प्रकटित हुआ, नृप रानी का प्यार।।

सुख-निधि डूबे प्रजा जन, गह न सके फिर पार।
प्रेम नृपति का बन गया, अब जीवन आधार।।

नित दर्शन पाये बिना, मिले न उर का चैन।
नृप-रानी थे बन गये, प्रजा जनों के नैन।।

थे एक दिवस राजा रानी, सूरज आभा बन कर निकले।
सब के मुख कमल खिले ऐसे, जैसे निशि बीते रवि निकले।।

बिखरी सर्वत्र धूप पीली, मानों प्रसन्नता उतरी हो।
राजा की कृपा दृष्टि ऐसी, जैसे सब के सिर चंवरी हो।।

सिंहासन की आभा अद्भुत, जिसकी कोई उपमान नहीं।
बैठा जनता का स्वाभिमान, जिसमें रंचक अभिमान नहीं ॥

नृप रानी भावों की प्रतिमा, जिस पर सर्वस्व समर्पित है।
जिसकी आभा वैभव समक्ष, स्वर्गादिक वैभव अर्पित है ॥

भावानुकूल रस वर्णन है, आकर्षण केन्द्र विराजा है।
अब तो जनता के प्राणों का, भगवान यहीं अधिराजा है ॥

पाकर श्री राजा के दर्शन, खुशियों का नहीं ठिकाना है।
लेकिन खुशियों की कथा अलग, इनसे भी कौन अघाना है ॥

—: दोहा :—

सुखी प्रजा को देखकर, राजा को अति हर्ष।
किसे हर्ष होता नहीं, पाकर के उत्कर्ष ॥

नगर भ्रमण कर नृपति वर, गये चढ़े सुख पाल।
प्रजा उल्लसित यों हुयी, हुआ निकट रवि-भाल ॥

पग-पग पर आनन्द नद, मद का कहीं न बिन्दु।
गद-गद मिलकर हो रहा, कौशल सुन्दर सिन्धु ॥

जनता के मन अभिलाषा यह, राजा-रानी इक सुत पायें।
खुशियों का तब उमड़े समुद्र, उसमें डूबे हम उतरायें ॥

सुत ही तो अग्रिम पीढ़ी के, निश्चय का सच परिचायक है।
अभिलाषा की साकार मूर्ति, जन जीवन का संचालक है ॥

सुत अगर न हो पति-पत्नी को, घर खाली-खाली लगता है।
जीवन तरु फल से दूर-दूर, खाली डाली सा लगता है ॥

इसलिये यही अपनी इच्छा, राजा - रानी भी सुत पायें।
जो कमी दीखती है हम को, जिनवर प्रभु उसको भर जायें ॥

-: दोहा :-

चैत्यालय में प्रजा जन, रहे यही गा गान।
पूजें मन अभिलाष अब, श्री जिनेन्द्र भगवान ॥

यदि हमने इस जन्म में, प्राप्त किये हों पुण्य।
राजा को सुकुमार दे, इष्ट करें उर धन्य ॥

जय जिनेन्द्र अरिहन्त जय, जय जय त्यागी रूप।
सब की अभिलाषा नृपति, पायें पुत्र अनूप ॥

सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र देव, नृप की सेवा में रुचि लेते।
जिनकी आज्ञा पाकर कुबेर, सारी वसुधा लाकर देते ॥

हर गेह हुआ सम्पति शाली, ज्यों भरे हुये घर सोने से।
इच्छा समान ऐश्वर्य भरा, इन्द्रादि देव के होने से ॥

श्यामल तम दिशा दिशाओं का, तब रंग लाल हो जाता है।
प्राची दिशि होती लाल नहीं, पश्चिम का रूप सुहाता है ॥

उत्तर दक्षिण इस अवसर पर, आनंद सरस बरसाती हैं।
सर्वत्र दिशाओं की शोभा, सबके मन को हरषाती है ॥

तरु-गुल्म-लता-सागर-सरिता, तब फूले नहीं समाते हैं।
पाकर समीर करतल ध्वनि से, अन्तर की खुशी मनाते हैं ॥

आनंद सरोवर में तारे, हर्षित होकर खो जाते हैं।
अथवा आगन्तुक के रंग में, रंगीन स्वयं हो जाते हैं ॥

सूरज समान तीर्थंकर भी, जब कभी अवतरित होता है।
वितरित यश वैभव धरती पर, सम्पूर्ण अपरिमित होता है ॥

आने वाला है तीर्थंकर, हर ओर खुशी खुशहाली है।
ज्यों दिशा-दिशा सूर्योदय पर, हो जाती आप निराली है ॥

॥ दोहा ॥

देवराज श्री इन्द्र ने, नयी अयोध्या बीच।
जिन मन्दिर निर्मित किया, उर श्रद्धा से सींच ॥

नगर अयोध्या हो गया, सुधर स्वर्ग सा धाम।
कण-कण सुन्दर हो गया, मनमोहक अभिराम ॥

देव, मनुज, गन्धर्व के, सब के उर अभिलाष।
नये सूर्य का उदय हो, फैले धर्म प्रकाश ॥

था ज्येष्ठ मास का शुक्ल पक्ष, चन्द्रमा जवानी में चढ़ता।
राका अतिशय सौन्दर्यवती, जिसका यौवन रह-रह बढ़ता ॥

दिशि-दिशि बिखरी शशि की किरणें, आनंद अधिक बरसाती सी।
श्री नाभिराय पटरानी के, अन्तर उल्लास बढ़ाती सी ॥

उस शीतल मनहर पुरवा में, आती उमंग उपजाती थी।
प्रियतम की प्रियकर बातों को, स्मृति में आन जगाती थी ॥

राका की मृदु मादकता से, जाने कब तक रसपान किया।
सुध-बुध खोये मरुदेवी ने, कब समय गया कब ध्यान दिया ॥

जब पूरे तीन प्रहर बीते, तब वह दुर्लभ अवसर आया।
सुख की जो चरम कल्पना थी, वह सुखद काल सन्मुख पाया ॥

निद्रा ने परम सहेली बन, रानी का तन मन जीत लिया।
रानी का अन्तर झूम उठा, ऐसा अद्‌भुत संगीत दिया॥

-: दोहा :-

स्वप्न मध्य मन की दशा, रही और बेचैन।
बाह्य नैन तो सो रहे, जागे अन्तर नैन॥

जाने यह मन दौड़ कर, गया कौन से लोक।
जो कि कल्पना में नहीं, आया आप विलोक॥

यद्यपि जग में पवन से, है मन ही गतिमान।
मन की गति के गणित का, करे कौन अनुमान॥

रजनी के अन्तिम प्रहर बीच, रानी को सोलह स्वप्न दिखे।
इन सोलह स्वप्नों में ही तो, शुभ आर्यवर्त्त के स्वप्न लिखे॥

मन की अद्‌भुत ताक़त देखो, दौड़ा पर नहीं भूल पाया।
स्मृति में सब कुछ लिखा रहा, मद में वह नहीं फूल पाया॥

बढ़ते प्रकाश के हाथों ने, नैनों के जाकर पट खोले।
थे कर्ण कुहर चैतन्य सुये, पिंजरे के शुक आदिक बोले॥

थी राज पोरि पर घण्टा-ध्वनि, पढ़ते विद्याधर जिनवाणी।
थी दिशा-दिशा बह रही पवन, जड़ को, चेतन को कल्याणी॥

रानी ने खोले नयन नवल, नयनों ने नयी ज्योति पायी।
रानी ने देखा आज गेह, हो गया और अति सुखदायी॥

—: दोहा :—

कभी दिवस होते बड़े, कभी रात विख्यात।
कभी दिवस होते सुखद, कभी सुखद हो रात॥

आज दिवस औ रात है, मरुदेवी का एक।
दोनों ही दिशि हो रहा, इच्छा का अभिषेक॥

स्वप्नों की महिमा अमित, किये हुये है मौन।
मरुदेवी के तुल्य है, अब जगती में कौन॥

निवृत्त हो प्रात क्रियाओं से, रानी ने शुचि शृंगार किया।
अपनी स्मृति में रह-रह कर, नव जीवन का आधार लिया॥

अन्तर की जो उत्सुकता है, रानी अब किस पर प्रकटाये।
उसने अब इतना तय पाया, सपने राजा तक पहुँचाये॥

रानी के मन में उत्कण्ठा, अन्तर-निधि को जा बतलाये।
सोलह स्वप्नों का संग्रह है, प्रियतम को जाकर दिखलाये॥

काटे से सहज न कटती है, सब प्रबल प्रतीक्षा की घड़ियाँ।
बल से तो नहीं, युक्ति से ही, कटती हैं लोहे की कड़ियाँ॥

धीरे - धीरे आयी बेला, रानी राजा के पास चली।
अन्तर का दृश्य दिखाने को, लेकर उर में विश्वास चली॥

श्वासों का सम्बल साथ लिये, अन्तर से बहु हर्षाती सी।
साकार सुधरता की प्रतिमा, सौन्दर्य प्रखर बरसाती सी॥

—: दोहा :—

प्रमुदित मरुदेवी चली, पूज्य नृपति के पास।
स्वाँस-स्वाँस से प्रकट था, अन्तर का उल्लास ॥

राजा ने कर प्रेम से, रानी का सम्मान।
सिंहासन वामांग का, सादर किया प्रदान ॥

सांध्य समय पश्चिम दिशा, होती ज्यों छविमान।
मरुदेवी को नृपति का, था सानिध्य महान ॥

नाथ सुनें गत रात्रि में, देखे स्वप्न अनेक।
सुनें, कहें फल आदि को, जो है शास्त्र विवेक ॥

नृप ने देवी से कहा, कहिये स्वप्न रसाल।
प्रमुदित मरुदेवी हुयी, उमगा हृदय विशाल ॥

हे नाथ रात्रि ने चौथा पग, अपनी यात्रा की ओर किया।
सोलह स्वप्नों या पुण्यों ने, मुझको आनन्द विभोर किया ॥

देखा ऐरावत हाथी को, गण्डस्थल से मद बहता था।
दूसरे स्वप्न में श्वेत वृषभ, गम्भीर शब्द कुछ कहता था ॥

तीसरे स्वप्न में सिंह एक, सिंहों में बड़ा निराला था।
चन्द्रमा - रंग मानों जैसे, कन्धे पर लाल दुशाला था ॥

कमलासन पर शुभ लक्ष्मी जी, जो लगती बहुत सुहानी थीं।
अभिषेक हेतु स्वर्णाभ कलश, सारे जग की अधिरानी थीं ॥

पांचवें स्वप्न का आकर्षण, माला सुन्दर फूलों की थी।
गुंजार भ्रमर की उनपर ज्यों, अद्भुत सावन झूलों की थी ॥

था अपर स्वप्न में पूर्णचन्द्र, चांदनी और तारागण थे।
था अपर स्वप्न में सूर्योदय, उदयाचल के आकर्षण थे।।

आठवें स्वप्न में देखा था, कमलों से भरा सरोवर है।
कमलों में थे दो स्वर्ण कलश, लगता था बड़ी धरोहर है।।

नौवां सपना छोटा लगता, लेकिन शोभा का सागर था।
हैं मीन मुदित हँसते पंकज, शोभायमान रत्नाकर था।।

तैरते कमल दसवां सपना, जो विविध तरंगों वाला था।
उत्ताल तरंगों वाला था, गर्जन गम्भीर निराला था।।

देखा सोने का सिंहासन, रत्नों से प्राणवान देखा।
तेरहवें स्वप्न रत्न मण्डित, नभ में उड़ता विमान देखा।।

चौदहवां स्वप्न बड़ा अद्भुत, ऐसा मैंने न कभी देखा।
नागेन्द्र भवन अतिशय सुन्दर, पृथ्वी पर पूर्ण उदित देखा।।

है अमर स्वप्न में रत्न राशि, शोभा की किरणें निकल रहीं।
है अग्नि स्वप्न में धूम रहित, लपटे ही लपटे मचल रहीं।।

—: दोहा :—

इस सपने के साथ ही, नाथ खुल गये नैन।
और-और की चाह मे, हृदय रहा बेचैन।।

थी उर में अभिलाष ये, स्वप्न सुनाऊँ नाथ।
फल इनका कर श्रवण, अब होवे आज सनाथ।।

नृपति हृदय आनंद अति, और प्रिया प्रति प्रीति।
कहे स्वप्न फल नृपति ने, सोच स्वप्न की रीति।।

हे हृदय तरंगिनि, शुभ नेत्रे, स्नेह राशि बतलाता हूँ।
हे रूप-राशि जो कुछ समझा, वह सभी तुम्हें समझाता हूँ ।।

आलोक ज्ञान से स्वप्नों का, सारा रहस्य है जान लिया।
क्या-क्या भविष्य में होना है, राजा ने यह पहचान लिया ।।

होकर प्रसन्न अन्तर मन से, निज को रानी की ओर किया।
दोनों के नयन मिले दोनों, दोनों ने मन चितचोर लिया ।।

हाथी के दर्शन से रानी, निश्चय अब पुत्रवती होगी।
तेरे सा सुत जनने वाली, नारी कब, पुत्रवती होगी ।।

हे देवि वृषभ के दर्शन से, सुत लोकों का स्वामी होगा।
वैसा धरती पर अन्य नहीं, हित-कामी शिवधामी होगा ।।

तुमने देखा है सिंह - श्वेत, दर्शन से सब हरषायेंगे।
सुत में होगा बल-वीर्य विपुल, देवता पुष्प बरसायेंगे ।।

बहुरंग एक में एकत्रित देखी है, जो तुमने माला।
वह धर्म प्रवर्तक श्रेष्ठ पुत्र, होगा जगती का उजियाला ।।

लक्ष्मी दर्शन वैभव प्रतीक, गिरिवर सुमेर पर जायेंगे।
अभिषेक क्रियाये करने को, देवता स्वर्ग से आयेंगे ।।

वह पूर्ण चन्द्र जग सुखदाता, बनकर सूरज सा चमकेगा।
दो कलश देखने का फल है, जग की निधियों को भोगेगा ।।

वह मीन युगल जीवन सुखकर, जग को भी सुख कारक होगा।
सर-दर्शन से वह सहस आठ, शुभ लक्षण का धारक होगा ।।

दर्शन समुद्र से निश्चित है, सुत तो केवल ज्ञानी होगा।
सिंहासन देखा है इससे, जग में वह सन्मानी होगा ।।

देखा है तुमने देवयान, अवतरित स्वर्ग से वह होगा।
नागेन्द्र भवन देखा तुमने, सच अवधि ज्ञान का ग्रह होगा।।

है रत्न-राशि-गुण का निधान, तम का विनाश कारक होगा।
निर्धूम अग्नि से कर्म-रूप, ईंधन का पटुनाशक होगा।।

अद्भुत बल विक्रम शाली के, कितने गुण बिन्दु साथ होंगे।
मुख-वृषभ मार्ग से गया प्रिये, सुत तेरे वृषभ नाथ होंगे।।

—: दोहा :—

ज्ञानवान पति से सुने, सपने - हर्ष बटोर।
फल सुन मरुदेवी हुई, अति आनन्द विभोर।।

मरूदेवी के नयन में, झलके जल के बिन्दु।
रोम-रोम बतला रहा, उमड़ रहा है सिन्धु।।

उर में यह अनुमान कर, तीन लोक के नाथ।
जनमेंगे मम उदर सों, सुभग वृषभ के नाथ।।

यद्यपि यह सब सत्य था, पर नारी की लाज।
जग में है सब से बड़ी, नहीं तख्त की साज।।

पढ़े स्वप्न वर्णन सुभग, जागे अन्तर ज्ञान।
ज्ञान द्वीप के संग ते, जग में बढ़ता मान।।

कौन चाहता है नहीं, प्रभु की कृपा विशेष।
वह न कृपा जग पा सका, भोगेच्छा जब शेष।।

गर्भ अवतरण वर्णन

॥ दोहा ॥

जड़ चेतन संसार में, मानव हुआ महान ।
क्या करना, करना नहीं, इसका उसको ज्ञान ॥

मानव से जाना गया, क्या जीवन का अर्थ ।
सार्थक हैं क्या सृष्टि में, कौन यहाँ है व्यर्थ ॥

मानव ने निज ज्ञान से, और युक्ति के साथ ।
कितनों को वश में किया, कहीं झुकाया माथ ॥

नारी नर को प्राप्त कर, भर उर में अह्लाद ।
अन्तर की अनुरक्ति का, जग को दिया प्रसाद ॥

धन्य मात जिसने दिया, धरती पर अवतार ।
जीवन भर पद-धूलि में, लोटूँ बारम्बार ॥

नव नगर अयोध्या वासी जन, जीते अपार आनंद लिये ।
अनुशासित-सामाजिक रहते, थे सब के सब स्वच्छन्द हिये ॥

छै मास पूर्व से नगरी में, परिवेश नया उग आया है ।
सब नया-नया होने को है, जिनवर प्रभुवर की माया है ॥

है दिशा-दिशा में नव जीवन, जीवन में है संचार नया ।
हैं नये - नये कर्त्तव्य सजग, जागा फिर से अधार नया ॥

पहले बसन्त सा जीवन है, जीवन तो रस की प्याली है ।
इस समय लोग जीवन जीते, जीवन की शान निराली है ॥

होती नित रत्नों की बरसा, बरसा क्या खुशियों की बरसा।
ऐसी वर्षा जिसके रस से, जड़ चेतन कौन नहीं सरसा॥
सब लोग परस्पर कहते हैं, राजा की अद्भुत गरिमा है।
रोजाना रत्नों की वर्षा, नृप पुण्योदय की महिमा है॥
अथवा हमने गत जन्मों में, अगणित शुभ कर्म किये होंगे।
कर सेवा दीनों दुखियों की, अनुपम वरदान लिये होंगे॥
अन्यथा अपरिमित सुख साधन, क्यों हुये आज एकत्र हमें।
भरपूर निराली खुशियों से, दीखता आज सर्वत्र हमें॥

—: दोहा :—

तभी एक मुनि से हुयी, नव नगरों में भेंट।
वांछित फल पाने लगे, लगी ज्ञान की पेठ॥
ज्ञानी मुनिवर ने कहा, तुम सब हुये सनाथ।
जनमेंगे इस भूमि पर, सकल ज्ञान के नाथ॥
नयी ज्ञान की ज्योति से, सब होवेंगे धन्य।
हुआ न होगा भूमि पर, आदिनाथ सा अन्य॥
तभी देखते सब जगह, नव जीवन संचार।
इसी लिये भू पर बही, नित रत्नों की धार॥
इन्द्रादिक स श्रेष्ठ वह, कामदेव से श्रेष्ठ।
श्रेष्ठ यहाँ किससे नहीं, वह सबसे हो ज्येष्ठ॥
जो कुछ नूतनता यहाँ, या उन्नति का भाव।
सूर्योदय से पूर्व सा, देखो दिव्य प्रभाव॥

सुनकर मुनिवर के वचन, उपजी जन मन प्रीति।
हो सतर्क वर्तने लग, धर्म आदि की रीति ॥

शुभ पूर्व भवों का अन्तिम भव, अहिमिन्द्र महा सुख भोग रहा।
पृथ्वी पर नूतनता छायी, जब से षट्मासिक योग रहा ॥

सौधर्म इन्द्र के अँचल में, नूतन चंचलता छायी है।
सुर श्रेष्ठ श्रेष्ठता ही वरतें, ऐसी कुछ मन में आयी है ॥

सुरराज इन्द्र से अनुशासित, सुर सब सेवा में आगे हैं।
कल तक जो रहे विलासी हैं, सेवा हित सब अनुरागे हैं ॥

सब के अन्तर यह अभिलाषा, जीवन का पुण्य कमा लें हम।
अवसर यह पहली बार मिला, जीवन यह धन्य बना लें हम ॥

उर में भर के वत्सलता को, सौधर्म इन्द्र यों बोले हैं।
तीर्थंकर को सेवा के हित, शुभ भाव हृदय के खोले हैं ॥

जितना जिसमें बल विक्रम है, उतना वह कार्य करे जाकर।
अवसर मुश्किल से पाया है, जीवन का अर्थ करे जाकर ॥

तन, मन, धन से प्रभु की सेवा, जीवन का सार इसी में है।
निज से ज्यादा पर को सुख हो, जीवन का प्यार इसी में है ॥

जिसने सेवक व्रत पाल लिया, सब भेद आयु का जान लिया।
जीवन जीने का सुगम पंथ, सचमुच उसने पहचान लिया ॥

उसका जीवन निस्सार गया, जो सेवा से कतराया है।
उसन जीवन बेकार किया, जीवन का तत्व गँवाया है ॥

घर जीवन उसका नर्क, जिसने न कर्म को जाना है।
ऐसे निष्क्रिय प्राणी को फिर, धरती पर कहाँ ठिकाना है ॥

॥ दोहा ॥

निश्चय ही है जगत में, सेवक धर्म कठोर।
नहीं यहाँ कुछ पा सके, जो सेवा के चोर॥

देव राज के सामने, सेवा व्रत सुखधाम।
सेवा व्रत में लग गये, कर-कर देव प्रणाम॥

सेव्य भाव लख इन्द्र-मन, उपजा है विश्वास।
फलदायी विश्वास है, सब सुख इसके दास॥

संध्या को यह सूर्य कह गया, मतवाली होकर मत सोना।
मैं अभी लौट कर आता हूँ, मेरी स्मृति में रत होना॥

देखो संध्या है समय सुघर, दिशि-दिशि में नयी जवानी है।
परिणय से पहले लाली की, कौतूहल भरी कहानी है॥

लालिमा नहीं है संध्ये यह, यौवन का चढ़ता पानी है।
गालों की लाली मतवाली, सब की जानी पहचानी है॥

मखमली धरा पर तारों से, सुख शैया आज बिछानी है।
मैं कई दिनों का थका हुआ, बातों में रात बितानी है॥

सूरज प्रियतम यों चला गया, संध्या से कुछ कहता-कहता।
हलके - हलके दौहराता था, जीवन का नद बहता-बहता॥

आ गया दिशा पश्चिम से ही, दिन भर का मारुत थका हुआ।
आया सुख रूपी फल देन, दिन की गर्मी से पका हुआ॥

आषाढ़ मास के शुभ दिन हैं, उत्तराषाढ़ नक्षत्र लगा।
राजा रानी के साथ-साथ, इस जम्बुदीप का भाग्य जगा॥

होने आयी जब अर्ध निशा, जगमगा तभी रनिवास उठा।
राजा रानी के अन्तर में, मिलनोत्सव का उल्लास उठा ॥

बिजली तड़पी, घन उमड़ चले, जलती धरती में प्यास जगी।
शीतल मारुत के साथ - साथ, नूतन जीवन की आश जगी ॥

—: दोहा :—

स्वर्ग लोक अहमिन्द्र के, अब सुख रहे न शेष।
मरुदेवी के गर्भ में, आकर किया प्रवेश ॥

देवों के निज यान में, देखे चिन्ह विशेष।
प्रभुवर भू पर आ रहे, हरषे देव - सुरेश ॥

दर्शन की कर लालसा, चले छोड़ निज धाम।
किया अयोध्या नगर को, श्रद्धा सहित प्रणाम ॥

आज अयोध्या नगर मे, उमड़ी धर्म तरंग।
देवों के उर में उठी, श्रद्धा पूर्ण उमंग ॥

-: ग़ज़ल :-

दया सिन्धु हम पर दया कीजियेगा।
भटकते रहे हैं दिशा दीजियेगा ॥

इसे भोगते आज हम थक रहे हैं।
ये जीवन हमारा नया कीजियेगा ॥

मिला एक भी बिन्दु सुख का नहीं है।
बिना गन्ध के फूल क्या कीजियेगा ॥

सफल कर्म से तीलियाँ कुछ जुटा लूँ।
नये घोंसले को सजा दीजियेगा ।।
दयाकर, जगत पर दया दृष्टि लाये।
दया नाथ हम पर दया कीजियेगा ।।

—: दोहा :—

मात पिता के साथ ही, करके विपुल प्रणाम।
"त्राहिमाम्" कहते हुये, देव गये निज धाम ।।
श्री, ह्री, धृति औ लक्ष्मी, कीर्ति बुद्धि शुभ नाम।
दिक्कुमारियाँ रह गयीं, सेवा व्रत को थाम ।।
ये दिवंगना पा गयीं, जीवन पथ का सेतु।
जीवन अर्पित कर दिया, सेवाओं के हेतु ।।
छाया सम रह संग में, उपजाती सुख शान्ति।
मरुदेवी के बदन पर, उपज रही थी कान्ति ।।
घर-घर खुशियों की धूम उठी, जैसे यह समाचार पाया।
जाकर जिनेन्द्र के मंदिर में, सबने जीवनाधार पाया ।।
निज इष्टदेव से सबने ही, वरदान एक ही मांगा है।
"राजा से बढ़कर हो कुमार", दिनमान एक ही मांगा है ।।
हे हृदयराज हो पूर्ण आश, है कौन हितैषी अब मेरा।
जीवन सार्थक हो गया नाथ, मेरा है क्या सब कुछ तेरा ।।
जो शान्ति ज्योति तव मुख पर है, जीवन में ज्योति जगाती है।
तेजस्वी अन्तर की आभा, अन्तर को पास बुलाती है ।।

हे प्रभो हमारा जीवन यह, जगती को अर्पण हो जाये।
सार्थक जीवन यह तब होगा, सर्वस्व समर्पण हो जाये ।।

ग़ज़ल—२

तुम्हारे हुये हम तुम्हारे रहेंगे।
तुम्हारी कृपा के सहारे रहेंगे ।।

कहीं भी रखें आप से क्या कहेंगे।
जहाँ भी रहेंगे तुम्हारे रहेंगे ।।

हमें चाँद या सूर्य कुछ भी बना दें।
सितारे कहेंगे सितारे रहेंगे ।।

तुम्हारी कृपा के समन्दर बिना हम,
विषैली नदी के किनारे रहेंगे ।।

उम्मीदें यही हैं कभी तो सुनोगे।
तुम्हें हम हृदय से पुकारे रहेंगे ।।

—: दोहा :—

भांति-भांति वन्दन किये, भर-भर उर अनुराग।
जिसे कमल-आनंद मुख, नूतन नगर - तड़ाग ।।

आनंदित गृह - वासिनी, महा मंगलाचार।
उर-उर विमल विचार है, अति उत्तम व्यवहार ।।

मरुदेवी गौरवमयी हुयी, उदरस्थ हुये त्रिभुवन स्वामी।
उस तेज पुंज के कारण है, मुख तेज राशि का अनुगामी ।।

कुछ भार नहीं, महसूस हुआ, हल्कापन अनुभव करतीं थीं।
ज्यों समय और बढ़ता जाता, त्यों उर प्रमोद से भरतीं थीं ।।

होता न भार जल-चादर पर, आतप ज्यों सूर्य बिखरती है।
होता न मलिन या फिर दूषित, उल्टे जल रूप निखरती है ।।

देवियाँ विविध विधि माता की, सेवा में तत्पर रहती थीं।
हर समय रहे मन प्रमुदित ही, गाथायें प्रभु की कहती थीं ।।

गूढार्थ - काव्य होती चर्चा, प्रश्नोत्तर कभी उभर आते।
आमोद नृत्य के आयोजन, उर अधिक उमंगित कर जाते ।।

रानी जो-जो इच्छा करतीं, दासियाँ प्रकट कर देती हैं।
जिसको भी पास बुलाती हैं, दासियाँ निकट कर देती हैं ।।

गुरु जन परिजन भी अक्सर ही, रानी के दर्शन को आते।
पाकर दर्शन होते निहाल, अन्तर आनंद पूर्ण पाते ।।

रहता मंदिर में नारी-दल, सेवाओं का अवसर रहता।
मन में ले अद्भुत आकांक्षा, परिवार सदा तत्पर रहता ।।

जब-तब आकर नृप नाभिराज, रानी को प्रमुदित कर जाते।
हर्षातिरेक - सरिता के तट, कुछ दीपक प्रजलित कर जाते ।।

रानी निहारती ही रहतीं, राजा की छवि को दर्पण में।
क्या से क्या है हो गयी नारि, प्रिय को सर्वस्व समर्पण में ।।

॥ दोहा ॥

माँ बनते ही नारि का, हुआ सौगुना मान।
अहा साँवली सृष्टि का, नारी है वरदान ।।

मॉं बनते ही बढ़ गया, मरुदेवी का मान ।
उसके सुत के सामने, जग में कौन महान ।।

जल्दी ही प्रभु जन्म लें, देव - मनुज अभिलाष ।
आराधन सब कर रहे, जिस जिसमें विश्वास ।।

इस प्रकार सम्पूर्ण हैं, गर्भ अवतरण खण्ड ।
अन्तर में विश्वास है, जागी चाह अखण्ड ।।

गर्भ अवतरण खण्ड का, पाठ करे धर ध्यान ।
आदिनाथ की कृपा से, हो महान कल्याण ।।

जन्म महोत्सव वर्णन

॥ दोहा ॥

जन्म सरल है जगत में, किन्तु कठिन नर देह ।
पाकर के नर देह को, सबसे कठिन सनेह ॥
यदि सनेह है व्यक्तिगत, हुयी बढ़ाई कौन ।
जब होता सबके लिये, श्रोता वक्ता मौन ॥

जन्म प्राप्त कर मनुज का, करे न सेवा - कर्म ।
निश्चय ही उस मनुज ने, खोया मानव धर्म ॥
वही मनुज जग धन्य है, जग में विविध प्रकार ।
वही धन्य जग सुत हुआ, जो सेवा व्रत धार ॥

नाभिराय नृप धन्य हैं, मरुदेवी जग धन्य ।
ऋषभदेव सुत धन्य हैं, जिन सम हुआ न अन्य ॥

-: हरिगीतिका :-

सृष्टि जिनको प्राप्त कर, युग अर्चना हित कामिनी ।
उदित आभा सूर्य की भी, बन गयी अनुगामिनी ॥
अमिट गाथा बन गयी हैं, जन अनन्त प्रवाह की ।
लय हुई जग कल्पना, विद्वेष की दिग्-दाह की ॥

मनुज संस्कृति की सरित् शुचि, प्राप्त कर जिसको बही ।
सेव्य व्रत के पालने की, लालसा उर में रही ॥
और जिसके कर्म की शुचि, बल्लरी अभिराम है ।
उन ऋषभ युगवीर को, श्रद्धा समेत प्रणाम है ॥

त्याग में, तप में, सुव्रत में, कौन जग समकक्ष है।
ऋषभ सुत श्री बाहुबलि से, कौन जग में दक्ष है ।।

जिसके कि सुत भरतेश से, यह देश पहचाना गया।
जिसके विशाल विवेक से, जन-बुद्धि बल जाना गया ।।

हे भद्र बाहु - विशाल, दो वरदान, बल उद्रेक हो।
विश्व के कल्याण के हित, उर में महान विवेक हो ।।

उस बुद्धि-बल के भाव का, अब मैं सतत वन्दन करूँ।
यशवान का, तपमान का मैं, कोटि अभिनंदन करूँ ।।

जन्मोत्सव ऋषभ देव की यह, मैं गाथा अमर सुनाता हूँ।
सम्पूर्ण काव्य निर्विघ्न रहे, उनको ही प्रथम मनाता हूँ ।।

श्रोता बैठे हो सावधान, इसमें खुशियों का मेला है।
आनंद-कुसुम चुनकर रखिये, ये ऋषभ-प्रात की बेला है ।।

है शीत काल अब बीत चुका, ग्रीषम भी अब कुछ दूर नहीं।
गर्मी न सता पाती जन को, रह गया शीत अब शूर नहीं ।।

ऋतुराज आज कुछ साज सजे, सब ओर दिखायी देते हैं।
कैसे होगा जग खुशी नहीं, लावण्य दुहाई देते हैं ।।

धरती ने साड़ी पहनी है, गिनती रंगों की कैसे हो ?
अनगिन रंगों में रंगी हुयी, होली की शोभा जैसे हो ?

फसलें अन्नों से लदी हुयी, अथवा यौवन गदराया है।
पग-पग पर है सौन्दर्य स्रोत, ऋतुराज देव की माया है ।।

मधुमास में रंगी हुयी, हे राव - रंक की आशायें।
सब को मनवांछित फल देगी, पकती फसलों की आशायें ।।

लद गयी बौर से आम्र-डाल, स्वाभाविक जिसका झुकना है।
गुरुतर यौवन के भार दृश्य, लखने कितनों को रुकना है।।

भ्रमरों के झुण्ड जिन्हें घेरे, छक कर रसपान करेंगे ही।
आया याचक जब द्वारे पर, उसका सम्मान करेंगे ही।।

चढ़ रही लतायें वृक्षों पर, आलिंगन प्रिय का करने को।
यौवन को सार्थक करने को, आमोद हृदय में भरने को।।

कोयल के स्वर से गूँज रही, आमों की डाली-डाली है।
लगता मनोज के आने की, वाणी यह मधुर प्रणाली है।।

बन, बाग, खेत, सर सरितायें, खग मृग की सुन्दर मालाएँ।
छू कर वसन्त कोमल कर को, सौन्दर्य युक्त सुर बालायें।।

॥ दोहा ॥

पवन-पुष्प जल आदि मिल, है आनंद अनूप।
कदम-कदम बिखरा हुआ, श्री बसन्त का रूप।।

बीत गयी शीतल निशा, गया संग हेमन्त।
सुभग दृश्य है सामने, ज्यों ऋतुराज बसन्त।।

★

हर विधि से रुचिकर मधुऋतु में, हर ओर खुशी थी बिखर रही।
धरती पर, जल नभ आँगन में, जिसकी शोभा थी निखर रही।।

आकाश मार्ग से देवों ने, जब मधुर दृष्टि भू पर डाली।
सब ओर दिखाई दी उनको, हरियाली अथवा खुशहाली।।

उनको भी खुशी हुई इतनी, सब ओर दुन्दुभी सुनी गयी।
किस जगह हर्ष के पुष्प भरे, इस हेतु अयोध्या चुनी गयी।।

शुभ सूर्योदय का समय सुघर, उत्तराषाढ़ नक्षत्र लगा।
मधुमास कृष्ण नौमी के दिन, शुभ ब्रह्म योग सर्वत्र जगा॥
ऐसी शुभ कारक बेला में, नृप ने था पुत्र रत्न पाया।
आलोकित दिव्य अपूर्व रत्न, मरुदेवी के गृह में आया॥

–: दोहा :–

क्षण भर को उद्योत सुख, किया विश्व ने प्राप्त।
देव, दनुज, मुनि, मनुज में, हुआ परम सुख व्याप्त॥
सज्जात कर्म है कर दिया, पुलक प्रफुल्लित गात।
विजया आदिक आठ हैं, जात कर्म निष्णात॥
नाभिराय मरुदेवि के, सुख का ओर न छोर।
सब आनंद विभोर हैं, भू पर चारों ओर॥

★

नव नगर अयोध्या में फैली, युवराज जन्म की हर्ष कथा।
घर को, तन को, जन को, भूला, सुध बुध जन ऐसा कौन न था॥
सब दौड़े नृप के द्वार ओर, खुशियों का नहीं ठिकाना था।
वास्तव में खुशियों का महत्व, सबने विधिवत् पहचाना था॥
हर्षित राजा के द्वारे पर, जन अपरम्पार इकट्ठे हैं।
मन वांछित फल पाने पर भी, जन बारम्बार इकट्ठे हैं॥
द्वारों, गलियों, गलिवारों में, पुर पौरि और चौबारों पर।
आनंद बरसता लगता सा, गुल्मों पर, गुल्म बहारों पर॥
दिन कब निकला, कब शाम हुयी, ये रहा काल का ज्ञान नहीं।
मुश्किल से जन बन पाता है, कुछ खुशियों का मेहमान कहीं॥

घर बाहर आज एकसा है, खुशियों की अद्‌भुत बेला है।
उमड़ी खुशियों का केन्द्र बिन्दु, सुन्दर युवराज अकेला है॥
याचक जो आये द्वारे पर, पा गये कल्पना से आगे।
चारण नृप के द्वारे आकर, कल्पना - काव्य से अनुरागे॥

-: ग़ज़ल :-

बड़े सौभाग्य शाली हम कि हमने रत्न पाया है।
धरा के भाग क्या कहिये कि जो युवराज आया है॥
ठिकाना हो नहीं सकता हमारी आज खुशियों का,
वही युवराज है अपना कि जिसका सिर पे साया है॥
जहाँ भी देखते हैं हम, नजारा एक ही दिखता।
यहाँ हर एक कण-कण में, वही छविमान छाया है॥
करे हम व्यक्त अब कैसे हमारे दिल में जो भी है,
कहे वाणी स्वयं ही वह कि जो दिल में समाया है॥
किये जो आज दर्शन है, जनम हमने सफल माना,
वही ले जाय मंजिल तक, यहाँ जो आज लाया है।

*

आकर समूह में नारि वृन्द, मंगलाचरण में लीन हुये।
आबाल वृद्ध उस नगरी के, आनंद सिन्धु में मीन हुये॥
कितनों ने महलों में आकर नूतन शिशु का सम्मान किया।
अपने अन्तर की ममता का नाना प्रकार से मान दिया॥

—: लोक गीत :—

बधाई नाभिराज के द्वार।

आज हो गया जीवन अपना, जगती का श्रृंगार।
आज मिल गया अंतर्यामी, जीवन का आधार॥

है प्रणाम अन्तर श्रद्धा से, सादर बारम्बार।
जुड़ा हुआ है धरती भर के, उर का जिससे प्यार॥

नमन में, जीवन का उद्धार।
बधाई, नाभिराज के द्वार॥

बड़े भाग्य राजा रानी के, पाया सुत अभिराम।
नहीं दिखायी देता जग में, इसके सम छविधाम॥

बता रहे हैं लक्षण सुत के, दिशि-दिशि परम प्रकाश।
थिरक रहीं खुशियाँ अधरों पर, नया - नया उल्लास॥

स्वप्न सब, होंगे अब साकार।
बधाई, नाभिराज के द्वार॥

भ्रम भूली जीवन नौका को, मिली आज ही धीर।
जो जो आज देखता मुख को, मिटती उसकी पीर॥

यही लालसा है हम सबकी, और यही आशीष।
अद्‌भुत राजा बने बने, फिर जगती का जगदीश॥

करे जन मन का यह उपचार।
बधाई नाभिराज के द्वार॥

॥ दोहा ॥

जो-जो मांगे नृपति से, सो-सो राजा देत ।
याचक मन संतुष्ट है, श्रद्धा प्रेम समेत ॥

णमोकार के मंत्र का, देखा विपुल प्रभाव ।
जो चाहा नृप को मिला, रहा न रंच अभाव ॥

जिन-मंदिर के शीश पर, तोरण कलश समेत ।
णमोकार उच्चार से, गूँजा नभ समवेत ॥

श्रावक जन इत्यादि ने, अन्तर कर अभिराम ।
नाभिराज के द्वार जा, प्रभु को किया प्रणाम ॥

जिन ने देखा नैन भर, अद्भुत रूप अनूप ।
जिसने देखा रूप वह, भूल गया निज रूप ॥

★

जब देव लोक में तीर्थंकर, के आने का समाचार फैला ।
कुछ के मुख तो हो गये स्याह, हो गया किसी का मन मैला ॥

आजादी में पड़ गया खलल, देवों के यह मन में आया ।
नियमित कैसे जीना होगा, कुछ भी तो नहीं समझ पाया ॥

सह सके नहीं शंखों की ध्वनि, भवनों मे दुखी भुवनवासी ।
इनने दुख को देखा न कभी, अनवरत सुखों के अभिलाषी ॥

व्यन्तर देवों के प्राङ्गण में, गुंजा है स्वर रणभेरी का ।
चिन्ता से है कम्पायमान, अब समय नहीं है देरी का ॥

है सिंहनाद का स्वर कठोर, ज्योतिष्क देव के मानों में ।
घण्टों की ध्वनि भी सुनी गयी, कुछ अमरदेव के यानों में ॥

सौ-धर्म स्वर्ग के इन्द्रराज, तब अवधिज्ञान से जान गये।
जन्में हैं पहले तीर्थंकर, लक्षण देखे पहचान गये।।

लोकों-लोकों के इन्द्रों को, जैसे यह शुभ सन्देश मिला।
दमखम से सब साकेत चले, था बहुत गुप्त आदेश मिला।।

हाथी घोड़ा, रथ पैदल हैं, ये सात तरह के रंग की है।
जग भर को आकर्षित कर दें, ये इन्द्र धनुष के ढंग की है।।

इस समय सकल आकाश लोक, सुन्दर झण्डों से भरा-भरा।
चढ़कर के आज कसौटी पर, कंचन कुछ और अधिक निखरा।।

नागरिक अयोध्या ओर चले, दर्शन की उर में चाह लिये।
मन की गति सम उड़ रहे देव, उर में अदम्य उत्साह लिये।।

आकाश लोक में दुन्दुभियां, पुष्पों की भारी बरसा है।
पाकर प्रेमाश्रु देव गण के, आनन्द धरा पर सरसा है।।

पथ में इन्द्रादिक देव-पुंज, प्रभु जिनवर का गुणगान किया।
शत-शत वन्दित तीर्थंकर का, देवों ने अति सम्मान किया।।

कौशला नगर में देवों के, उतरे विमान भी आकर के।
वैतालिक, चारण भाटों ने, गुणगान किया हर्षाकर के।।

"जय-जय जिनेन्द्र देवता वृन्द, जयकार लगाते जाते हैं।
प्रभु आदि नाथ के चरणों में, उर ध्यान जगाते जाते हैं।।

इस तरह प्रदक्षिणा देवों ने, नगरी की तीन बार की है।
इस भांति प्रकट है प्रभुवर की, अन्तर में भक्ति धार ली है।।

बह रहे नगर में पग-पग पर, आनन्द आदि के सोते हैं।
उत्सव ऐसा देखा करते, जो भाग्यवान ही होते हैं।।

–: दोहा :–

नाभिराय के भवन में, पहुँचे देव महान।
नाभिराय ने हृदय से, किया बहुत सम्मान ॥

इन्द्राणी तत्काल ही, जा प्रसूतिका गेह।
मरुदेवी को नमनकर, शिशु को दिया सनेह ॥

मरुदेवी तत्काल थीं, अति सनेह में लीन।
इन्द्राणी निज कर्म हित, अतिशय हुयी प्रवीन ॥

मायावी शिशु रह गया, मरुदेवी के पास।
इन्द्राणी ने पूर दी, इन्द्रराज की आश ॥

★

त्रिभुवन मोहक जब रूप लखा, सौधर्म इन्द्र सब भूल गया।
अतिशय खुशियों के कारण ही, पाया उत्सव ने रूप नया ॥
ऐरावत हाथी पर चढ़ के, शोभा सागर को गोद लिये।
ऐसा लगता जा रहे इन्द्र, सारी धरती का मोद लिये ॥
तन, वितन, सुषिर घन-वाद्य मंत्र, मंगलमय ध्वनि उपजाते हैं।
अप्सरा वृन्द कर विविध नृत्य, यात्रा को सफल बनाते हैं ॥
जाकर सुमेर पर देवों ने, श्रद्धा से चक्र लगाया है।
जय-जय जिनेन्द्र, जय जय जिनेन्द्र, ऐसा जय घोष गुँजाया है ॥

॥ दोहा ॥

लेकर कर देवांगना, अष्ट मांगलिक द्रव्य।
अर्चन सब करने लगे, लिये भावना भव्य ॥

क्षीर सिन्धु से ले चले, भर कर कलश अनेक।
तब इषान सौधर्म ने, किया स्वयं अभिषेक॥

एक कलश अभिषेक से, हुआ न जब सन्तोष।
सहस कलश अभिषेक से, किया तुमुल जयघोष॥

हैं सब ही अभिषेक रत, देव देवता मित्र।
इस पावन अभिषेक से, जल हो गया पवित्र॥

सब ने ही सिर पर धरे, गन्धोदक के बिन्दु।
मानों सब ने पा लिया, आत्म शान्ति का सिन्धु॥

-: हरिगीतिका :-

हे देव ! जम्बूदीप में, अब तव कृपा उत्कर्ष हो।
सर्वत्र में बस आपकी हो, भक्ति का आदर्श हो॥

क्षणिक सुख की प्राप्ति को, करता नहीं संघर्ष हो।
कर्म करने को मनुज में, सर्वव्यापी हर्ष हो॥

साधनों में साध्य के हित, हो सभी का हित जसा।
हो कृपा की दृष्टि शुभ, मंगल मयी होवे दशा॥

॥ दोहा ॥

विश्व शान्ति की कामना, पूर्ण किया अभिषेक।
विमल कृपा की दृष्टि से, जागा विमल विवेक॥

सौधर्म - इन्द्र की रानी ने, प्रभु शिशु को स्वयं उठाया है।
अनुलेपन द्रव्यों का करकें, वस्त्रों से खूब सजाया है॥

नेत्रों में अंजन रंजित कर, मस्तक पर तिलक लगाया है।
शुचि कल्प वृक्ष के सुमनों का, मृदु हार आज पहनाया है ॥

कुण्डल पहनाये कानों में, फिर रत्न-आभरण पहनाये।
सौमनस आदि वन पुष्पों के, कुछ हार दिये हैं मन भाये ॥

शिशु की ठोढ़ी पर रख अँगुली, इन्द्राणी खूब निहारा है।
ऐसा शिशु देखा कभी नहीं, स्मृति से खूब विचारा है ॥

अप्सरा वृन्द हो नृत्य लीन, किन्नर ने वाद्य बजाये हैं।
जितना अन्तर है सजा हुआ, उतने ही साज सजाये हैं ॥

शोभा प्रभुवर की लख करके, श्री कामदेव शरमाये हैं।
पग - प्रक्षालित - गन्धोदक के, कण अपने शीश चढ़ाये हैं ॥

प्रभु शिशु की छवि लख इन्द्राणी, है कुन्दकली सी फूल गयी।
कुछ समय बाद देखा सबने, अपनी सुध बुध ही भूल गयी ॥

देवियां सभी अति विस्मय से, देखती रहीं प्रभु की छवि को।
कैसे प्रकाश पाया इतना, देखते लोग रहते रवि को ॥

—: दोहा :—

देवराज को दर्श से, जब न हुआ सन्तोष।
तब हजार निज नेत्र से, देखा, पाया तोष ॥

इस प्रकार अभिषेक का, खूब मनाया पर्व।
चले अयोध्या नगर को, साजे वाहन सर्व ॥

सब मंगलमय लग रहा, मंगलमय है दृष्टि।
मंगल कारक संघ प्रभु, दिशि-दिशि मंगल वृष्टि ॥

जा प्रसूतिका गेह में, माया रखी समेट।
मायावी शिशु की जगह, गये आदिश्वर लेट॥

नाभिराज हर्षित हुये, लखे बाल भगवान।
अनुमाना सुत देख कर, मेरे पुण्य महान॥

इन्द्रादिक सब देव मिल, भर उत्साह अपार।
रत्न हार देते हुये, प्रकटी श्रद्धा - धार॥

★

हे नाभिराज ! तुम धन्य हुये, उदयाचल से वैभवशाली।
धन्या देवी मरुदेवी है, ज्यों पूर्व दिशा की हो लाली॥

जो ज्योति आप से प्रकट हुयी, सूरज की ज्योति लजायेगी।
यह भव सागर से तिरने का, जन जन को मार्ग दिखायेगी॥

हो गई धन्य सारी धरती, सुख वैभव शान्ती सूत पाकर।
हो गयी छन्द मेरी वाणी, प्रभु वर का अगणित गुण गाकर॥

लोकों लोकों में फैल गयी, जन-मन रंजन हरियाली है।
छाया जिसकी सुख कारक है, वहती थंकर वनमाली है॥

जग-माता सुखदाता सुत है, चर्चा जिसकी सुख देती है।
देवियों नारियों में अब तो, सबसे ऊँची मरुदेवी है॥

तुम जगत पिता के पिता हुये, यह भी जिनवर की माया है।
जिसकी छवि को जग पा न सका, वह मूर्त रूप में पाया है॥

आशीष आपसे पाने को, सबके उर में अभिलाषा है।
रक्खेंगे हम पर वरद हस्त, सबके मन में यह आशा है॥

-: दोहा :-

मात पिता को इन्द्र ने, बतलाया अभिषेक ।
हो प्रसन्न उर में विपुल, दीने दान अनेक ।।

उधर प्रजा ने भी किये, उत्सव विविध प्रकार ।
भाँति भाँति स्तुति हुयी, सब से बारम्बार ।।

इन्द्रराज ने हर्ष से, रचा नाट्य आनन्द ।
इससे आनंदित हुई, सभी प्रजा निर्द्वन्द ।।

पुर जन, परिजन, पोरिजन, देव मनुज, गन्धर्व ।
जपी, तपी, ऋषि और मुनि, मना रहे सब पर्व ।।

अन्तर्मन को मोहती, कला सभी संगीत ।
स्वर्ग लोक की अप्सरा, करती नृत्य पुनीत ।।

किये अन्त में इन्द्र ने, अद्भुत नृत्य अनेक ।
रस धारा में बह चले, राव रंक प्रत्येक ।।

★

प्रभुवर के पहले जन्मों के शुभ, दृश्य इन्द्र ने दिखलाये ।
इन पूर्व भवों के दृश्यों से, सबके ही अन्तर हरषाये ।।

सब ने सोचा शुभ कर्मों की, अथवा धर्मों की माया है ।
हमने शुभ कर्म किये होंगे, जिससे शुभ दिन ये आया है ।।

अब तो निश्चय है कर्मों से, जीवन यह धन्य बनाना है ।
कर्मों के सुन्दर धर्मों का, उत्सव आनंद मनाना है ।।

इस भांति इन्द्र के नाटक का, कितना शुभकारी अन्त हुआ ।
आहा बसन्त की शुभ ऋतु में, जीवन का सुभग बसन्त हुआ ।।

—: दोहा :—

भांति-भांति नाटक रचा, अपनी रुचि मति सर्व ।
अगले दिन रक्खा गया, नाम करण का पर्व ।।

★

सुरराज इन्द्र ने नाम करण, निज बुद्धि-यान को दौड़ाया ।
पुरुदेव नाम जिन-प्रभुवर का, था प्रथम इन्द्र के मन भाया ।।
पर वृषभ देव ही प्रमुख नाम, सौधर्म इन्द्र को भाया है ।
है वृषभ शब्द का श्रेष्ठ अर्थ, श्रेष्ठत्व इन्हीं में पाया है ।।
वृष श्रेष्ठ धर्म को कहते हैं, वृष ही महान हितगामी है ।
जो वृषभ वही जग श्रेष्ठ हुआ, यह वृषभ धर्म का स्वामी है ।।
जय आदिनाथ जय वृषभदेव, जय ऋषभदेव गाया सबने ।
अपनी इच्छा का संचालक, पालक गुण ही पाया सबने ।।

—: दोहा :—

नामकरण पश्चात् ही, देव गये निज धाम ।
बार बार श्री ऋषभ को, करते गये प्रणाम ।।
जन्म महोत्सव ऋषभ का, पढ़े सुने मन लाय ।
नाभिराय मरुदेवि सम, मनवांछित फल पाय ।।

कैशोर्य वर्णन

—: दोहा :—

जीवन में सर्वोच्चतम, मुख्य अवस्था बाल।
छोटा घर भी दीखता, शिशु से बहुत विशाल।।

जिस घर में शिशु खेलता, धन्य वही है गेह।
जिस घर में शिशु है नहीं, करता कौन सनेह।।

शिशुता ही है मनुज के, चल जीवन का बिन्दु।
इसके ही अग्रिम चरण, शील शक्ति के सिन्धु।।

जब जाता है बचपना, चढ़े जवानी अंग।
वृद्धावस्था में स्वयं, सभी उतरते रंग।।

बचपन ही वह बिन्दु है, पाकर विपुल प्रकाश।
प्रतिभा शाली शक्ति से, छू लेता आकाश।।

शिशुता ही रुचिकर लगे, करे न कोई क्रोध।
आनंदित करता सदा, शिशुताई का बोध।।

ऋषभनाथ कालज्ञ ने, कर शिशुता के खेल।
जन मन का रंजन किया, और सिखाया मेल।।

★

जन्मोत्सव की सुन चुके कथा, बचपन की कथा सुनाता हूं।
श्री ऋषभ देव के चरणों में, श्रद्धा के सुमन चढ़ाता हूं।।

श्रोता गण बैठे सावधान, शिशुता के खेल निराले हैं।
कल्पना लोक में अब विचरें, यद्यपि सब देखे भाले हैं।।

भगवान ऋषभ पालने पौढ़ूं, जब तनिक तनिक मुसकाते थे ।
मुसकानों से मानों सब पर, अनगिनत फूल बरसाते थे ।।

जब कभी मारते किलकारी, अन्तर में रस भर आता था ।
आनंद सरोवर में पंकज, बस आप आप खिल जाता था ।।

जब कभी दृष्टि टिक जाती थी, जन दृष्टि देखती ही रहती ।
जीवन मेरा हो गया धन्य, निज भाग्य लेखती ही रहती ।।

हाथों पैरों का सचालन, बल का सम्बर्द्धन करता था ।
संग में किलकारी भर-भर कर, सुख से अन्तर को भरता था ।।

दासियाँ बजा करके चुटकी, शिशु को आर्कषित करती थीं ।
कब सोना, जागना, पय-पीना, शिशु को उत्प्रेरित करती थीं ।।

कोकिल वयनी लोरी गाकर, वाणी को धन्य बनातीं थीं ।
थपकी दे दे कर मरुदेवी, बालक को आप सुलातीं थीं ।।

शिशु के सो जाने पर माता, शुभ वदन देखती रहती थीं ।
धरती पर अपने जीवन को, सच धन्य लेखती रहती थीं ।।

नृप नाभिराज मरुदेवी मिल, जब तब चर्चा रत हो जाते ।
प्रभु को अपने शिशु में पाकर, श्रद्धा से अवनत हो जाते ।।

राजा रानी के भाग्य बड़े, अद्भुत शिशु उनने पाया है ।
जो शुभ बन्धन के कर्म किये, उनका फल वह शिशु आया है ।।

जब तब आते हैं दर्शकगण, निज जीवन सफल बनाने को ।
तीनों लोकों के स्वामी के, जीवन में दर्शन पाने को ।।

जीवन में पुण्य कमाता है, जो भी प्रभु दर्शन पाता है ।
जो भाग्य हीन हैं उनको यह, शुभ अवसर हाथ न आता है ।।

छोटे-छोटे सुन्दर घुंघरू, पैरों में बजते जाते थे।
उनकी इन क्रीड़ाओं द्वारा, जन जन के मन हर्षाते थे।।

धीरे-धीरे शिशुओं के संग, प्रभु आदि नाथ खेला करते।
वे खेल खेल में शिशुओं का, घर आँगन मे मेला करते।।

यों खेल-खेल में वस्त्रों का, गहनों का रहता ध्यान कहाँ ?
यह तो मस्ती का जीवन है, है मान कहाँ ? अपमान कहाँ ?

दासियाँ-दास रहते तत्पर, कुछ नये खिलौने लिये हुये।
बाँटते खिलौने कभी-कभी, चुन लेते हैं वे दिये हुये।।

राजा रानी ये खेल देख, सच फूले नहीं समाते थे।
आनंदित जीवन जीते थे, आनन्दित समय बिताते थे।।

सारे शिशु प्रभु के संग खेल, खाते पीते हरषाते थे।
दर्शक शिशुता की लीला से, जीवन को सफल बनाते थे।।

बहु रंगी उनकी पोशाकें, उपवन की याद दिलाती हैं।
उपयुक्त समय पाकर के ज्यों, मोहक कलियाँ खिल जाती हैं।।

घूमने लगे वे गलियों में, हैं संग बालकों की टोली।
सुन्दरता बिखरी गलियों में, ज्यों मल दी हो रवि ने रौली।।

सुखदायक खेल खेलते हैं, आपस में मेल बढ़ाते हैं।
भावी जीवन की तैयारी, मानों वे करते जाते हैं।।

पशु और पक्षियों के सग भी, अक्सर वे खेल रचाते हैं।
अपने समान इनके उर मे, आनंद सिन्धु लहराते हैं।।

जब-जब करते प्रभुवर भोजन, इनको भी साथ बिठाते हैं।
खाने में, पीने में, सब में, सम रस समता अपनाते हैं।।

जो सेवक गण संग रहते हैं, कौशल नवीन सिखलाते हैं।
प्रभु आदिनाथ जी इस प्रकार, नित आगे बढ़ते जाते है।।

इस भांति जिनेश्वर जिनवर ने, पशु पक्षी भी निज मीत किये।
देवता, मनुज, मुनि आदिक के, गुणता से अन्तर जीत लिये।।

मातायें होती अति प्रसन्न, अद्‌भुत प्रभु के व्यवहारों से।
अन्तर में लेते सब उतार, अद्‌भुत प्रभु के आचारों से।।

सोचते नगर वासी सब है, अब नया समय आने को है।
जो प्राप्त नहीं हो सका अभी, अब उसे हृदय पाने को है।।

लक्षण पहले से दिखते हैं, जो होनहार सुत होता है।
पितु की आकांक्षा का दर्पण, श्रद्धामय गुणयुत होता है।।

घूमते कभी उपवन मे जा, शोभा उपवन की हर लेती।
पाकर अतीव सौन्दर्य राशि, उर शोभा अपना भर लेती।।

कलियों से कहते नृप कुमार, जल्दी-जल्दी सब मुस्काओ।
हँस रहा देख लो यह समूह, तुम भी हँस कर के दिखलाओ।।

फूलों इतराओ यौवन पर, तुम धन्य जो कि यह पाया है।
दो मौन तोड़, कहना मानो, अग्रज द्वारे पर आया है।।

लतिकाओं ! तुम सौभाग्यवती, तुम को पा डाली गदरायी।
डाली की शोभा और बढ़ी, तुम को पा डाली झुक आयी।।

खग गूंज रहे हैं डालों पर, मानों कहते हैं बात करो।
हम से भी हँस लो, मुसकालो, आओ रस की बरसात करो।।

नृप कुँवर देख सुन्दर पक्षी, फूलों से उनकी ओर चले।
वे चले जिधर को उधर, उधर, बोलते नाचते मोर चले।।

माली पालित अनगित शावक, जिनकी आँखे ललचायीं हैं।
छवि निरख निरख कर हुये थकित, पर दृष्टि नहीं थकपायी है।।

छोटे कोमल तरूओं के सिर, फिर-फिर हिल उन्हें बुलाते हैं।
पल्लव-पल्लव को छू कर के, करतल स्वर हर्ष मनाते हैं।।

मादक मलयानिल बह-बह कर, अन्तर की गंध बिखेरे हैं।
सच खग-मृग पल्लव गुल्म लता, भावों के आज चितेरे हैं।।

यह था सच अन्तर का प्रवाह, जो मिलता उनका हो जाता।
पशु हो, पक्षी हो, मानव हो, अन्तर का कल्मष धो आता।।

जब तब हो आते गलियों में, माताये खुशी मना लेती।
अपने सुत से भी अधिक प्यार, इन पर स्वयमेव लुटा देतीं।।

बालाओं ने आनन्दित हो, शोभा - सागर पहचान लिया।
अपनी सखियों सहेलियों में, इसका सर्वत्र बखान किया।।

जब कभी देखते गुरुजन वर, सपने साकार सभी पाते।
तन मन के बल विक्रम को लख, उन पर आशीषें बरसाते।।

विद्या अर्जन के योग्य जान, नृप के मन मे विचार आया।
राजाश्रित जितने परम विज्ञ, सब को राजा ने बुलवाया।।

सबने अपनी सहमति देकर, नृप की इच्छा को मान्य दिया।
गुरु को बुलवा कर राजा ने, बहु दान हेतु धन-धान्य दिया।।

बालक की मति अति ही कुशाग्र, आचार्य प्रवर जो बतलाते।
शिक्षा को अति अधिकार सहित, अन्तर्मन से प्रभ अपनाते।।

जो सहपाठी उनके संग थे, जानते, उन्हें भी समझाते।
इसी भाँति सभी संगी साथी, लागे लिपटे बढ़ते जाते।।

प्रभु विविध कला धार्मिक संस्कृति, साहित्य शास्त्र में लीन हुये।
इतिहास आदि के विषयों में, पारंगत परम प्रवीन हुये॥

मेधावी शिक्षार्थी पाकर, गुरुवर के उर हरषाते थे।
जितनी उर में थी ज्ञान राशि, खुशियों के साथ लुटाते थे॥

सर्वोच्च ज्ञान के साथ-साथ, व्यवहार ज्ञान भी पाते थे।
जब कहीं उन्हें मिलते गुरुजन, श्रद्धा से शीश झुकाते थे॥

बढ़ती दृढ़ जीवन नौका पर, आशीष बरसाते जाते थे।
मानों धरती के शील वृक्ष, उनको सरमाते जाते थे॥

व्यवहार किस तरह किस से हो, कैसा व्यवहार सजीला है।
वे जान गये यह जीवन तो, सद् व्यवहारों की लीला है॥

आस्था थी प्रभु जिनवर में, उर जिन श्रद्धा से भरते थे।
आचरण महान बनाता है, अन्तर से अर्चन करते थे॥

आचरण सभी प्रभु ने सीखे, जिससे जीवन बन जाता है।
आचरणवान के लिये कौन गुण, बाकी जग रह जाता है॥

—: दोहा :—

इस प्रकार मति ऋषभ की, हुई पयोधि समान।
उचित समय पर, कर लिया, प्राप्त ज्ञान-विज्ञान॥

दिशि-दिशि में नव सूर्य का, फैला विमल प्रकाश।
जन-जन को दिखने लगा, प्रभु के प्रति विश्वास॥

बाल दशा वर्णन प्रखर, पढ़े मिले बहुज्ञान।
पाकर सद्व्यवहार को, बढ़े जगत में मान॥

विवाह वर्णन

-: दोहा :-

प्राप्त जगत में मनुज को, हैं वस्तुएं अनेक।
हितकर हितकर ही चुने, तब है विमल विवेक ॥

दो नर नारी जगत में, पहिये एक समान।
जीवन रथ को यही दो, करते हैं गतिमान ॥

नर नारी के मिलन के, जग में मार्ग अनेक।
जो समाज सम्मत दिखे, अपनाते सविवेक ॥

सहज भाव जीवन बहे, नित नूतन उत्साह।
जग को हितकारी बने, वह शास्त्रोक्त विवाह ॥

आदिनाथ भगवान ने, रच के विमल विवाह।
नर-नारी के प्रणय को, खोली सच्ची राह ॥

संसति के उत्थान को, यह विवाह अनिवार्य।
घर में रह कर मुक्त है, नय प्रणीत शुभकार्य ॥

★

ज्यों-ज्यों विकसित हो चली देह, त्यों-त्यों हो मति अनुरूप चली।
जैसे सूरज के साथ - साथ, विकसित इठलाती धूप चली ॥

तन शुक्ल पक्ष के चन्दा सा, अथवा गंगा की धारा सा।
मजबूत स्वयं होता जाता, पत्थर के सुदृढ़ किनारा सा ॥

हो चला वक्ष चट्टान सदृश, बाँहों में मारुत लहराया।
पैरों को मन जैसी गति है, मन का तुरंग उसकी छाया ॥
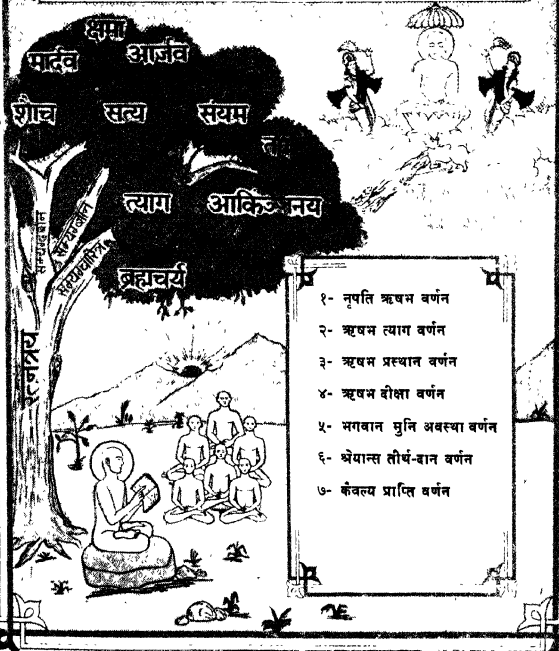
ऋषभायण
तृतीय खण्ड
क्षमा
मार्दव
आर्जव
शौच
सत्य
संयम
त्याग
ब्रह्मचर्य
१- नृपति ऋषभ वर्णन
२- ऋषभ त्याग वर्णन
३- ऋषभ प्रस्थान वर्णन
४- ऋषभ दीक्षा वर्णन
५- भगवान मुनि अवस्था वर्णन
६- श्रेयान्स तीर्थ-दान वर्णन
७- कैवल्य प्राप्ति वर्णन

नैनों ने वह क्षमता पा ली, जिससे कोई तुल जाता है।
बढ़ती मति को वह शक्ति मिली, जिससे रहस्य खुल जाता है॥

धीरे - धीरे सब अंगों से, सुकुमार धनी होते जाते।
देवों, मनुजों के अन्तर के, वे हीर - कनी होते जाते॥

यह पता नहीं क्यों कर सबको, सपने साकार दीखते थे।
हर तरह हो चले पुष्ट किन्तु, फिर भी सुकुमार दीखते थे॥

सब को लगता अब तो अपने, जीवन का रंग बदलना है।
भावी जीवन के सपनों को, ज्यादा दिन नहीं मचलना है॥

जिसका विकास हिमगिरि जैसा, अन्तर सागर की गहरायी।
ममता जिसके उर मचल रही, जैसे बदली हो घिर आयी॥

ऐसा सुकुमार कुंवर पाकर, जीवन का स्वर्ग निहारा है।
प्रभु ऋषभनाथ के माध्यम से, जीवन अब सफल हमारा है॥

अन्तर में इच्छा मचल रही, पूरी होने ही वाली है।
इच्छा की तड़पन की अब तो, दूरी होने ही वाली है॥

–: दोहा :–

नाभिराय मरुदेवि के, उर में अनुपम चाह।
नेत्रों में घूमा मधुर, मंगल वृषभ विवाह॥

दिन-दिन विकसित देखकर, उपजा विमल सनेह।
मंदिर सा लगने लगा, अपना सुन्दर गेह॥

क्रीड़ायें बहु भांति की, उपजाती मन मोद।
अति प्रमुदित रहती सदा, मरुदेवी की गोद॥

देख देख निज पुत्र के, रूचिकर क्रिया कलाप।
मूर्त रूप में ऋषभ का, बढ़ता रहा प्रताप॥

★

इस युग में मौखिक भाषा थी, पर लिपि का कोई रूप न था।
विषयों के नामों से परिचय, परिचय के कुछ अनुरूप न था॥

व्यवहार रूप में ज्ञान-राशि, सब ओर सिन्धु सी लहरातीं।
मोती अन्तर में भरे पड़े, लहरे आकर के बतलातीं॥

व्यवहार ज्ञान में पारंगत, होते जीवन में सुख पाते।
व्यवहार ज्ञान वाले जन ही, दुनिया भर में पूजे जाते॥

शुचि ज्ञान-राशि रूपी मोती, निधि का दरवाजा खोल दिया।
जिसको पाना अति दुर्लभ था, वह ज्ञान-दान अनमोल दिया॥

कुछ भी अनजाना रहा नहीं, जाने उनने सारे सोते।
जो तीर्थंकर पद पाते हैं, सम्पूर्ण विषय - ज्ञानी होते॥

॥ दोहा ॥

गत जन्मों की साधना, एवं पुण्य प्रभात।
तीर्थंकर को प्राप्त है, ज्ञान-ज्ञात-अज्ञात॥

जग की घटनाये सकल, दे व्यवहारिक ज्ञान।
तीर्थंकर निज मनन से, देते धर्म प्रमान॥

तीर्थंकर निज ज्ञान से, सारे जग को ज्ञान।
सब कुछ कर देते सरल, बन विद्या की खान॥

सब शास्त्रों को जानकर, कला कुलों की जान।
विद्याओं को धारते, तीर्थंकर भगवान॥

सरस्वती के कोष पर, इनका है अधिकार।
केवल ज्ञानी ज्ञान का, भरा पुरा भण्डार॥

पहले तीर्थंकर हुये, आदिनाथ भगवान।
सारे लोकालोक का, पूर्ण प्राप्त था ज्ञान॥

★

सुत जब विवाह के योग्य हुआ, राजा ने सोच विचार किया।
निश्चय पर जाने से पहले, मरुदेवी को तैयार किया॥

अभिलाषा रानी के उर में, सागर की तरह मचलती थी।
जब-तब एकाकी समय खोज, यात्रा पर बुद्धि निकलती थी॥

शालीन हृदय बल्लभ नृप ने, सुत के भविष्य पर ध्यान दिया।
साकार स्वप्न जल्दी होगा, रानी ने भी अनुमान लिया॥

भावी जीवन सुत पर निर्भर, निर्णय उसका आसान नहीं।
वात्सल्य भावना में अवसर, रहता कोई विद्वान नहीं॥

इच्छा यह दोनों ही की है, घर में तो पुत्र अकेला है।
अपना तो पुत्र एक ही है, जग में मनुजों का मेला है॥

सेवा-सेवक की कमी नहीं, सुख सुविधाओं का सागर है।
है शान्ति - सम्पदा बहुतेरी, वैभव का मृदु रत्नाकर है॥

अब तो इस घर में भी घूमे, रुन झुन-रुन झुन पायल कोई।
घूमे यौवन की मादकता, मानों होकर पागल कोई॥

उतरे नक्षत्र भवन में आ, सूरज चन्दा आकर खेलें।
चाँदनी रात आ बिछ जाये, सरिता सागर गाकर डोलें॥

खिल जाये आशा कलिकायें, उर के मुरझाये सुमन खिले।
कोंपल सी जन्में इच्छायें, पल्लव-खुशियाँ पा पवन हिले॥
फैले सुगन्ध यश वैभव सी, दिशि - दिशि होवे वैभवशाली।
यौवन बन की रखवाली में, सक्रिय हो संयम का माली॥
इस तरह कल्पना सागर में, डूबते और उतराते थे।
भावों के जग में विचरण कर, वे फूले नहीं समाते थे॥

—: दोहा :—

मरुदेवी औ नृपति ने, कर सम्पूर्ण विचार।
सुत विवाह निर्णय लिया, आगम के अनुसार॥
देवराज से नृपति ने, जनकर किया विचार।
लोक, वंश औ शास्त्र के, साथ-साथ व्यवहार॥
सहमति देकर इन्द्र ने, नृप को किया विभोर।
आप नृत्य करने लगे, दोनों के मन मोर॥

*

तब एक दिवस श्री नाभिराय, उर में अनुराग भरे बोले।
सुत को पाकर अपने समक्ष, अन्तर के मधुर भाव खोले॥
श्री आदिनाथ करके प्रणाम, पाकर आशीष निहाल हुये।
जग के बहुमूल्य लाल है ये, पाकर आशीष विशाल हुये॥
हे वत्स हमारी इच्छा है, उसका सादर निर्वाह करे।
कुल की, जग की मर्यादा के, आदर्श स्वरूप विवाह करे॥
आदर्श गृहस्थाश्रम उत्तम, इनको सहर्ष स्वीकार करे।
सम्पूर्ण लोक की रक्षा को, पहले लौकिक व्यवहार करे॥

परिवार एक आधार बिन्दु, जिस पर समाज टिक कर चलता ।
उर्वरा भूमि का यह तरुवर, भावों के फल द्वारा फलता ।।
अपना प्यारा यह राज महल, ऐसे वृक्षों से भर जाये ।
छाया हो, शुभ हरियाली हो, फल फूलों से शोभा पाये ।।

—: दोहा :—

स्वीकृत सूचक "ॐ" कह, किया पिता का मान ।
ऋषभनाथ अब हो गये, जन-जन के भगवान ।।
महा कच्छ औ कच्छ की, थीं दो सुता ललाम ।
एक सुनंदा यशवती, शोभा राशि विराम ।।
सती और अभिराम थीं, शुभ लक्षणा, सुनीता ।
प्रियंवदा मृदुभाषिणी, अन्तर परम पुनीता ।।
जिनके अद्भुत शील की, कीर्ति बढ़ी चहुँ ओर ।
अतिशय रूपविलोक कर, दस दिशि हुयीं विभोर ।।
सब जग शोभा शोध कर, प्रकृति रची इक ठौर ।
तभी सुनन्दा यशवती, हुयी जगत-सिर मौर ।।

*

किस से विचार विनिमय कर लूं, श्री नाभिराय के मन आया ।
श्री देवराज से भेंट करूँ, उत्तम विचार मन को भाया ।।
देवाधिदेव श्री वर सुरेश, जग में अद्भुत वैभव शाली ।
जग की खुशियाँ, इनकी खुशियाँ, यद्यपि हैं अतिशय बलशाली ।।
श्री नाभिराय को निकट जान, श्री देवराज हरषाये हैं ।
जिनके स्वागत में देवों ने, श्री मूल फूल बरसाये हैं ।।

आये बैठे दो नृपति बड़े, थल शोभा का रत्नाकर है।
कहते कुछ भी बनता न यहाँ, सागर घर आया सागर है।।

पहले पूछी, कह कुशल-क्षेम, तब और अन्य व्यवहार हुये।
फिर धीरे-धीरे दोनों में, आरम्भ अनेक विचार हुये।।

प्रिय ऋषभ युवा हो चले मित्र, जन-जन उनसे अनुरंजित है।
अपने गुण, संयम, वैभव से, जन-जन से वह आनंदित है।।

अद्भुत प्रतिभा बालक में हैं, वह कौन सूझ जो ज्ञात नहीं।
उसमें जितनी कोमलता है, रखता शायद जलजात नही।।

तन में जिसके अपार बल है, मति में सेवा का सागर है।
गति में मारुत तक हार चुका, तन शोभा का रत्नाकर है।।

व्यवहार कुशल इतना समझो, सब को प्राणों से प्यारे हैं।
हर ओर सुनायी देते हैं, "जय ऋषभ" ऋषभ के नारे हैं।।

श्री नाभिराय सुध बुध भूले, सुत के कुछ शुभ लक्षण कहते।
निज इष्टदेव के गुण सुनकर, कैसे चुप देवराज रहते।।

हे नाभिराय तुम सम न अन्य, जग में कोई वैभव शाली।
अब मात्र आपके पुण्यों से, यह सृष्टि बनेगी टकसाली।।

अगणित जन्मों का पुण्य उदय, पुण्यों का भरा खजाना है।
यह मानवता का भाग्य बड़ा, जग का जाना पहिचाना है।।

दर्शन से हूँ मैं तो कृतार्थ, मेरे उर की यह वाणी है।
प्रभु ऋषभदेव ! आराध्य देव, सम दृष्टि मिली कल्याणी है।

इच्छाओं को मिल गई शान्ति, जिसकी न कल्पना मन में थी।
जिसके पा जाने की इच्छा, जाने कब से जीवन में थी।।

—: दोहा :—

हर प्रकार की सफलता, पाकर के रस बिन्दु।
इन्द्रराज हर्षित हुआ, पाकर सुख का सिन्धु॥

नाभिराज लख इन्द्र को, सुध बुध भूले और।
ऋषभनाथ हैं उभय के, जीवन के सिर मौर॥

नाभिराय ने इन्द्र से, धर के प्रभु का ध्यान।
अद्भुत लीला चरित की, किया समस्त बखान॥

बात-बात में कह गये, अपने मन की बात।
ऋषभदेव वर रूप में, नैन लखे साक्षात॥

ऋषभदेव के सामने, रक्खी जब अभिलाष।
मौन रूप में हृदय की, मिटती दीखी प्यास॥

★

नृप की उत्तम वाणी सुनकर, सुरराज हृदय में हरषाये।
हर्षातिरेक में इन्द्र देव, वाणी न कुछ प्रकट कर पाये॥

समयोचित बात लगी रूचिकर, प्रस्ताव किया अनुमोदित है।
कैसे खुशियों को प्रकट करे, पूरा अन्तर आन्दोलित है॥

सौभाग्यवती है, सत्य - सती, गुणवती सुनन्दा रानी है।
यश की, गुण गरिमा शोभा की, जीती जागती कहानी है॥

हे बन्धु श्रेष्ठ अब बात सुनो, शुभकार्य शीघ्र निपटाना है।
जो अब तक मन में छिपा रहा, उसको साकार बनाना है॥

नव नगर अयोध्या में जाकर, कुछ वैवाहिक व्यवहार करो।
कोई बिलम्ब की बात नहीं, जाकर बरात तैयार करो॥

जैसे जल की बढ़ती धारा, अनुकूल ढाल पा जाती है।
गति तो हो जाती और तेज, सागर को पास बुलाती है॥

॥ दोहा ॥

नाभिराय सुनकर वचन, आशा के अनुकूल।
चले विदा ले इन्द्र से, पथ में बरसे फूल॥

स्वर्गलोक से भी सुधर, नगर अयोध्या धाम।
आज सभी कुछ दीखता, नृप को अति छविधाम॥

अब तक जो था स्वप्न में, वह होगा साकार।
इसीलिये सर्वत्र है, नवल मधुर व्यवहार॥

मरुदेवी के हर्ष का, आज न पारावार।
सखियों के संग प्रेम से, करें मंगलाचार॥

घर-घर में उत्साह नव, जन मन नयी उमंग।
नवल-नवल सब वस्तु के, मन में नई तरंग॥

पाणिग्रहण को जानकर, मनि मन बड़ा प्रमोद।
वह सुख जग में हैं कहाँ, जो मरुदेवी गोद॥

—: सवैया :—

इस भाँति से रूप बना प्रभु का, शत काम भी आप लजाये गये।
जितना जिसमें अनुराग रहा, अनुराग से आप सजाये गये॥

रस की शुचिधार रही बहती, कल गान से व्योम गुंजाये गये।
बन के वर आप बिहाने चले, नभ आदि से वाद्य बजाये गये॥

सब ओर से सुन्दरता सिमटी, बरसात की रम्य घनाली हुयी।
जन भाग्य की वाटिका में प्रभु की, वरदान की सुन्दर डाली हुयी।।
कब से धरती तरसी जल को, मन भावनी हैं जल वाली हुयी।
वर के घर की वरनी, घर की, दिशि रागवती हरियाली हुयी।।
सुरराज ने आकर के दल के, संग में प्रभु का सम्मान किया।
रस की बरसात में आ घिर के, कल गान किया रसपान किया।।
'नागेन्द्र' के जीवन का फल क्या, कर दर्श को मर्म यह जान लिया।
जग का कर्ता हरता दुख का, भरता सुख का पहचान लिया।।
जिसके मन में अभिलाष रही, उसने वह रूप निहार लिया।
मन के अनुकूल सुधा रस को, अपने उर में फिर धार लिया।।
जितनी क्षमता जिसके उर, छवि का शुचि चित्र उतार लिया।
यह जीवन धन्य हुआ रे हुआ, सब ने मिल आज पुकार लिया।।
'नागेन्द्र' नरेन्द्र सुरेन्द्र के हैं, उर मे अनुराग की माल पड़ी।
अनुराग के राग से रागवती, सुमनांजलि सी है डाल जड़ी।।
हर ओर से राग की है बरसा, दिशि लालिमा है भ्रम जाल पड़ी।
सुत नाभि के भाग सराहें सभी, कल कण्ठ में आ जयमाल पड़ी।।

–: दोहा :–

यशवती हो गई यशवती, आज हुयी है धन्य।
ऋषभ देव से पति मिले, कौन नारि है अन्य।।
देवि सुनन्दा को मिले, ऋषभदेव भगवान।
इन देवी के भाग्य सा, जग मे कौन महान।।

ज्यों सूरज के साथ है, उषा सांध्य दो रूप।
ऋषभराज शोभित हुये, सूरज के अनुरूप॥

नाभिराय मरुदेवि ने, उर भर लिया विलोक।
तब इनको ऐसा लगा, ज्यों घर तीनों लोक॥

जगमग जगमग हो रहा, नवल अयोध्या धाम।
पाकर के अनुराग नव, पग पग है अभिराम॥

पढ़े सुने इस खण्ड को, भर मन में उल्लास।
ऋषभदेव की कृपा से, पूरण हो सब आश॥

मिलनोत्सव वर्णन

-: दोहा :-

जग में प्रभुता प्राप्त कर, मद से रहता दूर।
स्वयं भोग कर जगत को, देता सुख भर पूर।।

कौन जिसे इस जगत में, लगा न जग का रोग।
जो सयम पथ पर चले, रहते नित्य निरोग।।

यह जग सुख का सिन्धु है, जितना चाहे भोग।
अपने पर काबू रखो, तज माया सयोग।।

जल जग में डूबो नहीं, ज्यों पुरइन का पात।
द्वन्द्वों से निर्द्वन्द्व हो, यही ज्ञान की बात।।

उतना सहज सहेज सुख, जितना धर्म सुहाय।
निष्कलंक सुख प्राप्ति का, ये ही सरल उपाय।।

★

सूरज ने नव प्रभात द्वारा, स्वागत में किरणें बरसायीं।
खिलकर सारी हो गईं पुष्प, जितनी कलियाँ थीं अलसायीं।।

सब ओर नया जीवन बिखरा, सोने की धूप उतर आयी।
जागी जन-जन में नयी किरन, किरनों ने माला पहनायी।।

जन-जन को दीखा नया जगत, जगती में हरियाली छायी।
मानों धरती के कण-कण में, ज्यों नयी जवानी भर आयी।।

मारुत ने बह कर पत्तों को, फूलों को जीवन दान दिया।
तरुणी लतिका ने तरुवर को, मानों बढ़ कर सम्मान दिया।।

धारा ने सुदृढ़ किनारों को, हर्षित को प्रियतम मान लिया।
धरती एकाकी नहीं यहाँ, प्रियतम नभ को पहचान लिया।।

चकवी-चकवा की ओर बढ़ी, भौंरा पुष्पों को चूम चला।
मधुकर पुष्पों के अंचल में, मधुपान प्राप्त कर झूम चला।।

लहरें तट-बन्धों तक आईं, उर में अनुपम अनुराग लिये।
संध्यायें आज प्रतीक्षारत, बिन्दिया से दूर सुहाग लिये।।

इस भांति प्रकृति के अँचल में, अनुराग सिन्धु भर आया है।
जड़ चेतन में, मिलनोत्सव का, आलोक अमर भर आया है।।

परिणय कर के सुत-नाभिराय, जब से नगरी में आय हैं।
इस धन्य कौशला नगरी के, घर-घर में बजे बधाये हैं।।

जन-जन में था विश्वास अटल, ऐसा भी शुभ दिन आयेगा।
नृप भवन विराजेगा बसन्त, हम सबका मन हरषायेगा।।

निश्चय हम सब के अहो-भाग्य, यह धर्म पुण्य का लेखा है।
अपनी आँखों से शुभ विवाह, श्री ऋषभदेव का देखा है।।

हम सब को आयु मिली जितनी, यह आयु इन्हें सब मिल जाये।
धरती के सुन्दर मानस में, आशा का पंकज खिल जाये।।

॥ दोहा ॥

नगर अयोध्या धाम के, जन-जन के मन प्रीत।
ऋषभदेव प्रभु हो गये, सब के ही मन जीत।।

जन जन का आशीष यह, सुख पावे भूपाल।
विलसे जग मे कमल-सुत, जल मे मगन मृणाल।।

-: हरिगीतिका :-

यह मांगलिक शुभ ध्वनि मनोहर, हर्ष और विनोद की ।
रनिवास में ज्यों उठ रही हो, पालकी आमोद की ।।

चहुँ ओर मंगल गान है, हर्षातिरेक विशेष है ।
सुत-नाभि का आनन्द-नद, उर-भूमि का हृदयेश है ।।

जय गान मंगल गान है, शुचि गा रहे शुक-सारिका ।
सेवार्थ प्रस्तुत हो रही, परिचायिका परिचारिका ।।

कब दिन हुआ, कब ढल चला, इसका न कुछ भी ज्ञान है ।
सर्वत्र निखरी दीखती, आनन्द की मुस्कान है ।।

बहु भाट, चारण द्वार पर, यश गान में रत हो रहे ।
बहु धराधिप चरण - पंकज, नाभि-सुत नत हो रहे ।।

यश गायकों ने नृपति से, बहु आज पाया मान है ।
याचकों ने नृपति से, बहु आज पाया दान है ।।

माता मरुदेवी सास बनी, घर में दो रानी आयी हैं ।
जैसे जग का सुख लेने को, दो सुन्दर आँखे पायी हैं ।।

भर गया महल खुशियों द्वारा, फूला उर नहीं समाता है ।
ज्यों वर्षा-ऋतु में सरिता का, जल उमड़-उमड़ कर आता है ।।

आकर बहुओं ने पांव छुये, मानों ज्यों स्वर्ग निहारा है ।
आशा की सरिता ने बढ़कर, पाया ज्यों मंजु किनारा है ।।

आशीष दिये हैं मन भाये, युग-युग तक अमर कहानी हो ।
जग में रहकर के यश भोगो, शुभ धर्म कर्म वरदानी हो ।।

पग-पग पर जग सुख बिछा मिले, कण-कण से प्यार मिले तुमको।
कर्त्तव्य सभी के हों पूरे, ऐसा अधिकार मिले तुमको ॥

–: दोहा :–

ऋषभदेव निज मात से, पाकर अतुलित प्यार।
वे इतने हर्षित हुये, जिसका आर न पार ॥

उपवन मे कलियाँ खिलीं, उमड़ पड़ी रसधार।
अथवा भू ने व्योम का, पाया प्यार अपार ॥

आज व्योम की स्वयं ही, दिशा दिशा है लाल।
पग-पग पड़े प्रवाल है, मानों भू जयमाल ॥

★

सूरज मुस्काता चला गया, संध्या का कर में कर लेकर।
औ कुमुद-समूहों के संग में, शशि को रहना आज्ञा देकर ॥

शृंगार किये रजनी रानी, आयी साजन से मिलने को।
तारों की कढी ओढ़नी मिस, कलिका सी सुन्दर खिलने को ॥

तारागण की है छवि बिखरी, चाँदनी धरा की ओर चली।
अति शीतल शीतल मन्द पवन, होती आनन्द विभोर चली ॥

रजनीगंधा की शुचि सुगन्ध, अब दिशा दिशा में फैली है।
धानी साड़ी निशि-रानी की, दीखने लगी मटमैली है ॥

संगीत महल में गूँज रहा, सातों स्वर बड़े रसीले हैं।
मन में गुदगुदी उमड़ पड़ता, शृंगार भाव से गीले है ॥

परिवेश बड़ा ही मादक है, बिखरी मादकता लाली है।
खुशियों की खीले बिखर रहीं, महलो में आज दिवाली है ॥

—: दोहा :—

देवराज ने ऋषभ के, मिलनोत्सव को जान।
किन्नर औ गन्धर्व के, साथ किया प्रस्थान ।।

नभ पथ में देखे गये, अगणित सजे विमान।
विविध भांति बाजे बजे, करें अप्सरा ज्ञान ।।

सरस व्योम से हो रही, पुष्पों की बरसात।
मानों है आकाश की, धरती को सौगात ।।

★

श्री ऋषभदेव के अन्तर को, आकर मनमथ ने मथ डाला।
ज्यों मिलने की उत्सुकता ने, भावों की पहना दी माला ।।

जन-मन आकांक्षा जान गये, आगमन देव पहचान लिया।
तन-मन परिचय का ये क्षण है, अन्तर्मन से यह जान लिया ।।

यह भूमि, भोग की प्रेरक है, प्रेरणा कर्म करवाती है।
जो नहीं समय पर चेतन हो, ऐसी ही मति पछताती है ।।

जब-जनमें हैं, हम धरती पर, धरती पर हमको रहना है।
तब तो धरती के श्रेष्ठ नियम, इस मनुज जाति का गहना है ।।

इसको हम अपनी करनी से, ऐसा कुछ करके दिखलायें।
आने वाली पीढ़ियाँ सभी, आने वालों को सिखलायें ।।

अपने सुख को जीती दुनिया, दुनिया के सुख को जीना है।
अपने से पर का ध्यान अधिक, ये ही आदर्श नगीना है ।।

हम सब का है कर्त्तव्य एक, सब प्रकट एक संयोग करें।
संयोग सभी को हो समान, अपना-अपना सब भोग करें ।।

मैं देख रहा परिवेश नया, सब ओर प्रखर जीवन हँसता।
ऊपर से हूँ मैं मौन मगर, अन्दर-अन्दर जीवन हँसता ॥

जब मात-पिता की इच्छा को, हँसते शुभ हाथ बढ़ाया है।
प्रत्येक क्रिया से जीवन की, उनके मन मोद बढ़ाया है ॥

इच्छा यह भी पूरी कर दूँ, मिलनोत्सव आज मना लूँ मैं।
अन्तर से आज प्रियाओं को, अन्तर की प्रिया बना लूँ मैं ॥

सोचते ऋषभ के अन्तर में, नाचते प्रणय के मोर चले।
अन्तर मन से, मन्थर गति से, वे उभय प्रिया की ओर चले ॥

—: दोहा :—

बिखर पड़े अनुराग के, भू पर मंजुल बिन्दु।
बिन्दु-बिन्दु मिल हो गया, रसागार गृह सिन्धु ॥

विकस सुमन हो रहे, हैं कलिकाओं के पुंज।
किसको है रुचिकर नहीं, कुसुमित लतिका पुंज ॥

पढ़े सुने अति चाव से, मिलनोत्सव का पर्व।
विपद नशे, होवे सरस, पूर्ण कामना सर्व ॥

गृहस्थ जीवन वर्णन

॥ दोहा ॥

आत्मा को विश्वास से, मिलता है विश्वास ।
अगर न जीवन में मिले, तो क्या जीवन आश ॥

नर नारी के मध्य में, जग कर के विश्वास ।
पति पत्नी के रूप में, फलता है उल्लास ॥

मन मन से मिल जाय जब, होकर के अनुरूप ।
कभी न कटुता आ सके, सद् गृहस्थ का रूप ॥

नर के सदा समान है, नारी के अधिकार ।
दोनों अन्तर से करें, दोनों का सत्कार ॥

अपने सम ही और का, जो रखते हैं ध्यान ।
जगती में "नागेन्द्र" है, श्रेष्ठ गृहस्थ महान ॥

भय निद्रा औ भूख में, नर - पशु दोनों एक ।
कब, क्या कैसे हम करें, नर में सदा विवेक ॥

जग में वे ही हैं अमर, जिन्हें न जीते भोग ।
जो भोगों में फंस गया, उसका क्या उपयोग ॥

★

श्री नाभिराय मरुदेवी की, खुशियों का नहीं ठिकाना है ।
सुत ऋषभ, ऋषभ वधुओं समेत, जग पाया अब क्या पाना है ॥

अति सुन्दर दोनों वधुओं से, कोना-कोना आलोकित है ।
हर भाव आज मृग-छोना-सा, आलोकित है, उद्योतित है ॥

उनने मन में जो कुछ सोचा, सोचा सो जग में पाया है।
इच्छाओं को सन्तोष मिला, यह ऋषभदेव की माया है।।

कब दिवस रात है बीत चले, सुख में कब इनका ध्यान रहा।
ऐश्वर्य जगत का जो भोगा, भोगों का कब है मान रहा।।

बधुयें पूरब की उभय दशा, जिसमें अनुरंजित लाली है।
शोभायमान दोनों से ही, उगता किरणों का माली है।।

जब ऋषभदेव होकर प्रसन्न, रवि के समान मुसकाते हैं।
तब दिशा-दिशा, कोने-कोने, मानों सोने मढ़ जाते हैं।।

जिस ओर ऋषभ के चरण बढ़े, उस ओर कमल खिल जाते हैं।
जिस पर उनकी पड़ गयी दृष्टि, वरदान अमित मिल जाते हैं।।

पशु, पक्षी, नृप, नर, माण्डलीक, नित-प्रति दर्शन को आते हैं।
जड़ चेतन का है भाग्य बड़ा, मन वांछित फल पा जाते हैं।।

सेवकगण सेवा से प्रसन्न, सेविका देवियों को भायीं।
सेवा में यों तत्पर रहतीं, जैसे तन के संग परछाईं।।

अवसर सराहती, भाग्य विपुल, सेवा का शुभ अवसर पाकर।
रहते प्रसन्न राजा रानी, अपना उज्ज्वल यश चमका कर।।

सब ओर विलसती सुख सुविधा, पा सकी भारती पार नहीं।
वह कौन वस्तु वर-वधुओं का, हो पायी हो श्रृंगार नहीं।।

बधुये घर आंगन की शोभा, दोनों सब को अति प्यारी है।
दोनों जीवन की शुभ घड़ियां, खिलते फूलों की क्यारी हैं।।

देवता - वृन्द जब तब इनकी, चर्चा बधुओं से करते हैं।
गुण के, रति के, मति के, सुध के, सागर से अन्तर भरते हैं।।

जब कभी ऋषभ दैनिक जीवन, कल्पना लोक से जगता है।
देवता वृन्द को जीवन निज, कुछ-कुछ नीरस सा लगता है ।।
जन-मन में नयी उमंगें हैं, घर - घर प्रसन्नता आगर है।
उमड़ा सम्पूर्ण अयोध्या में, मानों खुशियों का सागर है ।।

।। दोहा ।।

यशस्वती निज भाग्य को, आज मानती धन्य।
जिसको जग नायक मिला, कहाँ जगत में अन्य ।।
यशस्वती के हृदय मे, है ये ही बस चाह।
ऋषभदेव पति के चरण, नित उमगे उत्साह ।।
जग में पति-पग-कमल रज, जीवन सुख की मूल।
प्रिया भाग तब धन्य पति, रहे सदा अनुकूल ।।

—: सवैया :—

अभिलाष प्रिया उर मध्य बड़ी, प्रिय के सुख साध लगी ही रहूं।
तन से, मन से, व्रत से, क्रम से, हर भांति आपसे सगी रहूं ।।
नित सेव्य की सेवकता में रहूं, दिन रात में आह ! जगी ही रहूं।
'नागेन्द्र' का जीवन धन्य बने, अनुराग के रंग रंगी ही रहूं ।।
जिसकी वरदा सुमनांजलि से, कलिका विकसी उत्फुल्लवती।
अलि-भाव से रागों का राग सुना, सुनके जिसको सब भूली गती ।।
शुचि राग पराग उड़ा यश का, दिशि से दिशि भी तो सुनी जुड़ती।
बन बाग, तड़ाग रंगें रंग में, बगिया भी हुयी अनुराग वती ।।

-: दोहा :-

देवि सुनन्दा जब कभी, करती मन में ध्यान।
दिशा-दिशा मे दीखता, उनको प्रियतम प्राण ।।

श्रवणों में बटरस मधुर, सुतनु नासिका गन्ध ।
स्वांस स्वांस से है प्रकट, तन मन का सम्बन्ध ।।

देवि सुनन्दा के हृदय, है यह ही अभिलाष ।
प्रियतम के पग कमल में, रहे नवल विश्वास ।।

धर्म, कर्म, व्रत, नेम सब, अर्पित तुमको प्राण ।
है प्रियतम के प्यार से, जीवन का कल्याण ।।

-: सवैया :-

प्रिय प्यार की माल संभाले हुये, करताल से मोद मनाती रहूं ।
कर में उनका कर साधे हुये, सुख सिन्धु में आप नहाती रहूं ।।

घर, बाहर, अन्तर में प्रिय है, छवि-धाम में प्राण बिछाती रहूं ।
अनुराग के बिन्दु सहेजे हुये, निज जीवन धन्य बनाती रहूं ।।

शुचि भाव प्रसन्न रहें खिलते, जग में बहु फूल खिले न खिले ।
प्रिय प्राण पुकार पे रीझे रहे, फिर और किसी से हिलें न हिलें ।।

अनुराग के पंथ रहें चलते, दुख भार के वार झिले न झिलें ।
प्रिय का प्रिय प्यार रहे सिर पे, जग के सुख सारे मिले न मिलें ।।

कितना शुचि प्यार का नीर पिया, फिर भी उर सिन्धु अघाता नहीं ।
तन का, मन का लुटता धन है, घटता फिर भी तो खजाना नहीं ।।

प्रिय बोले यही उर से उर है, यह पाके खजाना लुटाना नहीं।
तट प्रेम के सिन्धु से लौट चले, उसका जग मध्य ठिकाना नहीं ॥

-: दोहा :-

इस प्रकार दोनों प्रिया, पाकर प्रिय का प्यार।
निज-निज अंकम् ले रही, जीवन का सुख सार ॥

जिस नारी को मिल गया, प्राणों का प्रिय प्राण।
वह नारी ही पा गयी, सर्वश्रेष्ठ निर्वाण ॥

*

जब-तब होते प्रणयोत्सव हैं, मानों बसन्त आ जाता है।
प्रिय का प्रियरम्य प्रियाओं का, रह-रह अन्तर हरषाता है ॥

खिल जाती भावों की कलियाँ, इठला कर पुरवा बहती है।
पूरब-पश्चिम के अन्तर से, मिलनोत्सव गाथा कहती है ॥

संध्या कहती है जिओ-जिओ, स्नेह सलिल का पान करो।
प्रिय को अन्तर में पाकर के, शत शत स्वागत सम्मान करो ॥

है रूप वही सार्थक जग में, सक्षम जो हृदय रिझाने में।
अस्तित्व लुटा देता अपना, अपने प्रियतम को पाने में ॥

निज उर की शुचि कोमलता से, अन्तर की कोमलता भर दे।
दिखलाकर अपना रूप मधुर, प्रत्येक वृत्ति मधुरिम कर दे ॥

खिल जाये पग-पग सुमन-कुंज, जग और-और की चाह बढ़े।
पाकर जिसको, छूकर जिसको, जीवन पथ पर उत्साह बढ़े ॥

॥ दोहा ॥

जीवन पथ पर बढ़ रहे, सुकुमारी सुकुमार।
उभयपक्ष को मिल गया, जीवन का आधार ॥
रोम-रोम से उठ रहा, बहु आह्लाद प्रसाद।
जा कोने में सो गया, तम सम विषम विषाद ॥
कब दिन बीता क्या पता, या कब बीती रात।
रात-दिवस मे एक हो, प्रेम एक अनुपात ॥

—: सवैया :—

वह प्रेम ही तत्व है या जग का, जिसमें शुचि भाव सदा फलता।
अपने छल की परवाह नही, अपना कह के न कभी छलता ॥
सुख को, दुख की गरिमा में नहीं, समता के धरातल पे पलता।
जग कोई कहे कहता ही रहे, गृह बांह को छोड़ नहीं चलता ॥
प्रिय प्यार का सम्बल पाये हुये, उर प्रेम का तत्व उतारे हुये।
क्षण एक भी ध्यान रहे जो नहीं, लगता युग बीते निहारे हुय ॥
मम आयु सनाथ धराधर के, कर नाथ के आज सहारे हुये।
अपना समझे रहिये हमको, हर भांति से आप हमारे हुये ॥

—: दोहा :—

सेवा को परिचायिका, रहती हैं तैयार।
मरुदेवी की शिथिलता, हर लेता सत्कार ॥
दोनों बधुये सास का, करतीं अति सम्मान।
पति जिनके पग पूजता, उनसे कौन महान ॥

निशि के पहले प्रहर में, नित पाती आशीष।
उज्जवल मधु राका रहीं, पाकर के रजनीश ।।

★

जब नाभिराय भर नैन आप, सुत आदिनाथ देखा करते।
मन में फूले न समाते थे, जग भाग्य धन्य लेखा करते ।।

मुख-मण्डल सूरज सा दिपता, आंखें प्रभात की रेखा हैं।
भौंहें काली, नासिका है सुघर, दन्तावलि विधु की लेखा हैं ।।

ग्रीवा सुन्दर ज्यों महा शंख, चट्टान सदृश वक्षस्थल है।
बल में गजराज सदृश बांहें, रत्नाकर सा अन्तस्थल है ।।

श्री ऋषभदेव के वृषभ सदृश, कन्धे सम्पूर्ण सजीले हैं।
जो स्वाभिमान से पुष्ट हुये, क्षण भर को कब गर्वीले हैं ।।

नृप नाभिराय को अग्र काल, उज्जवलतम दिखलायी देता।
रत्नाकर के तट सीपी में, मोती है अँगड़ायी लेता ।।

नृप का अन्तर आनन्दित है, तन भी अति पुलकित रहता है।
जैसे पौधा होकर समर्थ, पुष्पित औ विकसित रहता है ।।

—: हरिगीतिका :—

ऋषभवर को प्राप्त है, आशीष की शुभ शृंखला।
फैले जगत में यश-घना, ज्यों चन्द्रमा की है कला ।।

वर युगल बधुये साथ हैं, संसार में उत्थान हो।
सूर्य धर्मी पुत्र की शुचि, विश्व में संतान हो ।।

पाकर तुम्हें युग-युग करे, इतिहास द्वारा वन्दना।
सभ्यता लेकर करवटें, करती रहे नित अर्चना ।।

विद्या, कला, लिपि-सर्जना, तुमसे सदा विकसित रहे।
निर्माण तुम पर गर्व कर, अन्तर सदा पुलकित रहे॥

तुम सृष्टि के वह मूल हो, जिस पर कि सब को गर्व हो।
जीवन तुम्हारा यों फलें, प्रत्येक दिन हो पर्व हो॥

तुम से बढ़े जो सृष्टि जग, उत्कर्ष का वह मूल हो।
आपका हर कर्म ही, सुख शान्ति के अनुकूल हो॥

जो यह 'ऋषभायन' सुने, भर उर में उल्लास।
मति अति ही निर्मल मिले, कष्ट न आये पास॥

संसति जन्म वर्णन

-: सवैया :-

शुभ शारदा पंकज-पांव तले, रज को निज शीश पे धारा करू।
अनुराग के चाव में भाव उगे, उनके प्रतिबिम्ब निहारा करूं ।।

शुचि दृष्टि की वृष्टि कृपाकर की, उसको उर मध्य सवारा करूँ।
वरदा के कृपा वर पाकर के, मन मोहक छन्द उतारा करूँ ।।

यदि तेरी कृपा न मिली मुझको, जग के सुख सार का क्या मिलना।
कर्त्तव्य का चाव जगा जो नही, जग में अधिकार का क्या मिलना ।।

पग-पंकज मे न जगी रूचि जो, सुप्रसून के प्यार का क्या खिलना।
अभिवादन हेतु न राग बजे, सुसितार के तार का क्या हिलना ।।

उनने सुत की सुनिये जी कथा, जिनकी अब लो न कहानी गयी।
जग के पग में जिनकी गति है, बढ़ती घटती न रवानी गयी ।।

मिटते बनते जग चिन्ह रहे, उनकी मिटती न निशानी गयी।
अब कैसे बखान करूँ उसका, जो किसि कवि से न बखानी गयी ।।

जिसमें भ्रम जाल दिखायी पड़े, इस भांति के जाल नकारे रहूँ।
जिसमें जग का सुख-सार दिया, दिल में उसकी सुधि धारे रहूँ ।।

शुचि धर्म की, कर्म की राह गहूं, खुद को दिन रात संवारे रहूं।
जिनकी कल-गाथा सुनाने चला, उनकी छवि को ही निहारे रहूं ।।

सुख-सिन्धु के बिन्दु की चाह नहीं, प्रभु आदिसनाथ की चाह रहे।
जिस राह को आप बता के गये, पथ पे चलने की निगाह रहे ।।

सब में समता, ममता भी रहे, मिटती खलता-कटु दाह रहे ।
चिर काल प्रदीप रहे जलता, सुषमा को लिये जन-राह रहे ॥

जब पूर्व दिशा की खिड़की से, उषा इठलाकर मुस्काई ।
अधखिले सुमन खिल खिला उठे, बिखरी कण-कण में अरुणाई ॥

तरुणाई तरुओं में आयी, अनुरागवती हरियाली है ।
कलिका कलिका है रागवती, मदमाती रस की प्याली है ॥

चलकर मारुत धीरे - धीरे, सुखकारी सन्देशा लाया ।
अथवा तृण-तृण के अन्तर की, भावना मधुर सुनने आया ॥

पथ, द्वार, भवन, वन, उपवन का, घर का सुन्दर कोना-कोना ।
लगता ऐसा है बिखर गया, पग-पग पर सोना ही सोना ॥

बिखरे सोने के पानी ने, पानी में जीवन दिखा दिया ।
सपने का जीवन मिथ्या है, असली जीवन है सिखा दिया ॥

सपने तो केवल सपने हैं, मन की चंचलता से आते ।
जो केवल सपनों पर टिकते, वे जीवन भर हैं पछताते ॥

सपनों की दुनिया है विचित्र, अनहोनी बातें हो जातीं ।
काल्पनिक परों से हम उड़ते, सारी कमियाँ हैं खो जातीं ॥

फिर भी उनमें आकर्षण है, सपनों से नहीं अघाते हैं ।
जिस दिशा ओर हम गये नहीं, चलने को हमें जगाते हैं ॥

कुछ इतने सोने वाले हैं, सपनों को जीवन दे देते ।
सपनों मे उम्र बिता देते, सपनों को हाथों ले लेते ॥

जब ज्ञान ज्योति सा प्रखर सूर्य, आकर निज तेज दिखाता है ।
सपना क्या है, जीवन क्या है ? दोनों को भेद बताता है ॥

पाकर यथार्थ आँखों आगे, अन्तर का द्वार खोल लेता ।
वास्तविक भार क्या सपनों का, अन्तर में भार तोल लेता ।।

सपनों का आना बुरा नहीं, आते हैं हमें जगाते हैं ।
जगती के सुख का सही रूप, ये भली भांति दिखलाते हैं ।।

सपने वाले, इस जगती में, कुछ सपने सत्य बनाते हैं ।
कल्पना लोक की रचना को, साकार यहीं बनवाते हैं ।।

सपने आकर के कभी-कभी, हमको भविष्य बतलाते हैं ।
यह भी होता है कभी-कभी, सपने सन्मार्ग सुझाते हैं ।।

है स्वप्नों में भी सत्य छिपा, गाथा सचमुच सुनने की है ।
यह गाथा सुमनान्जलि सी है, मन वांछित वर चुनने की है ।।

था एक रात्रि का मधुर चरण, सुख का आवरण निराला था ।
पट रानी देवि यशस्वति को, सन्मार्ग दिखाने वाला था ।।

उसने सपनों में जो देखा, वे फूली नहीं समाती है ।
सब ओर स्वर्ण सा बिखरा है, स्वर्णिम धरती हरषाती है ।।

ऐसा लगता है अन्तर की, खुशियाँ बाहर हैं चमक रहीं ।
तृण-तृण के अधरों पर जलकण, मोती की आभा दमक रहीं ।।

देखा रानी ने सभी ओर, खुशियों के हैं अम्बार लगे ।
उज्ज्वल भविष्य के अति दुर्लभ, दीखे मुखरित आधार जगे ।।

किससे अन्तर की बात कहें, मन में अब बड़ी विकलता है ।
सपनों की बाते करने को, रानी का हृदय मचलता है ।।

कर प्रात-क्रिया, मुख प्रक्षालन, कह जय जिनेन्द्र स्नान किया ।
अन्तर मन से पति चरणों का, गुणगान किया, सम्मान किया ।।

॥ दोहा ॥

दासी ने प्रस्थान कर, झुक कर किया प्रणाम ।
देवि यशस्वती आ रहीं, दर्शन दे अभिराम ॥

प्रभुवर से आशीष ले, गयी सुनन्दा धाम ।
देवि चलें प्रभु दर्श को, ले जिनेन्द्र का नाम ॥

तन अतिशय पुलकित हुआ, मन में अति उल्लास ।
आंगन में बिखरा हुआ, मानों यही प्रकाश ॥

पग-पग पर सुख बिन्दु है, स्वाँस-स्वाँस सुखधाम ।
रोम - रोम से गूंजता, प्रियतम का शुभ नाम ॥

रुचिर स्नेह अतिरेक से, पग-पग पर विश्राम ।
है कण-कण में दीखता, अब प्रियतम छविधाम ॥

विह्वल होकर रख दिया, चरण कमल पर शीश ।
हर्षित हो प्रभु ने दिया, मंगलमय आशीष ॥

अति स्नेह, कर थाम कर, लिया निकट में धार ।
है प्रभुवर के प्रेम में, रानी का अधिकार ॥

–: सवैया :–

प्रभु आप कृपा के है सिन्धु बड़े, हमको जल बिन्दु भी दीजियेगा ।
हम तो हर भाँति तुम्हारी हुयी, नित ही हम पे प्रभु रीझियेगा ॥
अब प्रेम ही दीजियगा हमको, हम से अब प्रेम ही लीजियगा ।
जिस भांति से सेवा बने हमसे, उसको प्रभु स्वीकृत कीजियेगा ॥

तव-पंकज-पाद अलावा हमें, अब मंजु धरा पे ठिकाना नहीं।
जग काल कराल में क्या सुख है, सुख भाल सँभाल सजाना नहीं॥
प्रतिपाल को प्राण मराल को है, जग जाल में और फँसाना नहीं।
उर में जो समानी सुनानी तुम्हें, किसी और को आज सुनाना नहीं॥

—: दोहा :—

देवि सुनन्दा यशवती, दोनों ही प्रिय प्राण।
श्वाँस-श्वाँस से सोचता, दोनों का कल्याण॥
देवि यशवती से सुनूँ, हृदय कौन सी बात।
रात कली थी हो गयी, प्रातः ही जलजात॥
प्रिया हृदय की वासिनी, प्रिय पर कोमल प्यार।
अन्तर-अन्तर कर रहा, निर्मलतम सत्कार॥

★

हे देव! आप दैवज्ञ बड़े, तीनों कालों के ज्ञाता हो।
सुखदाता धार्मिक व्याख्याता, तुम ही तो जग के त्राता हो॥
तुम से ही जग की शंकायें, सब समाधान पा जाती हैं।
सूखे अन्तर में दया धर्म, सात्विकता बरसा जाती हैं॥
हे नाथ! रात मैंने विचित्र, सुन्दर सपनों को देखा है।
उनकी आभा करती प्रसन्न, मानों रवि शशि की रेखा है॥
कोई पृथ्वी को गहे हुये, पर्वत सुमेर अति सुन्दर हैं।
हैं सूर्य चन्द्रमा चमक रहे, जल से परिपूर्ण सरोवर है॥
बहु हंस युगल हैं तैर रहे, देखा समुद्र लहरों वाला।
इतनी ही मुझको मोह रही, यह अद्भुत सपनों की माला॥

हे प्राण नाथ ! यह इच्छा है, अद्‌भुत सपनों का फल जानूं ।
सुख-दुख से है सम्बन्ध तनिक, या फिर इनको यों ही मानूं ।।

अब त्रिकालज्ञ फल बतलादें, उर में स्थिरता आ जाये ।
जैसे जल धारा में बहती, मन की नौका तट पा जाये ।।

—: सवैया :—

अतिशील सुने, अति नेह सुने, प्रिय बोल सुने, हरषाने लगे ।
शुभ स्वप्न सुने, शुचि मंगल के, लख प्राण प्रिया मुस्काने लगे ।।

तरसे जल को, धरती तल को, मृदु शीतलता बरसाने लगे ।
सपने जो लखे प्रिया ने थे, इनके फल यों बतलाने लगे ।।

सपने में देखा गिरि सुमेर, जो जग में महिमा शाली है ।
सम्राट पुत्र होगा तेरा, तू माता वैभवशाली है ।।

सूरज सा होगा तेजवान, शशि सी तन की प्रतिमा होगी ।
उस तेज पुंज की जगती में, अद्‌भुत मौलिक प्रतिभा होगी ।।

जो हँस सरोवर में देखें, हँसों के गुण वाला होगा ।
अपने विशाल वक्षस्थल पर, लक्ष्मी धारण वाला होगा ।।

जो ग्रसी हुयी धरती देखी, धरती का वह स्वामी होगा ।
धरती पर जो भी जड़ चेतन, सबका वह हितकामी होगा ।।

चंचल लहरों वाला समुद्र, सपनों मे यह बतलाता है ।
सौ पुत्रों मे वह ज्येष्ठ पुत्र, जल्दी ही भू पर आता है ।।

हो गया नाम सार्थक तेरा, तेरा सुत जग पालक होगा ।
युग-युग जानेगी मनुज जाति, पहला जग जन नायक होगा ।।

ज्यों पूर्व दिशा की अरुणाई, दिन का आगम बतलाती है।
पलकें नीची कर यशवन्ती, अधरों अधरों मुस्काती है।।

—: दोहा :—

अन्तर में नारीत्व की, अनुपम उठी हिलोर।
बढ़ी श्रवण तक आ गयी, अरुणाई की कोर।।

एक ओर संकोच है, एक ओर उल्लास।
एक ओर सुख की घटा, एक ओर विश्वास।।

प्राण-प्राण में फँस रहे, प्राण-प्राण के पास।
प्राण-प्राण से पा रहे, जीवन का आभास।।

पति पग का स्पर्श कर, लज्जा गुण गम्भीर।
आयी निज रनिवास में, प्रति पग बाँधे धीर।।

—: सवैया :—

प्रिय के प्रति और बढ़ी प्रियता, प्रिय की छवि से है अघाती नहीं।
सब ओर निहारती है छवि को, मन मोहक मूर्ति दिखाती नहीं।।
अनुगूँज रही, सब में सुनती अपनी, सब को पे सुनाती नहीं।
उर में ममता का सुराग लिये, निज भेद किसी को बताती नहीं।।

★

श्री सी शोभा पा यशस्वती, कुन्दन कलिका सी खिली हुयी।
सम्पूर्ण पूर्णिमा की शोभा, लगती है इसमें मिली हुयी।।
दिन तो लगते है सोने के, अब तो चांदी की राते हैं।
बातें अतिशय रसवाली हैं, सचमुच रसमय बरसाते हैं।।

शुभ सरस निशा में रानी ने, प्रिय के संग में रसपान किया।
उस निशि में प्रतिक्षण में छवि का, रानी ने सब कुछ जान लिया ।।

जब से रानी को गर्भ रहा, चर्या में मन्थरता आयी।
धीरे - धीरे हो चली लोप, मुख मण्डल की नव अरुणाई ।।

कर चुकी तेज ऐसा धारण, समता जगती में बची नहीं।
सूरज में सन्मुख आने की, मानों अब हिम्मत रहीं नहीं ।।

श्री यशस्वती विचरण करती, रुचिकर निहारती रहती थीं।
चित में स्थिरता रही नहीं, मन में विचारती रहती थीं ।।

रानी का चित चंचल न रहे, कुछ ऐसे ढंग रचे जाते।
हँसती फुलवारी इधर - उधर, सुमनों के हार रखे जाते ।।

जो-जो रानी इच्छा करती, तत्काल दासियाँ लाती थीं।
रानी को जो रुचिकर लगता, दासियाँ उन्हें दे जाती थीं ।।

उड़ते कपोत के युगलों को, हँसों के पास बुलाती हैं।
हँसों को मोती विहगों को, भोजन अनुकूल खिलाती हैं ।।

हिरनों पर हाथ फेर देती, दूर्वादल कभी खिलाती हैं।
शावक को परे खड़ा करती, धीरे से कभी बुलाती हैं ।।

कुछ क्रौंच सरोवर के तट से, रानी को बोल सुहाते हैं।
अथवा मीठी वाणी द्वारा, देवी को निकट बुलाते हैं ।।

॥ दोहा ॥

मन की चंचल वृत्ति से, यों बीते नौ मास।
मुख पर तनिक उदासता, अन्तर में उल्लास ।।

दास दासियाँ अतिमुदित, और मृदुल व्यवहार।
भाँति-भाँति से कर रहीं, देवी का सत्कार।।

ऋषभ देव भी देवि पर, रखें अनूठा प्यार।
हर्षित हो करते रहें, इच्छायें स्वीकार।।

नाभिराय मरुदेवि का, रखते पूरा ध्यान।
जन्म-जन्म के पुण्य का, तरु होगा फलवान।।

जगवासी प्रतिक्षण लखें, उदित होय कब भाल।
किस क्षण प्रतिपालक जनें, यशस्वती माँ लाल।।

-: सवैया :-

सुत जन्म का वह क्षण आ पहुंचा, जिसकी कि प्रतीक्षा रही कब से।
शुभ गान के आ पहुँचे क्षण हैं, अब लौं जो रहे बस नीरव से।।

सब को लगता मम जीवन का, आरम्भ हुआ सचमुच अब से।
तब से यह पर्व तो आया नहीं, प्रभु आदि का जन्म हुआ जब से।।

शुभ गीता मंजु मराली बनी, मिल किन्नर वाद्य बजाने लगे।
सुन के घननाद प्रसाद भरा, अपने मन में हैं लजाने लगे।।

विद्याधर चारण से बन के, 'नागेन्द्र' को गीत सुनाने लगे।
नभ से है प्रसून की अँजलियाँ, सुन किन्नर मोद मनाने लगे।।

नागेन्द्र जिनेन्द्र अनुग्रह है, उनकी ही कृपा का स्वरूप मिला।
जिसकी मन में अभिलाष रही, सुत उसके ही अनुरूप मिला।।

छवि में है मनोज लजाया हुआ, शिशु को शुभ रूप अनूप मिला।
वर भूप को, देव, प्रजाजन को, सब को सब का वर भूप मिला।।

अब याचक आज न याचक है, इतना सब को बहु दान दिया।
अब और न चाह रही रस की, इतना सबने रस पान किया॥

अब कौन यहाँ नृप के सम है, इतना सबने पहिचान लिया।
सुरराज ने और प्रजाजन ने, मिलके शिशु का यश गान किया॥

—: दोहा :—

धूम धाम चहुँ ओर है, घर - घर मंगलचार।
लुटा रहे सब हृदय से, शिशु पर प्यार दुलार॥

जन्मोत्सव सन्देश से, प्रमुदित हुआ समाज।
वन्दनवारें बाँधता, लगा स्वयं ऋतुराज॥

★

भूपति के द्वारे भीड़ लगी, खुशियों का नहीं ठिकाना है।
सम्पूर्ण अयोध्या धन्य हुआ, उपयुक्त समय पहचाना है॥

घर-घर में मुखर बधावे है, संगीत आज मनभाये हैं।
यह शुभ दिन है जिसमें सबने, अपने मनवांछित पाये हैं॥

सब मण्डलीक, गणपति, गढ़पति, संदेशा सुनकर आये हैं।
जैसी जिसकी जितनी क्षमता, वे भेट संजोकर लाये हैं॥

श्री नाभिराय स्वीकार रहे, था मूल, व्याज अब पाया है।
अब तक खुशियों का पर्वत था, पर्वत ने शीश उठाया है॥

कर रहीं अप्सरा नृत्य कहीं, रागों की मधुर बहारें हैं।
जो बधाइयाँ देने आये, उनकी लग रहीं कतारें हैं॥

विज्ञों ने बतलाया सुत के, शुभ लक्षण बड़े निराले हैं।
ऐसे लक्षण देखे न कभी, अब तक जो देखे भाले हैं॥

राजाओं का राजा होगा, धरती इससे सुख पायेगी।
जनता ऐसा राजा पाकर, अन्तर में अति हरषायेगी ॥

धन से, वैभव से, समता से, सारी धरती को भर देगा।
मेटेगा सारे भेद भाव, धरती रत्नाकर कर देगा ॥

शुभ नाम भरत उत्तम इसका, जन के सुख का भर्ता होगा।
जन मन में नयी चेतना का, यह ही, अद्भुत कर्ता होगा ॥

इस भांति अनेक समूहों ने, आशीष दिये उषमान दिये।
कुछ ने जय मंगल गान किये, कुछ ने अपूर्ण सम्मान दिये ॥

बालक के चरणों में शोभित, चौदह रत्नों के चाकर हैं।
शुभ चक्र, छत्र, तलवार, दण्ड, मानवता उच्च प्रभाकर हैं ॥

वर भरत पत्र के साथ-साथ, ब्राह्मी पुत्री सुखदाई है।
भाई बहिनों की यह जोड़ी, सब के ही मन को भायी है ॥

इस यशस्वती ने क्रम-क्रम से, दो-दो पुत्रों को जन्म दिया।
इस तरह एक कम सौ सुत को, पहली रानी ने जन्म दिया ॥

सुत भरत जगत में सिद्ध हुये, श्री ऋषभदेव के द्युति वाले।
उनके समान ही मति वाले, उनके समान ही गति वाले ॥

॥ दोहा ॥

ऋषभदेव की शुभ प्रिया, कोमल, शील स्वाभाव।
देवि सुनन्दा गुणवती, प्रिय प्रति अतिशय चाव ॥

ऋषभदेव का प्रेम है, दोनों ओर समान।
ज्यों धनु के द्वय-कोण में, हैं डोरी की तान ॥

देवि सुनन्दा प्राप्त कर, प्रिय से शुचि अनुराग।
जिससे रानी मानती, अपना धन्य सुहाग ।।

★

मंगल की मूर्ति सुनन्दा ने, आदर्श पुत्र को जन्माया।
अतिशल बलधारी बाहुबली, बलशाली की विशाल काया ।।

सुन्दरी नाम की शुभ कन्या, धरती तल पर अवतरित हुयी।
जैसे जय-कीर्ति सुनन्दा की, बहती सरिता सी उदित हुयी ।।

सुत बाहुबली सुन्दर इतने, हर नेत्र निरख हरषाता था।
सौधर्म इन्द्र छवि के आगे, शरमाता था, सकुचाता था ।।

चौबीस कामदेवों में यह, वर कामदेव कहलाते थे।
मन्मथ, मनोज, अंगज, अनन्यज, मदनादिक नाम सुहाते थे ।।

सुत भरत और वर बाहुबली, दोनों शोभा के बिन्दु हुये।
बाबा-दादी, माता पितु के, सबकी खुशियों के सिन्धु हुये ।।

–: दोहा :–

वहाँ कमी किस चीज की, जहाँ ऋषभ भगवान।
जो जैसे जुड़ जायेगा, पायेगा वरदान ।।

कुल बधुये सुत अरु सुता, सकल जगत धन धान्य।
नाभिराय अरु ऋषभवर, हुये जगत को मान्य ।।

पढ़े सुने इस खण्ड को, उर में रख प्रभु ध्यान।
जग सुख का भाजन बने, पावें सुयश महान ।।

संसति शिक्षा वर्णन

॥ दोहा ॥

वही पिता जग धन्य है, वही जगत विद्वान।
जिसके अमित प्रभाव से, संतति बने महान ॥

कौन चाहता है नहीं, जिसके कर में ज्ञान।
अपने तन, धन, ज्ञान से, संतति का कल्याण ॥

वही पिता जग मूढ़ है, वही बड़ा जग मूढ़।
जो सुत सम शुचि बाल प्रति, है कर्त्तव्य विमूढ़ ॥

गुरुजन का कर्त्तव्य है, हित की सोचे बात।
किसको सुख मिलता नहीं, जब आता है प्रात ॥

होता अति संतोष है, निज सम सुत को देख।
सुत में सबको दीखती, उजली सुख की रेख ॥

★

जब पूर्व दिशा से सूरज ने, स्वर्णिम चादर आ फैलायी।
कण-कण भू का पत्ता-पत्ता, पी गया हृदय से अरुणायी ॥

कलिका-कलिका हो उठी पुष्प, पुष्पों को भौंरे चूम उठे।
हलका शीतल वह चला पवन, तरु, लता आदि सब झूम उठे॥

जड़ में, चेतन में, चेतनता, संचरित हुयी सी दिखलायी।
जीवन की गति तट से मिलकर, उठती लहरों ने सिखलायी ॥

सर्वत्र नयी सी कीर्ति दिखी, जीवन में नूतनता आयी।
अलसाये पलकों पर बिखरी, उगते यौवन की अरुणायी ॥

श्री ऋषभदेव भवनांचल के, मनहर प्रांगण में डोल रहे।
दूसरी ओर पक्षी, जातक, मधुरिम कलरव-रस-बोल रहे।।

देखा प्रभु सूखी धरती पर, जीवन है नया उतर आया।
अँधियारी रात अभी तो थी, उजियारा सब में भर आया।।

सोचा प्रकाश से बड़ा कौन, जग में प्रकाश की माया है।
सब कुछ प्रकाश का दिया हुआ, हमने जो कुछ भी पाया है।।

जब तक प्रकाश की किरण नहीं, तब तक घेरे अँधियारा है।
किसको प्यारा है अँधियारा, सबको प्रकाश ही प्यारा है।।

उग कर प्रकाश ही जीवन में, खुशियों के फर्श बिछाता है।
जिसमें भी नई चेतना है, वह ही इस पर चल पाता है।।

चेतना समय की जागृति है, जीवन इसको ही कहते हैं।
जो ठीक समय पर जागे है, वे जग में जीवित रहते हैं।।

चेतन मनुष्य ही जगती को, जीवन अनुपम दे पाता है।
प्राणी समूह को सुख देकर, निज जीवन सफल बनाता है।।

जिसमें प्रकाश का पुंज बसा, चेतन को प्रखर बनाता है।
सुन्दर को सुन्दरतर करना, चेतन का कार्य कहाता है।।

यह घर बाहर साम्राज्य आदि, सब ही सुन्दरतर हो जाये।
रे ऋषभ अवतरण धरती पर, तब सफल निरन्तर हो जाये।।

तब ही यह जीवन सार्थक है, सब के हित अर्पित हो जायें।
बन कर कर्त्तव्य परायण हम, जन-जन का सेवक कहलायें।।

—: दोहा :—

इस प्रकार प्रभु ऋषभ के, मन में भाव अनेक।
जग के शुभ कल्याण को, जागा विमल विवेक।।

ज्यों सूरज के तेज का, बिखरा विपुल समूह।
रच देता है जगत में, जागृति सुख का व्यूह।।

ज्यों ही पहले जाग कर, बरसा कर रसधार।
ऋषभ देव भगवान ने, किये कार्य हितकार।।

जिसका जीवन जगत में, अर्पित सेवा - हेतु।
उसका ही तो जगत में, लहराता यश-केतु।।

—: सवैया :—

जिसने नर देह को पाकर के, शुभ ज्ञान की ज्योति जगायी नहीं।
उर में शुचि ज्ञान उजाला हुआ, पर ज्ञान की बात बतायी नहीं।।

मन में अनुराग का रास लिया, पर और को राह सुझायी नहीं।
उसकी नर देह तो व्यर्थ गयी, जिससे बन पायी भलायी नहीं।।

अब तो मेरा यह निश्चय है, सब को ही आज जगाना है।
जो जगा न पाता औरों को, वह जीवन व्यर्थ गंवाना है।।

जन की सेवा मैं कर पाऊँ, प्रभु वर से एक मनौती है।
जग मे फैला यह अंधकार, मुझको तो एक चुनौती है।।

मैं देख रहा घर आंगन में, सागर रहता लहराता है।
सब कुछ हो जाये उपयोगी, सोचता हृदय अकुलाता है।।

सार्थक संसति का जीवन हो, हर ओर कलायें खिल जायें ।
जो कुछ अनजाने अभी सूत्र, सारे संतति को मिल जायें ।।

व्यवहार ज्ञान है बढ़ा चढ़ा, दुनिया है इस पर टिकी हुई ।
व्यवहार ज्ञान वह कीली है, जिस पर दुनिया है रुकी हुई ।।

लिपि चिन्ह बताऊँ मानव को, अंकों की विद्या सिखलाऊँ ।
कितना वैभव है छिपा हुआ, निश्छल मानव को दिखलाऊँ ।।

सब की क्षमता न समान यहाँ, सब को समान है ज्ञान नहीं ।
सब की स्मृति है तीव्र नहीं, रहता है सबको ध्यान नहीं ।।

कुछ का होता हित बहुत बड़ा, निश्चय कुछ का कम हित होगा ।
इस तरह ज्ञान इस धरती पर, कुछ लोगों तक सीमित होगा ।।

—: दोहा :—

पाय सब शुचि ज्ञान को, क्षमता के अनुकूल ।
पर निस्तारक ज्ञान को, खिले हर्ष के फूल ।।

लिखने को लिपिचिन्ह हो, आकृति परम ललाम ।
लिखें-पढे सब मौज से, करे अनूठे काम ।

आने वाली पीढ़ियाँ, करतीं रहें विकास ।
मानव के मृदु ज्ञान का, फैले जगत उजास ।।

युग-युग तक जीवित रहे, जन का विमल प्रकाश ।
जन गाथा कहता रहे, लिखा मनुज इतिहास ।।

जो जग की चिन्ता करे, ऐसे थोड़े लोग ।
ऋषभदेव जग को मिले, शुभ सुन्दर संयोग ।।

-: सवैया :-

शुभ ज्ञान के दान का भाव उठा, जग में नव ज्योति जगाने चले।
उर में निधि प्रेम का रोर उठा, जगती जन को पुलकाने चले।।

जग में नव ज्योति जगेगी अहा, हुलसे उर से हुलसाने चले।
अभिमान न मान न है उर में, शुचि ज्ञान का मान बढ़ाने चले।।

पहले व्यवहार का ज्ञान दिया, उसको ही प्रथम सुनाता हूं।
व्यवहार ज्ञान में पारंगत, प्रभुवर को शीश नवाता हूं।।

प्रिय भरत और सुत बाहुबली, आंगन में जब आकर खेले।
जुड़ गये स्वयं गृह मन्दिर में, सहयोगी मित्रों के मेले।।

पितु ऋषभदेव ने पुत्रों को, अपने नजदीक बिठाया है।
कैसे समता, ममता जागे, कुछ इस प्रकार समझाया है।।

तुम देख रहे हो लता गुल्म, फल, पुष्प, कली रस प्याली है।
पत्ते-पत्ते के कारण ही, यह आकर्षक हरियाली है।।

झूमती लताएँ वृक्षों पर, जिन पर खगबृन्द चहकते हैं।
मदमाते भौंरे मण्डराते, खिल खिल कर पुष्प महकते हैं।।

पग-पग पर नूतनता बिखरी, कैसी मनहर चंचलता है।
शोभा सर के आनंद हेतु, सब का ही हृदय मचलता है।।

शोभा कारक यदि घटक सभी, अपनी प्रभुता पर मान करे।
अपनी पर आकर स्थापित, यदि अलग-अलग पहचान करे।।

सुन्दरता होगी कहीं नही, विलगाव सिन्धु लहरायेगा।
होंगे न यहाँ सुन्दर मोती, जब द्वेष नीर बह जायेगा।।

इसलिये सभी मिल एक रहो, सब की अपनी-अपनी गरिमा ।
जब रक्खोगे सब की गरिमा, ऊँचो हो जायेगी महिमा ॥

बन कर के तन, मन से विशाल, हिमगिरि से महिमावान बने ।
अन्तर में गंगा धार लिये, तुम जगत हेतु विद्वान बने ॥

॥ दोहा ॥

कहा ऋषभ ने हे सुतों, समझो जगत समान ।
कौन चाहता है नहीं, जग-सुख, यश, बल, मान ॥

हैं प्रकाश देती घना, निशि दीपक की माल ।
एक दीप के सामने, झुका न तम का भाल ॥

प्रथम पाठ है एकता, रखो हृदय के धाम ।
बिना एकता के यहाँ, बने न कोई काम ॥

-: सवैया :-

सच से न बड़ा जग में कुछ है, सच ही जग मे अपनाना तुम्हें ।
सच का बल पाकर आगे बढ़ो, सच को अपना न लजाना तुम्हें ॥

सच को निज लक्ष्य बनाये हुये, सच के पथ पे बढ़ जाना तुम्हें ।
सच का व्रत धार लिया हमने, सत-कर्म से आज दिखाना तुम्हें ॥

जग झूठ का पंथ चुना जिसने, उसका जग में न ठिकाना मिला ।
मन का धन चोर लिया जिसने, उसको सुख का न खजाना मिला ॥

सुख नींद न पा सकता जग में, जिसको जग मे लालच ही रहा ।
हर कर्म में झूठ चुना जिसने, उसको निज धर्म बचा ना मिला ॥

-: दोहा :-

सत्य, अहिंसा, न्याय औ, उत्तम विमल विचार।
ऋषभदेव भगवान ने, सिखलाये सुखकार॥

ममता, समता, मित्रता, प्रभुता में मद, मान।
जो भी जन रखता नहीं, वह ही है विद्वान॥

जिसने भी संतोष है, लिया जगत में सीख।
क्षमता भर कर कर्म को, क्यों मांगेगा भीख॥

समता का व्यवहार ही, उपजाता है प्यार।
उभय पक्ष रहता बना, दोनों का अधिकार॥

निज सुत, सुत-वय-बाल को, रख भविष्य का ध्यान।
ऋषभदेव भगवान ने, दे व्यवहारिक ज्ञान॥

★

सुन्दरी व ब्राह्मी दुहितायें, करती प्रणाम दोनों आयीं।
मानो लक्ष्मी या सरस्वती, अथवा दोनों की परछाईं॥

ऋषभदेव ने दोनों को, मन ही मन मे आशीष दिया।
दोनों ने अपनी शोभा से, श्री-पिता हृदय को जीत लिया॥

दाहिनी ओर ब्राह्मी शोभित, सुन्दरी दूसरी मीत हुयी।
दोनों को सम वात्सल्य मिला, दोनों को सुन्दर जीत हुयी॥

गोद में बिठाये दोनों को, प्रभु फूले नहीं समाते हैं।
शुभ ज्ञान दान को स्वर्ण-पट्ट, वायें कर आप उठाते हैं॥

शुभ देव शुभम् अंकित करके, सिद्धोपचार का वाक्य लिखा।
तब नेत्र मूंद कर ध्यान रम्य, शुभ णमोकार का वाक्य लिखा॥

दाहिने हाथ से वर्ण माल, लिख कर प्रभु ने दिखलायी है।
ब्राह्मी पुत्री को ब्राह्मी लिपि, प्रभुवर ने लिख सिखलायी है॥

पुत्री को अति आश्चर्य हुआ, लिपि का आकार निहारा है।
स्वर की व्यंजन की सत्ता है, दोनों का संगम प्यारा है॥

धीमें-धीमें वह योग्य सुता, अक्षर को अधिक सजाती थी।
आकार अक्षरों को देकर, उनका स्वरूप चमकाती थी॥

अक्षर मिलकर फिर शब्द बने, शब्दों से वाक्य बने सुन्दर।
वाक्यों में गाथायें मुखरित, जिनमें गुंजित हैं, भाव प्रखर॥

व्याकरण ऋषभ ने सिखलाया, जिसमें संयम की भाषा हो।
सीखे अगली पीढ़ी जिससे, जिसमें गर्भित जिज्ञासा हो॥

हो गये और बालक प्रबुद्ध, सीखने लगे वे भी भाषा।
नित नये-नये की आशा में, जगती ही जाती अभिलाषा॥

सब ओर फैलने लगी बात, लिपि का है अविष्कार हुआ।
सीखने हेतु बच्चा - बच्चा, अन्तर मन से तैयार हुआ॥

फिर जहाँ-तहाँ बहु बाल वृन्द, लिखने पढ़ने में लीन हुये।
व्यवहार ज्ञान के साथ-साथ, अभ्यास आदि लवलीन हुये॥

॥ दोहा ॥

ब्राह्मी दुहिताएं हुयी, लिपि विद्या निष्णात।
सब समाज हर्षित हुआ, पाकर स्वर्ण प्रभात॥

★

सुन्दरी सुता को प्रभुवर ने, अंकों की विद्या सिखलायी।
किस तरह अंक बढ़ते बनते, वह कला स्वयं ही मन भायी॥

बहुललित कलायें सिखलाकर, आश्चर्य भाव से पूर्ण किया।
अज्ञता विराजी अन्तर में, उसका वैभव चूर्ण गिरि किया॥

सब ओर कलायें सरक चलीं, मानों ये कला लतायें है।
निज आकर्षण में बाँध चलीं, मानों सुन्दर कलिकायें हैं॥

सब ओर लगे उत्सव होने, सब ओर मंगलाचरण हुये।
बढ़ करके सभी दिशाओं ने, श्री ऋषभदेव के चरण छुये॥

भगवान ऋषभ ने पुत्रों को, नाना प्रकार का ज्ञान दिया।
है कला पास समझाने को, सबने रहस्य पहिचान लिया॥

कैसे अनेक विद्या सीखें, सब के हित सर्व हिताय लिखे।
हितकारी विद्या के रहस्य, सब को ही आते पास दिखे॥

सुत ज्येष्ठ भरत को प्रभुवर ने, वर अर्थशास्त्र समझाया है।
नाना विधि नृत्य शास्त्र उनको, प्रभुवर ने स्वयं सिखाया है॥

सुत वृषभसेन को नेह सहित, गन्धर्व शास्त्र व्याख्यान किया।
कैसे व्यवहृत हो कला आदि, सुत अमित विजय को ज्ञान दिया॥

गज अश्व धनुविद्याओं का, गुरु ज्ञान दिया है समझाकर।
नामारूप बलशाली सुत, श्री बाहुबली बल रत्नाकर॥

—: कवित्त :—

गाय और वृषभों के, नर और नारियों के,
पशुओं के पक्षियों के, लक्षण बताये हैं।

द्यूत विद्या, वार्तालाप, विधि पासा फेकने की,
नगर की रक्षा हेतु, सूत्र समझाये हैं॥

पात्र निर्माण, शय्या, वस्त्र निर्माण आदि,
बतला सुगन्ध के, पदार्थ बनवाये हैं।
कविता, प्रहेलिका, गाथा श्लोक रचनादि,
अमित कला से युक्त पंथ दिखलाये हैं ॥
सैन्य ज्ञान, व्यूह रचना के संग रण कला,
भांति-भांति युद्ध की कलाये सिखलायी हैं।
सूर्य, चन्द्र, राहु-ग्रह आदि की बता के गति,
मंत्र-तंत्र, साधना की विधि समझायी है ॥
भाग्य दुर्भाग्य को बताने की बता के कला,
पक्षियों की बोली शुभाशुभ बतलायी है।
स्वर्ण पाक, मणि पाक, धातु-पाक आदि-आदि,
उपयोगी कलाये सभी को दिखलायी हैं ॥
बालकों को विविध कलाये बतलायी और,
विद्या पंथ दिखला के चतुर बनाये हैं।
दिन रात, चारो ओर, भांति-भांति काम देख,
आयु बाल नारि - नर मन हरषाये है ॥
जीवन की जगत की, जीवन के दृष्टि की भी,
बदल गयी है दृष्टि, फूले न समाये है।
जीवन का रोम-रोम हो उठा प्रफुल्ल काम,
जनता ने खुशियों के फूल बरसाये हैं ॥
सीखने सिखाने की न इतनी कलाये देखी,
देखी जितनी कि पथ देती आदिनाथ में।

जग हित हेतु और होगा कौन साधक भी,
जितनी कि साधनायें देखीं, आदिनाथ में ।।

किसने दिया है जग, इतना वृहत् ज्ञान,
जितना असीम विद्यमान आदिनाथ में ।

ये भी सोच पाना हम सबको कठिन बड़ा,
कौन, क्या दिया न भगवान आदिनाथ में ।।

।। दोहा ।।

ज्ञान सिन्धु बिखरा दिया, है विस्मय की बात ।
आदिनाथ सूरज हुये, आया स्वयं प्रभात ।।

नया-नया जग हो गया, पाकर परम प्रसाद ।
सुख के सब साधन हुये, बीता तमस् विषाद ।।

पढ़े सुने इस खण्ड को, जो धर कर उल्लास ।
ऋषभदेव पूरण करें, उस जन की अभिलाष ।।

लोक व्यवस्था वर्णन

-: कवित्त :-

आये थे ऋषभदेव वन के मरीचि-माली,
तृण-तृण करके प्रकाशित जगा दिया।
अज्ञता न टिक पायी औ न अनभिज्ञता ही,
अन्दर का बाहर का तमस भगा दिया॥
मिटा भोग वाली वृत्ति कर्म की जगा दी ज्योति,
सेवा-व्रत के ही शुचि प्रेम में पगा दिया।
शिल्प की, कला की, दे के नाना विधि दिशा-निधि,
हर क्षमता का जन कर्म में लगा दिया॥

★

देखा प्रभु ने फलवती प्रकृति, है आप-आप ही बदल रही।
क्षण-क्षण नूतन परिवर्तन की, लीला अन्तर में मचल रही॥
शुभ भोग काल मे कल्प वृक्ष, वह दस प्रकार के कहलाते।
जिसकी जितनी जो इच्छाये, उनका उनमें पूरक पाते॥
इसलिये व्यक्ति में कर्म और, बढ़ने की इच्छा जगी नहीं।
सौन्दर्य कर्म के प्रति जन को, प्रिय लगन हृदय मे लगी नहीं॥
धीरे-धीरे वे कल्प वृक्ष, सूखी सरिता के रूप हुये।
बूढ़े वृक्षों से फल देते, वृक्षों के ही अनुरूप हुये॥
तब अन्य रूप की औषधियाँ, फल, पुष्प आदि से हीन हुयी।
रस वीर्य, पाक से रहित हुयी, मानों सर्वस्व विहीन हुयी॥

उगता भू पर था धान्य बहुत, उससे सब काम चलाते थे।
था पाक आदि का ज्ञान नहीं, कच्चा ही सब खा जाते थे ॥

पीड़ित रहते जब तक अनेक, नाना प्रकार के रोगों से।
मिलता जन को संतोष नहीं, तब इस प्रकार के भोगों से ॥

सुखवती धरा की गोदी में, जन को रोगों का योग मिला।
प्रतिक्षण पर पीड़ा ही पीड़ा, अच्छा भोगों का योग मिला ॥

सुख बदल-बदलकर के ऋतुयें, निज शक्ति बताने आतीं थीं।
करने पीड़ा का दान कुटिल, बहु भांति सताने आतीं थीं ॥

हर रोज समस्यायें नूतन, जिनका कोई उपचार नहीं।
कैसे जन जीवन सुखी बने, जब तक कोई आधार नहीं ॥

सब ओर देख कर संकट को, नृप नाभिराय के पास गये।
अन्तर पीड़ा के प्रकट रूप, मुख लेकर सभी उदास गये ॥

जाकर के निकट कष्ट गाथा, दुखियों ने सभी सुनायी है।
देखा नृप ने सब दुखी बहुत, कहने तक में कठिनाई है ॥

—: दोहा :—

कहा नृपति ने दुखित हो, धरो हृदय में धीर।
ऋषभदेव बलवीर हो, सकल हरेंगे पीर ॥

तुम सब जाकर निकट में, करो निवेदन आप।
त्रिकालज्ञ प्रभु ऋषभवर, दूर करें संताप ॥

दुखी प्रजाजन विफल हो, पहुँचे प्रभु के पास।
नयन नीर कम्पित विपुल, जनमुख मलिन उदास ॥

-: सवैया :-

तब द्वार के दीन अधीन हुये, प्रभु हो के दयालु दया करिये ।
अपराध जो नाथ बने हमसे, अब हो के कृपालु क्षमा करिये ।।
ममता, समता के हो सिन्धु पभो, थोड़ी सी देव दया करिये ।
हर भांति से हार थके हम हैं, अब जीवन नाथ नया करिये ।।

।। दोहा ।।

दुखी प्रजा जन से सुने, वचन बड़े ही दीन ।
सरल-हृदय बोले मधुर, ऋषभ महान प्रवीन ।।

★

होवे न दुखी कोई जन भी, कुछ दृष्टि समय की बदली है ।
कुछ परिवर्तन के हेतु प्रकृति, अब आप स्वयं ही मचली है ।।
परिवर्तन जीवन की गति है, परिवर्तन ही युग की मति है ।
वह कभी दुखी होता न यहां, परिवर्तन में जिसकी रति है ।।
दीपक के जलते रहने को, थोड़ी सी वायु अपेक्षित है ।
लेकिन उसकी रक्षा को भी, थोड़ी भी आड़ सुरक्षित है ।।
जैसा - जैसा अवसर आये, वैसा रुख हमे बदलना है ।
पत्थर सा बनना हमें कभी, बन कर के मोम पिघलना है ।।
युग भोग भूमि का सत्य हुआ, युग कर्म भूमि आरम्भ हुआ ।
शुभ कर्म भूमि को प्रतिभा के, दर्शन का शुभ प्रारम्भ हुआ ।।
पहले सब कुछ उपलब्ध रहा, अब तो सर्वस्व जुटाना है ।
सर्वस्व जुटाने को पहले, तन, मन को खूब लुटाना है ।।

जीवन निर्वाह योग्य चीजें, धरती-अंचल में भरी पड़ी।
उपयोग मार्ग पहले सीखो, फसलें अन्नों से भरी खड़ी॥

सुन एक प्रजाजन यों बोला, कैसे इनका उपयोग करें।
सब को फसलें हों हितकारी, प्रभुवर कैसे उपयोग करें॥

प्रभु बोले पहिले फसल चुनो, फिर सारा अन्न सुखा डालो।
फिर स्वच्छ पत्थरों से उसको, रगड़ो बारीक बना डालो॥

लेकर के मिट्टी का बर्तन, इस पिसे अन्न को भरना है।
धीरे - धीरे मलते जाना, पानी से गीला करना है॥

तुम सब ज्वाला से परिचित हो, बांसों से अग्नि सुलगती है।
परिवेश भयंकर हो जाता, जब-जब भी ज्वाला लगती है॥

तुम अग्नि सुरक्षित घर रक्खो, उपयुक्त समय उपयोग करो।
चन्दा के सदृश गोल रोटी, पहले सेंको उपयोग करो॥

इस तरह तुम्हें होगा न अपच, तुम सबको उपयोगी होगा।
चौगुना स्वाद पाओगे तब, मन जीवन संयोगी होगा॥

जब कभी अग्नि हो जाये खत्म, चिन्ता करने की बात नहीं।
दो बांस रगड़ उत्पन्न करें, बिल्कुल चिन्ता की बात नहीं॥

यदि कभी आग ले पवन संग, धारा सी बलखाती आये।
उससे बचने का यत्न करे, कर मलता कभी न घबराये॥

लम्बी घासों को साफ रखो, ज्वाला की सीमा सिमटेगी।
हर घर होगा आनन्द भवन, हर कुटी झोपड़ी चमकेगी॥

यह बात और सुनते जाओ, फसलों को स्वयं उगाना है।
इसलिये बीज की रक्षा में, अपने को स्वयं लगाना है॥

फसले बोना, पानी देना, पोषण की विधि सिखलायीं हैं।
जिससे नित कृषि की उन्नति हो, सारी विधियां बतलायीं हैं॥

-: दोहा :-

इस प्रकार प्रभु ऋषभ ने, देकर कृषि का ज्ञान।
क्षुधा-कष्ट को मिटाकर, किया मनुज कल्याण॥

★

लग गये प्रजाजन खेती में, चहुँ दिशि फसले लहलहा उठीं।
वन उपवन कितने नये लगे, लतिकाये बहु महमहा उठी॥
जो कल तक निष्क्रिय से दिखते, अब कहां बात को समय बचा।
इस तरह ऋषभ ने जनहित में, जीवन दाता निर्माण रचा॥
पशु भी हो गये सहायक अब, उनको अभ्यास कराया है।
खेती में इनका योग बड़ा, सबने अपना पथ पाया है॥
इस तरह लोक में आप-आप, पशुधन पालन का चाव बढ़ा।
संतान सदृश पशुओं के प्रति, ममता, मृदुता का भाव बढ़ा॥
अब पशु घर-घर ये दीख पड़े, माधुर्य-लता का पान किये।
बढ़ चली सृष्टि सभ्यता ओर, अपने भविष्य का ध्यान किये॥

॥ दोहा ॥

एक दिवस प्रभु ऋषभ ने, बैठ सभा के बीच।
रक्षा के दृढ भाव से, दिया सभी को सींच॥
सरिताये निज शक्ति से, लातीं, नीर बटोर।
जलनिधि पाकर नीर को, होता परम विभोर॥

वह रक्षा की दृष्टि से, होकर के गम्भीर।
रखता है बहुयत्न से, नीर बड़ी जागीर॥

★

केवल खेती से ही समृद्धि, हो जाय तनिक असम्भव है।
नाना विधि क्रिया कलाओं से, खेती की उन्नति सम्भव है॥

अधिकांश लोग कृषि कार्य करें, जन, मन पशु-पक्षी सुख पायें।
जो और कला या विद्या है, वे उनमें कौशल दिखलायें॥

जो पर रक्षा को अर्पित हैं, जिनको तलवार सुहाती है।
जन की रक्षा में तत्पर हो, दुर्जन को भूमि सुलाती है॥

तन शस्त्र धार सेवा करना, कर्त्तव्य यही कहलाता है।
सज्जन का मान बड़ा करता, दुर्जन का मन दहलाता है॥

कुछ लोक धर्म असि पालन कर, अपनी समृद्धि बढ़ायेंगे।
ये असि धर्मी रक्षार्थ व्रती, जग में क्षत्रिय कहलायेंगे॥

व्यापार और पशु पालन में, अथवा कृषि में रुचि लायेंगे।
निज कौशल से समृद्धि हेतु, वे जग में वैश्य कहलायेंगे॥

जिनमें कौशल है शिल्पों का, उनकी प्रतिभा को अवसर दो।
उनको यश दो, धन वैभव दो, उनमें भी नव जीवन भर दो॥

बहु शिल्प आदि से मानव की, सेवा में सुरुचि दिखायेंगे।
वे ही समाज के श्रेष्ठ अंक, वे वर्ण श्रमिक कहलायेंगे॥

जो शिल्पकार सेवकगण हैं, उनका हित साधन करना है।
न्यायोचित जन इच्छानुकूल, उनको वैभव से भरना है॥

जो पढ़ लिख कर सेवा व्रत से, अपनी जीविका चलायेगे।
ऐसे विद्वान कुशल ज्ञानी, वे मसि धर्मी कहलायेगे ॥

-: कवित्त :-

सोच जगती का हित सुन्दर प्रबन्ध किया,
जनहित कामी प्रभु ऋषभ महान ने।
असि, कृषि, मसि, विद्या, शिल्प आदि षट्कर्म,
उपदेश दिया प्रभु ऋषभ महान ने ॥
कर दी समाज मे व्यवस्था तीन वर्ण वाली,
कर्म की प्रणाली दे दी ऋषभ महान ने।
जन, मन, धन का विकास समुचित रहे,
उचित प्रबन्ध किया ऋषभ महान ने ॥
दिशि-दिशि कर्म की प्रणाली रस वाली चली,
जन-जन जग वाटिका का माली हो चला।
पा के मतवाली गंधवाली पवनांजलि को,
जन जन फल फूल वाली डाली हो चला ॥
घर-घर शिल्प की कलाये ले बलाये बढ़ी,
जन-जन आज कर्म की प्रणाली हो चला।
जगहित साधना के साधन जुटा ऋषभ,
जन-जन हित को मारीचि माली हो चला ॥
सब को ही योग्यता के अनुसार काम मिला,
इसलिये ईर्ष्या का भाव आप सोया है।

सब को ही ऋषभ का, समता का प्यार मिला।
सब के हृदय में समता का बीज बोया है ॥

कटुता, विषमता, अधिकता रहे न कहीं,
ममता के जल द्वारा मानस को धोया है।

पाप से रहित जन - जन जीविका कमाये,
जन - जन धर्म के समक्ष में भिगोया है ॥

★

देखा प्रभु लोग जंगलों में, फल, फूल कन्द पर आश्रित हैं।
ये अन्न, वसन, भूषण, व्यंजन, जंगल पर सभी पराश्रित हैं ॥

पहले तो घटी सघनता है, कुछ ऐसे परिवर्तन आये।
लग गयी आग जल गये वृक्ष, फिर वैसे वृक्ष न उग पाये ॥

सब लोग इकट्ठे हो हो कर, बन सघन ओर में आन बसे।
कुछ यहाँ बसे, कुछ वहाँ बसे, कुछ निजता को पहचान बसे ॥

पुरुषों ने और स्त्रियों ने, अपने कुछ परिकर बना लिये।
जैसी क्षमता थी उन सब में, वैसे कुछ सुन्दर सजा लिये ॥

तब देख अल्पता वृक्षों की, है प्रभु वर ने आदेश दिया।
इनको समझो ज्यों सन्तानें, जगहित में यह उपदेश दिया ॥

षट् कर्म धर्म का शुचि प्रकाश, झोंपड़ी द्वार तक जा पहुँचा।
क्रूरता और हिंसा का जन, सभ्यता प्यार तक जा पहुँचा ॥

तब निरख कर्म की सुन्दरता, वनवासी मन में हरषाये।
लग गये कर्म में वनवासी, सक्रिय होकर आगे आये ॥

-: कवित्त :-

ऋषभ विचार किया इन्द्र की मदद लेके,
लोग क्षमता के अनुसार ही बसाये है।

खैर, खरवट, ग्राम, नगर औ द्रोणामुख,
पत्तन, सवाह आदि मण्डल सुहाये हैं॥

जनपद बावन बना के रचना की रम्य,
सुविधा जनक जन - जन मन भाये हैं।

शासन की समता को, नृपति की ममता को,
देख प्रभुता को जन - जन हरषाये हैं॥

सर, सरिता से गिरि, गुफा, पेड़, वन, पुल,
इनसे ही गाँव - गाँव सीमाये बनायीं हैं।

गोपुर, अटारी, कोट, परिखा, भवन, रम्य,
मनुज महान है नगर सुखदायी हैं॥

दस-दस गाँवों बीच, एक बड़ा गाँव बसा,
तहाँ विनिमय हेतु मण्डियाँ बनायी हैं।

कहाँ-कहाँ मूल्यवान खानें धरती की गोद,
मन मे प्रमोद भर आ कर बतायी हैं॥

इधर-उधर जो भी बिखर रहे थे लोग,
सबको सहेजा प्रभु ऋषभ महान ने।

उचित प्रकाश हेतु, गाँव में बसाने हेतु,
इन्द्र को भी भेजा है ऋषभ भगवान ने॥

नागरिक सभ्यता की प्रखर मरीचि हेतु,
निकट सहेजा है ऋषभ गुणवान ने।
जंगलों से खोज खोज, झोपड़ी गुफा से खोज,
भवनों में भेजा है ऋषभ के निदान ने ।।

-: दोहा :-

ग्रामों की रचनादि में, बड़ा इन्द्र का काम।
इसीलिये तो इन्द्र का, हुआ पुरन्दर नाम ।।
इस युग से प्रारम्भ है, धर्म कर्म व्यवसाय।
यही नागरिक सभ्यता, पहला शुभ अध्याय ।।
कृष्ण प्रति-पदा को हुआ, कृत युग का प्रारम्भ।
बढ़ी धर्म की वल्लरी, हुआ कर्म आरम्भ ।।

★

नन्दा का, और सुनन्दा का, देखा विवाह प्रभु द्वारा था।
यह विधि पूर्वक सुन्दर विवाह, जनता ने प्रथम निहारा था ।।
जनता में भी यह भाव जगा, प्रभु ने जिसको पहचान लिया।
उपयुक्त समय पर ज्ञानी जन, सापेक्ष काल को जान लिया ।।
जब तक न ऋषभ कह दें मुख से, शुभ शहनाई गूंजेगी क्यों ?
आदर्श मिला जब बढ़ने का, तब कोई धार रुकेगी क्यों ?
षट् कर्म नींव पर उठा भवन, उसमें थी धर्म व्यवस्था भी।
सब निज सीमा मे कर्म करे, अति सुन्दर वर्ण व्यवस्था की ।।
माना विवाह नैतिक बन्धन, पालन सबको ही करना है।
नर में, नारी मे, जन-जन में, हित साधन शुचिता भरना है ।।

रह सकें वर्ण सब परम शुद्ध, गुण नित्य नये बढ़ते जायें।
अपनी-अपनी सीमा में रह, जन और - और चढ़ते जाये ।।

कुछ नियम बनाये आवश्यक, जिनका पालन करना होगा।
जो नियम नहीं पालेगा जब, तब अनुशासन भरना होगा ।।

जो उच्च वर्ण का है मनुष्य, वह किसी वर्ण की धन्या से।
अपना कर सकता है विवाह, तीनों वर्णो की कन्या से ।।

जो उच्च वर्ण की कन्या से, शादी का अनुरागी होगा।
विपरीत चलेगा जो कोई, वह कठिन दण्ड-भागी होगा ।।

॥ दोहा ॥

रहे रक्त की शुद्धता, बढ़े वंश का रूप।
वर्णाश्रम के रूप की, सुन्दर रीति अनूप ।।

नर नारी सम्बन्ध यों, कर समाज स्वीकार।
जीवन को परिपूर्ण कर, भरे धर्म भण्डार ।।

इस प्रकार की रीति से, नस्लें रहीं पवित्र।
जाति कर्म सुन्दर हुये, सुन्दर हुआ चरित्र ।।

सामाजिकता आ गयी, स्वयं मनुज के पास।
नर नारी को मिल गया, आपस का विश्वास ।।

सन्तानें आगे बढ़ीं, पाकर प्रेम अनूप।
एक डोर में बंध गये, राव रंक अरु भूप ।।

★

बाहर ही नहीं निरालापन, अन्दर का जगत निराला है।
जिसकी प्रतिकृति जग मे कृत हैं, जग सबका देखा भाला है ।।

रचनात्मक दृष्टि बढ़ी जिन में, सब ओर बृद्धि दिखलायी दी।
हर ओर जवानी दौड़ पड़ी, दिखलायी तब अरुणायी दी ॥

बढ़ गई महत्वाकांक्षाएँ, अपराध बिन्दु की सृष्टि हुयी।
आगे बढ़ने की इच्छा से, संगीन मनुज की दृष्टि हुयी ॥

पुरुषार्थ बुद्धि बल की क्षमता, कैसे समान जन में होगी।
सब के प्रति इच्छा, सेवा की, कैसे समान मन में होगी ॥

साधन सीमित, इच्छा उन्नत, कैसे बसन्त फिर आ पाये।
उस भोग भूमि वाले मन को, यों कैसे कहो भरा जाये ॥

जन के मन में वैषम्य बढ़ा, मन में उग आयी कटुता है।
कटुता वाले जन के मन में, बढ़ जाती मिथ्या पटुता है ॥

वह कर्म नहीं करता, मन में, अपराध भावना पलती है।
मौका पाकर कर्मठ जन का, अधिकांशों को वह छलती है ॥

ऊपर से दिखता है सीधा, अन्तर में कल्मषता पलती।
ऐसे जन की जीविका सदा, अपराध वृत्ति द्वारा चलती ॥

—: कवित्त :—

सोचा प्रभु वर ने कि बढ़ी जो मलिनता तो,
तब मीन न्याय की ध्वजायें फहरायेंगी।

कलह की, शोषण की और अत्याचार की भी,
छीना झपटी की ही घटायें घहरायेंगी ॥

मिलेगी व्यवस्था जब अपने समाज में ही,
पीड़ा जल वाली सरितायें लहरायेंगी।

दण्ड के विधान बिना, अंकुश रहेगा कहां,
कब तक तर्क की ही बातें बहलायेंगी ।।

भय के बिना न जन सत् पंथ पे चलेंगे,
उल्टे वे औरों को भी राह बतलायेंगे ।

कर्म बिना फल को दिखा के चमका के और,
नयी - नयी वृत्ति जन मन में जगायेंगे ।।

सेवा भावना की रीति भेट उर प्रीति सब,
बन मन मीत नीति और अपनायेंगे ।

दण्ड बिना अपराधी और भी बढ़ेंगे यहां,
अपराधी अपनी सी सीख सिखलायेंगे ।

★

हो लोग इकट्ठे एक दिवस, मिलने प्रभु के द्वारे आये ।
हैं अपराधी बढ़ रहे बहुत, प्रभुवर को बतलाने आये ।।

हे नाथ प्रजा है बहुत दुखी, श्रम महिमा घटती जाती है ।
उत्पादन पूंजी बढ़ने की, अभिलाषा नजर न आती है ।।

करके विचार प्रभुवर बोले, चिन्ता की कोई बात नहीं ।
जल्दी प्रकाश आ जायेगा, सर्वत्र रहेगी रात नहीं ।।

है दण्ड व्यवस्था आवश्यक, उसके उपाय बतलाता हूं ।
निश्चिन्त रहे कैसे जनता, यह सूत्र तुम्हें समझाता हूं ।।

दण्डाधिकार हो राजा को, राजा हम सब में ऊँचा है ।
उससे बाहर कुछ भी न यहां, उसका ही राज्य समूचा है ।।

उसकी आज्ञा सर्वोपरि है, सब ही संतान सरीखे हैं।
उससे ही सब कुछ पाया है, उससे ही सब कुछ सीखे हैं॥
हे नाथ आपने सही कहा, तुम ही सम्मान्य हमारे हो।
तुम ही तो संकट त्राता हो, तुम ही गणमान्य हमारे हो॥

॥ दोहा ॥

लेकर के आशीष शुभ, चले लोग निज गेह।
ऋषभ देव भगवान से, पाकर आत्मिक नेह॥
पढ़ें सुने इस खण्ड को, धर उर प्रभु का ध्यान।
वैभव पाकर जगत में, पाये पद निर्माण॥

राज्याभिषेक वर्णन

॥ दोहा ॥

ऋषभदेव ने जगत को, देकर के सद् ज्ञान।
सृष्टि जीव के मध्य में, किया मनुज कल्याण ॥

उगा कर्म का सूर्य, जब फैला परम प्रकाश।
पाकर के परिवेश में, पग-पग हुआ विकास ॥

जो जग को अर्पित हुआ, तज चिन्ता निज देह।
उसको कोटि प्रणाम है, घर-घर मंगल नेह ॥

दिशा-दिशा से जय उठी, भर कर जय गुंजार।
आप-आप जन मन हुआ, सुभग कर्म संचार ॥

स्वयं संचरित हो उठा, धर्म कर्म सुखकार।
जन गण मन में आ गया, सुभग सत्य आचार ॥

★

भूले भटके दिग् भ्रमित लोग, पाकर शुभ पथ हरषाये हैं।
जन ने मन से आगे बढ़ के, शुभ कर्म पुष्प बरसाये हैं ॥

जैसे सूरज के उगने पर, हर ओर लालिमा छाती है।
पत्ती-पत्ती मुस्कान लिये, सौन्दर्य लिये शरमाती है ॥

कलियाँ कहती हैं आपस में, सुन्दर अब और न दूजा है।
जो इधर बढ़े, झुकता जाये, ये ही यौवन की पूजा हैं ॥

सब ओर निहारो अरुणाई, इसमें अब नित्य नहाना है।
अन्दर बाहर सर्वत्र आज, बस एक रङ्ग रंग जाना है ॥

जीवन अन-बूझी पहेली है, चाहते सभी सुलझाना है।
ढूंढते - ढूंढते आदि बिन्दु, चिनगारी को बुझजाना है ॥

कल को लेकर क्यों आज जियें, कल की चिन्ता कल पर छोड़े।
जो आज सफलता मिलती है, पहिले उससे नाता जोड़े ॥

ले प्यार परस्पर बिखरा दें, सब ओर प्रेम के फूल खिलें।
खुशहाली दीखे दिशा-दिशा, जो मिले हमें अनुकूल मिलें ॥

वह कौन कला, कोई आगे, कोई पीछे दिखलायी है।
वह कौन श्रेष्ठ कहलायेगा, परिवेश न जो सुखदायी है ॥

हर दिशा दर्श को लालायित, सौन्दर्य सुधा - बरसानी है।
अन्यथा आप हेमांग शिखर, जागती रात बरफानी है ॥

हर दिशा कर्म के सूर्य उगे, जिससे पग-पग चमचमा उठा।
सद्धर्म कर्म की ज्योति खिली, कण-कण जग का जगमगा उठा॥

—: कवित्त :—

दिशि-दिशि मंगल प्रभात हुआ धरती पे,
प्रभुता विवेक की अनूप बन आयी है।

पग - पग नूतनता बिखर गयी है रम्य,
विभुता को देख जन-मति हरषायी है ॥

जन-जन जाग कर काम में लगा है आज,
सकल समाज इस भाँति सुखदायी है।

बल विभुता जो, कल तक रही सोती आप,
वह आज पौरुष का रूप बन आयी है ॥

जागी जन अन्तरंग मति की तरंग नव,
पाकर अनूप रंग खिली उर कलिका।

कल तक परिचारिका भी बन पायी जो न,
आज वही बन बैठी मुख्य रानी मलिका॥

कल तक मरूता विराजी रही जहाँ, वहाँ,
उभग रही है आज पग-पग लतिका।

मन की सुमति से रची जो रति मन मानी,
कुछ भी पता न यहाँ मानव की मति का॥

हर ओर विभुता का, प्रभुता का, समता का,
ममता का पाकर के सिन्धु हरषाये हैं।

"जयति ऋषभ जय", "जयति ऋषभ जय",
जयति ऋषभ जय, भाव उमगाये हैं॥

देवलोक से भी धन्य, जन लोक आज हुआ,
जन ने सुमन मन से ही बरसाये हैं।

"ऋषभ हमारे हो नृपति" यह कहने को,
जन के समूह नाभिराज-द्वार आये हैं॥

★

श्री नाभिराज नृप के समक्ष, विनयावत द्वारपाल आया।
करके प्रणाम निज शीश झुका, आशीष प्राप्त कर हरषाया॥

हे जग पालक हे जग त्राता, मिलने कुछ पुरजन आये हैं।
आदेश मिले तो आने दूँ, मुख-कमल बहुत हरषाये हैं॥

आने दो सब को सभागार, मंत्रीवर साथ बुला लावे।
इच्छायें लेकर आये हैं, इच्छानुकूल सब पा जावें॥

मंत्रीवर गये बुलाने को, द्वारे पर जय-जयकार हुआ।
मानो राजा के द्वारे पर, मंगल मय शुभ उच्चार हुआ॥

सब सभागार की ओर चले, गंगा-सागर की ओर चली।
सुख की रजनी के साथ-साथ, होने को मानों भोर चली॥

देखा मंगल गृह सभागार, सब ओर शान्ति है विलस रही।
सबके मुख मंजुल की आभा, सुख शान्ति बरसकर सरस रही॥

नृप के समक्ष सब बैठ गये, सब ने ही शीश झुकाया है।
हैं भाग्य धन्य जनता के जो, नृपवर से आशिष पाया है॥

कुछ फल श्वेत श्रद्धा समेत, सबने सादर उपहार दिये।
जनता के प्रतिनिधियों ने मिलकर, मनसे सत्कार अपार किये॥

पूछा नृप ने जन-मण्डल से, किसलिये आज आगमन हुआ।
कहिये सब भांति कुशल तो है, या किसी तरह का हनन हुआ॥

जो भी सेवा हो शासन से, संकोच छोड़ सानन्द कहो।
सुविधाओं के अधिकारी हो, जो कहना हो निर्द्वंद कहो॥

तब एक व्यक्ति सविनय बोला, हम सब प्रकाश को पाकर के।
जी रहे कर्म का सुख जीवन, आये हैं सब हर्षाकर के॥

जन-जन ने पाकर ज्ञान प्रखर, समुदाय कर्म में जीता है।
श्रम से सुख सुविधायें पाकर, आनन्द सुधारस पीता है॥

लिपि सीखीं, पायी विद्यायें, बहु-धर्म-कर्म के द्वार खुले।
विकसित है जिससे नव संस्कृति, जन-जन के हित आचार खुले॥

कर्तव्य और अधिकार कौन, ये भली भाँति हम जान रहे।
कब कौन दिशा को चलना है, ये भली भाँति पहचान रहे ।।

इक्ष्वाकु वंश के शुभ दर्शन, श्री ऋषभदेव द्वारा पाये।
सब ओर तृप्ति का अनुभव है, उपलब्ध ज्ञान से हरषाये ।।

जिस-जिस का हमको ज्ञान न था, प्रत्येक दिशा पहचान गये।
क्या है जीवन है मृत्यु कौन, हम सब हित अनहित जान गये ।।

श्री ऋषभदेव ही जीवन हैं, गुण के, बल के रत्नाकर हैं।
जिनको पाकर हम धन्य हुये, वे उत्तम शिल्प कलाधर हैं ।।

जन जीवन के पर्याय ऋषभ, वे ही आधार हमारे हैं।
वे ही प्राणो के सम्बल है, वे ही नैनों के तारे है ।।

शुचि नीर प्रेम का पाकर के, जीवन उस जल का मीन हुआ।
चातक सी धन प्रति व्याकुलता, हर विधि जीवन आधीन हुआ ।।

-: दोहा :-

इच्छा है यह लोक की, देव करें स्वीकार।
सब विधि से जो पूर्ण हैं, सौपे उनको भार ।।

ऋषभ नृपति हों राज्य के, हम सब की अभिलाष।
स्वकृति होगी विनय यह, हम सब को विश्वास ।।

एक निवेदन और है, तव-पद प्रीति न थोर।
श्रद्धा अपरम्पार है, मन आनन्द विभोर ।।

-: सवैया :-

हर भांति से है अभिलाष यही, मम कर्म सदा सुखदायक हो ।
वरदान जो प्राप्त हुए हमको, बहु भांति से वो फलदायक हो ।।

तब आज कृपा अविलम्ब मिले, उसपे नरनाथ ही नायक हो ।
हम भूमि को और से और करें, भगवान जो आज सहायक हो ।।

बल आप से पाके समर्थ हुये, उसका बल आप निहारिये जू ।
यदि काज में चूक बने जो कभी, शुभ बोध से आप संवारिये जू ।।

किस भाँति से पूत सु कर्म लगे, त्रुटि जो भी दिखे निवारिये जू ।
नृप प्राण ही आज बने नृप जो, इस बात पे आप विचारिये जू ।।

जिस ज्ञान के पुंज से साध जगी, वह ज्ञान की ज्योति सहारा रहे ।
मर्यादा को छोड़ बहे न नदी, करुणा अवलम्ब किनारा रहे ।।

रवि, चन्द्र तो साथ रहे ही रहे, संग में लगा पुंज सितारा रहे ।
जब लों धरती पे मनुष्य रहे, जग में शुभ नाम हमारा रहे ।।

-: दोहा :-

नाभिराय नृप को हुआ, सुन अतिशय आह्लाद ।
सुत से सब संतुष्ट हैं, कहीं न रंच विषाद ।।

जनता की सहमति सहित, नृप का किया चुनाव ।
समता विभुता बढ़ चली, कहीं न था विलगाव ।।

नृप की अभिलाषा यही, जनता पाये मोद ।
ऋषभदेव राजा बनें, हो आमोद प्रमोद ।।

नृप बोले मन्त्रि मण्डली से, बोलो क्या राय तुम्हारी है।
जन प्रतिनिधि की यह मधुर बात, मुझको तो अतिशय प्यारी है॥

चौथे पन ने आकर मानो, कानों मे बात सुनायी है।
जो भी भविष्य होगा आगे, सामने खड़ी तरुणाई है॥

कब से मन ही मन चाह रहा, सुत को सब कार्य भार दे दूं।
जो समयोचित, धर्मोचित है, परिग्रह तज मुनि दीक्षा ले लूँ॥

सब विधि समर्थ हैं, ऋषभदेव, युवराज आज भू देव बनें।
इससे बढकर के कौन बात, प्रिय ऋषभ राज भू देव बने॥

बोले मन्त्रीवर शीश झुका, त्रुटि हो तो नाथ क्षमा पाऐ।
जिससे अवगाहन कर पाऐ, ऐसा बल हम भी पा जाऐ॥

यह बात नाथ समयोचित है, युवराज नाथ सब लायक हैं।
हैं जगत प्रगति के केन्द्र बिन्दु, जन-जन को अति सुखदायक है॥

इच्छा कब से थी स्वामी की, शासन का भार समर्पण की।
इच्छानुकूल हो आज स्वयं, आई बेला आकर्षण की॥

सब भांति सही, सब भांति उचित, सब भांति सुहानी चर्चा है।
सब भांति सभी को अनुरंजक, अवसर पहिचानी चर्चा है॥

मेरी भी राय यही प्रभुवर, युवराज आज महाराज बने।
वे अन्तरंग के तो है ही, अब वे प्रत्यक्ष के ताज बने॥

मन्त्री के सुन कर सुखद वचन, नृप नाभिराय हरषाये हैं।
सुन किन्नर ने होकर प्रसन्न, मांगलिक गीत बहु गाये है॥

आदेश मिला मन्त्रीवर को, प्रभु ऋषभदेव को बुलवाओ।
अर्न्तमन मे जो कुछ भी है, प्रत्यक्ष उसे कर दिखलाओ॥

बैठे होकर जन सावधान, सब ओर विलसती सुन्दरता।
ज्यों-ज्यों सूरज चढ़ता ऊपर, त्यों और सरसती सुन्दरता॥

जन मन में नयी उमंग भरी, साहस की सरिता उमड़ चली।
प्रस्फुटित हुई बल विक्रम की, सरसाती वाणी बह निकली॥

संयम का श्रम सच्चाई का, सचमुच इनका मन दिखलाती।
जीवों में सब के प्रति ममता, हिंसादि दोष का है घाती॥

इतने में सबने ही देखा, प्रत्यक्ष तेज का पुंज चला।
जीवन-दाता, सुख-सिन्धु बढ़ा, अथवा जीवन की कुंज कला॥

अतिशय विनम्र, अतिशीलवान, जीवन की मृदुता पान किये।
बढ़ रहे ऋषभ उर से विशाल, अपने प्रति पग का ध्यान किये॥

स्वागत में सब हो गये खड़े, श्री नाभिराय प्रमुदित मन हैं।
क्षण भर में देखा ऋषभदेव, अब निकट खड़े सिंहासन हैं॥

श्री ऋषभदेव के साथ-साथ, सब ने ही शीश झुकाया है।
नृप से सब ने हर्षित मन से, मनवांछित आशीष पाया है॥

प्रभु ऋषभदेव को नृप वर ने, अपने समीप बैठाल लिया।
जो साथ सभासद थे सबने, अपना शुभ आसन ग्रहण किया॥

कुछ देर रही फिर खामोशी, फिर मधुरिम मंगल गान हुआ।
जिसकी अनुराग ध्वनि को सुनकर, सब को आनन्द महान हुआ॥

—: सवैया :—

मम भाग्य बड़े भगवान अहो, सुत को यों बुला दुलराया गया।
किस भांति से सेवा करूँ सबकी, मुझको न अभी बतलाया गया॥

यदि कोई जो चूक हुयी मुझसे, अपराध न एक बताया गया।
बतलाये मुझे मम पूज्य पिता, किस हेतु यहाँ बुलवाया गया॥

अति नम्र विनम्र सुनी बिनती, नृप का उर है हरषाने लगा।
उर में निजता से बढ़ी ममता, नृप का मन है हुलसाने लगा॥

किस भांति से, कौन उठान से है, अब, बात कहें सकुचाने लगे।
भर आया हृदय रुँध कण्ठ गया, नृप नैन से नीर बहाने लगे॥

जग की गति को, रति को, मति को, क्षिति के हित को तुम जानते हो।
किस काज से साज सजेगा यहाँ, उस पंथ को भी पहचानते हो॥

किस भांति से कार्य बनेगा यहाँ, उस रीति को भी अनुमानते हो।
अपने से बड़ा, मुझको, इनको, उनको, सबको तुम मानते हो॥

सब भाँति समर्थ हुये तुम हो, इस हेतु समर्थ बने ही रहो।
तुम जीवन मूल बने ही हुये, पुरुषार्थ के अर्थ बने ही रहो॥

जन ज्ञान को पाके है आगे बढ़ा, जन के पुरुषार्थ बने ही रहो।
तुम व्यंजना में नृप ही हो बने, अब तो अभिधार्थ बने ही रहो॥

नृप नेह सभी, सब के मन को, सुन के बतियाँ सबके प्रति को।
सब बोल उठे हरषाते हुये, मति धन्य हुयी निज भूपति की॥

सब पुण्य फले निज जीवन के, प्रभु पूर्ति करो मन वाँछित की।
प्रभु आदि हमारे बने नृप श्री, जग चाह नहीं कुछ संपति की॥

॥ दोहा ॥

बोले मंत्रीवर चतुर, वाणी के वागीश।
ऋषभदेव युवराज हो, है अब महा मनीश॥

जन प्रतिनिधि की मांग है, नृप मन के अनुकूल।
सम्मति सरिता के सुभग, बने ऋषभ अब कूल ।।

"सत्य-सत्य" सब कह उठे, हम सब की आवाज।
ऋषभदेव हों नृपति वर, जो अब तक युवराज ।।

ऋषभदेव सुन कर हुये, "जन - वाणी" गम्भीर।
ले आज्ञा बोले सुभग, शुचि ज्यों गंगा नीर ।।

हुये सभासद मौन हैं, सुनने को शुभ बोल।
श्रेष्ठ ज्ञान विज्ञान का, दिया ख़जाना खोल ।।

★

अतिशय प्रसन्नता मुझको है, जनता में जागृति आयी है।
किस समय अपेक्षित क्या कुछ है, इतनी मति जग ने पायी है ।।

किस से हित अपना सम्भव है, कम से कम यह पहचान गये।
कर्त्तव्य कौन ? अधिकार कौन, यह लोग भली विधि जान गये ।।

जनता की जागृति से जग में, चेतना नयी आ जाती है।
सर्वत्र जागते भाव नये, श्रम से धरती हरषाती है ।।

दीनता भागती धरती से, हीनता नहीं टिक पाती है।
जागृति के करवट की गाथा, कवि कलम नहीं लिख पाती है ।।

सुत का श्रम सार्थक आज हुआ, जन-जन ने काम आज पाया।
सौभाग्य कहो, संयोग कहो, जनता ने सुभग राज पाया ।।

यह बात बहुत ही सुन्दर है, जो परिवर्तन की मांग उठी।
मेरे अन्तर की कली खिली, जो प्रतिपादन की मांग उठी ।।

यह मांग बहुत समयोचित है, स्वीकार मांग मैं करता हूँ।
यह सुनकर बोले ऋषभदेव, मैं प्रथम निवेदन करता हूँ॥

श्री पूज्यपाद, सब विधि समर्थ, जिनका उर करुणा सागर है।
ममता, समता, शुचि दया आदि, अन्तर अद्भुत रत्नाकर है॥

थोड़ी सी ज्योति जगाकर के, कुछ भिल्ल आदि है आर्य किये॥
प्रेरणा सजग जिससे पाकर, जनता के हित कुछ कार्य किये।

बह चली ज्ञान की शुभ सरिता, दोनों कूलों को दान किये।
बढ़ चला मनुज श्रम को करता, अपनी अद्भुत पहचान लिये॥

जैसे अब तक पालता रहा, सेवा व्रत यों ही पालूँगा।
करके मैं निज बल से सेवा, जीवन सेवा में ढालूँगा॥

-: दोहा :-

सारपूर्ण सुनकर कथन, नाभिराय भूपाल।
प्रेम पुलक बोले सरल, बरसे मोती, लाल॥

प्रतिनिधियों ने है कही, आ समयोचित बात।
तमस् रात्रि के बाद ही, आता धवल प्रभात॥

तुम इस युग के सूर्य हो, साक्षी परम प्रकाश।
पग-पग पर आलोक-युत, है प्रत्यक्ष विकास॥

-: सवैया :-

प्रिय प्यारे दुलारे हमारी सुनो, तुममें क्षमता मैं जानता हूं।
सब के प्रति है सद्भावना औ, तुममें ममता मैं जानता हूं॥

सब में सद् वृत्ति जगेगी यहां, तुममें समता मैं जानता हूं।
सब को ही प्रकाश मिलेगा भला, तुममें विभुता मैं जानता हूं ।।

जब आपको पाके सनाथ हुआ, कुछ और से पाके करुँगा भी क्या ?
गुण-गाथ से जीवन धन्य हुआ, गुण और के गाके करुँगा भी क्या ?

हर कोण ही है कृतकृत्य हुआ, उर और अकुला के करुँगा भी क्या ?
हर वस्तु अमूल्य मिली है यहां, घर और के जाकर करुँगा भी क्या ?

॥ दोहा ॥

पूज्य पिता करिये क्षमा, रखियेगा अनुरक्ति ।
राज भार से ऋषभ को, प्रभुवर रखिये मुक्ति ।।

नृप होकर के भी मुझे, करना सेवा कार्य ।
उसे मानकर चल रहा, अब भी मैं अनिवार्य ।।

भावुकता-वश प्रजाजन, आये करने बात ।
माननीय सब हैं मुझे, इन्हें झुकाता माथ ।।

देखी यह शालीनता, गूंज उठा जय घोष ।
सुत को विपुल विनीत लख, हुआ आत्म संतोष ।।

कहा नृपति ने हे ऋषभ, रखो प्रजा का मान ।
सेवा व्रत से अब तुम्हीं, करो विश्व कल्याण ।।

गूँजा शोर 'तथास्तु' का, ऋषभ हो गये मौन ।
जन समूह पितु-नृपति से, जीत सकेगा कौन ।।

—: सवैया :—

हर ओर घटा उमड़ी रस की, रस को हर एक ही पाने लगा।
गति वायु को देख बढ़ी खुशियां, हर आदमी ही हरषाने लगा॥
रस की बरसात से नीरसता, कुछ और ही भाव जगाने लगा।
कल को अभिषेक जो होगा यहाँ, जन आज ही पर्व मनाने लगा॥

—: दोहा :—

मंत्रीवर को नृपति का, हुआ राज्य - आदेश।
करे व्यवस्था आप सब, कल होगा अभिषेक॥
गढ़पति, भूपति, विज्ञवर, अधिकारी गणमान्य।
सादर आमंत्रित करे, विविध रूप सम्मान्य॥
लोक रीति, कुलरीति का, रखिये पूरा ध्यान।
और कहूँ क्या आप से, तुम विधिज्ञ विद्वान॥
सभा विसर्जित हो गयी, लेकर आश अनूप।
ऋषभदेव कल होयेंगे, शासक अपने भूप॥

★

मंत्रीवर शीश झुकाकर के, आज्ञा पालन की ओर चले।
करने सम्पूर्ण व्यवस्थाएं वे, अनुशासन की ओर चले॥
जन प्रतिनिधि ने घर-घर जाकर, सुन्दर सन्देश सुनाया है।
इतना आनन्द उमड़ आया, मन फूला नहीं समाया है॥
कल राज-द्वार पर आने की, कल्पना हृदय में आयी है।
जिसकी सीमा का छोर नहीं, ऐसी प्रसन्नता छायी है॥

आया विचार सब के मन में, मिलकर अभिषेक निहारेंगे।
हमने जीवन कर लिया धन्य, यह क्षण उर से न विसारेंगे॥

हम धन्य हुये, युग धन्य हुआ, जीवन यह धन्य हमारा है।
जीवन उन सबका धन्य हुआ, जिसने अभिषेक निहारा है॥

यों रात बड़ी दीखने लगी, सबने सोचा कब दिन निकले।
राज्याभिषेक के दर्शन को, तारों के संग-संग मचले॥

राजा को लख मरुदेवी ने, मन से आरती उतारी है।
भूपति के मुख की अरुणाई, दीपक सी मंगलकारी है॥

हे देवि आज अतिशय प्रसन्न, जीवन का शुभ दिन आया है।
युवराज ऋषभ होंगे राजा, मन फूला नहीं समाया है॥

कब से उर में अभिलाषा थी, उर में कुछ स्वप्न सजाये हैं।
था पूर्व जन्म का पुण्य वृक्ष, जिस पर सुन्दर फल आये हैं॥

अपने से बढ़कर सुत अपना, अपनी जनता को प्यारा है।
प्रिय ऋषभदेव ने जनता का, न्यायोचित भाग्य संवारा है॥

जनता ने अपनी मांग रखी, अब ऋषभदेव ही राजा हों।
जो अन्तरंग के स्वामी हैं, वे ही अपने अधिराजा हों॥

मैंने निर्णय स्वीकार किया, उर में ये ही अभिलाषा थी।
उससे पहले हो गयी खुशी, यह कैसी सुन्दर आशा थी॥

सुन समाचार मरुदेवी के, नैनों में नीर छलक आया।
रानी के सुन्दर अंगों में, मानों आनन्द पुलक आया॥

रोमावलि ने हो खड़े शान्त, पति के स्वर में स्वर मिला दिया।
शुभ समाचार ने मानस में, मानों पंकज सा खिला दिया॥

कब सांझ हुयी कब निशा गई, दोनों का पता न चल पाया।
मानों जीवन का हर्ष सिन्धु, मानस की ओर मचल आया॥

जब इन्द्र लोक में सुरपति ने, निर्णय का समाचार पाया।
सद्धर्म कर्म के रूप नृपति, शुभ लोक रीति को अपनाया॥

किन्नर, गन्धर्व अप्सरायें, लेकर अनन्य उत्साह चले।
सब ओर अयोध्या नगरी मे, बहते आनन्द प्रवाह चले॥

गूंजने लगी गगनागन से, सबका मन हरती शहनाई।
स्वागत को उतर रही भू पर, स्वर्णिम-स्वर्णिम सी तरुणाई॥

अप्सरा वृन्द है नृत्यलीन, जड़ चेतन को आधीन किये।
राज्याभिषेक के जल निधि मे, अपने मन को पाठीन किये॥

घर-घर में है मांगलिक गान, खुशियों का नही ठिकाना है।
नर वृन्द अयोध्या वासी ने, अवसर सुन्दर पहचाना है॥

कुछ लोग गये तीर्थोदक को, लेकर पवित्र जल आये है।
कुछ लगे सजावट में पुर की, कुछ नगर देख हरषाये है॥

गलियों-गलियों छिडकाव हुये, मानो सुगन्ध की आवर है।
चौराहों और तिराहों पर, उल्लास भरे रत्नाकर हैं॥

जनता ने खुशियों के प्रतीक, भवनों पर झण्डे लहराये।
मानों खुशियों के सजल मेघ, अपने अन्तर मे भर लाये॥

है द्वार-द्वार पर चौक पुरे, जिनमे शुभ चिन्ह बनाये है।
प्रिय ऋषभदेव के विविध रूप, सुन्दर स्वरूप दरशाये हैं॥

आदर्श वाक्य हैं पग-पग पर, जिनमें सदेशा जीवन का।
पा गया नगर अनुपम स्वरूप, मानों सुन्दर से उपवन का॥

सुरराज इन्द्र लख नगर श्रेष्ठ, वर अपनी सुध-बुध भूल गया ।
सुख-सिन्धु-स्वर्ण वह भूल गया, कल्पना रंग में फूल गया ।।

—: दोहा :—

नाभिराय से प्रेम युत, बोले तभी सुरेन्द्र ।
क्या बिलम्ब है सुयश के, मुझसे कहे नरेन्द्र ।।

नाभिराय मुख कमल से, कह न सके कुछ बात ।
मंत्रीवर आये तभी, कुछ क्षण ही पश्चात् ।।

कहा व्यवस्था हो गयी, वेदी है तैयार ।
चलकर नृप पावन करें, धर्म बुद्धि अनुसार ।।

—: कवित्त :—

राज्य अभिषेक का अनूप पर्व आया आज,
भूपवर विनती है चलिये, पधारिये ।
सुरराज, इन्द्र, देव, किन्नर, गन्धर्व आदि,
इन से प्रदत्त मान चल स्वीकारिये ।।
गढ़पति, माण्डलीक भूमि-पति राजा आदि,
स्वागत को द्वार पर, चलिये निहारिये ।
ऋषभ तो शोभनीय होंगे मंच पर किन्तु,
आप ही बड़े हैं पहले, आप पगधारिये ।
नृपवर नाभिराज, आये मण्डप के द्वार,
सुरराज इन्द्र आदि सभी साथ आये हैं ।

ऋषि, मुनि ज्ञानी, तेजवान, व्रतधारी सब,
तापस प्रवास हेतु आप चल आये हैं।
लोक-लोक के नरेश आये हैं स्वदेश मान,
त्याग अभिमान आज आप हरषाये हैं॥
सब विधि पाकर के ऋषभ को अनुकूल,
सुध-बुध भूल देव फूल बरसाये हैं।
देव लोक जाकर के पद्म-सरोवर से,
नन्दोहरा वापिका से लाये जल भर के॥
लवण समुद्र, क्षीर, नन्दीश्वर आदि से भी,
लाये जल पात्र जल परिपूर्ण कर के।
अन्तर से बाहर से परम पवित्र हुये,
देव बन गये आज आदमी हैं घर के॥
भगवान ऋषभ का ऐसा है प्रताप आज,
भेद मिट गये आप अचर-सचर के॥
आता देख भगवान ऋषभ को मंच ओर,
नर, नारि, बालकों के वृन्द झुक आये हैं।
जिसने भी नैन भर देखा प्रभु का स्वरूप,
उसने समस्त पाप पातक मिटाये हैं॥
जितनी कला है जिसके भी उर आंगन में,
उतनी कला से आज मन-पट छाये हैं।
देखने को राज्य-अभिषेक प्रभु ऋषभ का,
लोक-लोक से अनेक लोग आज आये हैं॥

महिलायें मंगल कलश लिये, मार्गों में शोभा पाती थीं।
राजा युग-युग तक अमर रहे, आशिष गाती हरषाती थीं।।

पीछे अनगिन दासियाँ दास, चल रहे, पुष्प बरसाते हैं।
गाते इठलाते हर्षाते, आनन्दित हो मुस्काते हैं।।

सूरज बढ़ता सा दीख रहा, दोनों दिशि संध्यायें चलतीं।
जैसे सरिता में नौका के, दोनों दिशि नौकायें चलतीं।।

आरती पात्र हैं सजे हुये, गन्धिल मलयानिल मचल रही।
जय ऋषभदेव जय ऋषभदेव, वाणी हर मुख से निकल रही।।

धीरे-धीरे चल ऋषभदेव, मंडप समीप अब आये हैं।
वह दूर नहीं है अब घटिका, जिसके प्रति लगन लगाये है।।

वेदिका बनी स्वर्गोपम है, पण्डित चहुँ ओर बिराजे हैं।
सामने वेदिका के सुन्दर, मंचों पर बैठे राजे हैं।।

है एक ओर दर्शक मण्डल, उसकी शोभा का पार नहीं।
मानों समक्ष है देवलोक, उससा अन्यत्र अपार नहीं।।

नर के बल की विभुता देखो, दिशि-दिशि शोभा का आकर है।
राज्याभिषेक का शुभ मण्डल, बन गया आज रत्नाकर है।।

—: हरिगीतिका :—

क्या रूप का वर्णन करूँ, जब बुद्धि अल्प है।
किस तरह से छवि को उतारूँ, सूझता न विकल्प है।।

अल्पज्ञ यह 'नागेन्द्र' है, कवि मर्म को कब जानता।
जिस पंथ से सहमति मिले, वह पथ नहीं पहिचानता।।

सूर्य धर्मी मुख विमल, निर्मल छटा है शीश की ।
कुण्डलों में आ समायी, है छटा रजनीश की ।।

कण्ठ में जिसके सुशोभित, वृष्टि का शुभ हार है ।
दीप्त में अनुपम मधुर, सौन्दर्य का आगार है ।।

हैं भुजाओं में सजे शुभ, आभरण बहु भाँति के ।
वक्ष की शोभा बढ़ाते, हार अनुपम जाति के ।।

वृषभ से कन्धे सजीले, यज्ञ का उपवीत ले ।
कौन यों जग में हुआ है, शक्ति में जो जीत ले ।।

नीलमणि के नुपूरों से, चरण शोभा धाम है ।
रूप के, छवि के अनोखे, अंग अति अभिराम हैं ।।

जिस किसी ने नैन भर के, रूप का रस पा लिया ।
क्या करेगा और गा के, रूप का गुन गा लिया ।।

*

सब से पहले जनता ने बढ़, प्रभु चरणों का अभिषेक किया ।
अपने मन की शुचि श्रद्धा के, वाहन को मानो टेक दिया ।।

इन्द्रों ने देवों ने बढ़कर, श्रद्धा से पुण्य कमाया है ।
देवों का यह कहना हमने, मुश्किल से यह दिन पाया है ।।

पीछे क्यों रहते पुरवासी, क्या क्या लाकर हरषाये हैं ।
सरयू जल से अभिषेक चरण, श्रद्धा द्वारा कर पाये हैं ।।

फिर तीर्थोदक, फिर से कषाय, फिर गंध युक्त जल लेकर के ।
फिर भांति भांति अभिषेक किया, प्रभु की परिक्रमा देकर के ।।

बहुलोक पूज्य अपने सुत का, अपने कर से अभिषेक किया।
मानो गंगा में धोकर के, राजा ने विमल विवेक किया॥

तब ऋषभदेव ने गर्म कुण्ड, जल में आकर स्नान किया।
कितनों को प्रभु ने मान दिया, कितनों को नृप ने दान दिया॥

हो गये अयाचक कृत्य-कृत्य, मन वांछित इतना पाया है।
सब के मुख से यह निकल रहा, यह ऋषभदेव की माया है॥

वस्त्राभूषण नव धार लिये, फिर से अद्भुत श्रृंगार किये।
मानो श्रृंगार सुभग तरु है, अपना अनुपम श्रृंगार लिये॥

तब नाभिराज ने घोष किया, नरपति जितने आगे आयें।
मस्तक पर रक्खे मुकुट ओर सादर, पट बन्ध बाँध जाये॥

प्रिय ऋषभदेव ही विधि पूर्वक, अब सब के ही अधिराजा हैं।
पट बन्ध महान मुकुट धारी, अब मण्डलीक महाराजा हैं॥

गणमान्य पुरुष ने उठ-उठ कर, अपना वर शीश झुकाया है।
प्रभु के मस्तक पर मुकुट बाँध, मस्तक पर तिलक लगाया है॥

सबने अन्तर से प्रभुवर को, अपना अधीश स्वीकार किया।
प्रभुवर ने अति विशालता से, सेवा व्रत अंगीकार किया॥

इस समय इन्द्र ने विह्वल हो, आनन्द नाट्य-रस बरसाया।
वह भूल गया यह मैं क्या हूँ, इतना अन्तर में हरषाया॥

कब कैसे दिवस गया यों ही, इस पर न किसी का ध्यान गया।
उसको कब पता रहेगा जब, जिसने पाया हो प्राण नया॥

-: दोहा :-

गये देव निज लोक को, गये लोग निज धाम।
हृदय-हृदय में बस गया, प्रभु का रूप ललाम॥

नाभिराज हर्षित हुये, हुआ समय पर काम।
सुत के विमल विवेक से, होंगे शुभ परिणाम॥

सुखी रहो, जग सुख करो, बन सुन्दर घनश्याम।
देख कर्म की ज्योति को, स्वागत करे प्रणाम॥

दीपमालिका सज गयी, द्वार - द्वार अभिराम।
नगर अयोध्या हो गया, स्वर्ग लोक सुखधाम॥

पढ़े सुने अति चाव से, ऋषभ राज्य अभिषेक।
निश्चयही 'नागेन्द्र' का, जागे विमल विवेक॥
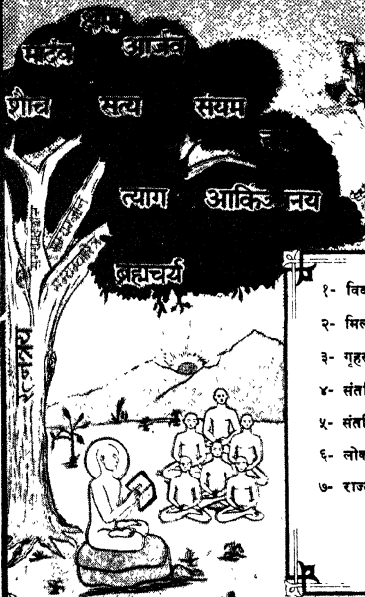
ऋषभायण
द्वितीय खण्ड
आर्जव
शौच
सत्य
संयम
त्याग
ब्रह्मचर्य
स्याद्वाद अनेकान्त
की अमृत-धार
१- विवाह वर्णन
२- मिलनोत्सव वर्णन
३- गृहस्थ वर्णन
४- संतति जन्म वर्णन
५- संतति शिक्षा वर्णन
६- लोक व्यवस्था वर्णन
७- राज्यभिषेक वर्णन

नृपति ऋषभ वर्णन

—: हरिगीतिका :—

भद्रभोवोद्‌मार्विनी , वाणी यहां उल्लास से।
ऋषभ-गाथा को कहे, शुभ पूछकर इतिहास से ॥
प्राप्त कर शुभ कर्म, पथ पाथोदकं लेती रहे।
पुरुषार्थ हित गन्तव्य, दिशि तरणी सदा सेती रहे ॥
हम बढ़ें उर में संजोये, भावना कल्याण की।
और हम नित प्रति विचारें, बात जन निर्माण की ॥
हो लगी उर में लगन, सर्वार्थ की, निर्वाण की।
गति हमारी हो सदा, शुभ ज्ञान की, कल्याण की ॥
हो गया जीवन सफल, सेवा किसी की बन पड़ी।
खिल गया जीवन सुमन, सेवा मिली यदि दो घड़ी ॥
कर्म से बढ़कर यहाँ, 'नागेन्द्र' रे क्या अन्य है।
कर्म शुभ जो कर सके, संसार में वह धन्य है ॥

—: कवित्त :—

लायेगा जो जीवन की जड़ता में चेतनता,
ऐसा जन चेतन ही जग सुख पायेगा।
अपने समान देख औरों को भी सुखवान,
सुख भोगी जग - सुख देख हरषायेगा ॥
दीन-हीन-बल हीन अधम मलीन जो भी,
उनको जो सुख देख रस बरसायेगा।

जगाकर जगती को प्रेम से जगायेगा जो,
एक दिन ऋषभ समान बन जायेगा ॥

ऋषभ ने जागकर, जगत जगाया आप,
जगत ने अपने में ऋषभ को पाया है।

तब जन मानस की भूमि पर ज्ञान-तरू,
जग सुख, शान्ति हेतु मेघ बन आया है ॥

ऐसा मेघ सरसता अंग - अंग जिसके है,
सरस रसा रहा पे रस और बरसाया है।

तब से ही जड़ता के उदर को चीर कर,
समता का, ममता का उर भर आया है ॥

★

सुन्दर सा एक सरोवर है, आनन्द सिन्धु लहराता है।
मानों मानस के अन्तस का, प्रत्येक अंग पुलकाता हैं ॥

उठ रही उमंगों सी लहरे, दो सखियां हाथ मिलाती सी।
बढ रही सूर्य की किरणों सी, कलियों के हृदय जगाती सी ॥

लहरे श्रद्धा के कूल तलक, आती हैं पग छू जाती हैं।
अथवा प्रियतम के उर लगकर, अन्तर का ताप मिटाती हैं ॥

वह सुभर सरोवर अति सुन्दर, होकर न कभी इठलाता है।
होकर के सागर से महान, किंचित न गर्व वह पाता हैं ॥

अगणित जलचर जीवन पाते, मर्यादा में सब रहते हं।
जीवन अर्पित कर चुके बन्धु, ऐसा आपस में कहते हं ॥

रंचक विरोध है इन्हें नहीं, सब आते जल पी जाते हैं।
कितने ही पशु पक्षी आकर, नित अपनी प्यास बुझाते हैं।।

खिल उठते उनके अंग-अंग, जीवन में ज्योति जगाते हैं।
जब तब आकर श्याम मेंघ, मुख देख-देख हरषाते हैं।।

मन में उल्लास जगाकर के, धरती पर रस बरसाती हैं।
मृदु वायु हृदय से निर्मल हो, जीवन को सहज बनाती हैं।।

जीवन उमंग सा बना रहे, वह सुधा सिन्धु लहराती है।
सबके मन को सबके तन को, अन्तस्थल तक सरसाती है।।

सूरज किरणें होतीं शीतल, आकर के आप नहा करके।
पाती लहरों से नये सूत्र, जीवन का स्रोत बहाकर के।।

साम्राज्य ऋषभ का सरवर है, जीवन गम्भीर कहानी है।
उठती लहरें जनता जिसकी, जिसके तट सुभग जवानी है।।

पशु पक्षी, जलचर, मेघ आदि, गण मान्य प्रमुख अधिकारी हैं।
जैसा निर्मल जल सरवर का, वैसे ही सब अविकारी हैं।।

सबके हित को सरवर सम ही, साम्राज्य ऋषभ हित आकर है।
दिशि-दिशि मंगल प्रभात होगा, नृप ऋषभदेव करुणाकर है।।

जन की उन्नति का विमल भाव, जिसके अन्तर की अभिलाषा।
आज्ञानुकूल सब विचरेंगे, प्रभु ऋषभदेव को है आशा।।

शासन ज्यों का त्यों बना रहा, पहले भी ऋषभ देखते थे।
किसको क्या कौन अपेक्षित है, प्रभुवर वह सुलभ देखते थे।।

सर्वत्र पवन सम ऋषभ दृष्टि, स्वयमेव विचरती रहती थी।
थोड़ी भी यदि त्रुटि हो जाती, स्वयमेव संवरती रहती थी।।

बल को, श्रम की, जन मेहनत की, महिमा सब ने पहचानी है।
लगता था आर्यवर्त मे अब, उमगाई नयी जवानी है।।

खेती फसले, बन बाग आदि, प्रत्येक दिशा उजियाली है।
मिल रहा सभी को आज काम, कोई न हाथ अब खाली है।।

घर-घर उद्योग चल पड़े है, अब कहीं न कोई बाधा है।
निज की, घर की, जग की, सबने, उन्नति का व्रत ही साधा है।।

शिक्षा, श्रम, प्रेम, कला आदिक, शुभ नीति आदि सबने जानी।
जिसमें सब का हित बना रहे, वह रीति सभी ने पहचानी।।

राजा में और प्रजा जन में, शुचि पिता-पुत्र का नाता है।
है एक शक्ति का पुंज और, दूसरा शक्ति का दाता है।।

जो सार्वभौम बल राजा में, जिससे जन पालन करता है।
अपने बल से, अपनी मति से, जन के मानस को भरता है।।

जग में मानस मे बसा हुआ, ममता का शुभ रत्नाकर है।
श्री ऋषभदेव सुख सागर हैं, उन मन अति करुणाकर है।।

सबको वह नित जागृत करता, सब के उर आप विराजा है।
तन से, मन से, श्रद्धा पूर्वक, सबके ही मन का राजा है।।

हित के साधन का केन्द्र बिन्दु, जन की इच्छा का निर्झर है।
जनता का है अभिलषित यही, जनता को यह ही सुन्दर है।।

—: कवित :—

ऋषभ का मानस तो सागर के अनुरूप,
आकर के जिसमें गम्भीरता समायी है।

अन्तरंग की तरंग रंग-रंग छवि लिये,
शुचि लोक जीवन की जिसने बतायी है ।।

देकर के मुक्ति-मुक्ता लगन की डोर बाँध,
मानवीयता को जयमाल पहनाई है।

होकर अपार गर्व का छुआ न द्वार कभी,
सर्व-भूत-हित सीख सबको सिखायी है ।।

ऐसा कौन जिसने न ऋषभ के पांव छुये,
और फिर अन्तर में शुद्धता आयी न हो।

ऐसा कौन जिसने न ऋषभ के दर्श किये,
फिर भी न अन्तर में सुषमा समायी हो ।।

ऐसा कौन जिसने न ऋषभ से ज्ञान लिया,
फिर भी न जिसने कि कला सीख पायी हो।

ऐसा कौन जिसने कि ऋषभ को जान लिया,
फिर भी न अन्तर से हुआ अनुयायी हो ।।

-: सवैया :-

वह मानव जीवन व्यर्थ गया, जिसने निज वृत्ति सुधारी नहीं।
जड़ता की लता बढ़ती जो गयी, शुभ युक्ति से जो कि उतारी नहीं ।।

यदि दम्भ का वृक्ष लगा उर मे, उसकी दृढ़ मूल उखारी नहीं।
किसका फिर दोष कहें जग मे, गात देख के बुद्धि संवारी नहीं ।।

प्रभु आदि ने ज्ञान का दीप जला, तम-तोम में पंथ दिखाया सही।
हम कौन हैं औ किस योग्य यहाँ, इस तथ्य का दर्श कराया सही ।।

क्षमता भ्रम के पग चूमती थी, भ्रम आदि ने दूर भगाया सही।
जड़ता जन को न गिराती कहाँ, भटकों को गले से लगाया सही।।

वह कौन हृदय, ममता न जहाँ, वह हाथ कहाँ, शुभ काम न हो।
वह बन्धु कहाँ समता न जहाँ, वह नैन कहाँ, अभिराम न हो।।

वह त्याग कहाँ यदि लोभ रहा, पग कौन चले, शुभधाम न हो।
वह वाणी न धन्य हुयी जग में, प्रभु आदि का पावन नाम न हो।।

जब से प्रभु आदि का नाम सुना, तब से कुछ और सुहाना नहीं।
जब से प्रभु आदि से ज्ञान मिला, तब से कुछ और खज़ाना नहीं।।

जब से प्रभु आदि से प्रेम मिला, तब से कुछ और बखाना नहीं।
प्रभु आदि का भक्त हुआ जन है, जग में उसे और ठिकाना नहीं।।

वसुधा की सुधा प्रभु आदिविभो, क्षमता जिनमें है विराजी हुयी।
सब के हित की लिये साध हिये, समता जिनमें है विराजी हुयी।।

जग की प्रभुता है बसी जिनमें, विभुता मन में है विराजी हुयी।
निज के सुख से बढ़ के सब को, ममता जिनमें है विराजी हुयी।।

॥ दोहा ॥

शासन को रख दृष्टि में, प्रभु ने किया विचार।
कैसे अनुशासन रहे, यह जग पारावार।।

जाति धर्म या वंश का, लेंगे यदि आधार।
ऊँच नीच का भाव तब, पायेगा विस्तार।।

वनवासी या भिल्ल हो, ग्राम-लोग, नगरीय।
सब के प्रति समता रहे, सब के सब महनीय।।

क्षेत्र-क्षेत्र के व्यक्ति का, तभी सुहाना भाग।
नृपति नेह से हृदय मे, जाग पड़े अनुराग ॥

देह, प्राण, धन बुद्धि से, है बढ़कर के देश।
देश प्रेम पर जो मिटा, वह जग हुआ जनेश ॥

बालक से ले वृद्ध तक, है जिसका सम्मान।
वही कहा जाता यहाँ, पूज्यनीय भगवान ॥

है जिससे सब चाहते, मात्र कृपा की कोर।
जिससे छिप पाता नहीं, मन में कोई चोर ॥

ऐसा कुछ शासन बने, बने बिश्व परिवार।
सबका हो सबके लिये, खुला हृदय का द्वार ॥

एक दूसरे में जगे, कभी न भाव अमर्ष।
दिन प्रतिदिन करता रहे, जन जीवन उत्कर्ष ॥

जन मन में शुभ कर्म प्रति, जगे नवल उत्साह।
जिससे कभी न रुक सके, बहता प्रेम प्रवाह ॥

★

प्रभु ऋषभदेव ने इस प्रकार, जन हित पर खूब विचारा है।
कैसे - कैसे समृद्धि बढे, जो जनता की जलधारा है ॥

सुख-दुख दो जलधि किनारे हैं, इनको सम शीतल रखना है।
जो मधुर स्वाद से युक्त नीर, उसको सबको ही चखना है ॥

राजा मे और प्रजा में है, जब तक ममता का चाव नहीं।
तब तक न राज्य का हित सम्भव, जब तक समता का भाव नहीं ॥

राजा यदि सुन्दर सरवर है, तो जनता रम्य किनारा है।
राजा रजनी का सुभग गगन, तो जनता सुन्दर तारा हैं।।

दोनों - दोनों के पूरक हैं, मैत्री - मुदिता में योग बढ़ा।
दोनों में यदि कटुता आयी, तो समझो है ये रोग बड़ा।।

सुन्दर है यह ही प्रेम भाव, सेवा का भाव नहीं कम हो।
यदि कभी एक को कष्ट मिले, तो आंख दूसरे की नम हो।।

राजा जनता का रक्षक है, रक्षा को नित तैयार रहे।
नृप के प्रति जनता के उर में, आनन्द भरा संचार रहे।।

राजा जन हित में लगा रहे, जितनी भी उसमें क्षमता है।
निश्चिन्त सफलता पायेगा, जनता के प्रति यदि ममता है।।

जनता तन, मन, धन से नृप को, अपना कह तभी पुकारेगी।
अन्तर से होकर के निर्मल, जब जीवन सहज निहारेगी।।

यों पिता-पुत्र का भाव जगे, दोनों का सुन्दर चिन्तन हो।
शुचि सेवक-सेव्य भाव जागे, दोनों का हृदय चिरन्तन हो।।

जैसे सूरज निज किरणों से, धरती का नीर सुखाता है।
बादल बनते, वर्षा होती, भू का कण-कण हरषाता है।।

जो कुछ भी परम अपेक्षित हो, जनता से वह सादर ले ले।
राजा भी शुचि बादल बनकर, जनता का जनता को दे दे।।

नृप रहे उतारू दुग्ध हेतु, राजा का यह कर्त्तव्य नहीं।
शासक शोषक होता जाये, यह न्याय पूर्ण मन्तव्य नहीं।।

गौ सा पालन पोषण करना, पहला कर्त्तव्य हमारा है।
कर ले पर, सेवा भाव रहे, इतना मन्तव्य हमारा है।।

दोनों में रहे मनोरमता, सेवा व्रत के मतवाले हो।
जनता यदि नृप का साधन हो, नृपवर उसके रखवाले हो।।

जग राज शक्ति सर्वोपरि है, राजा ही बल का स्वामी है।
दुर्धष शक्ति राजा की है, राजा जन का हित-कामी है।।

राजा ही सबल नियन्ता है, राजा ही जन हित साधक है।
जन के मन पर, जन के तन पर, प्रेमांकुश से शुभ शासक है।।

वह न्याय, नेह का आदि बिन्दु, निष्पक्ष भाव का पालक है।
हिंसा, अन्याय, क्रूरता का, अवरोधक कष्ट निवारक है।।

असहाय, निबल बूढ़े, बालक, सब के जीवन का रक्षक है।
जो जन हित मे बाधक होते, उनको तक्षक बन भक्षक है।।

आनन्द-कंद-शोभाभ-सिन्धु, जन जीवन का शुचि पानी है।
सर्वस्व लुटाता जगती को, नृप तो मेघों सा दानी है।।

परहित को आप संवरता है, परहित को आप सरसता है।
परहित को आप समर्पित हो, परहित को आप बरसता है।।

सरि के समान पीता न नीर, जग को फल स्वयं लुटाता है।
वह स्वयं सूर्य बन कर भू पर, भू-मण्डल को चमकाता है।।

निशि में नभ का बनता शशि है, हिमगिरि की वह तरुणाई है।
गुण में सागर की समता ले, ऊषा समान अरुणाई है।।

उठती उमंग सी आकांक्षा, धरती सी क्षमा सुहाई है।
ममता, समता, शुचिता, ऋजुता सर्वत्र स्वयं बिखराई है।।

—: दोहा :—

हरि, काश्यप अरु सोम प्रभ, लिये अकम्पन पास।
महा माण्डलिक सब किये, देकर बल विश्वास ।।

कच्छ आदि वरवीर को, सौंपा पद अधिराज।
इस प्रकार शोभित हुये, ऋषभदेव महाराज ।।

कर्म-भूमि रचना रची, कुलकर हुयी समाप्त।
इस प्रकार शासन हुआ, पूर्ण संगठित व्याप्त ।।

—: कवित्त :—

जन-मन-रंजन के वीरवर बाहुबली,
सुत सोम प्रभु कुरुराज कहलाये हैं।

नाम था अकम्पन पै, श्री धर था विश्व जाना,
नाथ-वंश के प्रणेता आप ही कहाये हैं ।।

काश्यप को आदि ने था मघवा का नाम दिया,
उग्रवंश संस्थापक आप ही बताये हैं।

इस भांति हरि वंश, सोम वंश, कुरु वंश,
और उग्र वंश जन मन को सुहाये हैं ।।

पग-पग नूतनता देख के व्यवस्था पूर्ण,
जन - मन अन्तर से आज हरषाया है।

प्रभु वर ऋषभ मे दिव्य शक्ति विद्यमान,
जिसका प्रकट रूप जग को दिखाया है ।।

कण-कण पाकर प्रकाश क्षमता का रम्य,
रंग-रंग रंजित सा फूला न समाया है।
सरसता जीवन में सुख हेतु सरसा के,
नीरस रसा पे रस प्रभु बरसाया है।।

॥ दोहा ॥

आदि नाथ भगवान को, जो भी करे प्रणाम।
मन वांछित उसको मिले, सफल होय सब काम।।
वे कण-कण मे हैं रमे, उर-उर में किये निवास।
दृश्यमान है जगत में, उनका दिया प्रकाश।।

ऋषभ त्याग वर्णन

—: कवित्त :—

भव-निधि-तरण को, नौका तव-पद-रज,
कुछ भी समानता को है न देवलोक में।
जिसने भी पद-रज शीश पर धार ली है,
उसको न भय बचा इस मृत्यु लोक में।।
धारने को लालायित किन्नर औ देव रहे,
चाहते बसाना सभी अन्तर के लोक में।
जिसने भी ऋषभ का एक बार नाम लिया,
तत्क्षण आग लगी मान लो कि शोक मे।।
एक बार जो भी भर आह को पुकारेगा तो,
जीवन की उसकी कराह मिट जायेगी।
एक बार जो भी उर छवि को उतारेगा तो,
जग छवि देखने की चाह मिट जायेगी।।
एक बार जीवन जो ज्ञान से संवारेगा तो,
जीवन में व्यापी पीर दाह मिट जायेगी।
एक बार ऋषभ की राह अपनायेगा तो,
जग आवागमन की राह मिट जायेगी।।
आदमी तो मन का मनोज बना घूमता है,
ज्ञान के कभी है मनोवृत्ति को न तोड़ता।

मन का तुरंग जहाँ चाहे वहाँ दौड़ता है,
भूल के भी मन में मतंग को न मोड़ता ।।

मन चाह-सर का सरोज फूलता है नित्य,
भूल से भी-परहित मन में न जोड़ता ।

मन जग सुख चाहना से, जुड़ता है नित्य,
जल-जल मरता है मरना न छोड़ता ।।

ऋषभ ने ज्ञान का वह दीपक जलाया यहाँ,
यथा तथ्यता की छवि जग में निहारे जन ।

जिसमें न पग-पग पर अवरोधक हो,
सभी चलें पथ पर उसको बुहारे जन ।।

कौन उपयोगी और कौन उपयोगी नहीं,
खोलकर ज्ञान-नैन जग को निहारे जन ।

हम भी दुखी न रहे कोई भी दुखी न रहे,
चल कर पथ पर जीवन संवारे जन ।।

त्याग-वृत्ति जिसने भी अपना ली जगती में,
उसकी तो कोई जन समता न पायेगा ।

राग भाव उसमें न जगेगा कभी भी रंच,
जग के प्रपंच से तो साफ बच जायेगा ।।

जागतिक शक्तियाँ न उसको बलिष्ठ होंगी,
एक निष्ठता से और बल अपनायेगा ।

सुख-दुख दोनों में समानता को देख जन,
ऋषभ समान उसके भी गीत गायेगा ।।

लाभालाभ - जयाजय, सुख - दुख राग-शोक,
इनमें ही मानव का जीव चुक जाता है।

दया, माया, ममता से, समता से, क्षमता से,
किया हुआ पुण्य कभी कभी लुक जाता है ।।

जागातिक शक्तियां भी होती हैं बलिष्ठ जब,
तब बलवान का भी बल झुक जाता है।

किन्तु जब ज्ञान का निधान हो के उठे पग,
तब यमराज का भी पग रुक जाता है ।।

ज्ञान के निधान मम ऋषभ महान प्रभु,
ज्योति वन्त प्रखर मरीचि बिखराते हैं।

सकल-विधान विज्ञ, अज्ञता को हरते हैं,
जगती के जीवन को गति सिखलाते हैं ।।

जड़ता न, अंधता न, खलता न रहे रंच,
जीवित कला से युक्त लेख लिखवाते हैं।

भोगना पड़े न जिस पर चल अनुताप,
ऋषभ महान ऐसी राह दिखलाते हैं ।।

★

हल्की-हल्की चल रही वायु, दिन सुखद और सम शीतल है।
सर्वत्र विलसता जीवन है, आनंद मग्न जगती तल है ।।

ऐसी कुछ फली कर्म खेती, जन ने मन वांछित पाया है।
जन गण मन में आनंद भरा, भगवान ऋषभ की माया है ।।

जब तब उठते आनंद-मेघ, सुख की वर्षा कर जाते हैं।
धरती को कर आनंद मग्न, घर बाहर सब भर जाते हैं॥
नदियाँ बहतीं सुख लहरी-सी, पीड़ा रेती बह जाती है।
बहते-बहते सुख की सरिता, प्रेमाम्बु कथा कह जाती है॥

उठती लहरों सा जन का मन, जीवन तट को छूता फिरता।
बिजली सा आप कौंध जाता, रंगीन बादलों में घिरता॥
हिमगिरि सा नित उठता जाता, आकाश चूमने की इच्छा।
मन के अनुकूल आप पाकर-मधुमास, झूमने की इच्छा॥

सुरराज इन्द्र को भू का सुख, ईर्ष्या का बिन्दु दीखता था।
स्वर्गिक सुख छोटा लगता है, रह-रह मन आप खीझता था॥
नश्वर भू पर, नश्वर तन है, नश्वर जग सुख के साधन हैं।
लेकिन जिजीविषा तो देखो, ये ही सौन्दर्य प्रसाधन हैं॥

जड़ मे चेतन सुख खोज लिया, कब क्या होगा परवाह नहीं।
कब मृत्यु दबोचेगी आकर, उर मे चिन्ता या दाह नहीं॥
धरती का मानव सीखा है, जीना तो सुख से जीना है।
हँसते-हँसते ही जीना है, आँसू के घूंट न पीना है॥

हम देव, यहाँ पर सब साधन, फिर भी कोई उल्लास नहीं।
केवल नियमित सा जीवन है, उपहास हास परिहास नहीं॥
केवल नीरसता भरी पड़ी, लेकिन नूतनता कहीं नहीं।
जड़ता ही जड़ता भरी पड़ी, जीवित चेतनता कहीं नहीं॥

वन, उपवन, सर, सरिता-तट भी, हैं कल्पवृक्ष अनगिनत खड़े।
सुख साधन में भू-मनुज बड़े, हम नाम मात्र के लिये बड़े॥

हौंसला देखिये मानव का, नश्वर है, चढ़ता जाता है।
तन से, मन से, बल वैभव से, आगे ही बढ़ता जाता है॥

उलझने बढ़ा कर के अपनी, उलझने आप सुलझाता है।
तकलीफे आप बढ़ा कर के, उपचार आप उपजाता है॥

इसने न हारना सीखा है, ठोकर से आगे बढ़ता है।
ठोकरे अधिक मिलती जितनीं, उतनी ऊँचाई चढ़ता है॥

हम देव जिन्हें सब सुविधाये, सुविधाजीवी ही जीवन है।
कुछ भी नवीनता ला न सके, कैसा परजीवी जीवन है॥

सरिता सी पग-पग नूतनता, अपने जीवन को कहाँ मिली।
यह तो सुन्दर गुलदस्ता है, इसमें नूतन कब कली खिली॥

सब मदन-तुष्टि को व्याकुल हैं, आकण्ठ डूब कर प्यासे हैं।
अप्सरा वृन्द से घिर रहना, हम सब के खेल तमाशे है॥

नूतन हम सब रच सके न कुछ, रचने की हम में चाह नहीं।
सोची हमने नव राह नहीं, कोई नूतन उत्साह नहीं॥

जीवन सागर सा भरा पड़ा, कहने को यहाँ रत्नाकर है।
लेकिन विकास से शून्य हुआ, कहने को ही नयनागर है॥

चेतन होते भी जो जड़ सा, जीवन को आप बिताता था।
पशुओं से अधिक न जीवन था, जो मिलता वह खा जाता था॥

मै आज देखता वही मनुज, हर ओर विकसता जाता है।
हर ओर बरसती नूतनता, हर ओर सरसता जाता है॥

नूतन विकास का केन्द्र बिन्दु, ये ज्ञान-सिन्धु ही लगता है।
इसका इंगित ही पाकर के, जग सोता है, जग जगता है॥

दे दिया ज्ञान गुरु ऋषभदेव, वे ही अब बने प्रदर्शक हैं।
हम शक्ति-पुंज होकर के भी, दुनिया को आज निरर्थक हैं।।

जग में फैला यों ही प्रकाश, क्या होगा अपनी महिमा का।
भू लोक स्वर्ग बन जायेगा, शुचि देवलोक की गरिमा सा।।

श्रेष्ठत्व हमारा मिट जाये, जीते जी ये कैसे होगा।
गतिरोध हमें करना होगा, करना होगा, जैसे होगा।।

—: कवित्त :—

देखिये न जिनको महान जग मानता है,
कैसी तुच्छ नीचता का उनमें निवास है।

गति अवरोधक बना है उस पंथ का ही,
जिसमें विलस रहा बुद्धि का विलास है।।

सुरराज इन्द्र का उपासक बनेगा कौन,
अवरुद्ध होने चला जिनसे विकास है।

सतत प्रकाश की न धारा अवरुद्ध होगी,
ऋषभ हमारा युग-युग का प्रकाश है।।

जागृत को अन्धकार और कम भासता है,
प्रखर प्रकाश सदा साथी बना करता।

जागृत को माया कभी रंच भी सताती है न,
जगत प्रपंच में से सार-गृह भरता है,

जागृत को जगत का और जगतेतर का,
सार-गहता है उल्टा न उसे धरता।।

जागृत को जगत में जीवन तो मिलता है,
जगती में मर कर के भी नहीं मरता ।।
जिसने भी और का न मान बढ़ने दिया है,
उसने न जगती मे मान कभी पाया है।
होकर चरित्रहीन कौन है मलीन नही,
मन का मलिन कौन बड़ा फल लाया है ।।
और का उजाड़ कर जिसका बसा है घर,
काम के बिना न जन कभी मन भाया है।
जिसने न त्याग किया और नाम प्रेम लिया,
उसने न जगती में प्रेम अपनाया है ।।

॥ दोहा ॥

अजर अमर सुर-देव के, उर ईर्ष्या की बाढ़।
कुटिल मत्रणा की तभी, मानो खुली किवाड़ ।।
होकर के सम्पन्न भी, रही और पर दृष्टि।
हाय-हाय क्यों बढ़ रही, जगत मनुज की सृष्टि ।।
ऋषभदेव के हृदय में, जाग उठे जब त्याग।
जगत प्रगति रुक जायेगी, जब लेंगे वैराग ।।
स्वर्ग रहेगा श्रेष्ठ ही, और रहेगा मान।
भूमि-लोक के लोग तब, हमको देंगे मान ।।

★

भगवान ऋषभ प्रभु एक दिवस, बैठे थे शुभ सिंहासन पर।
सौधर्म इन्द्र के सुख - साधन, न्यौछावर थे इस आसन पर ।।

दायें-बायें बहु माण्डलीक, आसनासीन शोभायुत थे।
मानों विवेक राजा के ये, यश युक्त पीन शोभायुत थे।।

गढ़पति आकर निज क्षेत्रों के, आचार आदि बतलाते हैं।
किस तरह प्रगति कर रही प्रजा, आंकड़े सभी समझाते है।।

राजा, मंत्री, आमात्य आदि, देते सुझाव मनभाये हैं।
गढ़पतियों को लगता ऐसे, जैसे वे फल को पाये हैं।।

सब ओर विलसता जीवन है, जीवन है, सुखमय बीत रहा।
जैसे सुन्दरतम बगिया में, बजता मधुरिम संगीत रहा।।

अनगिन देवों के साथ इन्द्र, पूजा सामग्री ले आया।
इच्छानुकूल पाकर दर्शन, निज अन्तर मन से हरषाया।।

संग में आये गन्धर्व कुशल, इनकी न कला का पार कहीं।
संगीत, गान नृत्यादि कला, में जन का है अधिकार नहीं।।

नृप ऋषभदेव से आज्ञा ले, संगीत मनोज्ञ रचाया है।
अप्सरा-वृन्द ने नृत्य हेतु, कोमल पग तुरन्त उठाया है।।

स्वर-ताल-बद्ध-संगीत उठा, आलाप लाप अन्तरित हुआ।
आनंद मधुर की प्राप्ति हुई, जन-जन का मन गुँजरित हुआ।।

सब मंत्र मुग्ध हो गये मनुज, ऐसी रसधार उमड़ आयी।
ज्यों वर्षा ऋतु सावन की हो, मदमाती घटा घुमड़ आयी।।

सब भूल गये अपनी सुध-बुध, सब ओर सरसता घिर आयी।
साकार साधना हुयी स्वयं, अनुपम समरसता फिर आयी।।

छूम छनन छनन, छूम छनन,छनन, सब ओर सुनायी देता था।
स्वर ताल-तान अनुपम अलाप, श्रोता का मन हर लेता था।।

अनुरक्त स्वयं भगवान हुये, जन के मन की क्या हस्ती है।
जिसमें सब का मन रंगता है, यह तो रंगों की बस्ती है॥
जो भी आता इस सभागार, आते - आते रंग जाता है।
जब इस रंग की गाथा सुनता, फिर सुनने को ललचाता है॥

॥ दोहा ॥

अवधिज्ञान से इन्द्र ने, भली भांति पहचान।
ऋषभदेव वैराग्य का, काल निकट ये, जान॥
आदिनाथ के सरित की, लख कर विमल हिलोर।
डूब रहे आकण्ठ थे, होकर भाव विभोर॥
इसी समय शुभ इन्द्र ने, चुना नृत्य के हेतु।
इन्द्र सभा में जो रही, फहराती यश-केतु॥
देव नर्तकी का सुधर, नील-अजना नाम।
अंग-अंग था लग रहा, कामदेव का धाम॥

–: कवित्त :–

कनक छड़ी सी देह, बरसाती रस, मेह,
अंग सुषमा का गेह, मानो रसधार है।
सुगठित देह यष्टि, चंचल सरस दृष्टि,
देखती है सब सृष्टि, मदन - विचार है॥
मन जिसका तुरंग, दौड़ता है दंग - दंग,
प्रमुदित अन्तरंग, जीवन का सार है।

जन - मन अनुरूप, झुकते हैं जन-भूप,
नील-अंजना का रूप, अमित अपार है ।।

देखती जिधर खिल जाते हैं कमल कुंज,
बिखराती रस पुंज, सरस बनाती हैं ।

नृत्य करती हुयी जो झूमती है दिशि-दिशि,
राशि-राशि कामना की दृष्टि उठ जाती है ।।

अंग-अंग की मरोड़ अंग-अंग मोड़ती है,
अतिशय निकटता को दृष्टि ललचाती है ।

सकल सभा-सदस्य, कर लिये निज वश,
देव नृत्य अंजना जो रस बरसाती है ।।

रूप की, स्वरूप की दिखाकर अनूप छटा,
जिनमें जगा न काम उनमें जगाती है ।

दृश्यमान जगत की अपनी भी प्रभुता है,
जिनमें लगा न जन उनमें लगा दिया ।।

नैन भ्रू कंचन के गढ़ सब नश्वर है,
जिनमें पगा न मन उनमें पगा दिया ।

देखो नील अँजना के रूप, बल, वैभव को,
जिनका ठगा न मन उनका ठगा दिया ।।

कौन जानता है कब आयु जन छीज जाये,
भीग जाये क्षण भर में ही रखी चूनरी ।

कब कौन प्रिय और कला गुण ख्याति आदि,
आप बन जाये हेतु हीरा जड़ी मूँदरी ।।

कब मिल जाये प्राण और मिल जाये सुख,
और बन जाये आयु कब दुख दून री।
कौन जानता है कब मिल जाये प्रचुरता,
और मिल जाये कब जीवन में न्यूनरी ॥

नील-अंजना की आयु, क्रम-क्रम कम हुयी,
और उस क्रम का भी छोर छुये जाती है।
शुभ सरिता की धार, होती है, प्रवाहमान,
और एक दिन धार सिन्धु मे समाती है ॥

तारों वाली ओढ़नी सी फूली न समाती है जो.
और वही रात प्रात अश्रु बरसाती है।
पाकर के नेह खूब साथ जो निभाती रही,
और एक दिन बुझ जाती दीप बाती है ॥

—: दोहा :—

नृत्य समय के मध्य में, आयी घड़ी मलीन।
नील-अंजना की हुयी, आयु इसी क्षण क्षीण ॥
सकल सभासद देख नृत्य, अतिशय हुये विभोर।
पता न कोई पा सका, हँस उड़ा किस ओर ॥

चतुर इन्द्र या ऋषभवर, समझ गये ये भेद।
नील - अंजना मृत्यु से, उपजा उर में खेद ॥
इन्द्र देव रचना रची, उसके ही अनुरूप।
नृत्य रुका ना एक पल, रहा एक ही रूप ॥

ऋषभदेव इस खेल को, सके भली विधि जान।
नश्वरता किस भांति है, तथ्य गये पहचान ।।

★

सब का सब ही यह नश्वर है, जो कुछ दिखलायी देता है।
सब सपना सुधर सलोना है, जो यों अंगड़ाई लेता है ।।

बुलबुला एक पानी का है, देखते हुये मिट जाता है।
कुछ भी न हाथ में पाता है, सोते से यदि उठ जाता है ।।

जैसे प्रभात की बेला में, तारे दिखलायी देते हैं।
देखते - देखते छिप जाते, वे फिर न दिखायी देते हैं ।।

इस तरह मृत्यु का, जीवन का, जगती में एक अटल क्रम है।
खाली होता है, जग न कहीं, यह कितना आकर्षक भ्रम है ।।

सुख और मिले, सुख और मिले, जीवन भर रिसता जाता है।
झूठे दुख सुख की चक्की में, निर्मल मन पिसता जाता है ।।

मृग तृष्णा में मन भटक रहा, जल का कब कहाँ ठिकाना है।
यह तृषा जहाँ पर बुझती है, वह घाट नहीं पहचाना है ।।

चौकड़ियाँ भरता है मृग-मन, ऊसर में जैसे बरसा हो।
कोई आ हमको बतला दे, ऊसर में पौधा सरसा हो ।।

जग में इतना आकर्षण है, इससे बच पाना सरल नहीं।
ऐसी न वस्तु कोई दीखी, जिसके उर में हो गरल नहीं ।।

फिर भी भूखे मानव व्याकुल, बढ़ रहा बाज की ही गति से।
चाहे कितना दूषित जल हो, गिरता प्यासे की ही मति से ।।

सुत के दारा, पुत्री के प्रति, उर में ममता जग जाती है।
गन्तव्य ओर बढ़ने के पथ, मानो ज्वाला जग जाती है।।

धन मे, वैभव मे या तन मे, शुभ वृत्ति नेह रम जाती है।
लहराती पुण्यों की खेती, बरसात आप थम जाती है।।

घन-श्याम निरखते ही यों ही, छितराते उम्र निकल जाती।
जब समय मिला कुछ कर न सके, पछताते उम्र निकल जाती।।

जो नहीं चाहिये उसको ही, हम सदा निरखते फिरते हैं।
जो नहीं चाहिये हमको वह, जगती मे करते फिरते हैं।।

जितने क्षण होते मन्दिर में, कुछ क्षण को श्रद्धा जगती है।
जैसे ही हम बाहर आते, दुनिया फिर प्यारी लगती है।।

इसकी न तृप्ति हो सकती है, चाहे जितना भण्डार भरो।
इसका न रोग कम होता है, चाहे जितना उपचार करो।।

मन की चंचलता के कारण, टिक सका जगत मे नेह नहीं।
यदि यह मन कहीं ठहर जाता, रहता जग मे सन्देह नही।।

मन हार गया, जन हार गया, मन जीत गया जन जीता है।
मनुआ ही गरल पान करता, मनवा ही अमृत पीता है।।

मन ही ने महल बनाये हैं, मन ही तो काम जगाता है।
मन चाहे जिधर मोड़ देता, मन ही तो लगन लगाता है।।

रस पीकर के भी प्यासा है, मन तो भूखा ही रहता है।
सब कुछ पाकर के दुनिया मे, केवल अभाव को सहता है।।

फिर भी जीवन निर्माता है, निष्काम कर्म का साधक है।
मिलती भूले से कभी राह, साधना मार्ग का बाधक है।।

उपचार सभी का दुनिया मे, मन का कोई उपचार नहीं।
मन अपना यह गति हीन बने, मिलता न सहज आधार कहीं।।

यह भोग खोजता फिरता है, होता भोगों से शान्त नहीं।
कितना ही सुन्दर मिल जाये, सुख पाता आद्योपान्त नहीं।।

ऐसा उलझाये रखता है, सुलझाव नहीं मिलने देता।
परिवेश हर्ष रस पा जाये, ऐसा न कुसुम खिलने देता।।

मन का पंछी जग-रजनी में, तम की भटकन में घिरता है।
जिस सुखद नीड़ से बिछुड़ गया, उसकी न ओर को फिरता है।।

जिससे जीवन कुछ बन जाये, ऐसा कुछ भी होता न कभी।
दिन रात भागता फिरता है, लाचार आप सोता न कभी।।

सब ओर सघनता होने पर, यह तो एकाकी रहता है।
दुनिया संशय से हीन रहे, यह तो संशय को सहता है।।

जग के भ्रम में मन पड़ा रहा, पा सका एक क्षण चैन नहीं।
जिससे शुभ पंथ दिखायी दे, खुल सके कभी वे नैन नहीं।।

झूठे सुख की दुनिया देखी, नश्वरता खूब निहारी है।
अज्ञानी इसको दिन कहते, वास्तव में ये अँधियारी है।।

जैसे अंधियारी रजनी मे, सब ही अँधियारे में रहते।
कुछ दीप सहारे को रखते, बाकी अँधियारे को सहते।।

सुख को मिल पाती बूंद नहीं, मन मे सागर की आशा है।
पर्वत सा भार लिये फिरते, पर रहती संग निराशा है।।

नश्वरता आज निहारी है, मेरी ममता सब छूट गयी।
ऐसा लगता है चेतनता, अब तो मुझसे है रूठ गयी।।

-: कवित्त :-

सेमल के फूल का न रस मिला शुक को है,
मरुथल ने न सरिता का नीर पाया है।
मृग-मद की सुगंध से न मृग मस्त हुआ,
अस्त व्यस्त जीवन को उसने ही पाया है ।।

मृग जल से न प्यास बुझ पायी तृषित की,
धूम के समूह ने तो नैन को रुलाया है।
सबल - निबल वीर या कि कोई भी हो,
जगती का सुख किसी को न राम आया है ।।

मन का मतंग संग लेकर अनंग रंग,
झूमता मचलता, न फूला ही समाता है।
अंग-अंग लेकर उमग नाचता है मन,
तरल तरंग सा न रोके रुक पाता है ।।

अन्तर का रंग रूप धारता कुरग का है,
कभी-कभी मन तो तुरंग बन जाता है।
नये रग ढंग वाले ढूंढता प्रसंग काम,
होकर के पंगु तुंगता को इठलाता है ।।

-: कवित्त :-

देखता है जन शून्यता की ओर जा रहे हैं,
फिर भी तो पूर्णता की एक बड़ी आशा है।

जीवन की सरिता को घेरे हुये सुख दुख,
बढ़ता ही जा रहा है, आशा है, निराशा है ।।

डूबते सितारे जैसे रूप से है प्रीति बड़ी,
पल-पल सूखती ही जा रही विपाशा है ।

जो भी मिला उसमें न कभी परितोष मिला,
जीवन की शायद यही तो परिभाषा है ।।

जन-मन-रंजना में नील-अँजना की मृत्यु,
अभी-अभी हुयी, और आँखों ने निहारी है ।

जिसमें वसन्त का न अन्त दिखलायी दिया,
अभी-अभी देखा हुयी गगन-विहारी है ।।

अंग-अंग रूप-बिन्दु सिन्धु सा दिखायी दिया,
अभी-अभी वही रूप हुआ बलिहारी है ।

जब चाहे रोक दी है जब चाहा जोड़ दी है,
जीवन तो क्रूर यमराज की सवारी है ।।

*

प्रभु समझ गये सुरराज चतुर, आकर जो नृत्य रचाया है ।
जीवन की क्षण भंगुरता का, शाश्वत यथार्थ दिखलाया है ।।

जो दीख रहा सब नश्वर है, नश्वर में जीवन सोता है ।
जो जान नहीं पाता रहस्य, केवल उस को दुख होता है ।।

दुख का कारण तो जड़ता है, जिसमें सब ठीक दीखता है ।
गिरता जब जाकर खंदक में, व्याकुल हो तभी चीखता है ।।

मिल गयी समय से चेतनता, इससे बढ़ कर के चाह नहीं।
कैसे वह बुद्धिमान होगा, अपना पाया जो राह नहीं॥

संसार प्रगति का लक्ष्य लिये, भौतिकता में ही फँसा रहा।
पहले उसका ही त्याग करूं, अब तक जिसमें हूं फँसा रहा॥

कुछ आत्म-शोध भी करना है, बनना है निज का विश्वासी।
पाना है सुखद अमरता को, कट जाये बंधन चौरासी॥

था नृत्य मधुर चल रहा उधर, दर्शक गण में अनुमान कहाँ।
सुरराज इन्द्र था सोच रहा, प्रभु आदिनाथ का ध्यान कहाँ॥

समझे सब नील-अँजना है, प्रभु समझ रहे सब माया है।
फँस गया बीच माया के जो, उसने सर्वस्व गंवाया है॥

जड़ता में चेतनता खोजूँ, चेतन अविनश्वर कहलाऊँ।
धरती पर लाकर ज्ञान ज्योति, अमरत्व नीर से नहलाऊँ॥

झूठे सुख, साधन दूर रहें, जड़ता ममता से दूर रहूं।
जग को प्रदान करने प्रकाश, अन्तर प्रकाश भरपूर रहूं॥

अन्तर-प्रकाश के हेतु मुझे, अब त्याग वृत्ति अपनानी है।
जीवन भर साथी रहने को, यह त्याग वृत्ति सुखदानी है॥

॥ दोहा ॥

इधर सुदृढ़ निश्चय हुआ, उधर सभा थी दंग।
एक साथ देखे गये, जीवन के दो रंग॥

देव गये सुर-लोक को, लोग गये निजधाम।
ऋषभदेव भगवान के, जागा भाव ललाम॥

पढ़े सुने अति चाव से, ऋषभदेव का त्याग।
निश्चय ही प्रभु पद बढ़े, मनुज हृदय अनुराग ॥

ऋषभ प्रस्थान वर्णन

—: दोहा :—

जग के सुख यों जानिये, ज्यों कपूर की गन्ध ।
अथवा लम्पट से हुये, जीवन के अनुबन्ध ।।

जग सुख में कब शान्ति है, और न है सन्तोष ।
वह कैसा अनुराग है, जिसमें जागे रोष ।।

और-और की रट लगी, पर न भरे उर-पात्र ।
जहाँ दिखायी दे रहा, सुख परछाई मात्र ।।

सुत, दारा, धन, द्वार सब, रखे देह तक प्रीति ।
शिथिल देह जब हो गयी, शिथिल हुयी जग रीति ।।

अपना-अपना सब कहें, अपना मिला न एक ।
अपने - सपने से हुये, जब-जब जगा विवेक ।।

★

प्रभु ऋषभदेव ने सब को ही, अपना निर्णय बतलाया है ।
किस लिये लिया निर्णय ये है, सबको ही ये समझाया है ।।

हो गया आज भव विभव पूर्ण, बल की, विवेक की माया है ।
बह रही संस्कृति की सरिता, मानव ने वैभव पाया है ।।

सब ओर प्रगति है दीख रही, सब मे बल विक्रम जागा है ।
जैसे प्रकाश की जागृति से, अज्ञान आप ही भागा है ।।

अनुभव भव में ही यह पाया, भव वैभव एक छलावा है ।
सम्पन्न मान लेना निज को, सपने-सा एक भुलावा है ।।

बालू पर भवन उठा कर के, नदिया की धारा लाना है।
पहले कर देना धात सबल, फिर पीछे से पछताना है।।

सेंवल-फूलों से गंध - आश, आकाश कुसुम का पाना है।
पहले धारा में ले छलांग, तट छूने को अकुलाना है।।

यों ही मैं एकांकी रहकर, दूसरा तट नहीं छू पाया।
कल मैंने देखी नश्वरता, धरती पर तुरत उतर आया।।

निशि में कर निर्णय पर विचार, एकान्त क्षेत्र प्रस्थान करूँ।
जो अन्तर में सूनापन है, वह तपः पूत मैं स्वयं भरूँ।।

यदि जन्म-मरण यह लगा रहा, दुख से न कभी छुटकारा है।
कैसा स्वतंत्र, कैसा जीवन, ऐसा जीवन नाकारा है।।

वैराग्य जगा है अन्तर में, लेकिन परहित भी सन्मुख है।
सब के प्रति मन में समता है, सब के प्रति मन में सुख दुख है।।

सबका दुख अपना ही दुख है, सबका सुख अपना ही सुख है।
जग जीवन एक ग्रंथ समझो, अपना जीवन तो आमुख है।।

सब के दुख सुख की खोज करूँ, मन में यह भाव समाया है।
जग की नश्वरता देख देख, मेरा अन्तर भर आया है।।

कल्पना लोक के सुख गृह को, धरती पर आन सजाना है।
जो कुछ अन्तर से हुक्म मिला, उसको अब शीघ्र बजाना है।।

वह कौन वस्तु दुर्लभ जग में, जिसको ज्ञानी जन पा न सके।
आया विचार मेहमान द्वार, वह कहाँ समय अपना न सके।।

मैं निज के, पर के, सब के हित, तप से वह मार्ग बनाऊँगा।
संशय के नीड़ नहीं होंगे, मैं ऐसे महल रचाऊँगा।।

जगती को जन साधन समझे, ऐसी कुछ रचना करनी है।
जिस ज्ञान-योग से शून्य धरा, वह त्याग ज्ञान से भरनी है ।।

तप कर ही स्वर्ग निखरता है, तप की महिमा का पार नहीं।
जो तप को नहीं समझ पाया, उसका होगा निस्तार नहीं ।।

संसार मुक्ति के सकल यत्न, तप से मुझको कर लेने हैं।
जिसमें इनका अभाव होगा, निश्चय ही वह भर लेने है ।।

—: दोहा :—

इस निश्चय को जान कर, सुखी हुये सुरराज।
तप कल्याणक पूजने, आये सहित समाज ।।

ब्रहम नाम के स्वर्ग के, शुचि लोकान्तिक देव।
चरण कमल को पूजने, प्रकट हुये स्वयमेव ।।

पारिजात शत पुष्प ले, रखे चरण तल ओर।
कोटि भार शोभा निरख, सब सुर हुये विभोर ।।

तन सबके पुलकित हुये, बहे नैन से नीर।
संतुति में सब लीन हैं, वाणी अति गम्भीर ।।

—: कवित्त :—

जगत एक मात्र पालक तो आप ही हैं,
इसलिये लोक ब्रहम आप को ही मानता।

धर्म रूपी तीर्थ के नेता तो आप ही हैं,
पौरुष प्रणेता जग आप को ही जानता ।।

कर्म रूपी शत्रुओं को आप ही तो जीत सके,
आपके समाज जग अन्य को न ठानता।
बुद्ध हैं प्रबुद्ध हैं तो कौन प्रतिबोध देगा,
कौन है जो गुरुरूप को न पहचानता ॥

कौन है समर्थ जो कि आपको प्रबोध देगा,
लेकर के दीप कौन सूर्य को दिखायेगा।
भव्य जीव चातक समान मेघ देख रहे,
आपके समान कौन रस बरसायेगा ॥

नीरस प्रणाली रसवाली कर डाली आप,
जग हितकारी गंगा और कौन लायेगा।
कौन जड़, मूढ़, अब ऐसा जगती में होगा।
छोड़ दया-सिन्धु और के जो गीत गायेगा ॥

॥ दोहा ॥

सृष्टि धर्म की कीजिये, कर्म शत्रु संहार।
मर्त्य लोक की सृष्टि के, आप एक आधार ॥
नाथ आपकी शक्ति को, क्या समझेंगे अज्ञ।
तुम ही एक समर्थ हो, दिव्य दृष्टि सर्वज्ञ ॥

लोकान्तिक देवादि ने, कर निश्चय का मान।
संस्तुति कर निज लोक, किया सभी प्रस्थान ॥

*

प्रभु ऋषभदेव के निश्चय पर, परिजन पुरजन को विस्मय है।
वैराग्य न लें प्रभु आदिनाथ, ऐसी सब की ही अनुनय है ॥

ज्ञानेन्द्र, सौम्य, मृदु भाषी ने, भोले-भालों को समझाया।
खिल गये सभी के मुख मण्डल, डूबते हुओं ने तट पाया ।।

तुम लोग दुखी शायद इससे, जीवन न शान्ति से बीतेगा।
जो घेर रहे हैं कर्म शत्रु, उनसे जन कैसे जीतेगा ।।

है कौन पुष्प जिसके प्रति हो, जागी जन के उर प्रीति नहीं।
वह कौन समस्या जीवन की, हल करती जिसको रीति नही ।।

भयभीत न होवे आप लोग, अपना भविष्य मंगलमय है।
बाधक न मृत्यु बन पायेगी, अपना विचार अमृतमय है ।।

घर का, बाहर का, अन्तत का, कोई न काम बाधित होगा।
जन जैसा अब तक अनुशासित, वह बल भी तो अनुशासित होगा ।।

प्रस्थान पूर्व है सुहृद सुनो, अपने समान राजा दूंगा।
कर राज व्यवस्था पूर्ण सकल, वैराग्य आदि पीछे लूंगा ।।

तुम समझ गये होगे आशय, भरतेश्वर अब शासक होंगे।
युवराज बाहुबलि बन करके, तुम सब के प्रति पालक होंगे ।।

कुछ साहस कर बोले प्रभु से, अल्पज्ञ जान क्या पायेंगे।
जब कभी समस्या आयेगी, किसके समीप हम जायेंगे ।।

जितनी समीपता पायी है, यदि फिर हम इतनी पायेंगे।
तब हो जायेगी आयु क्षीण, तब सुमिर सुमिर पछतायेंगे ।।

इसलिये निवेदन स्वीकारे, प्रभु प्राप्त अनुग्रह घनी रहे।
तप आदि आप सब यहीं करे, हम पर जो ममता बनी रहे ।।

प्रभु बोले यह सम्भव न, सुनो, मेरा साम्राज्य अगोचर है।
सारी धरती, अम्बर अपना, जीवन यह मात्र धरोहर है ।।

मैं यहाँ रहूं, अन्यत्र रहूं, सारा समता मय मुझको है।
होगा तथापि तप यहाँ नहीं, इतना कुछ निश्चय मुझको है ।।

तुम को कुछ होगा कष्ट नहीं, इतना विश्वास हमारा है।
वह राही थक जाता पथ में, जिसने भी साहस हारा है ।।

मैं सदा रहूं यह भी न अटल, मैं बना रहूं क्या सम्भव है।
मैं बना रहूं जन्मांतर तक, यह भी तो पूर्ण असम्भव है ।।

प्रति पग नूतन सुन्दर होता, सुन्दर के प्रति अभिलाषा करो।
जब कभी रिक्तता उर में हो, सौन्दर्य आदि से उसे भरो ।।

नव आशाओं के साथ-साथ, नूतन प्रकाश आने को है।
अग्रिम जन वैभव शाली हों, ऐसा विकास आने को है ।।

॥ दोहा ॥

विविध भांति प्रभु ऋषभने, देकर सरस प्रबोध।
जन मन अनुरंजित किया, लिया हृदय को शोध ।।

शक्ति सिन्धु सुत भरत को, दिया अयोध्या धाम।
विज्ञ बाहुबलि वीर को, पद युवराज ललाम ।।

और सुतों को भी दिये, राजभूमि के खण्ड।
हुआ एक साम्राज्य यों, व्यापक राष्ट्र अखण्ड ।।

राज्य सुतों को सोंपकर, हुये निराकुल देव।
निज-निज के कर्त्तव्य से, परिचित सब स्वयमेव ।।

-: कवित्त :-

एक साथ नगर अयोध्या धन्य हो रहा है,
एक ओर वीर भरतेश अभिषेक है।
एक ओर आदिनाथ होकर सनाथ चले,
जिनमें कि आज निजता की एक टेक है।।

भरत प्रवर वीर नीर निधि से गम्भीर,
नृप आदि के समान जगती में एक है।
एक जगती को यहाँ देने हैं विवेक नव,
और एक जगती में प्रकट विवेक है।।

जहाँ जहाँ मांगलिक घट जल पूर्ण साजे,
गहे-गहे सुन्दर निशान आज बाजे हैं।
वाद्य-वृन्द, सुन्दर-सी रचनाये सुन - सुन,
देखते पुरन्दर के गण आज लाजे है।।

विपुल खड़े हैं गज, बाजि-रथ सजे धजे,
और वर वीर शिविकाये आज साजे हैं।
मण्डप सी नगरी से जा रहे हैं आदिनाथ,
भरत प्रवीर आज मण्डप विराजे हैं।।

✶

अभिषेक भरत का आज हुआ, जन-जन श्रद्धा के पात्र हुये।
जन गण के शुभ मगल प्रभात, जन-मन आकांक्षा मात्र हुये।।
जय घोष भरा गगनांगन में, जन-मन में प्रीति उतर आयी।
जैसे मानो जगती की श्री, नव वस्त्र बदल कर फिर आयी।।

जब नाभिराय मरुदेवी ने, प्रभु आदिनाथ की बात सुनी ।
प्रस्थान देखने के संग-संग, आई प्रसन्नता कई गुनी ।।

आ गये पिता श्री माँ के संग, आँखों में नीर उतर आया ।
होगया हृदय गद्-गद् उनका, शिविका के जबकि निकट पाया ।।

सौधर्म इन्द्र ने बढ़ आगे, स्वागत में हाथ बढ़ाया है ।
मानों जीवन की करनी का, उसने सुन्दर फल पाया है ।।

जब शुभ्र सुदर्शना शिविका में, आकर प्रभु जभी विराजे हैं ।
सौन्दर्य त्याग का लखकर के, सुरराज इन्द्र गण लाजे हैं ।।

रोचक विवाद उत्पन्न हुआ, शिविका को कौन उठायेगा ।
जो शिविका प्रथम उठायेगा, वह ही अमृत फल पायेगा ।।

इन्द्रादि देव आगे आये, शिविका को प्रथम उठाने को ।
आदर सम्मान बढ़ाने को, निज जीवन सफल बनाने को ।।

तब तक बढ़ आये कुछ मनुष्य, यह तो अधिकार हमारा है ।
जा रहा हमारा हम को जो, अपने जीवन से प्यारा है ।।

पाकर जिसको हम धन्य हुये, जग मे अन्योन्य हमारा है ।
जन के शरीर का प्राण तत्व, अपनी आंखों का तारा है ।।

जिसने जड़ता का भार हरा, जिसने जीना सिखलाया है ।
किस क्षण पर कौन अपेक्षित है, जिसने प्रकाश दिखलाया है ।।

पशुता में मानवता लायी, जिसने कर्त्तव्य बताये हैं ।
है कौन-कोन करणीय हमें, वे कर्म मंत्र सिखलाये हैं ।।

सम्भव कर दिये असम्भव सब, कल्पनातीत सुख पाये हैं ।
जिसने हमको सुत सम समझा, संशय सब दूर भगाये हैं ।।

पत्थर को पारस बना दिया, नीरस जीवन अब सरस हुआ।
जड़ता की रजनी बीत गयी, जब-जब है हमको दरस हुआ।।

जीवन कृतज्ञ है हम सब का, हम सब यह अवसर पायेंगे।
देवता नहीं, हम सब सेवक, शिविका को प्रथम उठायेंगे।।

पिछले जन्मों से प्रभुवर के, हम तो साथी हैं बने हुये।
हम तो अनगिन सेवायें कर, अपने प्रभुवर के घने हुये।।

हम गर्भ काल जन्मोत्सव से, जब तक यौवन का आगम है।
हम तो प्रति पग हैं पास रहे, अपना अविराम समागम है।।

हमने खुशियों के अवसर पर, अपना सर्वस्व लुटाया है।
ऐसे अवसर पर तुम सबने, कितना आनंद उठाया है।।

हमने यश केतु उड़ाया है, आगे भी हमीं, उड़ायेंगे।
हम ही इस के अधिकारी हैं, शिविका हम प्रथम उठायेंगे।।

होकर विनम्र जन बोल पड़े, तुम तो अतिशय बलधारी हो।
तुम तो परहित को देह धरे, सब विधि से जग हितकारी हो।।

लेकिन इतना हम कहते हैं, इतना ही ज्ञान हमारा है।
तुम तो सब काम गिना बैठे, बस सेवाधर्म हमारा है।।

मित्रों का या समकक्षों का, होता है ऐसा काम नहीं।
सेवक न समय पर सेवा दे, निश्चय ही वह अभिराम नहीं।।

वैभव हम सब के प्राणों का, आधार यही कल्याणों का।
रक्षक ये एक मात्र अथवा, बढ़ते जीवन में त्राणों का।।

इसलिये विदाई बेला मे, दर्दीले गीत सुनायेंगे।
अनुकूल कार्य सेवा के हैं, शिविका हम प्रथम उठायेंगे।।

आशा न सिर्फ विश्वास हमें, प्रभुवर से आज्ञा पायेंगे।
शिविका को हमीं उठा कर के, आगे को बढ़ते जायेंगे॥

नभनागर, शील-सिन्धु, प्रभुवर, बढ़ता विवाद सुनकर बोले।
जन की आकांक्षा के प्रतीक, वाणी में मृदु अमृत घोले॥

तत्क्षण दोनों ही पक्षों में, आदेश हेतु कुछ शान्ति हुयी।
देखने योग्य मुख-मण्डल पर, आशा की सुन्दर कान्ति हुयी॥

दोनों पक्षों ने बात रखी, शिविका को स्वयं उठाने की।
दोनों के उर में चाह जगी, सेवा का अवसर पाने की॥

देवता नहीं, धरती के जन, मेरे अन्तर के वासी है।
है फलासक्ति इनमें रंच, केवल सेवा अभिलाषी है॥

यश की वैभव की, अवसर की, सब की बिल्कुल भी चाह नहीं।
चाहे कोई कितना पाये, उर में ईर्ष्या की दाह नहीं॥

संशय नहीं मानव हो तो, धारण शिव सुख पाता है।
इसलिए बन्धुओं अमर सुनो, शिव का इनसे नाता है॥

इसलिये हमारी इच्छा है, जन शिविका प्रथम उठायेंगे।
इन्द्रादि चलेंगे साथ-साथ, सम्मानित कर पहुँचायेंगे॥

यह निर्णय सुन अवधेश्वर का, देवों के मन यह भाव जगे।
सुर भोग सम्पदा सब ले ले, क्षण भर को नर पर्याय मिले॥

जय ऋषभदेव! जय वृषभदेव !! जय आदिनाथ !!! जयकार हुआ।
जन की आकांक्षा का सपना, स्वीकार हुआ, साकार हुआ॥

कह उठे लोग प्रभु धन्य-धन्य, तुम सा न अन्य हितकारी है।
हे नाथ ! आपका ही प्रभाव, जगती जन को सुखकारी है॥

हमने तो अपने प्रभुवर को, अपने जीवन में धार लिया।
जिसने धरती पर जीने का, सम्मान सहित अधिकार दिया ।।

-: कवित्त :-

शिविका में प्रभु को विराजा देख जन जन,
अन्तर में मानों वरदानी बन आया है।

सागर हिलोर सम साहस उमंग रहा,
प्रभु मान हेतु जन मानी बन आया है ।।

परम उदार प्रभु ऋषभ को पाकर के,
जन-जन का आज जन वाणी बन आया है।

जग की सरसता को रस का निचोड़ लिये,
जन मन मानस का पानी बन आया है ।।

-: सवैया :-

शुभ आशिष पाकर के प्रभु का,
जन वृन्द है भाव सजाने लगा।

अनुकूलता पाकर के मन की,
मृदु मानस है हरषाने लगा ।।

रस की वर्षा से जो सिक्त हुआ,
रस और भी है बरसाने लगा।

जन वृन्द उठा, उठ आगे बढ़ा,
शिविका हरषाते उठाने लगा ।।

–: दोहा :–

नाभिराज मरुदेवि के, उर उमगा अति तोष।
जग को देकर सुख, प्रभो पावेंगे सन्तोष ॥

जग में रहकर सुख मिले, खिले नया जलजात।
सब जग सुख पाता रहे, आये स्वर्ण प्रभात ॥

आदि नाथ का ज्ञान शुभ, करे जगत-दुख चूर्ण।
निर्भय सुख पाती रहे, जगत सृष्टि सम्पूर्ण ॥

मम सुत ने जो कुछ दिया, जन-जन के सुख हेतु।
युग-युग सुख पाता रहे, लहराये यश केतु ॥

–: कवित्त :–

रूप, शील, गुण मे जो सिन्धु के समान थीं वे,
आज बन गयी निज पति अनुगामिनी।

रनिवास में न किसी बात की कमी है किन्तु,
पति के कमल - पग में है अनुरागिनी ॥

प्रभु के प्रताप के बिना न सुख पा सकेंगी,
जगत में रहें भले मन्द - मृदु - भाषिणी।

जानती हैं जगत मे यश, सुख आदि मिले,
किन्तु पति की निकटता ही बढ़ भागिनी ॥

शिविका के साथ-साथ चली दोनों रानियाँ हैं,
त्याग में आमर्ष का न रंच लवलेश है।

भोगे हैं अपार सुख, दुख का न देखा मुख,
किंचित भी त्यागने में इनको न क्लेश है ।।

सुख सौध में ही सब आभूषण त्याग दिये,
और वीत रागियों का धार लिया वेश है ।

काल के क्रमानुसार जीवन को ढाला सदा,
आज ढल रही जैसा मिला परिवेश है ।।

रोक पाया इनको न, सुख साधनों का सिन्धु,
दास दासियों का नेह नहीं रोक पाया है ।

रोक पाया रस-गेह इनको न गेह में है,
नहीं सारिकाओं का युगल रोक पाया है ।।

रोक पाया ललित कलाओं का समूह नहीं,
और यश वैभव इन्हें न रोक पाया है ।

रोक पाया इनको न बन्धुओ का सेव्य भाव,
सुभग सुतो का प्रेम भी न रोक पाया है ।।

मोह ममता के सुख साधनो के सागर को,
एक बार भी न देखा प्रभु ने है मुड़ के ।

माता से, पिता से, सुत-दारा से, प्रजाजनों से,
तोड़ दिया बन्धनों को प्रभु ने है जुड़ के ।।

निजता के, परता के हित को ही त्यागा सब,
अन्तर विवेक से ही, छोड़ा है न कुढ़ के ।

कल तक नीड़ में रहा जो मोह ममता से,
आज वही खग चला और कहीं उड़ के ।।

आगे शिविका में बैठे जा रहे हैं आदिनाथ,
जनता अनाथ बनी पीछे-पीछे आ रही।
प्रभु की बिलगता को जो न सह पा रहे हैं,
मनोवृत्ति आज उनकी ही अकुला रही॥
जंगलों में जाकर के आदिनाथ कष्ट पायें,
यही सोच-सोच कर बुद्धि चकरा रही।
आँसुओं की बाढ़ों से भी भूमि हो गयी है सिक्त,
रिक्तता की दाह एक आग सुलगा रही॥

॥ दोहा ॥

व्योम मार्ग में हो रहा, किन्नरियों का गान।
और भूमि पर जय जयति, ऋषभदेव भगवान॥
भरत आदि भाई सभी, ले पूजा का थाल।
परिजन पुरजन चल रहे, ले पुष्पों की माल॥
वृद्ध जनों ने नारियों को, दे कर सरल प्रबोध।
घर लौटे शुभ रानियाँ, यह अपना अनुरोध॥
देवि सुनन्दा यशस्वती, मरुदेवी के साथ।
चली जा रही मगन मन, भूमि झुकाये माथ॥
सिद्धार्थक बन आ गये, ऋषभदेव भगवान।
सांसारिकता हो गयी, उर से अन्तर्ध्यान॥
पढे सुने अति चाव से, ऋषभायन का खण्ड।
प्रभु पद प्रति ममता बढ़े, छुये नहीं पाखण्ड॥

ऋषभ दीक्षा वर्णन

॥ दोहा ॥

निश्चय ही वह बिन्दु है, जिसमे छिपा अनन्त ।
निश्चय को ही प्राप्त कर, मनुज हुये हैं सन्त ॥

निश्चय के प्रति हृदय मे, जब जगती है प्रीति ।
एक लक्ष्य ही दीखता, रहे न कोई रीति ॥

निश्चय के ही उदय से, मिलते शुभ परिणाम ।
होकर के निष्काम मन, बनते मनुज सकाम ॥

निश्चय से संसार में, मिले बढ़े शुभ पथ ।
लोहा जन कंचन बना, पढ़-पढ़ के सद्-ग्रन्थ ॥

निश्चय से ही ऋषभवर, हुये हैं जग विद्वान ।
मार्ग प्रदर्शक बन गये, पद पाया भगवान ॥

✶

भगवान ऋषभ की शुभ गाथा, श्रोता श्रद्धा के भाव भरें ।
अमृत गाथा से हृदय गुने, मिथ्या सुख का परित्याग करे ॥

देवों ने सिद्धार्थक वन में, सारी तैयारी कर डाली ।
हो गया रम्य कानन सारा, तप योग्य और वैभवशाली ॥

सब ओर शान्ति साम्राज्य हुआ, सर्वत्र पुष्प की बरसा है ।
मानों पतझर हो गया विदा, हर वृक्ष इस तरह सरसा है ॥

बह रही पवन मन्थर-मन्थर, उसको सुगन्ध संसार मिला ।
मानों वन के जड़ चेतन को, प्रारब्ध मुक्त अधिकार मिला ॥

तरुओं की डालें आप झुकी, फूलों को बरसा करने को।
अपने अन्तर की खुशियों से, धरती का आंचल भरने को ।।

शुभ चन्द्र-कान्त-मणि से निर्मित, सुन्दर सी शिला सजाई है।
मन मोहक वृक्षों के नीचे, प्रभु आदिनाथ पहुनाई है ।।

उस सुभग शिला के ही ऊपर, इन्द्राणी चौक रचाया है।
मण्डप सुन्दर इस तरह बना, जो सबके मन को भाया है ।।

भ्रमरों की टोली इधर उधर, गुन गुन का गीत सुनाती है।
मानों प्रभुवर के स्वागत में, मंगलमय रस बरसाती है ।।

शिविका आ उतरी शिला निकट, देवों ने जय जयकार किया।
मानों स्वमेव प्रकृति ने आ पल-पल, क्षण-क्षण सत्कार किया ।।

देवों से वंदित ऋषभ हुये, सब ने ही शीश झुकाया है।
दर्शन करके मानों सब ने, मन वाँछित शुभ फल पाया है ।।

प्रभु सम्बोधन हित बैठ गये, सबके उर में अनुराग जगा।
प्रभु का अनुगामी बनने को, कितनों के उर में त्याग जगा ।।

हे भव्य जनों भ्रम को त्यागो, दुनिया तो आनी जानी है।
घेरे है इसको नश्वरता, सबकी जानी पहचानी है ।।

इसलिये त्याग मेरे द्वारा, बिल्कुल विस्मय की बात नहीं।
आन्तरिक वृत्ति का निर्णय है, यह तो विस्मय की बात नहीं ।।

तुम सबके नृप हैं भरत भद्र, सब की रक्षा को तत्पर है।
तुम सब भी धर्म पंथ दृढ़ हो, इसमें ही सुख का सागर है ।।

इसलिये जगत में निर्भय हो, पंकज का धर्म निभा डालो।
रह कर पंकित से दूर-दूर, मानस का पुष्प खिला डालो ।।

-: दोहा :-

अति विनम्रता को लिये, बोले सुषमा वैन।
नाभिराय मरुदेवि के, पुलक उठे युग नैन ॥
सभी आगतों से किया, नेह भरा अनुरोध।
दीक्षित होने के लिये, पाया सकल प्रबोध ॥
अन्तरंग बहिरंग के, परिग्रह का कर त्याग।
वस्त्राभूषण का सकल, छोड़ दिया अनुराग ॥
इस प्रकार कर त्याग सब, हुये दिगम्बर आप।
फैल गया सर्वत्र ही, व्यापक पुण्य प्रताप ॥

*

मुख पूर्व दिशा की ओर किये, पदमासन आप विराजे हैं।
आकाश लोक तक देवों ने, गहगहे निसाने बाजे हैं ॥
जब कहा नमः सिद्धेभ्यः, तब देवता वृन्द झुक आये हैं।
कर पंच मुष्टि से केशलौंच, सुर-वृन्द पुष्प बरसाये है ॥
शुभ चैत्र कृष्ण नवमी सायं, उत्तराषाढ़ शुभ गोचर था।
धारण की जिन दीक्षा प्रभु ने, सब दृश्य अपूर्व मनोहर था ॥
दीक्षा के क्षण ही प्रभुवर ने, शुभ ज्ञान मनःपर्यय पाया।
मिल गया ज्ञान को नया प्रात, निशि बीती सूर्य निकल आया ॥
सोचा देवों ने यही केश, माँ-पिता देख हरषाये थे।
काली घुंघराली अलकों पर, मनासिज ने शीश झुकाये थे ॥
जिनकी श्यामलता को निहार, भौंरे भी गुन-गुन झूले थे।
कुंवर नाभिराय के अन्तर मे, अनगिनती पंकज फूले थे ॥

चिरकाल तलक ये साथ रहे, जिनने शोभा सरसायी है।
केशों ने अपने अन्तर से, तीर्थता सदा वरसायी है॥

इसलिये रत्न - मंजूषा में, सौधर्म इन्द्र ने इन्हें रखा।
मानों इन केशों का महत्व, तप, त्याग कसौटी पर परखा॥

प्रभु ने अपने शुभ मस्तक पर, बालों के संघ संवारे हैं।
इनकी पवित्रता बनी रहे, कुछ ऐसे तथ्य विचारे हैं॥

ले गये क्षीर निधि के तट पर, पहले तो खूब पखारा है।
श्रद्धा से अर्पित किये केश, ले गयी क्षीर निधि धारा है॥

आभूषण, वस्त्रादिक माला, जिनका प्रभुवर ने त्याग किया।
देवों ने बाँट लिया सबको, पूजा के हित अनुराग किया॥

कुरु, उग्र, भोज वंशादिक के, राजाओं ने सब कुछ त्यागा।
प्रभुवर ने जो पथ अपनाया, राजाओं ने भी अनुरागा॥

कुछ राजा तो देखा-देखी, जिन् दीक्षा में अनुरक्त हुये।
इनमें कुछ अन्य कारणों से, प्रभु ऋषभदेव के भक्त हुये॥

—: कवित्त :—

तीनों लोकों में न आदि के समान सुन्दर है,
देव-मति तीनों लोक खूब धूम आयी है।

ऐसे कमनीय रूप को न देख तृप्त हुआ,
तब उस दृष्टि ही को आप लघुतायी है॥

शान्ति के स्वभाव वाले जितने थे परमाणु,
उन सब ने ही मिल प्रभु देह पायी है।

देख लिया प्रभु का ललाम वीतरागी रूप,
इन्द्र को हजार नेत्र आज सुखदायी है ।।

।। दोहा ।।

सूरज भी जब छक गया, लख कर रूप ललाम ।
अस्ताचल गामी हुआ, करता हुआ प्रणाम ।।

अष्ट द्रव्य ले भरत ने, पूजन किया सहर्ष ।
बार-बार रज-चरण ले, पाया ज्यों उत्कर्ष ।।

चले अयोध्या धाम को, भरत नृपति सुख मूल ।
साथ-साथ परिजन चले, आज्ञा पा अनुकूल ।।

भरत प्रजा रक्षक बने, पूजा प्रजा सुभाग ।
इस थल का ही नाम शुभ, जाना जगत प्रयाग ।।

महात्याग प्रभुवर किया, जिस थल मय अनुराग ।
सब कहते उस क्षेत्र को, पावन तीर्थ प्रयाग ।।

—: कवित्त :—

पुण्य का प्रताप सत्य निष्ठता से फलता है,
तब तो नया ही इतिहास बन जाता है ।

पग-पग नूतनता बिखर-बिखर जाती है,
जगती का सुन्दर प्रकाश बन जाता है ।।

कर्म निष्ठ जहाँ-जहाँ पुण्य को कराते रहे,
जन उन थलों का भी दास बन जाता है ।

कोई उदास या हताश फिर रहता नहीं,
पुण्य-क्षेत्र जगती का लास बन जाता है ।।

*

प्रभु ने निश्चय कर ममता का, अपने शरीर से त्याग किया ।
कायोत्सर्ग के आसन से, श्री प्रभुवर ने अनुराग किया ।।

मन से, वाणी से, कार्यों से, एकाग्र हुये उल्लास लिया ।
इस भाँति प्रभो ने निश्चय ले, छै मास हेतु उपवास लिया ।।

जब निज आसन पर खड़े हुये, आभा का पुंज सुहाया है ।
अथवा अगणित किरणों वाला, प्रातः सूरज उग आया है ।।

प्रभु के समान तेजस्वी की, कल्पना नहीं की जा सकती ।
कल्पना पंगु लाचार हुयी, खोजे पर कहीं न पा सकती ।।

प्रभु ही तो अपनी उपमा है, उनकी समता को कौन यहाँ ?
उनका प्रकाश सब में फैला, इसलिये सभी हैं मौन यहाँ ?

कुछ ने देखा प्रभु ऋषभदेव, कायोत्सर्ग पर आसन हैं ।
अधोन्मीलित - नासाग्र - दृष्टि, मुनि वेश लिये रत्नाकर हैं ।।

साथी राजाओं ने सोचा, हम भी उपलब्धि कमायेंगे ।
जिस पथ पर ऋषभदेव जाये, हम भी उस पथ पर जायेंगे ।।

यह सोच लिया मुनिवेश धार, अब तक तो सब अड़े हुये ।
कायोत्सर्ग के आसन पर, राजा आकर के खड़े हुये ।।

भगवान ऋषभ सब कुछ विसार, ध्रुव अनासक्ति में लीन हुये ।
जन की, तन की, मन की, सुधि खो, केवल तप के आधीन हुये ।।

जिन अन्य नृपति देखा देखी, मुनि वेश स्वयं भी धार लिया ।
कुछ समय कष्ट थोड़ा सहकर, उन सबने यही विचार किया ।।

दो चार दिनों में परिजन ही, आयेंगे कुछ पकवान लिये ।
सहभोज यहीं पर करना है, आयेंगे सब मिष्ठान लिये ।।

प्रभु आदिनाथ भी कितने दिन, यों ही जीवित रह पायेंगे ।
यह क्षण भी हम से दूर नहीं, "चलिये" प्रभु ही कर पायेंगे ।।

दो एक दिवस में नृपति सकल, इच्छाओं द्वारा बिकल हुये ।
अमृत पाने को आये थे, बाहर भीतर से गरल हुये ।।

इस तरह खड़े रहना प्रभु का, राजाओं, को रुचिकर न लगा ।
उनके उर में निश्चय न रहा, इसलिये न तप का भाव जगा ।।

—: कवित्त :—

हारना है प्रभु को तो हारे निज तन प्राण,
हम तो अकारण न प्राण कभी हारेंगे ।

वारना है मनोवृत्ति वारे खूब प्रभुवर,
हम तो न मनोवृत्ति को कभी वारेंगे ।।

मारना है मन को तो मारे प्रभुवर आप,
हम सुख दाता मन को न कभी मारेंगे ।

धारना है तप - व्रत प्रभुवर साधे रहें,
हम प्राण-लेवा तप को न कभी धारेंगे ।।

हमने न सुना, पढ़ा, देखा कभी जग में है,
तड़प - तड़प तप में ही प्राण त्यागना ।

अंग-अंग जिसमें शिथिल पड़ जायें आप,
इतना न हमको है तप - अनुरागना ।।
जीवन के लिये ये धरती ये सब माँगते हैं,
मरने के लिये कौन चाहे जग मांगना ।
जिसमें कि जागने की वृत्ति मर जाये मित्र,
ऐसा धरती पे हमको न कभी जागना ।।
कुछ मन मार कर गये वीर जंगलों में,
कुछ को सताने लगे सुख निज घर के ।
कुछ टोलियाँ बना के घूमने लगे हैं वन,
कुछ खुश हुये कन्द मूल - पेट भर के ।।
कुछ कुटियाँ बना के बस गये जहाँ-तहाँ,
कुछ खो गये हैं बन भरत से उर के ।
कुछ सोच-सोच कर डूब गये शोक निधि,
कुछ चले गये प्रभु को प्रणाम करके ।।
देख ऐसी मनोवृत्ति देवता ने कहा—
करते विचार ऐसा मन न लजाते हो ।
जिसमें न सुख उसमें हो खोजते हो,
मन मोदकों से नित्य मन को सजाते हो ।।
डूब कर जगती के दुखद सुखों में नित्य,
कैसी भूख पायी जो न तनिक अघाते हो ।
जाओं डूब कर कहीं मर जाओ शुभ तुम्हें,
व्यर्थ यहाँ बैठे-बैठे गाल क्यों बजाते हो ।।

जब मुनि वेश तुम सबने है धार लिया,
तब तुम इस वेश व्रत को निभाओ तो।

वेश ये दिगम्वर लिया है तुम सबने जो,
इसकी पवित्रता को रंच न मिटाओ तो।।

माना भूल से ही व्रत जो कि लिया है आज,
लांछना, प्रवंचना से वेश को बचाओ तो।

सर-सरिता से नीर यों ही मत पिओ तुम,
फल फूल तरुओं के तोड़ न गिराओ तो।

॥ दोहा ॥

सुन लताड़ इस भाँति की, जागा विमल विवेक।
वेश दिगम्वर के लिये, दिये रहे कुछ टेक।।

इतना सब लज्जित हुये, लगा दूखने मर्म।
पग न उठा विपरीत में, जो साधा मुनि धर्म।।

कुछ ने वल्कल पहनकर, भस्म लगायी अंग।
जटा जूट कोई किये, लिये अनोखा रंग।।

एक त्रिदण्डी हो गये, कोई दण्डी एक।
रूची किसी को झोपड़ी, ये ही जगा विवेक।।

इस प्रकार सब नृपति थे, लिये ऋषभ प्रति प्रीति।
अर्चना वन्दन भक्ति की, साधे अनुपम नीति।।

—: कवित्त :—

कच्छ ने, मरीचि ने भी और महाकच्छ ने भी,
प्रभु के विरोध में पताका फहरायी है।
प्रभु के अनूप वंश में ही पाकर के जन्म,
करते विरोध जिन्हें लाज भी न आयी है ॥
दे न पाये भगवान सत्य - धर्म देशना भी,
श्याम करतूति की घटायें घहरायी हैं।
पाप के प्रताप की विचित्रता तो देखिये कि,
झूठी मा यतायें कितनों को खींच लायीं हैं ॥

—: दोहा :—

आदिनाथ मुनि वेश में, रहे साधना लीन।
वे विरोध करते रहे, जो जग के अधीन ॥
की मारीचि के घात पर, प्रभु को हुयी न पीर।
उसे पीर होती कहाँ, जो पी लेता धीर ॥
जो जग में कुछ कर सके, उनका हुआ विरोध।
दूर करने से पूर्व ही, मन साहस तू शोध ॥
पढ़े सुने इस खण्ड को, लेकर के सद्भाव।
निश्चय प्रति दृढ़ता मिले, होने नवल प्रभाव ॥

भगवान मुनि दशा वर्णन

—: कवित्त :—

या तो हम कोई व्रत जीवन में धारें नहीं,
धार ले तो चोटी से उतारे नहीं उसको।
मानवीयता की, बुद्धिमत्ता तभी मानी जाये,
दुरुपयोग दृष्टि से निहारे नहीं उसको॥
मुनियों के मन तो प्रसन्न नभ से रहे हैं,
बादलों के रंग औ सितारे नहीं उसको।
एक निष्ठता की वृत्ति बनती संभ्रम रही।
जग वृत्ति भूल के, सँवारे नहीं उसको॥
मुनिमन, जग वृत्तियाँ न कभी जीत पायीं।
हार गयीं, जब कभी सामने वो आयीं हैं॥
भूल से कुटिलता का कभी चला है तीर।
देकर के पीर पोर-पोर पछतायी हैं॥
हार गया जगती के मन का मनोज आप,
पाप की कठोर वृत्ति सदा दुखदायी है।
झूठ की प्रभूत मनोवृत्ति निज अन्तर से,
मुनि मन के समक्ष झुकी-झुकी आयी है॥

★

प्रभु आदिनाथ हो एक निष्ठ, निज आत्म तेज में लीन हुये।
मुक्ता परिपूर्ण सरोवर में, आनंद मग्न आसीन हुये॥

बाहर क्या है चिन्ता न उन्हें, अन्तर को करते ठीक चले।
अपने मुनि जीवन के रथ को, ले तप पथ पर निर्भीक चले ।।

तन की, मन की गति हीन हुयी, भोगों से नाता टूट गया।
फिर किसका और त्याग करते, तन का पहिया मन छूट गया ।।

एकान्त वृक्ष के नीचे हैं, दोनों आँखों को मीचें हैं।
उपलब्धि लगन से पानी है, निश्चय से अन्तर सींचे हैं ।।

कब हवा चली निर्गन्ध मुक्त, लेकर सुगन्ध का भार चली।
तन में चेतनता लाने को, अथवा स्वागत का थार चली ।।

कब दिन निकला, कब रात हुयी, कब आतप आया चला गया।
छाया ने कब सेवायें दी, कब मारुत आया चला गया ।।

मृगमाला कब आ घूम गयी, आये हिंसक कब बोल गये।
कब हरिणों के शावक आकर, श्रवणों में अमृत घोल गये ।।

हिंसक पशु अपना वैर त्याग, विचरण करते सहगामी हैं।
है भाव सहोदर जैसा ही, सब ही सब को हितकामी हैं ।।

हिंसक पशु और अहिंसक पशु, बच्चों के प्रति सद्भाव लिये।
समता पर सब कुछ केन्द्रित है, सुख से जीवित सम्भाव लिये ।।

करि, हरि, वराह शश औ कुरंग, वाघ सभी मृग जीते हैं।
कटुता संशय को त्याग - त्याग, समता का पानी पीते हैं ।।

वन दीखा एक तपोवन सर, सर्वत्र शान्ति रस सरस रहा।
अन्तर की आभा का प्रकाश, सर्वत्र स्वयं ही बरस रहा ।।

बह रही तरंगित सरितायें, जो नृपति हृदय मे भरती हैं।
जो भी जलपान हेतु आये, धारायें रस मय करती हैं ।।

तरु लदे हुये हैं, फूलों से, कुछ पर फल के अम्बार लगे।
कुछ नयी पत्तियों वाले तरु, शोभा के पहरेदार लगे॥

है प्रकृति नटी इस तरह सजी, बिल्कुल नूतन सी लगती है।
नाना विधि प्रभु की पूजा-मिस, निशि वासर रमणी जगती है॥

गिरते प्रताप की मृदु बूंदें, लगती फुहार ज्यों सावन की।
जब तब आकर छाया रहती, प्रभु के ऊपर श्यामल घन की॥

कोयल को और पपीहा को, ऋतुराज आगमन का भ्रम है।
पशु, पक्षी, भ्रमरों के जोड़े, खोजते फिर रहे सुख क्रम है॥

तरु, तृण-तृण में, पुष्पों में, सुख का सागर सा लगता है।
मानों इस महा तपोवन में, प्रभुवर के हेतु सजगता है॥

पग-पग पर जीवन विलस रहा, हर पग उल्लास समाया है।
संतोष शान्ति का अन्त नहीं, यह ऋषभदेव की माया है॥

–: कवित्त :–

किसी जीव को भी मिल जाये कष्ट प्रभु से न,
इसका विशेष सदा ध्यान रखा करते।

श्वापद भी जो साधते तो पालते अहिंसा व्रत,
सदा महाव्रत का ही मान रखा करते॥

पालते अचौर्य व्रत, जगता मनोज नहीं,
परिग्रह विपरीत ध्यान रखा करते।

बार-बार उर में ही करते विचार और,
सत्य के विविध अनुमान रखा करते॥

त्याग किये रसना के, सरस निरस स्वादु,
श्रवणों ने सुनने की आदत है त्याग दी।

त्याग दिये नयनों ने, सुन्दर अनूप दृष्य,
गन्ध दुर्गन्ध सब नाक ने त्याग दी॥

त्याग दिये त्वचा ने भी छूने के प्रसंग सब,
प्रिय पहचान की भी बात आज त्याग दी॥

पंच ज्ञान इन्द्रियों का करके निरोध प्रभु,
जग सुख शोध ही की धारणा है त्याग दी॥

—: दोहा :—

पंच महाव्रत साध के, पंच समिति के वर्ग।
साध भाषा, ऐषणा, निक्षेपण उत्सर्ग॥

कर जिनेन्द्र का स्तवन, वन्दन प्रत्याख्यान।
ऋषभदेव प्रभु ने किये, साधन सभी महान॥

भूमि शयन अतिशय लगन, अन्तर नैन विशाल।
देख रहे प्रभु आदि हैं, बनकर स्वयं रसाल॥

★

प्रभु के अन्तर का तेज अमर, बन कर रसमय सब ओर घुला।
मन के कलमष का अन्त हुआ, अमृत प्रभाव से कहीं धुला॥

तन पर, तृण पर, फल फूलों पर, जिसका प्रभाव लहराया है।
हर जगह विलसता जीवन है, प्रभु तप प्रताप की माया है॥

जैसे सूरज के आने पर, सब में प्रकाश भर जाता है।
कलिकायें बनती रुचिर, कुसुम, पत्ता - पत्ता मुस्काता है॥

जीवन पाकर सब नया-नया, सौन्दर्य गेह बन जाते हैं।
अन्दर बाहर हो एकमेव, सौन्दर्य सुधा बरसाते हैं।।

पाकर के ज्योति असाधरण, नूतनता बरसा करती है।
आलस्य मिटा कर जीवन को, उल्लास आदि से भरती है।।

प्रभु के तप का वह तेज पुंज, हर दिशा प्रभावी इठलाया।
जैसे धरती पर नया सूर्य, आया, आकर के मुस्काया।।

जिसने देखी वह मधुर हँसी, उसका मुख ही खिलखिला उठा।
जिसके मुख मढ़ी मलिनता थी, उसका मुख भी झिलमिला उठा।।

जिनके उर समता भाव न था, उनमें समता का भाव जगा।
जो मन ममता से रीता था, उनमें ममता का चाव जगा।।

प्रभु की समीपता पाने को, उर में अनुराग निराला है।
प्रभु के समान अपरिग्रह से, सब ने अन्तर रंग डाला है।।

हिंसक पशुओं के अन्तर में, करुणा का मृदु संचार हुआ।
भोले भाले हरिणों के प्रति, सूखा उर भी रसधार हुआ।।

-: कवित :-

मद मत्त मतंग सरोवर से,
शुचि पंकज लाते चढ़ाते रहे।

प्रभु के पद पंकज के हित को,
निज शुण्ड मे नीर को लाते रहे।।

करके अभिषेक पदाम्बुज का,
निज जीवन धन्य बनाते रहे।

मधु पायी अलि सुभली विधि से,
प्रभु के यश गीत सुनाते रहे ।।

मृदु राग पराग - से रंजित हो,
अलि ने प्रभु का यशगान किया ।

मलयानिल ने बहके, महके—
वन पुष्प समूह का ध्यान किया ।।

वन-प्रान्त को कान्त किया रवि ने,
छवि ने थल को है निसान किया ।

अलि ने, रवि ने, मलयानिल ने,
बहु भाँति से आदि का मान किया ।।

प्रभु के तप का सुप्रताप बढ़ा,
वन और से और दिखाने लगा ।।

तप - पूत हुआ शुचि कंचन सा,
तन और से और दिखाने लगा ।।

कुछ ऐसा वितान तना नभ में,
घन और से और दिखाने लगा ।

जग के रस में रमता जो रहा,
मन और से और दिखाने लगा ।।

—: दोहा :—

आदिनाथ तप-शूर ने, जब तप किया अकूत ।
तरु, तृण, पशुजन आदि में, समता जगी प्रभूत ।।

आदिनाथ छैं मास तक, रहे तपस्या लीन।
था प्रभुवर ने कर दिया, सब कुछ तप आधीन।।

देह सरोवर तट हुयी, लगन धार रस पीन।
त्याग-तेज-सब इच्छा, तप-जल में मन मीन।।

—: कवित्त :—

तप कर कंचन में आती जो पवित्रता है,
शुचिता में आप ही समग्रता समाती है।

जीवन में सैकड़ों हजारों बार तप के भी,
कंचन की आत्मा न रंच अकुलाती है।।

नित्य-नित्य तपने से जगमगाता है कंचनत्व,
जन दृष्टि कंचन को, पाने ललचाती है।

तप के ही बनते हैं आभूषण भांति-भांति,
तप से ही अन्तर मे विभुता समाती है।।

मिलता हमें न कभी जीवन सुफल यहाँ,
व्योम में अकेला यदि सूरज न तपता।

मिलता न तप का प्रताप यदि किरणों से,
कोई तरु उगता न, फलता न पकता।।

मिलता न सागर को यदि तपने का गुण,
कैसे मोतियों की राशि तट पे उगलता।

मिलता न यदि गुण तप कहीं मानव को,
कैसे नित्य नयी - नयी रचनायें रचता।।

पाकर प्रचुर धूप, निखर रहा है रूप,
तप की अनूप छवि सब ओर छायी है।

हिम गल-गल कर नित्य ही तपाता रहा,
और बतलाता रहा, कंज अरुणाई हैं॥

तप का प्रताप ही तो, छाया जगती के मुख,
तप का प्रचण्ड रूप, रवि तरुणाई है।

तप तत्व या महत्व, जिसके ही सत्व में है,
उस तपसी का व्रत जग सुखदायी है॥

तप की सुधा सुरेश पाकर अमर हुये,
अमर अमरता को पाके हरषाये हैं।

तप का प्रचुर बल, कर देता बलवान,
नश्वर - अनश्वर समत्व गीत गाये हैं॥

नश्वर है जगती के तप से बलिष्ठ हुये,
अमरों ने शीश पर फूल बरसाये हैं।

तप प्रभुता से मृदु मृदुता को पाकर के,
ऋषभ महानता से ऊँचे उठ पाये हैं॥

जब-जब धरती का तल तपता है खूब,
तब-तब धरती का नीर घट जाता है।

जब-जब घट नीर पीर को बढ़ाता खूब,
तब-तब नीर प्रति प्यार बढ़ जाता है॥

जब-जब प्राण प्रति जगती अनूप प्रीति,
तब - तब चाहत का मेघ उमगाता है।

जब-जब मेघ माला घेरती है धरती को,
तब धरती पे रस उफनाता है ।।

तप से प्रसूत शुभ पाकर विभूति निधि,
जन जनता का जलपान बन जाता है ।

तप उद्‌भूत बल पाकर बलिष्ठ हो के,
जन जनता का बलवान बन जाता है ।।

तप की घनिष्ठता से जग कर अन्तर से,
जन जनता का प्रतिमान बन जाता है ।

तप से जो परिपूर्ण कर लेता तन, वह,
जन जनता का भगवान बन जाता है ।।

अपना लो जीवन में तप का प्रसन्न पथ,
जिससे कि जीवन का पथ रुक जाये ना ।

तप की प्रचण्डता से जीवन ये धन्य बना,
ऐसा तप जीवन से कहीं लुक जाये ना ।।

यहाँ वहाँ, क्या न क्या, और कुछ ये भी वह,
करते ही करते ये जीव चुक जाये ना ।

जोड़े रहे जीवन को तप के प्रताप से कि,
मानवीयता का कहीं शीश झुक जाये ना ।।

★

श्मश्रु युक्त प्रभु मुख मण्डल, उगते सूरज सा लगता था ।
अथवा प्रकाश का दिव्य पुन्ज, धर देह स्वयं ज्यों जगता था ।।

इस तरह जटायें बिखर गयीं, गंगा की निर्मल धारा है।
अथवा यह संयम का प्रतीक, सागर का सुदृढ़ किनारा है॥

केशों की गूढ़ रुक्षता है, जग भोग नीरस बतलाती है।
अथवा जीवन की नूतनता, अपना वर्चस्व दिखाती है॥

हो गयीं लटें मोटी मोटी, मानों जीवन की समता है।
अथवा समता के साथ-साथ, जागी जीवन में क्षमता है॥

लग रहीं जटायें ज्ञान राशि, जिनमें जीवन अनुरंजित है।
अथवा ये ज्योति मशालें हैं, जीवन आया अभिमण्डित है॥

तप की ये शुभ पताकायें, निर्लोभ गगन लहराती हैं।
अथवा अभिलाषित हमारा क्या, लहराकर ये बतलाती हैं॥

छै मास तपस्या लीन रहे, केशों ने जटा रूप धारा।
मानों यों एक निष्ठता का, जागृत प्रमाण यह विस्तारा॥

बाहर-बाहर सब भूल गये, अन्दर-अन्दर दृढ़ भाव जगा।
आनन्दित सरिता उमड़ चली, आगे बढ़ने का चाव जगा॥

धीरे - धीरे अन्दर बाहर, परिग्रह ममत्व का त्याग जगा।
प्रभुवर जिनेन्द्र का ध्यान जगा, केवल तप का अनुराग जगा॥

–: कवित्त :–

अशन का त्याग किया, वसन का त्याग किया,
राग अनुराग सब जगती का त्यागा है।

भाव अनुभाव जग सुख साधनों का त्याग,
मनोवृत्ति शुद्धता का एक भाव जागा है॥

राग - द्वेष, क्रोध, घृणा क्षण - क्षण जीत कर,
मोह, ममता का बस टूट रहा तागा है।
कोई भी न मन - मीत, बन कर मन - जीत,
मन की मनोज्ञता में ध्यान एक लागा है ॥

★

नमि विनमि नाम के दो याचक, प्रभुवर के निकट आप आये।
अपने मन की शुचि वांछा को, दोनों याचक उर में लाये ॥

अन्तर में जग सुख भोगों की, लालसा नदी सी बहती हैं।
जिनकी वाणी दीनता मयी, होकर धीमे से कहती है ॥

हे दया सिन्धु, करुणार्द्र हृदय, हम पर भी कृपा कीजियेगा।
पुत्रों पौत्रों सम कुछ देकर, हम पर भी दया कीजियेगा ॥

हम दीन दुखी सब विधि मलीन, निज हित तक की पहचान नहीं।
घेरा हो जिसने हमें नहीं, ऐसा कोई अज्ञान नही ॥

हम सम न दीन जग में कोई, तुम सम न और करुणाकर है।
जिसमें इतना आकर्षण हो, तुम सम अब कौन प्रभाकर है ॥

हम भूले भटकों के जग में, तुम ही तो एक सहारे हो।
पतवार रहित इस नैया के, तुम ही तो एक किनारे हो ॥

हे स्वामिन् तुमने जग वैभव, पुत्रों, पौत्रों में बाँट दिया।
उनके शिर सुघर मुकुट आया, हम को नत नम्र ललाट किया ॥

नमि विनमि याचकों की वाणी, प्रभुवर न तनिक भी सुन पाये।
साधना लीन के कानों में, साँसारिकता कैसे आये ॥

सुर नाग जाति के चतुर इन्द्र, धरणेन्द्र अखिल में कहलाते।
प्रभु के अनन्य सेवक हैं ये, उनकी सेवा में सुख पाते॥

वे अवधि ज्ञान से जान गये, नमि विनमि बन याचक आये।
साधना लीन तपसी द्वारा, मन वाँछित कैसे मिल पाये॥

स्वार्थी को केवल अपना हित, सर्वत्र दिखाई देता है।
वह वातावरण बिना समझे, हर जगह करवटे लेता है॥

अब भेष बदल कर के तुरन्त, दोनों को समझाना होगा।
ये मोह निशा में, भटक रहे, इनमें प्रकाश लाना होगा॥

—: दोहा :—

देव राज धरणेन्द्र ने, प्रभु को किया प्रणाम।
मन ही मन पुलकित हुआ, मानो हुआ शतकाम॥

छद्मवेश धरणेन्द्र ने, लिया तभी था धार।
जब प्रबोध के हित उठा, मन में विमल विचार॥

इस प्रकार कहने लगे, दोनों से धरणेन्द्र।
स्वार्थी कभी न लख सके, परसुख को "नागेन्द्र"॥

—: कवित्त :—

कैसे भद्र लोग हो कि देख भी न पाते सत्य,
अपने ही हित को बखाने चले जाते हो।

इस काल प्रभुवर, लीन हैं तपस्या बीच,
फिर भी तो विहन से, समीप चले आते हो॥

उससे ही मांगते हो त्यागे जिसने हैं सुख,
क्यों करके पत्थरों में फसल उगाते हो।
भगवान जिसको हैं दे के सर्वस्व आये,
नृपति भरत के समीप क्यों लजाते हो।।

॥ दोहा ॥

भरत भद्र हो आपको, पूजेंगे सब आश।
उर मे दृढ़ विश्वास ले, जाओ उनके पास।।
तुम पाओगे कुछ यहाँ, यह कोरा अज्ञान।
कैसे मनवांछित मिले, निस्पृह जब भगवान।।
सुनकर के नीरस वचन, अतिशय हुये अधीर।
भरकर दृढ़ विश्वास को, पुलक नयन से नीर।।

★

सूरज कितना ही दे प्रकाश, होता प्रकाश कम कभी नहीं।
सागर कितना ही पानी दे, होता विकास कम कभी नही।।
नभ में उमंग ले ले दौड़ो, मिल सकता फिर भी पार नहीं।
मन की सीमा में जग दे दो, बह सकती पर रसधार नहीं।।
ऐश्वर्य अखिल मे जितना है, सबके ही प्रभु अधिकारी हैं।
वे निस्पृह हैं, वे निश्छल हैं, अतिशय करुणा के धारी हैं।।
अशरण-शरण्य प्रभु आदिनाथ, सबके ही आश्रयदाता हैं।
जीवन की दशा बदल देते, करुणाकर भाग्य विधाता हैं।।
जीवन संसृति की आदि मूल, अनुकूल सृष्टि रचना करते।
ऐश्वर्य, कर्म, अद्भुत क्षमता, बल वैभव से अन्तर भरते।।

प्रभुवर तो अवढर दानी हैं, जो आता द्वार सभी पाता।
आतो का जाने कब से है, प्रभु ऋषभदेव से दृढ़ नाता ॥

हम दोनों को विश्वास प्रबल, प्रभुवर की कृपा मिलेगी ही।
जीवन के शुष्क मरुस्थल में, खुशियों की कली खिलेगी ही ॥

होकर के भद्र पुरुष तुमने, क्यों कर बाधक का काम किया।
अवढर दानी की करुणा को, क्यों व्यर्थ आज बदनाम किया ॥

प्रभुवर को हम करते प्रसन्न, इसमें क्या अनुचित लगता है।
लग रहा आपके अन्तर में, निश्चय ही अनहित जगता है ॥

जिनके चरणों में अखिल जगत, श्रद्धा से अवनत होता है।
ऐसे प्रभु को प्रणाम करना, तुमको क्यों दुखकर होता है ॥

किस हेतु अकारण आज आप, श्रद्धालु हृदय बहलाते हो।
बिल्कुल भी तुममें दया नहीं, धरणेन्द्र आप कहलाते हो ॥

—: दोहा :—

भक्ति पूर्ण सुनकर वचन, उर उपजा आह्लाद।
प्रकट हुये धरणेन्द्र तब, ज्यों रविपूत प्रसाद ॥

आदिनाथ भगवान का, मैं लघु सेवक एक।
तुच्छ परीक्षा से लखा, तव-उर का धैर्य विवेक ॥

मुझे प्रकट यह हो गया, है प्रभु पद प्रति प्रीति।
मन वाँछित मिल जायेगा, मिटी जगत भय भीति ॥

प्रभु की निश्छल भक्ति का, होता शुभ परिणाम।
जन्म-जन्म सुख भोगता, बनता जन गुण धाम ॥

तव इच्छा की पूर्ति को, आया मैं धर रूप।
तुम दोनों को दूँ प्रकट, इच्छा के अनुरूप।।

*

अतिशय प्रसन्न सुकुमारों को, धरणेन्द्र नाथ ने साथ लिया।
अब तक अनाथ नमि विनमि रहे, दोनों को आज सनाथ किया।।

विजयार्ध-अद्रि पर पहुंच गये, अतिशय शोभा का आकर है।
जिसके चरणों में लोट रहा, शुभ-सौख्य-धाम रत्नाकर है।।

सब ओर शान्ति, सम-शीत, वायु, जीवन को अतिशय सुखकर है।
फल, फूल, कन्द, शीतल-मृदु-जल, उस शैल-शिखर का दिनकर है।।

दोनो कुमार होकर विमुग्ध, तन के, मन जग के दुख भूल गये।
जैसे कि नाग पा स्वच्छ वायु, उपभोग किये, तन फूल गये।।

धरणेन्द्र और नमि विनमि कुंवर, रथ से रथनुपुर में उतरे।
दोनों सुख सागर विलस रहे, उर सब के आज साफ सुथरे।।

विद्याधर देव बुलाकर के, धरणेन्द्र देव ने समझाया।
प्रभु ऋषभदेव की सेवा का, हमने तुमने अवसर पाया।।

ये दोनों सब के स्वामी हैं, स्वामी की सेवा करना है।
दोनो को कोई कष्ट न हो, इसके अनुसार विचरना है।।

विद्याधर-गण ने शीश झुका, दोनों को नृप स्वीकार किया।
तन, मन, धन के ही साथ-साथ, अर्पित श्रद्धा का सार दिया।।

वर राज भोग की हर इच्छा, प्रभु सेवक ने पूरी कर दी।
नमि और विनमि की इच्छा की, चिन्ताओं से दूरी कर दी।।

-: कवित्त :-

ऋषभ महान का विलक्षण प्रताप देखो,
अतिशय विलासी नमि विनमि सुधारे हैं।
जग भोग के ही प्रति रहे अनुरागी सदा,
लोभी लालची भी भक्त प्रभु ने संवारे हैं।।
जो भी निज अन्तर से प्रभु को पुकारता है,
उसके निकट में न रहे अँधियारे हैं।
"नागेन्द्र" की मति में तो इतनी जमी है बात,
प्रभु को सदा से निज भक्त रहे प्यारे हैं।।

।। दोहा ।।

प्रभु पद प्रति अनुराग ले, पढ़े सुने यह खण्ड।
विमल भक्ति प्रभु की मिले, दूर रहे पाखण्ड।।
जो भी प्रभु से चाहता, है, सुखदायी भक्ति।
निश्चय आदि कृपालु हो, देते हैं अनुरक्ति।।
ऋषभ ऋषभ रटते रहो, धरे हुये उर धीर।
प्रभुवर परम कृपालु हैं, हर लेंगे भव पीर।।

श्रेयान्स तीर्थ दान वर्णन

तुम सा अन्य कौन हितकारी।
नयन तमस् में जब से खोले।
निज बल उसने सभी टटोले ॥
बढ़ते उर में, गये फफोले।
तब जन-जन के परम हितैषी, बोले अविकारी।
प्रभु सम अन्य कौन हितकारी ॥
मन की तनिक किवाड़ खोलो।
अपने बल को स्वयं टटोलो ॥
मन में क्षमता समता घोलो।
स्वयं जाग कर कर्त्तव्यों से जुड़ो, बनो अधिकारी।
प्रभु सम अन्य कौन हितकारी ॥
जन जीवन बहती जल-धारा।
रोक न पाता काल बिचारा ॥
रुकना मौत कहो या कारा।
रुकना दुखदायी है चलते रहना संकट हारी।
प्रभु सम अन्य कौन हितकारी ॥
दीन दुखी की सेवा करना।
सेवा के पथ पर सदा विचरना ॥
सेवा की नौका से तरना।
सेवा ही प्रभु की पूजा है, आत्मोन्नति में सहकारी।
प्रभु सम अन्य कौन हितकारी ॥

सब कुछ देकर चाह नहीं कुछ।
शीतल, उर में दाह नहीं कुछ ॥
प्रभु-पद बिन जग राह नहीं कुछ।
जिसने जीवन सफल बनाया, प्रभु सम अन्य कौन उपकारी।
प्रभु सम अन्य कौन हितकारी ॥

*

दुनिया में जितने भी महान, सबने परहित का व्रत साधा।
इसलिये कभी भी आ न सकी, उनके जीवन गति में बाधा ॥

तन से, मन से, धन यौवन से, जो परहित व्रत अपनाता है।
इस नश्वर धरती पर वह ही, निश्चित अमृत फल पाता है ॥

जो जीवन दान किसी को दे, मुख पर प्रसन्नता बरसा दे।
देकर चेतनता का आसव, नूतन आशायें सरसा दे ॥

देकर शुभ आसन समता का, सबके उर को विकसित कर दे।
कर्त्तव्य बता कर जीवन का, आलोक रंग नूतन भर दे ॥

यह ही धरती का अमृत है, जिसको पा, जीना आ जाये।
जीवन पथ मिटाबाध दीखे, जो आये पथ को पा जाये ॥

केवल तन से जीवित रहना, इतना ही नहीं अमरता है।
जन के मन प्रति बिम्बित रहना, धरती पर यही अमरता है ॥

प्रभु ऋषभदेव ने बतलाया, सुख का संसार इसी में है।
परहित साधन में निरत रहो, जगत का सार इसी में है ॥

अपने हित अमृत मत खोजो, सबके हित अमृत दान करो।
सबके हित में अपना हित है, सबको ही सुधा प्रदान करो ॥

शुभ कर्म करो आसक्ति बिना, कर्मों का फल पा जाओगे।
परिणाम सदा ही शुभ होगा, यदि इस पथ को अपनाओगे ॥

संसार दुखों का सागर है, इसमें ही जीवन जीना है।
सुख दुख अमृत है या विष है, इनको विवेक से पीना है ॥

है तभी ज्ञान की गुरु महिमा, विष को भी सुधा बना डालो।
नश्वर को अविनश्वर कर लो, जीवन उपकारों में ढालो ॥

कुछ होने को, कुछ करने को, कुछ साधन करना होता है।
जितनी भी जहाँ रिक्तता है, साधन से भरना होता है ॥

उपयुक्त समय जो चूक गया, वह जीवन भर पछताता है।
जो समय गया वह चला गया, वह फिर न लौट कर आता है ॥

कोई तापस, ऋषि, मुनि, योगी, साधक होता है सफल नहीं।
जब तक उसकी साधना भक्ति, होती है कुछ-कुछ सरल नहीं ॥

निज आत्म प्रगति के साथ-साथ, जग की चिन्ता से चिन्तित हो।
ऐसा साधक, ऐसा ज्ञानी, क्यों नहीं विश्व से वन्दित हो ॥

॥ दोहा ॥

दिगम्बरत्व धारण किया, प्रभु वर प्रतिमा योग।
एवं मात्र जागा नहीं, राग, रोष या भोग ॥

निराहार प्रभुवर रहे, कृश कब हुआ शरीर।
जीवन धारा में सुगम, हुआ तेज का नीर ॥

तप से प्रभु का तेज युत, मुख पर प्रखर प्रकाश।
ज्यों प्रभात रवि-कर-निकर, बिखराता उल्लास ॥

—: कवित्त :—

आया प्रभुवर के है मन में विचार यह,
मोक्ष हित लोग तप-पथ अपनायेंगे।

निराहार रहना है सब को सरल नहीं,
सभी क्षमता के जन कैसे चल पायेंगे॥

तप तो करेंगे लोग दृढ़ता से, लगन से,
पथ में ही कुछ बलहीन बन जायेंगे।

इसलिये अन्न की परोपकारी वृत्ति गढ़ूं।
अन्य तपसी भी इसको ही साथ लायेंगे॥

मोक्ष, अर्थ और काम, जीवन में काम्य सदा,
साधनों का धाम धर्म योग का विधाता है।

साधनों का आदि अन्त, मनुज शरीर ही है,
यही तन को मूल बिन्दु पाता है॥

जब तक तन में है प्राण, प्राण अन्नमय,
तब तक जीवन का धरती से नाता है।

इसलिये तन में न अन्न की विपन्नता हो,
धर्म के सुसाधनों का यही अन्न-दाता है॥

तप तो अवश्यमेव करणीय जीवन है,
तप ही तो जीवन-अनन्त सुखदाता है।

झूठे सुख-साधनों में फंस, भूल जाता तप,
जीवन में ऐसा ही जन तो पछताता है॥

तप - पथ इतना सुगम करना है मुझे,
जितनी सरलता से श्वास आप आता है।

मन को अवश्य जन कर ले स्वयंवश, बस,
तप का विशुद्ध रूप यही मन आता है।।

★

भगवान ध्यान को कर समाप्त, आहार प्राप्ति के लिये चले।
मर्यादा लोक की रखने को, सागर-सरिता के लिये चले।।

चान्द्री-चर्या से विचरण कर, मध्यान्ह समय मे जाते थे।
प्रभुवर के शुभ दर्शन पाकर, पुरवासी अति हरषाते थे।।

वह निधि न प्रजाजन सीखे थे, कैसे आहार दिया जाता।
मध्यान्ह समय मुनि आये तो, कैसे सत्कार किया जाता।।

इसमें इनका कुछ दोष न था, मुनि का आहार न देखा था।
मन वांछित मुनिवर पा जाये, ऐसा सत्कार न देखा था।।

प्रभु जाते और लौट आते, वांछित आहार न मिलता था।
आहार-सूर्य के बिना किन्तु, मुख-कमल निरन्तर खिलता था।।

प्रभुवर के शुभ दर्शन पाकर, निज जीवन धन्य बनाते थे।
रज-मण्डित प्रभु के चरणों पर, मन मुक्ता भेट चढ़ाते थे।।

जैसे उत्सव प्रकाश पाकर, जन का जीवन सुख पाता है।
अनुकूल भूमितल पाकर के, वर्षा का जल चढ़ जाता है।।

जैसे भूखा प्यासा व्याकुल, जल अन्न देख हरषाता है।
आकृष्ट स्वयं को पाकर, आगे को बढ़ता जाता है।।

जैसे अरण्य में भटका जन, पथ देख अमित सुख पाता है।
अनुकूल पंथ मिल जाने पर, गद्‌गद् होकर हरषाता है ।।
प्रभु को आता विलोक करके, जीवन को धन्य समझते थे।
शुभ दर्शन अभी लौट जाते, दर्शन को सभी तरसते थे ।।

—: कवित्त :—

कोई पद-पंकजों में करता प्रणाम और,
कोई प्रभु के समक्ष होते हरषाता था।
कोई भेट लाकर के प्रभु को चढ़ाता और,
कोई प्रभु हेतु वस्त्राभूषण सजाता था ।।
कोई गंध, कोई माल्य, कोई रत्न मुक्ता और,
कोई अश्व, गज, रथ भेंट मे चढ़ाता था।
प्रभुवर किसी भेंट की ओर न देखते थे,
कोई जन फिर भी तो फूला न समाता था ।।

॥ दोहा ॥

करते निश्चल ध्यान प्रभु, पाने को वर ज्ञान।
नगर हस्तिनापुर गये, ऋषभदेव भगवान ।।
नृपति सोम-प्रभु थे जहाँ, शासन-रत, यशवान।
लघु भ्राता श्रेयान्सवर, सकल गुणों की खान ।।
बाहुबली के नयन सम, दोनों पुत्र महान।
जिनको पाकर के पिता, हुये परम यशवान ।।

★

श्रेयान्स कुंवर ने आज के, रजनी के स्वप्न सुनाये हैं।
इन अद्‌भुत स्वप्नों को सुनकर, दोनों भाई हरषाये हैं।।

देखा सपने मे श्वेत चन्द्र, ध्वज इन्द्र आप लहराता है।
पर्वत सुमेरु, बिजली, विमान, शुभ कल्पवृक्ष हरषाता है।।

प्रभु ऋषभदेव के दर्शन, श्रेयान्स ने स्वप्न में पाये हैं।
शुभ कारक कुछ ऐसे सपने, मनमोहक परम सुहाये हैं।।

सुन राजपुरोहित यों बोले, पुण्योदय आज हमारा है।
लगता है कृतकृत्य होंगे, हम किसी अतिथि के द्वारा हैं।।

अभिषेक हुआ जिसका गिरि पर, वह देव अतिथि अपना होगा।
पुण्योदय अतिशय आया है, यश चहुँ दिशि में राजन होगा।।

अतिशय अनूठा देकर के, जग में नवरीति चलाओगे।
सामान्य ज्ञान से दूर-दूर, ऐसा विशेष कर जाओगे।।

प्रभु ऋषभदेव करते बिहार, हस्तिनापुर नगरी आये हैं।
श्रेयान्स सोमप्रभु के सपने, साक्षात् रूप फल लाये हैं।।

अद्‌भुत तेजस्वी को पाकर, घर बाहर सुधर बधावे हैं।
निज को पवित्र करने, प्रभु के, दर्शन के विमल बुलावे हैं।।

देखते - देखते कुछ क्षण में, एकत्रित कितनी भीड़ हुयी।
शुभ दर्शनीय वह पावन छवि, भव-खगों हेतु नीड़ हुयी।।

वह ही दर्शन को दौड़ पड़ा, जिसने जब समाचार पाया।
मानों रंकों की टोली ने, निधि पाने का अवसर पाया।।

मैत्री, प्रमोद, कारुण्य भाव, इनको सहेज चलते जाते।
सामीप्य प्राप्त कर सूरज का, मुख कमल आप खिलते जाते।।

प्रभु राज महल में पहुँच रहे, पथ को निहारते जाते हैं।
जयकार बोलते जाते कुछ, कुछ पथ बुहारते जाते हैं ॥

ऐसी अद्भुत शोभा न लखी, सानन्द लोग बढ़ते जाते।
ज्यों इन्द्र जाल में फँसे हुये, अनजाने जन चढ़ते जाते ॥

सिद्धार्थ नाम का द्वार पाल, हरषाता नृप पर आया है।
भगवान द्वार पर आये हैं, सूचित कर शीश झुकाया है ॥

स्वप्नों की चर्चा सत्य हुयी, महलों में खुशहाली आई।
जैसे सावन में हरियाली, नभ पर घन घोर घटा छायी ॥

-: कवित्त :-

सोम प्रभु दोनों बन्धु श्रद्धा गुण के समेत,
उर में उमंग लिये, सुन उठ आये हैं।

सोचते हैं हम से बड़ा न पुण्यवान कोई,
विगत भवों में बड़े बहु पुण्य कमाये हैं ॥

पाकर समक्ष प्रभु भूले अपनी ही सुधि,
श्रद्धा के सुमन पग कमल चढ़ाये हैं।

गद्‌गद् अन्तर है गला रुँध आया आप,
भक्ति से पुलक नैन नीर बरसाये हैं ॥

॥ दोहा ॥

इसी समय पर देखिये, घटना घटी विशेष।
कमी पूर्ण होने चली, जो कुछ थी अब शेष ॥

विगत जन्म श्रेयान्स ने, साधा था आचार।
दिया हर्ष के साथ था, प्रभुवर को आहार॥
पूर्व जन्म के कर्म का, जागा विमल विवेक।
स्मृति में सब आ गयीं, आहारादिक टेक॥

इस युग में कोई सुजन, था न जानता रीति।
दे कैसे आहार वह, यद्यपि प्रभु पद प्रीति॥
भव ज्ञानी श्रेयान्स तब, लगे निभाने रीति।
सब आश्चर्य के साथ ही, उपज रही है प्रीति॥

—: कवित्त :—

अत्र तिष्ठ! अत्र तिष्ठ!! जलाहार शुद्ध प्रभु,
सुन्दर निवेदन कर प्रभु पड़गाहा है।
श्रद्धा, शक्ति, भक्ति, क्षमा, ज्ञान औ अक्षौम, त्याग,
सप्त गुण युक्त होके भक्ति से बिठाया है॥

विधि युक्त पड़गाह आसन दिया है उच्च,
प्रक्षालन कर पग, पूजन रचाया है।
बार-बार प्रभु को प्रणाम किया भांति-भांति,
सबने ही प्रभु पद-शीश को नवाया है॥

✶

सोम और श्रेयांस राय, नवधा भक्ति कर झूम रहे।
आहार सजाकर के प्रासुक, शक्ति सम को चूम रहे॥
कुछ कलश इक्षु-रस से पूरे, उस समय वहाँ पर रक्खे थे।
वे मधुर और थे स्वच्छ अधिक, अब तक न किसी ने चक्खे थे॥

लेकर के कर में स्वर्ण पात्र, प्रासुक आहार रखा जिसमें।
श्रावक शिरोमणि श्रेयान्स राय, आहार दे रहे प्रभु कर में॥

अद्भुत उत्साह फिर भी विवेक, जयघोष अमर दानेश्वर को।
राजा रानी ने भी बढ़कर, आहार दिया आदीश्वर को॥

प्रभुवर ने प्राणिमात्र होकर, नियमित विशुद्ध आहार लिया।
सबने कुछ दूर खड़े रहकर, मन ही मन में सत्कार किया॥

आहार दान की रीति नीति, देखते प्रीति उर - उर जागी।
जैसे प्रभु दर्शन के प्रति, लालसा नगर घट-घट जागी॥

देवता वृन्द नव कृत्य देख, मेरी ताड़न में लगे हुये।
श्रद्धा से अतिशय निर्मल है, फिर भी सेवा हित जगे हुये॥

हो रही व्योम से धरती पर, रत्नों की अतिशय बरसा है।
नव पारिजात की बरसा से, धरती का कण-कण हरषा है॥

बह रही मनोरम-गन्ध वायु, दिशि-दिशि सन्देश सुनाती सी।
मानो पराग-मिस खुशियों का, सारा संसार लुटाती सी॥

कह उठे देव यह दान धन्य, दाता भी धन्य निहारा है।
यह पात्र धन्य, सर्वोत्तम है, जीवन भी धन्य हमारा है॥

एकत्र प्रजाजन यों बोले, इससे बढ़कर सुख होगा क्या ?
जो कुछ नैनों से देख रहे, उत्तम अब सम्मुख होगा क्या ?

त्रय लोकों के सुख से बढ़ कर, भगवान ऋषभ का दर्शन है।
अब हमें और क्या करना है, पाया जब प्रभु का दर्शन है॥

जग की वस्तु अब सहेजे क्यों, साक्षात् त्याग देखा हमने।
तप मूर्तिमान आंखों आगे, सच्चानुराग देखा हमने॥

जग की क्या कौन महत्ता है, ये भी तो आज निहारा है।
सब भाँति पूर्ण, सब भाँति सुखद, जीवन हो गया हमारा है ।।

हो गया धन्य यह राज महल, हो गयी धन्य भू प्यारी है।
हो गयी तीर्थ पूजित धरती, हो गयी विश्व में न्यारी है ।।

-: दोहा :-

लौट चले भगवान जब, हुआ और ही रंग।
अब तक जो रसमय रही, वह तट चली तरंग ।।

चले संग श्रेयान्स अरु, नृपति सोमप्रभु वीर।
घर आये प्रभु जा रहे, सोच उठ रही पीर ।।

चले प्रजाजन संग में, धरते पद-रज-शीश।
सुफल जन्म ये हो गया, देखे जो जगदीश ।।

सब लौटे कुछ दूर चल, मन में हुई उमंग।
उस अस्थिर संसार मे, सब का आचिर संग ।।

-: कवित्त :-

अति मन मोहक थी प्रभु की रसीली छवि,
कवि समता की उपमा न खोज पायेगा।

जिसने भी इतनी अलभ्य छवि देख ली है,
जगती में न उसकी दृष्टि में कुछ आयेगा ।।

जिसने निहारी नहीं ऐसी मनहारी छवि,
जीवन मे वह बार - बार पछतायेगा।

ऐसा कौन होगा मूढ़ अथवा विमूढ़ जग,
गंगा जल छोड़ जो कि सागर को धायेगा ॥

*

सम्राट भरत जी ने आकर, श्रेयान्स कुंवर का मान किया।
पूछा नृप ने, श्रेयान्स कहो, कैसे प्रभु को पहचान लिया ॥

कैसे सीखी आहार रीति, जग जिससे अब तक दूर रहा
आहार देव को देने में, असमर्थ तथा मजबूर रहा।

हो रहा मुझे आश्चर्य बड़ा, कुछ तो प्रिय मुझको बतलाओ।
जाना कैसे वे जबकि मौन, प्रियवर रहस्य कुछ समझाओ ॥

हे पूज्यपाद आश्चर्य नहीं, संयोग इसे कहना होगा
इस तरह हुयी अघटित घटना, सुनकर चुप रहना होगा।

मुनिवर का रूप लखा जैसे, वैसे ही पूर्ण ज्ञान आया।
आहार रीति का गुरू रहस्य, मेरे मन स्वयं उभर आया ॥

स्मृति से सब सम्पन्न हुआ, प्रभु ने आहार सहज पाया
आहार दान सब सीख गये, सब से आहार दान आया।

प्रभु के अनेक भव की गाथा, सब को ही सहज सुनायी है।
भरतादि सहित यह सबको ही, कर्णामृत अति सुखदायी है ॥

सम्राट भरत सुनकर बोले, कुरू वंश शिरोमणि आज हुये
आहार दान के आदि विज्ञ, सारे समाज के ताज हुये।

तुमने जग को यह ज्ञान दिया, इसलिये मान अधिकारी हो।
तुम हो ज्ञान, दानी, महान, तुम दान तीर्थ अधिकारी हो ॥

—: दोहा :—

इस प्रकार श्रेयान्स का, हुआ बहुत सम्मान।
मिला जगत को ज्ञान नव, उपजा तोष महान।।

ज्ञान बड़ा है जगत मे, ये ही जगत ललाम।
ज्ञानवान को कीजिये, सादर प्रथम प्रणाम।।

दान धर्म की रीति भी, जग में अनुकरणीय।
इनमें जो रमता रहे, वह महान कमनीय।।

पढ़े, सुने, धारण करे, दान धर्म की रीति।
उपयोगी विश्वास है, प्रभु पद-रज में प्रीति।।

तप वर्णन व कैवल्य प्राप्ति वर्णन

पद्य

पतित पावन दुःख नाशन,
विघ्न - हर करुणा करम् ।

दीन बन्धु कृपालु अतिशय,
त्याग - मूर्ति सुहृयवरम् ।।

देव पूजित मनुज - वन्दित,
नित्य प्रभु - शुभदर्शनम् ।

आदीश जय जगदीश विभु,
जय ज्ञान राशि विभूषणम् ।।

-: कवित्त :-

जिसके कि शासन में नय, प्राणी, ऋतुयें भी,
होकर विरोधी अविरोधी बन जाती हैं।

जिसके प्रताप से कि फैलता प्रकाश पुंज,
खिली अनखिली कलिकायें खिल जाती हैं ।।

जिसके प्रभाव से कि मिटते विरोधी भाव,
समता के लिये शक्तियाँ भी रुक जाती हैं।

जिस की कृपा कटाक्ष सम्यक्, जगाती ज्ञान,
ऐसे केवली के प्रति वृत्ति झुक जाती है ।।

॥ दोहा ॥

पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति को, जिसने लिया विराग ।
महा तपस्वी ऋषभ के, प्रति जागे अनुराग ॥

जिनके विमल प्रभाव से, समता जगी विशेष ।
सहस नमन प्रभु ऋषभ को, बदल दिया परिवेश ॥

★

एकाकी रह प्रभु ऋषभदेव, अन्तर की ज्योति निरखते थे ।
कितना अभ्यास हुआ अब तक, निज को ही आप परखते थे ॥

कल-कुसुम-कली भ्रमरावलियाँ, अपलक निहारते रहते थे ।
अपना न विराना कोई है, सत् सभी सत्य यह कहते थे ॥

देखते निरखते सब को ही, फिर सम्यक् दृष्टि जोड़ते थे ।
चंचल मन चचल तुरग को, सयम की ओर मोड़ते थे ॥

सम्यक् पथ पर ही चलने को, मन को नित बाध्य किया करते ।
चंचल तुरंग को दिशा हेतु, संयम को साथ लिया करते ॥

वन, पर्वत, नदी सरोवर के, अंचल में कभी विचरते थे ।
सब के जीवन में कौन सार, अन्तर में खूब उतरते थे ॥

कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हेतु, अन्तर में ज्वाला मचलती थी ।
साधना नदी मे संयम से, साधन को नौका चलती थी ॥

अब प्रकृति-नटी निज वैभव से, कौतूहल नहीं जगाती थी ।
चंचला-वृत्ति मिथ्यात्व लिये, कल-छल बल नहीं दिखाती थी ॥

जग रीति नीति अथवा कि भांति, जग प्रीति प्रतीत न जगती थी ।
उनकी उष्मा अथवा सुषमा, प्रभुवर को सम्यक् लगती थी ॥

कटुता न घृणा लाभादि हानि, सुख-दुख चिन्ता के विषय न थे ।
गतिरोध प्रकट करते पथ में, पाये ऐसे जग प्रणय न थे ।।

कब सूर्य उगा, कब उगा चन्द्र, कब निशि ने पायी तरुणाई ।
कब प्रकृति सजी शृंगार किया, कब संध्या बाला मुसकाई ।।

निशि भर प्रभुवर करते चिन्ता, अनुक्रम दिन तक में भी चलता ।
कब श्रेष्ठ ज्ञान का सिन्धु मिले, चिन्ताकुल भाव यही पलता ।।

इतना हो शयन किया करते, तन कहीं न बन्धन बन जाये ।
थोड़ा आराम मिले उसको, जिससे वह साधन बन जाये ।।

कर, पाद याकि मुख प्रक्षालन, हो याकि नहीं परवाह नहीं ।
लौ एक हृदय में लगी हुयी, इन्द्रिय सुख में उत्साह नहीं ।।

कब सिद्धि मिले, कब लक्ष्य मिले, कब जीवन सफल हमारा हो ।
केवट को तभी चैन आता, नौका को मिला किनारा हो ।।

—: कवित्त :—

कभी यहाँ, कभी वहाँ, कभी नदिया के तीर,
अतिशय गंभीर कभी कभी सागर नहाते थे ।

भय मानते न कभी, विकट बनों के बीच,
पशु-पक्षियों के मध्य में न घबराते थे ।।

घूमते निकल जाते, पुर से नगर से भी,
कभी तुंग शैल श्रेणियों पे चढ़ जाते थे ।

जैसे भी हो कहीं भी हो, और कभी कैसे भी हो,
अन्तर में यही तप प्रभु अपनाते थे ।।

जल मे, निशा में, गिरि-उदर-दरी में, गुप्त ?
कन्दरा में, गह्वरी में, तप किया करते।
रस को, रसा को, रसना को, रस निधि को भी,
संयम मे बध कभी ध्यान किया करते ।।

पंच - ज्ञान इन्द्रियों का करके निषेध सदा,
प्रतिशोध भावना न मन किया करते।
भूख की न, प्यास की न, वस्तु की न, गेह की न,
देह की न, मेह की न, परवाह किया करते ।।

दृढ़ता से ध्यान सदा धारते रहे ऋषभ,
होकर विकल्प रहित स्वभाव अनुपालते।
अन्य मुनियों में स्वाध्याय हेतु रति रहे,
निज मतिज्ञान उस पथ पर डालते ।।

पूर्वार्जित कर्मों की निर्जरा के हेतु गुप्ति,
धर्म, अनुप्रेक्षा जय आदि सदा पालते।
ध्यान-सिद्धि अनुकूल-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव,
नाना विधि जीवन की वृत्ति थे सम्भालते ।।

॥ दोहा ॥

द्वादस विधि तप साधते, बीते वर्ष अनेक।
ऋषभदेव जो चाहते, मिला नहीं वह टेक ।।
श्रेष्ठ ज्ञान उपलब्धि हित, उर में लगन महान।
पुरमिताल के नगर को, गये शकट उद्यान ।।

★

मुख पूर्व दिशा की ओर किये, पद्मासन आप लगाये थे।
अतिशय गम्भीर किये मुद्रा, आध्यात्मिक ज्योति जगाये थे।।

एकान्त प्रान्त में पादप के, नीचे श्री प्रभुवर बैठे थे।
मानो वट वृक्ष सदृश प्रभुवर, एकान्त प्रान्त में बैठे थे।।

वट की प्रबल शाखाओं सी, बल सागर लम्ब भुजायें थीं।
शाखाओं में आयी जड़ सी, प्रभुवर की बढ़ी जटायें थीं।।

वट से अगणित खग सुख पाते, प्रभु के उर में सुख साधन थे।
वट छाया में जन हरषाते, प्रभु के वरदान प्रसाधन थे।।

जो इस वट का पाता दर्शन, निश्चय शीतलता पा जाता।
जो भी करता प्रभु का दर्शन, निश्चय पवित्रता पा जाता।।

वट सा विशाल था वक्षस्थल, क्षमता का जिसमें सागर है।
निज के हित को, पर के हित को, समता का जिसमें आगर है।।

केवल अपने मे लीन हुये, केवल अपने आधीन हुये।
तप के साधन के गहन सिन्धु, आनंद मगन आसीन हुये।।

—: दोहा :—

शुक्ल ध्यान, श्रेणी क्षपक, आरोहित सद् बुद्धि।
प्रकट ऋषभ में हो गई, आत्मिक परम विशुद्धि।।

मोहनीय बन्धन हुये, अपने आप विनष्ट।
ज्ञानावरणी कर्म रिपु, हुये स्वयं ही नष्ट।।

चार घातिया क्षय हुये, उगा ज्ञान-भास्वान।
आत्मा में मण्डित हुआ, दुर्लभ केवल ज्ञान।।

-: कवित्त :-

लोकालोक, देवलोक, स्वर्गलोक का समूह,
लोक, परलोक सब दृष्टि में समाये हैं।
लोक-लोक के रहस्य, प्रभु ने विलोके सब,
क्षण में नरक के विलोक लोक आये हैं॥
तीन लोक में विरोध, शुभ या अशुभ भरा,
मन में तुरंग भी न पीछे दौड़ पाये हैं।
होकर त्रिकाल ज्ञानी, याकि सर्वज्ञ कहो,
हो के पूर्ण-दर्शी वे जग को सुहाये हैं॥

-: दोहा :-

फागुन कृष्ण एकादशी, नक्षत्र उत्तराषाढ़।
तप साधन से ऋषभ ने, पाया ज्ञान प्रगाढ़॥

—: कवित्त :—

मिलता न सुखपाल, याकि कुसुमित डाल,
जब तक कोई खग देखे नहीं मुड़के।
सुख का असीम सिन्धु अपने ही पास रहे,
कैसे सुख पाये कोई देखे नहीं मुड़के॥
लगन बिना है यहाँ मिलता न कुछ भी तो,
देखे भली भांति यहाँ जन खूब बढ़के।
देखना है किसके समीप लक्ष्य आता नहीं,
एक बार देखे जन ऋषभ से जुड़के॥

तप का या संयम का, अथवा नियम का ही,
पालना तो लोहे के ही, चनों का चबाना है ।

जीतना तो तीनों लोक सरल रहा हो किन्तु,
सब से कठिन इंद्रियों को जीत पाना है ।।

देव या मनुज, नाग, योगी, सिद्ध, जन आदि,
सब ने ही इन्द्रियों को कठिन बखाना है ।

ऋषभ ने तप-ध्यान, संयम नियम आदि,
पाकर के "केवल" सा ज्ञान मन माना है ।।

★

प्रभुवर को केवल ज्ञान मिला, नयनों में नयी ज्योति आयी ।
जैसे उग करके सूरज ने, बिखरायी दिशि-दिशि अरुणाई ।।

अन्तर निर्मल आकाश सदृश, मन का तुरंग गतिहीन हुआ ।
इन्द्रियां पगों मे लौट गई, इच्छा समूह आधीन हुआ ।।

चित् में हित की बात एक, अनवरत सुनायी देती थी ।
अब तो अपनी ही मनोवृत्ति, उन्नत दिखलायी देती थी ।।

क्या दुखद याकि क्या सुखद, अब तो यथार्थ की धारा था ।
अथवा धारा को ही बाँधे, धारा का कूल किनारा था ।।

संयम की, तप की शुचि फैली, मानस भू पर लहरायी थी ।
तल पा लेने पर अब न रही, उतनी जितनी गहराई थी ।।

सब ओर दौड़ कर वायु शोध, सन्देश सभी को दे आयी ।
आओ देखो नव उगा सूर्य, मानो कि बुलावा दे आयी ।।

सूरज ने और चमक पायी, बढ़ती चन्दा की मुस्कानें।
नक्षत्र लोक मचला इतना, कुछ और नयी ही पहचानें॥

रजनी रानी शृंगार किये, आंचल पसार भू हरषाई।
अब नयी प्राप्ति की ओर चलो, समता स्वागत करने आई॥

आया अब सूर्य सुलोचना है, जग कर अभीष्ट को पाना है।
आना तो यहाँ पर रहे लेकिन, आकर न यहाँ पछताना है॥

प्रभु के निवास से वह आती, सब को ही सुखद सुहानी थी।
अन्दर निज फुलवारी महकी, जिस की अब नई कहानी थी॥

तरु लता हुये फल फूल युक्त, सब मे ही हरियाली आयी।
प्रभु आगमन के साथ-साथ, सर्वत्र सरसना मुस्काई॥

बाँसों के छिद्रों में समीर, टकराकर गीत सुनाता है।
गुंजरित बाँसुरी के स्वर में, अन्तर मे खुशी जगाता है॥

बोलियाँ टोलियाँ भ्रमरों की, परिवेश निराला कर जाती।
अन्तर की खुशी बताने को, मानस मे गुन-गुन भर जाती॥

—: कवित्त :—

बादलों के सुन्दर समूह घिर कर आये,
घिर-घिर अन्तर का रंग दिखलाते हैं।

पाकर मनोनुकूल मारुत को हरषाये,
गरज के प्रभु को प्रणाम कर जाते हैं॥

उठता घटा समूह लगता उमंग सा है,
मानों प्रभुदर्शनों को पाके हरषाते हैं॥

उर की प्रसन्नता को वैसे मेघ रोके हुए,
हल्की फुहार मिस रस बरसाते हैं ।।
अमरों के विपुल समूह हरषाते और,
छाये आसमान आये फूल बरसाने को ।
इन्द्र आदि देवगण उर से प्रसन्न हुये,
चले पूजने को निज जीवन सजाने को ।।
नृत्य-रत होने चले देव नारि के समूह,
उर की प्रसन्नता को जग में दिखाने को ।
गहगहे बजने निसान लगे आसमान,
देवगण को ही नहीं जग उमगाने को ।।

–: दोहा :–

इन्द्र आदि ने आन कर, प्रभु को किया प्रणाम ।
पाकर के संतोष उर, हुआ हृदय गुण ग्राम ।।
देवों के द्वारा हुआ, ज्ञान प्राप्ति का पर्व ।
केवल ज्ञानी प्रभु हुये, हुआ सभी को गर्व ।।
वह वट, अक्षय वट हुआ, मिला ऋषभ आह्लाद ।
जहाँ पहुँच जन आज भी, पाते हर्ष निनाद ।।
ज्ञान ज्योति तब धन्य है, हरे तिमिर का वृन्द ।
हृदय मध्य आह्लाद ज्यों, भरता कवि का छन्द ।।

समवशरण वर्णन

-: कवित्त :-

पाल के अहिंसा व्रत मेटा महा मृत्यु भय,
जग हित हेतु हुआ जो कि गुणगाम है।
मन मतंग संग पाकर अनंग का भी,
ढूँढता ऋषभ - छविधाम अविराम है ।।
परिग्रही भावना की गुणता न टिक पायी,
पाकर विराग भाव हुयी सुखधाम है।
त्याग, अभिमान, स्वाभिमान का दिया जो ज्ञान,
ऐसे ज्ञानवान भगवान को प्रणाम है ।।

-: दोहा :-

जिसकी कृपा कटाक्ष से, खुले भीतरी नैन।
उसकी छवि देखे बिना, कहाँ मिलेगा चैन ।।
ऋषभ-ऋषभ रटते रहो, रखे रहो मन धीर।
परम पूज्यवर देव प्रभु, क्यों न हरेंगे पीर ।।
जिसने जग को सब दिया, किया सभी पर हेतु।
तू भी बढ़ विश्वास ले, क्यों न उड़ेगा केतु ।।

★

किस समय हमें क्या करना है, जो भी विचार ये रखता है।
वह ही सुन्दर अवसर पाता, वह ही सुन्दर फल चखता है ।।
जो समय नहीं पहचान सका, वह जीवन भर पछताता है।
असफलताओं का बढ़ा जाल, ऐसे को खूब छकाता है ।।

ऋषभायण
चतुर्थ खण्ड
क्षमा
मार्दव
आर्जव
शौच
सत्य
संयम
त्याग
ब्रह्मचर्य
१- समवशरण वर्णन
२- भरतागमन वर्णन
३- धर्म चक्र वर्णन
४- दिव्य उपदेश वर्णन
५- गृहस्थ उपदेश वर्णन
६- मुनि उपदेश वर्णन
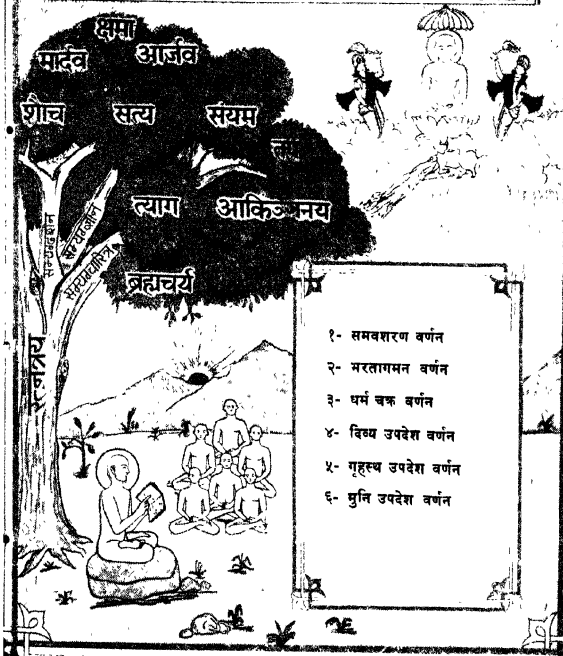
प्राणी मृग-जल के हरिण सदृश, बस भटके - भटके फिरते हैं।
प्रति पग पर बाधायें मिलती, बस अटके-अटके फिरते हैं॥

अपनी जड़ता पर ध्यान नहीं, दुनिया में भागे फिरते हैं।
जो काली कमर भोगती है, उसको अनुरागे फिरते हैं॥

है धर्म कर्म का मर्म कौन, इस पर क्या कभी विचारा है।
कहते फिरते हैं दुनिया में, अपना दुर्दिन में तारा है॥

मकड़ी सा जाल बना करके, मानव इसमें फँस जाता है।
देखता नहीं अपनी करनी, दुनिया को दोष लगाता है॥

भोगों को यहाँ भटकता जो, उसको न भोग मिल पाते हैं।
मालाओं को अनगिनत सुमन, उपवन में कब खिल पाते हैं॥

धरती पर अगणित धर्म भरे, कितने धर्मों को पालोगे।
उतने ही धर्म और होंगे, जितने धर्मों को धारोगे॥

चल करके किसी बिन्दु पर तो, आखिर तुमको रुकना होगा।
बल, आयु, बुद्धि सब सीमित है, इसलिये कहीं झुकना होगा॥

—: कवित्त :—

रुक जाये गति मति देख चकाचौंध धन,
मन का मयूर इतना न हरषाने दो।

उठ जाये सेवा समता का भाव धरती से,
मन को रसों में इतना न रम जाने दो॥

कट जाये बिकट तटों का अन्तराल जो कि,
मन की तरंगे इतना न उठ जाने दो।

बन जाये धरती का अंग-अंग पंकिल जो,
मन के घनों को इतना न बरसाने दो ।।

सुख-सुख चीखने से मिलता न सुख यहाँ,
सुख समता मे, क्षमता में विद्यमान है ।

सुख बसा देह में न, सुख जग नेह में न,
सुख तो समाया कण-कण में समान है ।।

सुख गुण पालन में, पूर्ण त्याग प्रेम में है,
सुख तो समाया अनुभव में महान है ।

परिग्रही भावना में सुख रंच मात्र नहीं,
सुख खोजने को पास बुद्धि का विमान है ।।

तोष में है सुख की तो मूल विद्यमान और,
अक्षय सुख राशिदाता (ऋषभ) महान है ।

★

कैवल्य प्राप्ति का समाचार, देवों के लोक सुहाया है ।
इन्द्रादिक को जो दुर्लभ है, प्रभु ऋषभदेव ने पाया है ।।

सात्विक भावों का उदय हुआ, श्रद्धा का सागर लहराया ।
श्रद्धा रस अर्पित करने को, भावों का बादल घिर आया ।।

सोचा कुबेर ने यह अवसर, सेवा करने का आया है ।
दो क्षण में दुनियां बदल गयी, जग मे प्रकाश नव छाया है ।।

तीनों लोकों मे ऋषभदेव, बल में, मेधा में ऊँचे हैं ।
जो जहां वहाँ वह एकाकी, अपने यह ऋषभ समूचे हैं ।।

इनने जग को वह ज्ञान दिया, जग जिसके लिये अपरिचित था।
घेरे था जग को अँधकार, जग जिसके लिये समर्पित था।।

प्रभु ऋषभदेव के आने से, जन-जन में नयी उमंगे हैं।
शुभ शिला खण्ड के छूने को, सागर में उठी तरंगे हैं।।

शुभ समवशरण की रचना कर, अन्तर की श्रद्धा दिखलायें।
अब तक न निहारा धरती ने, वह रीति अनोखी सिखलायें।।

-: दोहा :-

नृप कुबेर ने देवगण, किये सभी एकत्र।
समवशरण की बात सुन, अन्तर हुआ पवित्र।।

सेवा अवसर प्राप्त कर, उर में उठी उमंग।
चरण कमल छूने बढ़ी, जैसे विमल तरंग।।

—: कवित्त :—

अनगिन सागर में उठती तरंग किन्तु,
सबको, न प्रमुदित मिलता किनारा है।

सूरज से अगणित फैलता किरण जाल,
सब की तृषा को मिलती न जलधारा है।।

धरती पे अगणित पाते नित्य जीव सृष्टि,
पाता कभी कोई प्रभु दृष्टि का सहारा है।

जीवन में अगणित क्षण यों ही बीत जाते,
कभी-कभी कोई क्षण बनता हमारा है।।

स्वामी की आज्ञा नित माने, यह ही कर्त्तव्य हमारा है।
स्वामी की, जग की, सेवाहित, हमने यह जीवन धारा है।।

भगवान ऋषभ के दर्शन से, यह जीवन धन्य बनाना है।
उपयुक्त समय हमने पाया, उपयुक्त समय पहचाना है।।

हे पूज्य देव आदेश करे, कब कहाँ नाथ प्रस्थान करे।
कहिये सत्वर हे शुभ चिन्तक, किस भाँति नाथ गुणगान करे।।

स्वामी कुबेर, होकर प्रसन्न, देवता वृन्द से यों बोले।
होकर विभोर प्रभु दर्शन को, अमृत से पूर्ण अधर खोले।।

भू पर चल कर के हम सबको, मण्डप अभिराम बनाना है।
जैसा न बना हो धरती पर, ऐसी कुछ कला दिखाना है।।

आ गये देवता भूमि लोक, जैसे रवि किरणे आतीं हैं।
खिल उठी कली सी आप भूमि, किरणे भू रस बरसाती हैं।।

देखा अमरों ने सुभग भाग, हर भांति निहारा सुन्दर है।
आभा की कमी कहीं क्यों हो, आया जब संग पुरन्दर है।।

देखा समतल इक भूमि-भाग, सामान्य भूमि से ऊपर है।
जल से, मारुत से, वृक्षों से, स्वर्गिक सी दीप्त मनोहर है।।

सैकड़ों कोस तक हरियाली, भू - भाग चहूं - दिशि घेरे हैं।
तरु, गुल्म लतायें पुष्पित हैं, कुछ पर फल लदे घनेरे हैं।।

आनन्द सरोवर मे डूबे, पौधों पर भ्रमरावलियाँ हैं।
खिलखिला सुमन झड़ रहे, कहीं मुस्काती अगणित कलियाँ हैं।।

इठलाती शीतल मन्द पवन, सब को जीवन दे जाती है।
जीवन है दिशि-दिशि विलस रहा, संदेश अमर ले आती है।।

मखमल सी दूर्वादल भू पर, भू पर कोमलता जगती है।
अथवा भू के उर की ममता, साकार भूमि पर सजती है।।

पानी में मृदुता घुली हुयी, शुचिता ज्यों धरी धरोहर है।
साकार रूप मृदु शुचिता का, कमलों से भरा सरोवर है।।

हर दिशा-दिशा मंगल-मंगल, हर ओर बसी खुशहाली है।
हर दिशा कर रही अर्पित सी, रसमय अमृत की प्याली है।।

धनपति कुबेर की आज्ञा से, सुन्दर मण्डप तैयार किया।
श्री इन्द्रदेव आज्ञानुसार, शुभ मणियों का आधार लिया।।

—: कवित्त :—

नील मणियों से युक्त, सुन्दर शिला को सजा,
जगमग सुषमा निचोड़ी और धर दी।

मण्डप बनाती आभा बिखरी है सब ओर,
मानों अद्भुत शोभा अमरों ने भर दी।।

हीरे, नग मणियों का सुन्दर बनाया कोट,
मान स्तम्भ रचना से आभा मानों भर दी।

तीनों लोक, तीनों काल में न जैसी दर्शनीय,
अमरों ने आज ऐसी रचना है कर दी।।

वन्दनीय प्रभु का है सदाचार कमनीय,
नमनीय नित्य हम सबको प्रकाश है।

मानवीयता की मेटता जो दयनीय दशा,
तिमिर-निशा को जिसकी एक आश है।।

मानवीय और अभिनन्दनीय जीवन का,
जिसमें समाया जन-जन का विकास है।
उसका पुण्य छीजता न कभी तीनों लोक,
जो कि बन गया इस आभा का निवास है ॥

★

पर्वत सा मण्डप दीख रहा, सचमुच जो शोभा सागर है।
अगणित जिसमें मोती माणिक, इसलिये महा रत्नाकर है ॥

गोपुर बहु द्वार सुशोभित है, जिनमें प्राणी कुछ बस लेगे।
है कक्ष बहुत से बने हुये, जिनमें श्रोतागण बैठेंगे ॥

इस सभागार के तीन ओर, कुछ ऐसी भव्य व्यवस्था है।
हर श्रोता को, हर दर्शक को, सब कुछ नजदीक झलकता है ॥

द्वादस छोटे शुभ सभागार, तीनों ही ओर सजाये हैं।
कुछ बीच-बीच में द्वार-द्वार, नव तरू अशोक के छाये हैं ॥

रवि प्रकट हुआ उदयाचल पर, ऐसा सिंहासन दिखलाता।
सिंहासन सुमन सरीखा है, मन भ्रमर सुमन पर मंडराता ॥

श्रद्धा का है साकार रूप प्रभु, जिस पर आन विराजे हैं।
सम्मान भाव उर में है प्रकटित, मण्डप आदिक जो साजे हैं ॥

विद्याधर गण किन्नर समेत, यशगान आदि में लीन हुये।
मंगल ध्वनि चहुँ दिशि गूंज उठी, सुख सागर मे तल्लीन हुये ॥

व्यन्तर बालाये भवनों से, आकर के नृत्य दिखाती हैं।
कामिनियाँ भुवन वासियों की, नूपुर अनूप खनकाती है ॥

आकाश मार्ग से सुमनों की, हो रही भूमि पर बरसा है।
है दृष्टि जिधर जाती अपनी, आनन्द अनूठा सरसा है।।

।। दोहा ।।

दिशा-दिशा आनन्द है, ज्यों पुराण के छन्द।
विस्मय इसमें कौनसा, जब धर परमानंद।।

गौरव है यह भूमि का, उत्तम तप का पुंज।
करे देवता भी रमण, पाकर सुख का कुंज।।

भाग्य सराहें देवता, प्रभु पद अमल विलोक।
धन्य-धन्य जीवन हुआ, मिटे रोग, भय शोक।।

—: कवित्त :—

सुख दुख जल वाली कितनी ही सरितायें,
बह कर दुनियाँ का सागर बनाती है।

जिसकी हिलोर पाके खिलती शिलायें और,
टकराती टकरा के सागर नहाती है।।

जिनको न ज्ञान निज रूप बल पौरुष का,
ऐसी सरितायें नित्य गौरव गंवाती है।

किन्तु ज्ञानवान प्रभु ऋषभ समान बल,
युक्ति का विधान पाके नावें पार जाती है।।

असुर, अमर, देव, नागपाल, लोकपाल,
विद्याधर किन्नर नरेश ललचाये हैं।

व्यन्तर, भुवनवासी दिगपाल, इन्द्र आदि,
निज-निज वाहनों के संग में सुहाये हैं ।।

अशरण - शरण ऋषभ महान प्रभु का,
ज्ञान कल्याणक सब देखने को आये हैं ।

सात नर्क, सात स्वर्ग, सात सिन्धु, सात लोक,
सात स्वर, सात तल प्रमुदित धाये हैं ।।

।। दोहा ।।

ऋषभ देव चहुँ ओर हैं, देवगणों की भीड़ ।
सब प्रसन्न इस भाँति हैं, त्यों खग पाया नीड़ ।।

उर के सागर में उठी, श्रद्धा भाव हिलोर ।
विनती सब करने लगे, हो आनद विभोर ।।

-: हरिगीतिका :-

जिन धर्म के, शुभ कर्म के, शुचि ज्ञान के आधार हो ।
जीवन-जगत-नव दृष्टि के, शुभ रूप तुम, साकार हो ।।

विश्व वैभव से अलंकृत, किन्तु फिर भी मुक्त हो ।
तुम व्यक्ति होकर भी सदा, अरहन्त हो अव्यक्त हो ।।

तुम सत्य के सिद्धान्त हो, व्यवहार में भी हो तुम्हीं ।
हो कल्पना की मूल में, साकार में भी हो तुम्हीं ।।

तुम जिनालय - देव - प्रतिमा, तुम अनादि अनन्त हो ।
तुम ही अबल के बल पराक्रम, तुम महा यशवन्त हो ।।

जय जगत भूषण आदि कारण, क्लेश भयहारी, तुम्हीं।
जय योग, योगीश्वर विदित, सर्वत्र सुखकारी तुम्हीं॥

जय सहस्र नामांकित जगत में, सहस्र किरणात्मक तुम्हीं।
सूर्य धर्मी ऋषभ प्रभु, हो जगत के पालक तुम्हीं॥

जय सत्य मत, जय सत्य पथ, जय सत्य रथ, तुम सत्य हो।
जय जगत अशरण-शरण तुम, जय जगत नित्य अनित्य हो॥

जग ज्येष्ठ जय, जग श्रेष्ठ जय, परमेश जय परमात्मा।
अखिलेश जिनवर विश्व के, कल्याण के सर्वात्मा॥

जय यशस्वी, जय तपस्वी, जय विभो हे करुणाकरम्।
यज मुक्ति मुक्ता, यश प्रदाता, जगत सुख रत्नाकरम्॥

उत्तम क्षमा, मार्दव अचौर्यम्, कुन्देन्दु सम सुसरोवरम्।
जय जयति आदीश्वर प्रभो, मम हेतु कुरु निज शुभकरम्॥

॥ दोहा ॥

विनती कर सुरराज संग, सभी झुकाया शीश।
अन्तर श्रद्धा देखकर, पुलके प्रभु आदीश॥

*

इन्द्रों के संग में देवराज, पूजा कर नहीं अघाने हैं।
जीवन का मूल्य अनोखा है, वे भली भांति पहचाने हैं॥

मन ही मन यह वर माँग रहे, तव-चरणो में अनुराग रहे।
तव-कृपा कमल के खिलने को, मेरा यह हृदय तड़ाग रहे॥

मम नैन चले, जिस ओर प्रभो, उस ओर आप दिखलायी दे।
आपके नित चरण छू पाऊँ, प्रभुवर इतनी तरुणाई दे॥

यह श्रवण आपका नाम सुने, बोलूं तो नाम आपका हो।
मैं तो बस सेवक बना रहूँ, मेरा क्या सभी आपका हो ॥

जब चाहूँ दर्शन पा जाऊँ, जग की सेवा में लगा रहूँ।
जब कभी पुकारूँ पा जाऊँ, प्रभु की सेवा को जगा रहूँ ॥

जग, जीवन, जाया, जय-सम्भव, जग में प्रभु भक्ति असम्भव है।
जो कृपा आपकी पा जाये, उसकी फिर शक्ति असम्भव है ॥

अब तो उर में अभिलाष यही, प्रभुवर का दास कहलाऊँ मैं।
इतना ही क्यों इस दुनिया में, दासनुदास बन जाऊँ मैं ॥

हे देव बहुत सुख भोग लिया, पाया जिनसे संतोष नहीं।
पर गया हृदय से रोष नहीं, हो रहा कौन सा दोष नही ॥

पाया परिवर्तन आज प्रभो, यह अविरल कृपा तुम्हारी है।
अब तक बस यों ही दुनियां मे, बीती जिन्दगी हमारी है ॥

—: कवित्त :—

कोई कर जोड़ खड़े, कोई है नवाये शीश,
कोई अपलक छवि प्रभु की निहारते।

कोई नैन मूंद खड़े, कोई जप रहे नाम,
कोई धरा - धाम, उर - प्राण तक वारते ॥

कोई नैन बैठे वहीं भूमि तल गये,
कोई अभिभूत भक्ति नैन जल डारते।

कोई निज जीवन को धन्य मानते हैं और,
कोई ऋषभ देव देव ही पुकारते ॥

—: दोहा :—

भक्ति लीन सब देवगण, कह न सके कुछ बात ।
सुधि बुधि है भूले सकल, पता नहीं दिन रात ।।

समवशरण महिमा अगम, सुन सुख पायें लोग ।
प्रीति सहित श्रद्धा बढ़े, छुये न रंच वियोग ।।

भरतागमन वर्णन

—: कवित्त :—

संयम के, शील के, कला के, शुभ भावना के,
उन्नत - ललाट - हिमवान से बनो यहाँ।
परिग्रही - भावना के, हिंसा-असमानता के,
भेंट को अड़े, प्रणवान से बनो यहाँ॥
जाति, जन्म ऊँच नीच आदि मिथ्या बन्धनों के,
काटने को तेज ज्ञानवान बनो यहाँ।
जन के, सुदेश के सुसावधान सेवक हो,
भरत के मृदु स्वाभिमान से बनो यहाँ॥
भरत सा और कौन बलवान होगा जग,
बल विभुता को पा के छुआ नहीं मद को।
सेवा सद्भावना में आने दी कमी न कभी,
और कभी चाहा नहीं पद को, विरद को॥
समता के साथ-साथ प्रभुता बनाये रखी,
सूखने दिया न कभी ममता के नद को।
भरत को जग बड़ा मानता रहा है किन्तु,
बड़ा माना सदा प्रभु ऋषभ के पद को॥

—: दोहा :—

रहा भरत के हृदय में, सदा नम्रता, ओज।
शील-सिन्धु में प्रजाजन, बनते रहे सरोज॥

जिसने निज तन के सदृश, रखा प्रजा का ध्यान ।
जग में ऐसे भरत को, कहे न कौन महान ?

जिनके ही शुभ नाम पर, है यह भारतवर्ष ।
युग-युग में इतिहास जन, क्यों न कहें आदर्श ।।

पूजनीय जग कर्म हैं, नहीं रुपहला रंग ।
गंगा भी पुजती नहीं, उठती जो न तरंग ।।

पूजनीय जग मनुज है, जो कि करे सत्कर्म ।
जग को सुख देता रहे, यह जीवन का मर्म ।।

*

वर समवशरण का महापर्व, देवों ने आन मनाया है ।
धनपति कुबेर ने वैभव से, मण्डप सम्पूर्ण सजाया है ।।

कल्याणक ज्ञान मनाने को, वैभव सर्वस्व जुटाया है ।
श्रद्धा सात्त्विक भावों का शुचि, पूरा भण्डार लुटाया है ।।

अमरों ने प्रभु की भांति-भांति, वर भक्ति युक्त स्तुति की है ।
मानों उर की श्रद्धादि भक्ति, प्रभु चरणों में अर्पित की है ।।

आकर अमरों ने धरती पर, उर का आनन्द मनाया है ।
सामान्य व्यक्ति धरती के जो, उनको न समझ में आया है ।।

देवता रहे आनन्द लीन, कब रात गयी कब दिन आया ।
कल्याणक ज्ञान मनाते पर, इतना भी अवसर कब पाया ।।

पर इधर अयोध्या नगरी में, घटना क्या घटी सुनाता हूँ ।
मैं जैसी मति का स्वामी हूँ, उसके अनुरूप बताता हूँ ।।

महाराज भरत प्रभु श्रेष्ठ पुत्र, जन-जन के प्रभु अन्तर स्वामी।
अवधेश सभी को प्रिय दर्शन, जन के हित को अन्तरयामी॥

वर-इन्द्र सभा से भी उत्तम, निज राज-सभा में जब आये।
तब राज पुरोहित से नृप ने, यह सुन्दर समाचार पाये॥

जग मान्य पूज्य प्रभु ऋषभदेव, कैवल्य ज्ञान से मण्डित है।
सर्वज्ञ हुये है पूज्य - पाद, तीनों कालों के पण्डित है॥

इस क्षण में आकर कंचुकि ने, चरणों में शीश झुकाया है।
हो गया दास का जन्म धन्य, मनवांछित आशिष पाया है॥

जन वन्दनीय पटरानी ने, सुन्दर से सुत को जन्म दिया।
जो अब तक रहा प्रतीक्षित था, ऐसे वैभव को प्रकट किया॥

इतने में आया शस्त्र पाल, आज्ञा पाकर के यों बोला।
प्रकटा शस्त्रालय चक्र रत्न, निज वाणी मे विस्मय घोला॥

सुनकर के इतने समाचार, नृप का मन मानस डोला है।
निश्चय ही यह पुण्योदय है, नृप ने विवेक से तोला है॥

कर्त्तव्य कौन से भव के हैं, जो एक साथ फल लाये हैं।
ये एक, दो नहीं तीन-तीन, शुभ समाचार जो पाये हैं॥

ऐसा लगता प्रभुवर जिनेन्द्र, मुझ पर है बहुत कृपालु हुये।
भेजे हैं समाचार इतने, लगता है बहुत दयालु हुये॥

उनका प्रसाद ही जीवन है, उनका प्रसाद ही सौरभ है।
अनुग्रह से पाया राजा-पद, जगती-सरवर का गौरव है॥

सुत, चक्र-रत्न जग के वैभव, इनमें सच्चा निर्माण नहीं।
जग-जीवन धन्य हुआ तब कब, हो सका अगर निर्वाण नहीं॥

जितनी जल्दी हो आकर के, निज जीवन धन्य बना डालूँ।
केवल ज्ञानी प्रभुवर के अब, जैसे भी हो दर्शन पालूँ।।

—: कवित्त :—

राजपाट, कोट, धन, धाम, धरा आदि सब,
एक दिन आयु पाके आप शिथिलायेंगे।
रथ, वाजि, हाथी और पैदल चतुर दल,
मेरे लिये एक भी न काम कर पायेंगे।।

सुत बनितादि और पुरजन, परिजन,
कुछ दिन सुख हेतु, सोच पछतायेंगे।
प्रभु की कृपा को छोड़ जानता हूं भली विधि,
और क्या कहूं कि अंग भी न काम आयेंगे।।

परिग्रही साधनों के बीच फँस कर जन,
जाल के परिन्द सा ही पंख फड़काता है।
अथवा जहाज पर, गये खग के समान,
जाता, उड़ता है और फिर लौट आता है।।

अथवा है धार पर रेत का बना है घर,
बार-बार निज करनी पे पछताता है।
आज कहता है कल और कल परसों में,
बूँद-बूँद जीवन का घट रीत जाता है।।

॥ दोहा ॥

सोचा तब अवधेश ने, गहूं धर्म की राह ।
पाऊँ पथ निर्वाण का, मिटे जगत की दाह ॥

धर्म पंथ, निर्वाण पथ, जीवन रथ अति भार ।
कर्म सहायक जब बने, धर्म लगाये पार ॥

जगत तराजू में धरे, धर्म-कर्म चित लाय ।
उसमें है निर्वाण फल, कभी नहीं बिलगाय ॥

वह पाता यह मति यहाँ, जिसपर ऋषभ कृपालु ।
नृपति भरत पर हो गये, जिनवर परम दयालु ॥

*

अवधेश पुरोहित से बोले, मैं आज हुआ वैभवशाली ।
है आज जगा अन्तर्विवेक, अब तक तो रहे हाथ खाली ॥

शुभ समवशरण हो रहा जहाँ, अब हमें वहाँ ही चलना है ।
चलकर के अमर लाभ पाये, अन्यथा स्वयं को छलना है ॥

जिसकी चर्चा भी कभी-कभी, केवल सुनने में आयी है ।
कैवल्य ज्ञान की अक्षय निधि, प्रभु ऋषभदेव ने पायी है ॥

हम उनके शुभ दर्शन पाकर, निज जीवन धन्य बनायेंगे ।
जो अब तक हम पा सके नहीं, प्रभु के दर्शन से पा जायेंगे ॥

हम शीघ्र चले, यह है उत्तम, चलने की शीघ्र व्यवस्था हो ।
चल करके शुभ दर्शन पाये, सार्थक ये मनुज अवस्था हो ॥

सेवकगण शीश झुका करके, जूझे तैयारी करने में ।
जैसे सरिताये लगी हुयी, गागर से सागर भरने में ॥

मन की गति वाले सजे तुरग, वर वाद्य सुनायी देते हैं।
जाने कब से हैं सजे खड़े, ऐसे दिखलायी देते हैं।।

सज गये अवध के अनगिन जन, मन में उल्लास निराला है।
प्रभु के चरणों में अर्पण को, श्रद्धा सुमनों की माला है।।

सज गयी राजधर की विदुषी, लज्जित देवासुर बालायें।
आकर के रथी विराजी हैं, ले पूर्व भवों की मालायें।।

अवधेश विराजे घोड़े पर, घोड़े की प्रभा निराली है।
देही व्ययान हो रहा अश्व, शोभा किरणों में ढाली है।।

सबके उर में उल्लास अमित, उर सबके ये अभिलाषा है।
वह धर्म लाभ हम पायेंगे, जो जीवन की परिभाषा है।।

हम सा है कौन भाग्यशाली, अथवा जीवन गौरवशाली।
जिन का शुभ दर्शन पाने को, होती पुण्यों की रखवाली।।

समशीतल वातावरण हुआ, अथवा कहिये अलबेला है।
पायेंगे सब जिनेश दर्शन, जागा पुण्यों का मेला है।।

करते कीर्तन जा रहे सभी, अद्‌भुत शुभ अवसर आया है।
अबतक जग जिसको तरस रहा, वह अवध जनों ने पाया है।।

—: कवित्त :—

समवशरण थल पहुंचे अवधेश प्रभु,
देखी अब तक जो न, शोभा आज पायी है।

आतप से तापित पथिक छाया पाके जैसे,
बात - आवरण ऐसा बना सुखदायी है।।

बादलों की सुन्दर सुखद छवि शीश पर,
और मृदु वायु ने भी पायी तरुणाई है।

जिसको मिलेगा क्लेश लेश मात्र, जहाँ फैलो,
परम कृपालु आदिनाथ प्रभुताई है॥

सब ओर देखिये न विलस रही हैं शान्ति,
मानों बिखरी है निधि आकर नगेन्द्र की।

बन गया आज सब कुछ अवलो कमनीय,
तृप्ति पा रही है, दृष्टि अवध-नरेन्द्र की॥

नाना भाँति लास, मृदु बज रहे वाद्य-पुंज,
पूजा चल रही वर प्रवर सुरेन्द्र की।

भव का विभव तभी लुट गया सुनी जब,
वाणी गूंज रही जय जयति जिनेन्द्र की॥

शोभा के विराम अभिराम शत्रु मण्डप को,
देखकर उर अभिरामता समायी है।

देखी सुनी ऐसी शोभा विश्व में कहीं नहीं,
उर विस्मय भाव को ही अधिकायी है॥

हो गया है जीवन तो धन्य-धन्य धरती पे,
पुण्य लतिका ने आज पायी तरुणाई है।

धरती के मानव का देखिये प्रताप पुंज,
महिमा जिसको कि देव वृन्द आज गायी है॥

*

प्रभुवर जिनेश, पुरुषार्थ देव, अद्‌भुत छवि पुंज निहारा है।
युग-युग से भूली नौका को, जैसे मिल गया किनारा है॥

ले चन्दनादि शुभ अष्ट-द्रव्य, अवधेश भक्ति में लीन हुये।
जग का सब सार निहार रहे, पूजा के सब आधीन हुये॥

जय जग के कारण, सृष्टि श्रेष्ठ, तुम को हम शीश नवाते हैं।
जो कहीं दिखायी दिया नहीं, जिनवर, जिनेन्द्र में पाते हैं॥

ऐसी अद्‌भुत छवि देख रहे, दर्शन कर नहीं अघाते हैं।
जो ज्ञान राशि प्रभुवर में है, उसकी न कहीं छवि पाते हैं॥

तुम सम न पराक्रम और कहीं, जग जीवन धन्य बनाया है।
धनपति कुबेर इन्द्रादिक ने, आदर से शीश झुकाया है॥

अति दिव्य भव्य देखी विभूति, विसरी अपनी प्रभुताई है।
देकर प्रदक्षिणा प्रभुवर की, नत माथ, कीर्ति कल गाई है॥

कर-कर प्रणाम बहु भांति-भांति, उर की श्रद्धा उमगाई है।
फिर भी होता संतोष नहीं, वर भक्ति यही प्रभुताई है॥

उस सभागार में एक ओर, मनुजों का कोष्ठ बनाया था।
अपने समान ही देवों ने, उसको भी स्वयं सजाया था॥

बैठे अवधेश प्रजा को ले, आकाश सदृश ही अन्तर है।
जिस दिशा दृष्टि उठ जाती, वह दिशि सुन्दर ही सुन्दर है॥

—: कवित्त :—

शोकहर तरुवर सुन्दर अशोक एक,
जिसके निकट उच्च आसन सुहाया है।

भव्य जीव तरण को जो कि जलयान सम,
वहीं प्रभु ऋषभ ने आसन लगाया है ।।

सिर पे अनूप छविवान है किरीट लसा,
रवि सम जिसका प्रकाश मन भाया है।

वही दर्शनों से आज हो रहा निहाल यहाँ,
जिसने अपार पुण्य जग में कमाया है ।।

अनुपम छवि युत सौ हैं घुंघराले बाल,
चारों ओर मानों मुख उड़ते मराल हैं।

लोक-लोक सुषमा का पुंजीभूत प्रभु तनु,
अद्भुत छवि युक्त शोभा युत भाल है ।।

चंवर डुलावे दोनों ओर खड़े देवगण,
आज दिशा-दिशा छवि पाकर निहाल है।

जिसने भी छवि का अपार सिन्धु देख लिया,
कितना भी छुद्र, आज हो गया विशाल है ।।

प्रभु की अनन्त शुचि अवलोकनीय छवि,
कवि कैसे कहे वह रवि के समान है।

कैसे कहे आदिनाथ छपानाथ के समान,
कालिमा का जिसके कि अंक में निशान है ।।

कामदेव भी तो समता में कहीं आता नहीं,
शान्ति नही देता बस देता रति दान है।

मन के विमान चढ़ घूम हार गयी बुद्धि,
ऋषभ की छवि निज छवि के समान है ।।

प्रभु का प्रताप छाया ऐसा, सबका ही मन है हर्षाया।
जो अब तक देखा सुना नहीं, वह चर्म चक्षुओं से पाया।।

नरनाथ भरत उठ खड़े हुये, मन में भारी जिज्ञासा है।
जो भेद आज तक पा न सके, उसको पाने की आशा है।।

अतिशय विनम्र होकर नृप ने, निज जिज्ञासा को प्रकट किया।
तत्त्वादिक भेद जानने को, निज जिज्ञासा को निकट किया।।

जगहितकारी-मुद-मंगल-प्रद, तत्त्वादिक भेद सुहाये हैं।
शुभ ज्ञान राशि को पाने को, नर - देव आदि हरषाये हैं।।

मुख मण्डल आभा युत दीखा, तन मन भी सबके पुलकित हैं।
आकाश मार्ग से फूलो की, वर्षा से कण-कण कुसुमित हैं।।

केवल ज्ञानी प्रभु ऋषभदेव, शुभ चिन्तक, पर उपकारी हैं।
वे दीन बन्धु अतिशय कृपालु, अव्यय, अनर्घ, अविकारी हैं।।

जग बन्धनार्थ-दावाग्नि प्रकट, वर ज्ञान राशि सुखदाता हैं।
जग-हित-साधन के आदि केन्द्र, समता सागर, दुख त्राता हैं।।

होकर बैठे सब सावधान, निश्चित कर्णामृत पाने को।
अब तक जिसको दुर्लभ समझा, पाकर उसको हर्षाने को।।

ममता, वत्सलता, सज्जनता, प्रभु के मुख पर उमगाई है।
जग को नव जीवन देने को, मानों मुख पर अरुणाई है।।

मुख कमल सभी के हरषाये, अन्तर से सब ललचाये हैं।
भगवान आदि को सुनने को, क्षण बड़े भाग्य से पाये हैं।।

दो पल पश्चात् नैन खोले, गम्भीर नीर-निधि वाणी है।
केवल ज्ञानी को ये वाणी, त्रैलोक्यसर्व कल्याणी है।।

जो सृष्टि आप सब देख रहे, यह स्वयं सिद्ध कहलाती है।
जो कहता एक नियामक है, दुर्बुधि उसे भटकाती है।।

ये-धर्म-महान अनादि - निधन, इसका अन्तरतम ऐसा है।
विस्मय की कोई बात नहीं, सम्पूर्ण चराचर जैसा है।।

जो कर्म शत्रुओं को जीते, वे जग में जिन् कहलाते हैं।
जिनदेव यही, जिनराज यही, आगम जिनेन्द्र बतलाते हैं।।

जैनागम, या हित धर्म कहो, या जैन धर्म को जाना है।
जग में जिसने यह मार्ग लिया, उसने आगम पहचाना है।।

आगम, जिनवाणी, सरस्वती, या जैन भारती व्यवहृत है।
ये जैन वाङ्मय धरती पर, जिनराज देव से उद्धृत है।।

–: दोहा :–

जो वाणी निःसृत हुयी, जग में द्वादश-अंग।
उस जिनवाणी में बसा, अंतरंग बहिरंग।।

द्वादशांग वर रूप के, चार विभाजित योग।
प्रथम करण अरु चरण है, श्रेष्ठ द्रव्य अनुयोग।।

–: कवित्त :–

परमार्थ-हेतु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष द्वार,
करके विचार पुरुषार्थ समझाता है।

त्रेसठ शलाका नर, याकि श्रेष्ठ नर को हो,
विमल चरित्र की जो गाथाएं सुनाता है।।

बोधि रत्न-त्रय और प्रभु का निधान-कोष,
सिद्धियाँ समाधि की अचूक बतलाता है।

ऐसा शास्त्र जिसके कि पढ़ने से पुण्य मिले,
शुचि - वान प्रथमानुयोग कहलाता है ॥

★

शुभ लोकालोक तथा चारों, गति गुण स्थान का धारी है।
युग परिवर्तन सद् ज्ञान आदि, धारक अति मंगलकारी है ॥

इन योगों का सात्विक स्वरूप, करुणानुयोग व्याख्याता है।
इसमें साकार झलकता है, जैसे दर्पण दर्शाता है ॥

जिसमें चारित्र उदित होकर, उद्भव विकास पथ पाता है।
छः द्रव्य, सप्त तत्वों के गुण, करुणानुयोग बतलाता है ॥

चारित्र, ज्ञान सम्यक्-दर्शन, त्रय रत्न धर्म कहलाते हैं।
इनके विपरीत न धर्म कहीं, यह धर्मशास्त्र समझाते हैं ॥

मन से, वाणी से, कर्मों से, जो भी मिथ्या पथ छोड़ेगा।
वह धर्म-मोक्ष, निर्ग्रंथ-साधु, इन सब से नाता जोड़ेगा ॥

सातों तत्वों में प्रथम तत्व, जो जीव सत्व कहलाता है।
संयोग मिले जब पुद्‌गल का, दुनिया का खेल रचाता है ॥

हैं जीव तत्व के मूल भेद दो, सिद्ध और संसारी है।
वह भव्य - अभव्य अपेक्षा से, गुण की गणना से भारी है ॥

यह जीवात्मा अतिशय ज्ञाता, दृष्टा स्वरूप का ज्ञायक है।
निज कर्म शत्रुओं को जयकर, परमात्म परम पद नायक है ॥

जो है अजीव उसमें पुद्गल, आकाश, काल मिल जाते हैं।
जब धर्म अधर्म साथ मिलते, षट् द्रव्य भेद बतलाते हैं।।

इन षट् द्रव्यों का रूप सुधर, जो कुछ दिखलायी देता है।
इतना ही क्यों मन का तुरंग, जितनी कि उड़ाने लेता है।।

तीसरा तत्व आश्रव दुखान्त, जो कर्म शत्रु का कारण है।
ये आश्रव कर्म बंध रूपी, अटवी का दारुण वारण है।।

ये बन्ध विकट वन दुख कारण, भारी उत्पात मचाते हैं।
कर्मों से पिण्ड नहीं छूटे, यह ऐसा जाल रचाते हैं।।

इसलिये विज्ञ जन कहते हैं, ईर्या पंचक का पालन हो।
मन से, वाणी से, कर्मों से, द्वादश भावों का साधन हो।।

सत्यादि महाव्रत पंच और, उत्तम क्षमादि दश धर्म लिये।
त्रय गुप्ति आदि शुभ भावों से, जिसने जीवन मे कर्म किये।।

ये भाव परम शुभ, सम्बर है, सुख का कारण माना जाता।
सम्बर के साथ तपस्या से, रण में सम्पूर्ण विजय पाता।।

ध्रुव ध्यान कटारी कर में ले, अरि कर्म शत्रु जीता जाता।
भव सागर से निस्तारण का, शुचि युक्ति नीर पीता जाता।।

"निर्जरा तत्व" ही प्राणी को, कैवल्य ज्ञान का कारण है।
संसार सिन्धु से तरने को, जल पोत सदृश भव तारण है।।

छाती अघातिया कर्मों का, जब नाश पूर्ण हो जाता है।
ऐसा जन मोक्ष महापद का, वर अधिकारी हो पाता है।।

ये मुक्त जीव तन धरने को, जग में न लौट कर आता है।
हो निराकार परमात्म रूप, मुनिगण द्वारा यश पाता है।।

चाहते अगर स्वाधीन मोक्ष, सम्यक्त तुम्हें पाना होगा।
त्रय रत्न धर्म सम्यक् दर्शन, इनमें महत्व लाना होगा।।

यह धर्म महा सुखदायी है, निर्वाण मोक्ष का कारण है।
निर्ग्रंथ तपस्वी होकर के, करते जिसको मुनिधारण है।।

सम्यग्दर्शन अतिशय अनूप, इनकी आभा कल्याणी है।
सुखराशि ज्ञान की, खानि अघट, शाश्वत जग में जिनवाणी है।

गुरु पर, देवों पर, शास्त्रों पर, श्रद्धा अटूट जो रखता है।
सम्यक् दर्शन का पा प्रकाश, आलोक धर्म रस चखता है।।

भगवन् जिनेन्द्र की दिव्य ध्वनि, जग शाश्वत सत्य प्रसारक है।
ये सम्यक्-ज्ञान, महान ज्ञान, सर्वोत्तम सत्य विचारक है।।

चारित्र श्रेष्ठ धर्मानुरूप, सम्यक्त महा सुखकारी है।
पावन ये परमातम सम है, अति सुखद और अघहारी है।।

-: दोहा :-

मिथ्या है चारित्र अरु, दर्शन, ज्ञान, स्वरूप।
जो सम्यक् तरु के तले, तिष्ठे बने अनूप।।

जिसका पथ मिथ्यात्व है, सम्यक् पथ अवरोध।
खोता है निर्वाण फल, मिथ्या मूढ़ अबोध।।

जन-जन का कर्त्तव्य है, शोधे पथ कल्याण।
चलकर सम्यक् पंथ पर, पाये पद निर्वाण।।

★

ये मोह महारिपु नर मन का, सम्यक्त पंथ का बाधक है।
जग जीव फंसा रहता इसमें, दुख का मिथ्याती साधक है।।

आत्मिक स्वरूप का चिन्तन ही, तीनों लोकों का साधन है।
परमेष्ठि केवलम गुण गायन, भव मुक्ति हेतु अराधन है।।
ये मोह कर्मरिपु भव कारण, फिर-फिर जीवन का धरना है।
मिलता न मोक्ष का मार्ग सुगम, फिर जीना है फिर मरना है।।
निर्वाण परम पद पाने को, इन्द्रिय सुख को तजना होगा।
प्रभुवर जिनेन्द्र सुख सागर को, अब सब प्रकार भजना होगा।।
भवराग रोष, भव कुटिल दोष, भव कोषागार परिग्रह है।
निर्वाण पंथ का बाधक है, अज्ञान सिन्धु का संग्रह है।।

—: दोहा :—

कहे भरत से ऋषभ ने, मुनि श्रावक आचार।
धर्म अर्थ पुरुषार्थ के, भेद सहित व्यवहार।।
स्वर्ग नरक के भेद सब, लोकालोक स्वरूप।
मध्य लोक रचना कहीं, महिमा सहित अनूप।।
कल्पकाल त्रयकाल का, वर्णित हुआ स्वरूप।
जग पालक प्रभु ने किया, वर्णन द्रव्य अनूप।।
सुन करके वाणी मधुर, खुले ज्ञान के द्वार।
ऋषभदेव की नभ तलक, गूंजी जयजयकार।।

★

ज्ञानामृत भरे सरोवर में, श्रोतागण सभी नहाये हैं।
भव की रज से हो मुक्त गये, प्रभुवर के वचन सुहाये हैं।।
वर सुखद सौम्य चरणारबिन्द, श्रद्धा से शीश झुकाया है।
शुभ समवशरण मण्डप मे आ, सब ने ही धर्म कमाया है।।

भव बन का सब भय बीत गया, भयभीत आज मन जीत गया।
सब ओर दीखता नया-नया, गूँजा है शुभ संगीत नया॥

जिनवर की बर वाणी सुनकर, अन्तर में परिवर्तन पाया।
अब तक न भेद जो जान सके, मानों यथार्थ बनकर आया॥

पुर पुरिमताल नृप वृषभसेन, भरतेश्वर बन्धु कहाये हैं।
दीक्षित हो सर्व गणधरों में, गणधर वे मुख्य सुहाये हैं॥

महाराज सोम प्रभु ने बढ़कर, प्रभु से दीक्षा आधार लिया।
दीक्षा ली है श्रेयांस कुंवर, जिन ने प्रभु को आहार दिया॥

ब्राह्मी सुन्दरी भरत इनने, दीक्षा के प्रति अनुराग लिया।
इन्द्रिय के मिथ्या भोग तजे, व्रत लेकर सबका त्याग किया॥

सैकड़ों नृपों ने जिनवर से, दीक्षा ले, जीवन रस पाया।
श्रद्धा उपजी मन में अपार, दीक्षा ले कर सरवस पाया॥

पुण्यात्मा जन देखा देखी, मुनि धर्म धार कर हरषाये।
यह धार्मिक वातावरण निरख, अपने को नहीं रोक पाये॥

श्रुतिकीर्ति नाम का ज्ञानी जन, तत्वों की शुभ व्याख्या पाकर।
हो गया सेठ से धम कुवेर, पाकर अक्षय निधि रत्नाकर॥

॥ दोहा ॥

सम्यक् दर्शन खड्ग ले, रख अणुव्रत की धार।
चले अवध को नृपतिवर, लिये शेष परिवार॥

देव इन्द्र श्रद्धावनत, कर विनती बहुबार।
चले लोक निज पहनकर, आशीषों के हार॥

हर पग को जीवन मिला, जीवन को रसधार।
तृप्ति योग संयोग से, उपजा मोद अपार॥

भरत आगमन खण्ड में, विमल ज्ञान विस्तार।
पढ़े सुनेंगे भव्य जो, पावेंगे निस्तार॥

धर्म चक्र वर्णन

॥ दोहा ॥

वही जगत में धन्य है, वही धन्य है कर्म ।
जोकि काल गति सम बढ़े, आत्म सुधारक धर्म ॥

धर्म हेतु अर्पण करे, जो बल वैभव प्राण ।
पाकर उत्तम ज्ञान को, पाये पद निर्वाण ॥

जग में उत्तम कर्म का, धर्म शुभ्र परिणाम ।
चले धर्म के पंथ पर, जोत्तम वही ललाम ॥

ऋषभ देव भगवान ने, दिया धर्म को मान ।
जग उन्नति की मूल ये, जगत रहा पहचान ॥

जैन धर्म इस जगत मे, सकल सुखों का मूल ।
इसकी जीवन दृष्टि है, सब के ही अनुकूल ॥

★

चल रहा अनवरत आराधन, सौधर्म इन्द्र के द्वारा है ।
मन के अनुकूल मिली है जो, नौका को बहती धारा है ॥

कह रहे इन्द्र प्रभु "पाहिमाम्", तुम ही अन्यान्य हमारे हो ।
धन गूढ़ तमस् की कारा में, तुम सूरज, चन्दा तारे हो ॥

तुम तक ही पहुंच हमारी है, तुम ही सौभाग्य सितारा हो ।
तुम ही सुख के हो आदि बिन्दु, दुखनिधि के सबल किनारा हो ॥

तुम को पाकर के, पाने को, इच्छा कुछ रहती शेष नहीं ।
जिनवर के विमल अनुग्रह से, रहती नीरस परिवेश नहीं ॥

हे जग त्राता, हे सुखदाता, हे गुणागार भयहारी हो।
तुम त्रिकालज्ञ, सर्वज्ञ विभो, परिग्रह विहीन, अविकारी हो ।।

जिसने मुख कमल निहार लिया, उसने जग में कुछ पाया है।
वह जीवन धन्य हुआ उसका, जिसने जिन् पथ अपनाया है ।।

जग जीवन आदि प्रभाकर हो, हम भी थोड़ा प्रकाश पाये।
होकर पवित्र अन्तर्मन से, जैनागम का पथ अपनायें ।।

हे ऋषभदेव भू के प्राणी, जैनामृत को हैं तरस रहे।
दीनता पूर्ण जीवन पथ पर, हैं कष्ट अनेकों बरस रहे ।।

अज्ञान तिमिर की आँधी में, पथ नहीं दिखायी देता है।
जिससे जीवन को प्रगति मिले, रथ नहीं दिखायी देता है ।।

जब से मुख-चन्द्र विभाकर से, हमने प्रकाश-वर पाया है।
वास्तविक रूप में अमरों के, अन्तर में अमृत आया है ।।

ये भूमि, सभा, ये सभागार, सबने ही अमृत पान किया।
हे देव आप ने ही सबको, देकर आशीष महान किया ।।

जग जीव धर्म का मूढ़ भेद, अब तक न यहाँ पहचाने हैं।
गंगा की धारा मिली नहीं, ये सागर बहुत नहाने हैं ।।

समकित त्रय-रत्न बिना प्राणी, तारों से नभ में घूम रहे।
लाचार तमस् के सागर में, मिथ्याती सुख में झूम रहे ।।

नाना प्रकार के भोगों की, लालसा हृदय मे जगती है।
जिनकी अपूर्ति के कारण ही, दुनिया दुखदायी लगती है ।।

इसमें कुछ दोष नहीं इनका, इनको सुख साधन मिले नहीं।
जैसे रवि की अनुपस्थिति में, सरवर में पंकज खिले नहीं ।।

इस दृष्टि-दोष के कारण ही, अज्ञान तिमिर का घेरा है।
अज्ञान आदि के कारण ही, मानस में तमस् बसेरा है।।

इसलिये अपेक्षित है प्रभुवर, जन-हित में आप विहार करें।
अपनी अमृत युत वाणी से, शुभ जैन धर्म विस्तार करें।।

वर जैन धर्म की वाणी से, निर्वाण पंथ जन पायेंगे।
जैसे तपती लू में राही, शीतल-जल साधन पायेंगे।।

-: दोहा :-

विनती सुनकर इन्द्र की, जिनवर हुये कृपाल।
जग-सुख-हित-कारण उठे, होकर परम दयाल।।

पुलकितमन होकर विभो, करने लगे विहार।
देवों के द्वारा हुयी, प्रभु की जय जयकार।।

-: कवित्त :-

जहाँ-जहाँ जग-हित-साधन के सिन्धु प्रभु,
करते विहार अग्रगामी हुये जाते हैं।

वहाँ-वहाँ समता के शील-सिन्धुता के बहु,
आकर प्रभाकर के बिन्दु हुये जाते हैं।।

देव-देवियों के झुण्ड दौड़ते प्रणाम हेतु,
उर के अपार हर्ष बीच खुये जाते है।

कुछ पग-धूलि निज शीश पे चढ़ाते और,
और कुछ धन्यता को, पांव हुये जाते हैं।।

★

सुर असुर ऋषभ के साथ चले, प्रभु के गुण गाते जाते हैं।
संतोष, शान्ति अद्भुत क्षमता, सबके सब पाते जाते हैं।।

आनंद मग्न जनहित का भी, चरणाम्बुज धरते जाते हैं।
देवता - बृन्द भी वहाँ - वहाँ, स्वर्णाम्बुज रचते जाते हैं।।

बज रही दुंदभी मधुर मधुर, सब ओर सरसता सरस रही।
सुरभित समीर के झोकों से, मानो सुगन्ध है बरस रही।।

गन्धर्व, देव, किन्नर अनेक, मनमोहक गीत सुनाते हैं।
दर्पणवत धरती को करके, अन्तर की प्रीति जताते हैं।।

लगता कि प्रकृति ने अन्तर का, सारा उल्लास उतारा है।
मानों जिनेश के स्वागत को, धरती ने रूप संवारा है।।

ऋतुराज आज लेकर समाज, मानों धरती पर आया है।
अथवा संतृप्त मनुज अन्तर, प्रभु को लखकर हरषाया है।।

जन-जन अधरों पर मधुर हास, उल्लास दिखायी देता है।
अथवा रूपामृत का निधि से, उर का प्याला भर लेता है।।

वर समवशरण यह धर्म चक्र, आगे - आगे बढता जाता।
जिन-शासन का शुचितम प्रतीक, सूरज समान चढ़ता जाता।।

यह आत्म ज्योति का रूप 'ॐ', शाश्वत जीवन की धारा है।
जीवन की चक्रित नौका का, यह तो मजबूत किनारा है।।

देखा जिसने भी धर्म चक्र, उसने नव जीवन पाया है।
रोगों, कष्टों, कटु भोगो का, मानो हो गया सफ़ाया है।।

जैसे आतप का कठिन कोप, कट जाता है अमराई से।
जन के मानस का तमस् गया, मानों प्रभात अरूणाई से।।

रथ "धर्म चक्र" बढ़ता जाता, बढ़ते ज्यों ममता के धागे।
जिनवर के पाद-पंकजों में, वैसे ही जन हैं अनुरागे॥

अब-तब धनपति सुरवर कुबेर, पथ में वर सभा रचाते हैं।
देवों, भक्तों की विनती पर, जिनवर उपदेश सुनाते हैं॥

किस तरह घातिया कर्मों का, जीवन में नाश किया जाता।
परिग्रह की कुटिलता को, किस भांति हताश किया जाता॥

लोभादि शत्रुओं से कैसे, आन्तरिक युद्ध जीता जाता।
दुख-सुख की चिन्ता करके, क्यों जीवन सुख सत्य नहीं पाता॥

जब तक मानव के अन्तर में, परिग्रह सागर लहराता है।
तब तक उसके सिर के ऊपर, संकट बादल घहराता है॥

अज्ञान गेह में रहकर के, ज्ञानी जन यदि झुठलाता है।
यह छद्म वेश वाला प्राणी, निर्वाण पंथ कब पाता है॥

जब तक पथ शुद्ध अहिंसा का, जग में न व्यक्ति अपनायेगा।
तब तक सम्यक् अनुगामी बन, कैसे आगे चल पायेगा॥

दो चार दिवस के जीवन को, जो चोर्य धर्म अपनायेगा।
मानव जीवन के साथ-साथ, जन्मों का पुण्य गंवायेगा॥

मन के, वाणी के, कर्मों के, शुचिता बाहर भीतर होगी।
संयम के सुन्दर संचय से, मन कभी नहीं होगा रोगी॥

—: हरिगीतिका :—

इस भाँति से प्रभु ऋषभ ने, सद्ज्ञान को वितरित किया।
इस लोक में, सुर लोक में, सब घटित था अघटित किया॥

आलोक जग को दे दिया, प्रभु ऋषभ ने जिन्धर्म का।
सम्यक्त का निज धर्म का, जग कर्म का, सत्कर्म का।।

मिथ्याभिमानी लोग सब, संयोग पाकर अति भला।
चमका हृदय आकाश है, ज्यों भूमि तम पाकर कला।।

पाकर विमल परिवेश को, जिन् ज्ञान से मण्डित हुआ।
उर भावना कोमल हुयी, जैनत्व अभिमण्डित हुआ।।

-: दोहा :-

आदिनाथ भगवान ने, करते हुये विहार।
घूम लोक मे कर दिया, शुभ सम्यत्व प्रसार।।

ऋषभदेव भगवान ने, दिये धर्म उपदेश।
जिन वाणी के मंत्र से, बदल दिया परिवेश।।

★

कुरु, आंध्र, पुण्ड, पाँचाल-देश, प्रभु ने सर्वत्र विहार किया।
काशी, कौशल, मालव-जन ने, सादर प्रभु का सत्कार किया।।

धन धान्य पूर्ण वर अंग-वंग, देशों नगरों उपदेश दिये।
तिमिरादि कूप में फसे हुये, उनको प्रकाश सन्देश दिये।।

जग में नूतन जागी उमंग, कुछ ऐसा वातावरण लगा।
सत्पथ पर शुभ संचरण हेतु, सच्चा धार्मिक आचरण जगा।।

जिनको था तम मन ज्ञान नहीं, उनको भी मन का ज्ञान दिया।
जन-जन ने पा नूतन प्रकाश, अपना स्वरूप पहचान लिया।।

जनता को ऋषभ जिनेश्वर ने, दुख के सब कारण समझाये।
खुल गये आन्तरिक नेत्र सुभग, सब ने यथार्थ दर्शन पाये।।

जागा जन में धर्मानुराग, शुभ धर्म कर्म का चाव जगा।
मन सिद्ध-शिला की ओर चले, आत्मिक विकास का भाव जगा॥

जिन धर्म चक्र के दर्शन से, लोगों में अनुशासन आया।
जैसे नव जीवन जीने का, लोगों ने दृढ़ साधन पाया॥

जिन धर्म प्रेम सर्वत्र जगा, पूजायें हुयीं जिनालय में।
इतना चारित्र विकास हुआ, आ गये धर्म विद्यालय में॥

—: दोहा :—

जैन धर्म धारण किया, जनता ने सोल्लास।
प्रभु विहार कर आ गये, तुगं शिखर कैलास॥

जीवन-दर्शन पा गया, प्रभु से नया प्रकाश।
भौतिकता घटने लगी, आत्मिक हुआ विकास॥

इस प्रकार जिनवर हुये, भव पर परम कृपाल।
जन जीवों के प्रति हुये, अन्तर सहित दयाल॥

—: कवित्त :—

जगत के कारण - कारण आदिनाथ प्रभु
जिस ओर अमित प्रकाश बिखराते हैं।

जगत के तारण - तरण वाले मंत्र सम,
उस ओर धर्म के कमल खिल जाते हैं॥

जीवन में जाग जाती अंतरंग ज्ञान दृष्टि,
सृष्टि हितकारी वर वृष्टि बरसाते हैं॥

जहाँ-जहाँ जाते भगवान आदिनाथ प्रभु,
लोग अनुयायी बन मस्तक नवाते हैं ।।

॥ दोहा ॥

आर्य - क्षेत्र चैतन्य कर, देकर सम्यक् ज्ञान ।
सिद्ध शिला कैलाश पर, गये ऋषभ भगवान ।।

आत्मोन्नति हित ध्यान से, पढ़िये यह अध्याय ।
वांछित सुख साधन मिले, संकट निकट न आय ।।

दिव्य उपदेश वर्णन

१

केवल ज्ञानी, वर वरदानी, जग हित ध्यानी आदि प्रभो।
मंगल कारी, जग हितकारी, जग अघहारी आदि विभो॥
ज्ञान प्रभाकर, सुधी सुधाकर, जय करुणाकर दया करो।
हे नय नागर, धर्म उजागर, आदि विभाकर तिमिर हरो॥

२

आदि मनस्वी, नय वर्चस्वी, महा तपस्वी सुख सिन्धो।
तत्त्वज्ञानी, सम्यक् दानी, निर अभिमानी जग बन्धो॥
त्वं गोतीतं, परम पुनीतं, अघ अपनीतं, जग मूलम्।
जय सुर बन्दित, जय अभिनंदित, भवतु ऋषभ मम अनुकूलम्॥

✱

कैलास शिखर पर ऋषभदेव, सूरज की भाँति सुशोभित हैं।
पहने तुषार का सुभग हार, देवादि बृन्द से रोचित हैं॥
उत्तुंग श्रेणियाँ वर्फ ढकी, मन को हरषाने लगती हैं।
मानों वह ऋषभदेव की ही, मोहक मुस्कानें लगती हैं॥
गिरिराज हिमालय ने मानों, अपनी मुस्कान बिखेरी है।
अथवा प्रभुवर के स्वागत में, वर श्वेत कमल की ढेरी है॥
अथवा हमको यह लगता है, प्रभु का यश वैभव निखरा हैं।
अथवा अनन्त का मान-हँस, परिवार सहित आ उतरा है॥
मोती सी निर्मल नीर लिये, रसपूरित मान सरोवर है।
सुन्दरता में हिम शिखर सदृश, अथवा ये शिखर सहोदर है॥

जब तन आकर शोभित करती, हंसों की वर मालाये हैं।
उल्लास पूर्ण उठतीं लहरे, ज्यों नाच रहीं बालायें हैं ।।

हैं दूर-दूर तरु देव दारू, जिनकी शोभा मनहारी है।
मानों भूमण्डल की शोभा, उनके ऊपर बलिहारी है ।।

स्फटिक शिला पर समासीन, प्रभुवर अपने में लीन हुये।
गम्भीर तपस्या-जलनिधि के, प्रभु ऋषभदेव पाठीन हुये ।।

तब एक दिवस प्रभु जिनवर ने, जग के प्रति सुन्दर आशा से।
आदर्श, ज्ञान, दर्शन, संयुत, कुछ बोले इस अभिलाषा से ।।

आत्मा जग में सबसे महान, इस का स्वरूप चित में धरिये।
पावन करके अन्तर मन को, सारे जग को पावन करिये ।।

ज्ञायक स्वभाव आत्मा का है, इससे ये रिक्त नहीं होता।
आत्मा प्रमत्त होता न कभी, अथवा अप्रमत्त नहीं होता ।।

॥ दोहा ॥

दर्शन, ज्ञान, चरित्र मय, है आत्मा का रूप।
आत्मा सम जग कौन है, आतम जगत अनूप ।।

★

सम्पूर्ण विकल्पों से सूनी, गुण, द्वेष रहित शुद्धात्मा है।
निज शुद्ध अवस्था में चेतन, सौन्दर्य पूर्ण परमात्मा है ।।

ये नित्य, अमूर्तक, एकाकी, शून्या जग के आश्रय से है।
सम्यक् दर्शन का प्रकट रूप, विस्तृत चारित्र विजय से है ।।

रंग, रूप गन्ध, रसहीन सदा, शब्दों में नहीं समाता है।
इन्द्रियातीत ये आत्मा है, बन्धन में कभी न आता है ।।

इसका स्पर्श न हो सकता, यह नहीं निहारा जाता है।
है नाम नहीं कोई इसका, यह नहीं पुकारा जाता है।।

चैतन्य स्वरूपी ये स्वतंत्र, सब में रह सबसे न्यारा है।
संहनन और संस्थान रहित, ये स्वयं, स्वयं के द्वारा है।।

मोहादि विकारों से इसका, जुड़ सका कभी सन्बन्ध नहीं।
इस भांति अन्य द्रव्यों से भी, आत्मा का है अनुबन्ध नहीं।।

कर्ता न कर्म यह आत्मा है, आत्मा से स्वयं प्रकाशित है।
कैवल्य ज्ञान को पाकर के, जीवात्मा परम प्रकाशित है।।

आत्मा शाश्वत है अजर, अमर, इसका स्वभाव स्थायी है।
लेकिन विभाव इस आत्मा का, परिवर्तन का अनुयायी है।।

इसलिये विभावों का प्रभाव, आत्मा पर ही ठीक नहीं पड़ता।
होता इस से कर्मोदय, जिससे निश्चित जगती जड़ता।।

आत्मा के इन्हीं विभावों से, आश्रव अरु बन्ध हुआ करता।
कल्याण बिन्दु से किन्तु कभी, उसका सम्बन्ध हुआ करता।।

ये चिदनन्द चेतन स्वरूप, निर्बन्ध और अविकारी है।
रस, गन्ध, रूप से पूर्ण मुक्त, रवि सम प्रकाश अधिकारी है।।

ये सदा-सदा से शुद्ध-बुद्ध, पर से कोई सम्बन्ध नहीं।
ज्ञाता दृष्टा निश्चय नय से, केवल ज्ञानी है, छन्द नहीं।।

है आत्म धर्म ही उपादेय, प्रतिकूल न कोई धर्म यहां।
शुभ आत्म धर्म के धारण से, है नहीं प्रभावी कर्म यहां।।

जन आत्म धर्म को धारणकर, कैवल्य प्राप्त कर सकता है।
अनुकूल धर्म अपनाकर के, जनमुक्त रमा "वर" सकता है।।

॥ दोहा ॥

आत्मा नय के प्रभो ने, बतलाये व्यवहार।
सावधान होकर सुनें, श्रोता विविध प्रकार॥

—: कवित्त :—

मोह आदि कितने विभाव इसे घेरे हुये,
यही आवागमन का कारण बनाये है।
मोह रुपी मदिरा का पान कर यही जीव,
परिग्रही भावना को बाँहें उमगाये है॥
जड़ता से इसका ममत्व बढता है नित्य,
शुद्ध-बुद्ध होकर स्वरूप को भुलाये है।
भोग कर नाना विधि, जीव जगती के दुख,
ढूंढ के बिकल्प प्राणी सुख नहीं पाये है॥

✱

व्यवहारिक नय से यही जीव, मिथ्या, अज्ञान कुयोगों से।
कर्त्ता भी है भोक्ता भी है, नव कर्म राग संयोगों से॥
मद, मान, लोभ, माया कषाय, इनका संचय कर लेता है।
कर्मों के जंगल में इसको यह, संचय भटका देता है॥
कर्मों का आना जाना ही, दोनों ही दुख के कारण हैं।
अज्ञान तिमिर के कारण ही, लगते सब को साधारण हैं॥
जो ज्ञान बिना जग के सुख को, रागी वैरागी बनते हैं।
कूकर सूकर कौआ समान, भ्रमते जग में सिर धुनते हैं॥

भटकन ही आती हिस्से में, घिस्से से खाते फिरते हैं।
तब भी न समझ में कुछ आता, जब दुख के बादल घिरते हैं।।

होकर के आत्म विरोधी जन, संकट में फँस अकुलाता है।
अज्ञान तिमिर में घिर कर के, मिथ्या कौशल दिखलाता है।।

नाना भोगों में बँध करके, दुख सागर में घिर जाता है।
छूटता कर्म का बन्ध नहीं, फिर आता है फिर जाता है।।

सद्ज्ञान आदि पथ को तजकर, मिथ्या विश्वासी होता है।
बन विषय भोग का अनुरागी, बनकर अभिलाषी रोता है।।

फँस पाप पुण्य के मेले में, रहता स्वरूप का ज्ञान नहीं।
बढ़ती जाती है कर्म बेलि, रहता आत्मा का मान नहीं।।

मिथ्या रागादिक अँधकार, छाकर आत्मा ढक देता है।
ऐसा कर्मोदय आतम का, सम्यकत्व ज्ञान हर लेता है।।

ये जीव योनियों में आकर, दुख दारुण भोगा करता है।
जाकर निगोद की गोद कुटिल, कर्मों से जीता मरता है।।

इस कर्मलता को धिक्-धिक् है, जिससे सुख बिन्दु नहीं मिलता।
आती न चैन की स्वांस रंच, मानस में कमल नहीं खिलता।।

जिनको न ज्ञान आत्मिक सुख का, मानी अनुरागी बनते हैं।
भोगों को व्याकुल घेर रहे, मिथ्या वैरागी बनते हैं।।

निज पर केन्द्रित कर मृषा दृष्टि, इन्द्रिय भोगों की इच्छा है।
ऐसे भोगों की इच्छा तो, केवल दुखदायी शिक्षा है।।

अज्ञानी जन को ये विभाव, यों ही बस बाँधा करते हैं।
ये द्रव्य भाव दोनों मिलकर, निष्कंटक पथ में अड़ते हैं।।

जब तक न जीव अपना स्वरूप, जागृत को नहीं निहारेगा।
निर्वाण प्रतीक्षा में तब तक, यों ही वह पंथ बुहारेगा ॥

-: कवित्त :-

गुणागार शान्ति सिन्धु, चिदानंद, निर्विकार,
ज्योति पुंज, अविनाशी, पूर्ण निराधार है।
स्वयं है प्रकाशमान भानु के समान है,
द्रव्यानुभावों से न, जुड़ सका तार है ॥
यही आत्मा है और, यही परमात्मा है,
आत्म धर्मधारी यह एक ही विचार है।
श्रद्धा के समेत जो भी त्यागता विभाव को,
उसने ही मोक्ष पर पाया अधिकार है ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञानी मानव जानता, श्रद्धा है वह बिन्दु।
इसके बल विज्ञान से, मिलता है सुख सिन्धु ॥
पूर्व कर्म फल भोगता, जीव कर्म अनुसार।
राग द्वेष तज भोगिये, वीतराग का सार ॥
वीत राग बन भोगता, और न बनता दीन।
कर्माश्रव से रहित है, ऐसा जीव प्रवीन ॥

*

सम्यग्दर्शन का ज्ञानी जो, जीवों मे भेद नहीं करता।
जानता भेद को भली भांति, ज्ञायक रह खेद नहीं करता ॥

ज्ञायक जो रहते दुनिया में, व्यवहार एक अपनाते हैं।
रहते न लिप्त वे किसी कोण, अपने सब कर्म नशाते हैं।।

ये कर्म रूप पुद्गल का है, ये तो जड़वत जाना जाता।
पुद्गल तो पुद्गल ही रहता, आतमा न कर्म माना जाता।।

है जीव नहीं पुद्गल होता, पुद्गल न जीव हो पाता है।
ये जीव द्रव्य से बहुत भिन्न, ज्ञाता दृष्टा बन जाता है।।

परिवर्तित रूप नहीं होता, औ नूतन रूप न धरता है।
मिथ्यात्व नहीं धारण करता, औ कर्म नवीन न कर्ता है।।

–: दोहा :–

पाप पुण्य फल से रहित, निश्चय नय अनुसार।
उचित पंथ गहता सदा, ज्ञानी का व्यवहार।।

★

मैं कर्ता यह अज्ञान-भाव, ये ही बन्धन भव पारण है।
छूटता नहीं आना-जाना, ये ही निगोद का कारण है।।

सुख-दुख का हेतु मान लेना, मिथ्यात्व भरा अज्ञानी है।
जिन दर्शन नहीं समझ पाया, बनता केवल अभिमानी है।।

है ज्ञानी जीव वही जग में, नैतिक व्यवहार किया करता।
करता न युक्ति दृश्यों के प्रति, वह मात्र निहार लिया करता।।

है आत्म ध्यान ही मोक्ष मार्ग, ये उपादेय जीवों को है।
कर्मों के चक्रों में फँसना, ये परम हेय जीवों को है।।

इस आत्म ध्यान द्वारा मुनिवर, निर्वाण-रत्न पाया करते।
वरअनुपमेय त्रय - रत्नों से, कर रंच यत्न पाया करते।।

सम्यक् ज्ञानी रह आत्मलीन, जग में शिवत्व को पाते हैं।
अज्ञानी प्राणी अपने को, भव सागर में भटकाते हैं।।

कर्त्तव्य यही ज्ञानी का है, जल में सरोज के सम जीवे।
भोगों से दूर-दूर रहकर, वह कर्म - निर्जरा रस पीवे।।

—: हरिगीतिका :—

रौद्रादि कुत्सित रूप का, नित ध्यान तजना चाहिये।
बन वीतरागी ज्ञान से, जैनेन्द्र भजना चाहिये।।

धर ध्यान आत्मिक रूप को, अवलोक लेना चाहिये।
बन गुणस्थानी मार्गणा पर, ध्यान देना चाहिये।।

आत्म-हित बन संयमी, मृदुता - सरलता को गहो।
शील व्रत निज शौर्य से, दृढ़ सत्य के पथ पर रहो।।

शुचिता, क्षमा, तप त्याग हो, वैराग्य का अनुराग हो।
मन अकिंचनता भरा हो, उल्लसित उर त्याग हो।।

आत्म हित हो दृष्टि मे, नित भव्य शोड़ भावना।
और अपने साथ हो सर्वत्र, शिव की कामना।।

निःशल्य हो तप प्याग व्रत, जिन् भक्ति का साधन करे।
क्षीण करता पाप को, जैनेन्द्र आराधन करे।।

—: दोहा :—

इस प्रकार साधन करे, जो प्राणी - विद्वान।
श्रद्धा पूर्वक पायेगा, निश्चय मोक्ष महान।।

आदि अन्त अरु मध्य में, आत्मिक विमल विवेक।
सीढ़ी मोक्ष-मचान की, केवल श्रद्धा एक ॥

★

सम्यक् ज्ञानी शुचि अन्तर से, निश्चय निष्कामी होते हैं।
रहते विषयों से उदासीन, वे अर्न्तयामी होते हैं ॥
निस्वार्थ-दान, हो निरभिमान, समता के पथ अपनाते हैं।
व्यवहार प्रेम पूरित करके, मानव-कर्त्तव्य निभाते हैं ॥
उर से उदार हो दयावान, अभिमान त्यागना सुन्दर है।
इन्द्रिय-भोगों का आकर्षण, दुख खान त्यागना सुखकर है ॥
निज का, जन का, जग का, विकास कर्त्तव्य उजाला कहलाता।
वर स्याद्वाद का अनुरागी, श्रम वारि बिन्दु से नहलाता ॥
अविवेक, द्वेष, पाखण्ड चण्ड, पाकर के जीव विनशता है।
होकर भोगों के वशीभूत कहता, फिर जीव विवशता है ॥
भोगों में अनासक्त रहकर, परमागमगामी हो सकता।
गुरु शास्त्र आदि का अनुयायी, जग का हितकामी हो सकता ॥
सम्यक्-ज्ञानी मूढन्त्रय सह, मद-आठ त्याग नित करता है।
मद् लोभ, मोह, कमादि, क्रोध, आतमहित हेतु तजता है ॥
जो एक भाव से जिनवर का, आत्मा से आराधन करता।
कटुतम निगोद को तजकर के, रस मोक्ष रसास्वादन करता ॥

-: दोहा :-

अनासक्ति का भाव ही, दर्शन, धर्म, विचार।
सम्यक् - ज्ञानी है, वही, जैन धर्म आधार ॥

वीत राग, की वृत्ति ही, हरती है भव शूल।
भोगों की दुर्भावना, है संकट का मूल ॥

★

जो स्वच्छ, ज्ञान की सुरसरिता, जग के हित हेतु बहाते हैं।
ऐसे परार्थ - जीवन - धारी, सम्यक्-ज्ञानी कहलाते हैं ॥

निश्चय नय पर रख प्रमुख दृष्टि, निश्चल व्यवहार किया करता।
ऐसा वर अनेकान्त ज्ञानी, भव सागर पार किया करता ॥

यद्यपि जग में भवितव्य प्रबल, पुरुषार्थ तुझे तो करना है।
ये लोक अनादि अनन्त महा, इस सागर को तो तरना है ॥

आनन्द लक्ष्य जीवन का है, सच्चा हो पाता बोध नहीं।
जग के प्रपंच में फँस कर के, कर पाता कोई शोध नहीं ॥

जब तक न मोक्ष मिल पाता है, मन भटका-भटका फिरता है।
आनन्द सिन्धु से बिना मिले, जन अटका-अटका फिरता है ॥

निर्वाण प्राप्ति ही आतम का, जो लक्ष्य महान कहाता है।
निःश्रेयस मोक्ष प्राप्त करके, निर्वाण परम पद पाता है ॥

—: हरिगीतिका :—

इस भाँति जिनवर ऋषभ ने, शुभ मांगलिक उपदेश दे।
बहु द्वार खोले हो लगा, निर्वाण हित परिवेश के ॥

ऐसा लगा, सूरज उगा, उर कमल मुस्काने लगे।
बीती तमस् की रात, जन हो मुदित हरषाने लगे ॥

भव विकट निर्जन जो कि, अब तक जीव दुख का हेतु था।
बन गया प्रभु की कृपा से, यह दुखद वन ही सेतु था ॥

जिस जीव में इस जगत में, आमूल ज्ञायक भाव है।
निर्जरा के प्रति जागना, ज्ञायक प्रकाश स्वभाव है।।

"नागेन्द्र" कवि यह चाहता, जन सीख ले उपदेश से।
वर विश्व में समता बढ़े, वह गंध हो परिवेश से।।

अनुनय विनय नय में जगा, निज आत्म प्रति अनुराग हो।
प्रभुवर ऋषभ की अर्चना से, जागता वैराग हो।।

॥ दोहा ॥

पढ़े दिव्य उपदेश जो, जागे अन्तर ज्ञान।
जीवन को सुखमय करे, ऋषभ भक्ति वरदान।।

गृहस्थ उपदेश वर्णन

—: कवित्त :—

जो भी मानता है जानता हूँ जग भली भाँति,
वही करनी को कर जीव पछताता है।
शृंखलाये बांध लेतीं उसको है करनी की,
करनी का चक्र फिर छूटने न पाता है।।

छूटने को अकुलाता ढूंढता अनेक पंथ,
बार-बार भव बीच आता और जाता है।
कुछ करने से पूर्व सोचिये विचारिये,
ज्ञान का विवेक सर्वत्र काम आता है।।

घिर रहे बादल तो होना है प्रसन्न ही न,
बैठ चुपचाप घन घोर ही न सुनना।
दादुर, मयूर आदि होवेंगे प्रसन्न अति,
क्योंकि उन्हें बैठ रति भाव आम्र चुनना।।

जीव-जीव के स्वभाव लाते हैं प्रस्राव रंग,
ज्ञन - ज्ञान - पुंज हो के तुम्हें नहीं गुनना।
भोग तृष्णा में दिन रात लीन रहना पड़े,
जान बूझ कर तुम्हें जाल नहीं बुनना।।

★

करणीय कौन करणीय नही, मैं आज तुम्हें समझाता हूं।
दृष्टान्त एक तुम मधुर सुनो, सुनिये मैं तुम्हें सुनाता हूं।।

संसार एक है भीम-वृक्ष, जिसमें अनेक आकर्षण हैं।
जन पक्षी पाते हैं जीवन, सुख के दुख के संघर्षण हैं ।।

फल, फूल, पात पाते इससे, आतप से देह बचाता है।
कट जाये सुख से मधु-राका, सुन्दर सा नीड़ रचाता है ।।

इच्छा मारुत जब तेजी से, पंखों की शक्ति घटाता है।
मिथ्या बल के अर्जन के हित, वह लौट नीड़ पर आता है ।।

लेकिन तिनका-तिनका बिखरा, उसको अस्तित्व बताता है।
समझो इन भोगों से तो बस, मिथ्या दुखदायी नाता है ।।

आकुल व्याकुल हो पछताता, अधभरी देह में कुढ़ता है।
क्या करूँ और क्या नहीं करूँ, फिर उसी ओर को मुड़ता है ।।

कैसे घोंसला बसे फिर से, जिसमें मिथ्या सुख मिल जाये।
जिस गंध हेतु वह दौड़ रहा, किस तरह कुसुम वह खिल जाये ।।

इस तरह नीड़ के चक्रों में, जीवन है सहज गुजर जाता।
जिसमें रह कुछ कर सकते थे, सुविधा धन सहज बिखर जाता ।।

फिर यही वृक्ष दुख पुंज सदृश, उनको दिखलायी देता है।
ये मिथ्या है, सुख मिथ्या है, मिथ्या अँगड़ाई लेता है ।।

जब आँधी सहज उतर जाती, घोंसला बनाने लगता है।
दो क्षण में सभी भूल जाता, कहता वह सबसे 'जगता' है ।।

ये मिथ्या भ्रम ही इस भव में, सारे दुःखों का कारण है।
सब जान बूझ कर के ही जन, दुख पाता रहा अकारण है ।।

मिथ्यात्व पालकर अन्तर में, खोजता सत्य को फिरता है।
जब कभी सत्य आता समक्ष, देखते हुये फिर डरता है ।।

तन का खोखला कलेवर है, उसको ही भरता रहता है।
कूड़े को कोई चोर न ले, चिन्ता में मरता रहता है।।

चाहता यही सब कुछ पालूं, सब कुछ मेरा ही मेरा है।
सब कुछ मैं एक छत्र पाऊँ, रुपायित रूप घनेरा है।।

लेकिन परिग्रह की सीमा पर, सोचा क्या कभी विचारा है।
भू तल से लेकर अम्बर तक, परिग्रह ने पाँव पसारा है।।

कितना सहेज कर रक्खोगे, इस पर भी तनिक विचार करो।
सब यहीं पड़ा, रह जायेगा, यह तथ्य सदा स्वीकार करो।।

अपरिग्रह की तो सीमा है, इसको तुम सहज जान जाते।
जिसकी न कहीं पर सीमा है, परिग्रह प्राणी को भटकाते।।

परिग्रह ही दुख का कारण है, चिन्ता सहचरिणी बनती है।
फिर मिथ्या, हत्या कदाचार, मोहादि भाव से छनती है।।

अब छूट रहा, कल छूटूंगा, लेकिन कल क्या फिर आती है।
जब चलने की आती बारी, तब साँस छूटती जाती है।।

यह रूप आप सब देख रहे, फिर भी न समझ में आता है।
जो जान बूझकर त्रुटि करता, अज्ञानी वह कहलाता है।।

—: कवित्त :—

कौन जागता है और कौन सो रहा है यहाँ,
कौन किस फल की उपासना में लीन है।

कौन खोज-खोज थका निज को न खोज पाया,
कौन खोज की ही आज वासना में लीन है।।

कौन मौन होकर के अन्तर में शोध रत,
कौन आज जन ज्ञानभावना में लीन है।
कौन उसके समान ध्यान निज में दिये जो,
समता स्वभाव वाली भावना में लीन हैं ॥

★

संसार वृक्ष की शाखाएँ, सब मन को सहज समेटे हैं।
डालियों जड़ों में पत्तों में, कितने ही विषधर लेटे हैं ॥
जिनको जब मौका मिलता है, आकर छुपके डस लेते हैं।
हम जान बूझ कर के भी तो, इनसे ही सुख रस लेते हैं ॥

भव के सुख, भव के मानव को, हर समय छांटते रहते हैं।
यह श्याम - श्वेत रंग के चूहे, दिनरात काटते रहते हैं ॥
जीवन रस रिसता जाता है, आशा घन कभी न घिर पाते।
भव की अटवी में भ्रमते जन, भव से जाते, भव में आते ॥

कोई कितना ही समझाये, लेकिन न समझ में आता है।
जो नहीं समझ पाता भव को, वह और उलझता जाता है ॥
मधुमक्खी छत्ता रखती है, छत्ता आकर्षित करता है।
दूषित मधु, यों ही मिल जाये, ज्ञानी छूने पर डरता है ॥

लेकिन अज्ञानी पाने को, शाखा को पकड़ लटक जाता।
जी भर कर रस को पीने के, लालच में स्वयं भटक जाता ॥
दो चार बूँद ही पाकर के, व्याकुलता इतनी बढ़ जाती।
थकने लगते हैं हाथ पैर, भ्रम की घन-घटा उमड़ आती ॥

आचार्य विमानों द्वारा आ, उसको समझाते रहते हैं।
तुम बुरे फंसे, नीचे देखो, अजगर बतलाते रहते हैं।।

लेकिन कुछ बूंदों का लालच, जो वास्तव में दुखदायी है।
फ़ँस रहा वासनाओं में जो, उसको लगता सुखदायी है।।

चींटियाँ तुच्छ इच्छाओं सी, काटती बेधती रहती हैं।
मधुमक्खी कभी-कभी आकर, बस उसे छेदती रहती हैं।।

इस तरह जकड़ जाता रस मे, जीवन ही विष बन जाता है।
जीवन मे, जीवन जीने में, फिर युद्ध भयद ठन जाता है।।

छोड़े तो नीचे नाग डसे, यदि रहे तो टूटा जाता है।
हो रही शक्ति दिनरात क्षीण, शाखा से छूटा जाता है।।

सोचते आखिरी क्षण आता, फिर सूर्य डूबने लगता है।
जीवित है वह शव के समान, जागता हुआ कब जगता है।।

मोहान्धकार में जग कर भी, अपने जीवन को खोना है।
जो हुआ वासना में विलीन, उसका हँसना भी रोना है।।

उपकार धर्म के कार्य करो, जिससे ये जीवन बन जाये।
अज्ञान तिमिर से मुक्ति मिले, जीवन का लक्ष्य निखर आये।।

जीने को तो जी लिये बहुत, इस तरह नहीं कुछ बन पाया।
इस तरह जिओ अपना जीवन, जन कहे, धन्य जीवन पाया।।

—: कवित्त :—

यश-अपयश लाभ-हानि, मृत्यु, भय आदि,
सब तज कर निज में ही रम जाना है।

जो भी जड़ चेतन हैं जीवन के पंथ मध्य,
बड़ी नम्रता के साथ उन्हें अपनाना है ।।

दूसरे की कमियों को खोजना न केवल है,
निज गति विधियों को खूब देख जाना है ।

सत्य निष्ठता के साथ तज परिग्रही भाव,
ऋजुता के साथ जग जीवन बिताना है ।।

★

नभ में जैसे अनन्त तारे, आकर्षण जग में ऐसे हैं ।
पानी का एक बुलबुला है, जीवन के नश्वर जैसे हैं ।।

सब नहीं प्राप्त तुम कर सकते, सबको पाकर के करना क्या ?
सब तुम्हें नहीं आवश्यक है, बेकार इन्हें फिर भरना क्या ?

बस उतना तुम एकत्र करो, जिसमें तब जीवन चल जाये ।
उतना न करो एकत्र कभी, जितना जगती को खल जाये ।।

यदि हृदय दुखा कर के तुम ने, थोड़ा भी अगर सहेजा है ।
देखोगे यों ही कितनों का, तुम से दुख रहा कलेजा है ।।

दुख देकर अगर जिये तो क्या, ऐसा जीना क्या जीना है ?
पशुओं से गिरा हुआ जीवन, साक्षात् गरल को पीना है ।।

केवल उदरम्भर तुम न बनो, बनना है तो महावीर बनो ।
औरों को सबल सहारा दो, जीवन-रण के शमशीर बनो ।।

ऐसी नौका, नाविक बनना, जो सबको पार लगाता है ।
तुमको वह सूरज बनना है, जो जीवन ज्योति जगाता है ।।

यदि भार हुआ तो क्या जीवन, तब तो फिर जीवन ढोना है।
यदि गये समय पर चूक कहीं, केवल पछताकर रोना है।।

इसलिये समय रहते चेतो, जागना समय का हितकर है।
आदर्श बनो इस धरती पर, समझो तब जीवन सुन्दर है।।

क्या करना, क्या करना न तुम्हें, इस पर भी तनिक विचार करो।
जीवन का यान न रुक जाये, इसलिये प्रथम उपचार करो।।

गुरु जो कि ज्ञान का रत्नाकर, नित उसका मान बढ़ाना है।
उसके समक्ष अवनत रहना, श्रद्धा के सुमन चढ़ाना है।।

गुरु की निन्दा से बड़ा पाप, जग में हो सकता और नहीं।
जग में गुरु की निन्दा करके, जग हुआ व्यक्ति सिर मौर नहीं।।

जो मात पिता की अन्तर से, नित प्रति ही सेवा करता है।
पाकर के यश, वैभव, बल को, उर सदाचरण से भरता है।।

सुत, दारा, पुत्री, बहिन, बन्धु, सबके प्रति परम उदार रहो।
जिस योग्य हुये हो तुम जग मे, उतना सेवा का भार गहो।।

यदि गिरे क्लेश का वज्र पिण्ड, करना तुमको संघर्ष नहीं।
आपस में विग्रह करने से, होता जन का उत्कर्ष नहीं।।

रोषाग्नि कठिन मे तपकर के, भारी उत्पात मचाओगे।
तब कौन कन्दरा मे छिपकर, अपना अस्तित्व बचाओगे।।

कटु, द्रोह, मोह, लोभादिक से, किसका जीवन है स्वर्ण हुआ।
सुख रंच मात्र कब पाता है, बहते मारुत का पर्ण हुआ।।

देकर के कौन कष्ट किसको, कोई सुख गेह बसा पाता।
माना दो क्षण को बसा लिया, फिर भी फिरता है पछताता।।

हिंसा के कुटिल आसरे से, कोई यदि आश्रय पा जाता।
हंसों को कौन गोद लेता, बस बाज यहाँ पूजा जाता।।

छल, दम्भ, क्रूरता, हिंसा का, साम्राज्य न बसने देना है।
सत्, न्याय, अहिंसा, अपरिग्रह, साम्राज्य न रिसने देना है।।

परिवेश बनाना है ऐसा, जिसमें दुर्जन भी जी जायें।
भ्रातृत्व सजगता का प्याला, वे भी आये तो पी जाये।।

मानव हो, मानव रहना है, अभिमान न आने देना है।
मिथ्या मद छू कर कभी तुम्हें, सम्मान न जाने देना है।।

यदि साधु सुजन द्वारे आयें, सेवा करना आवश्यक है।
जितनी भी सेवा कर सकते, समझो वह परमावश्यक है।।

आकुल, व्याकुल कोई प्राणी, प्यासा है नीर पिलाना है।
जितना बल विक्रम है तुम में, उतना तो कष्ट मिटाना है।।

आहार हेतु यदि मुनि आयें, श्रद्धा के सुमन बिछाने हैं।
कर अष्ट द्रव्य से पड़ गाहन, मृदु व्यंजन तुम्हें रचाने हैं।।

आहार दान बड़ भागी ही, मुनियों को अर्पित कर पाते।
ऐसे श्रावक के सदाचरण, देवता वृन्द मिल कर गाते।।

दो दान मगर हो अहं नहीं, बतलाना नहीं किसी को है।
दे दिया दान में मैंने यह, जतलाना नहीं किसी को है।।

आदर्श न केवल गढ़ना है, चल करके भी दिखलाना है।
आदर्श हमारे हैं सुन्दर, सारे जग को सिखलाना है।।

बातों से काम नहीं होते, कामों से बातें करनी हैं।
जो अभी रिक्तताये बाक़ी, कर्तव्यों द्वारा भरनी हैं।।

—: दोहा :—

हिंसादिक दुष्कर्म को, पाप समझ कर त्याग ।
जो महान व्रत धारते, पाते पुण्य पराग ॥

अणुव्रत का पालन करो, धर सब विधि से ध्यान ।
कर्णधार यह व्रत सदा, मिलता पद निर्वाण ॥

हिंसा, चोरी, झूठ अरु, मूर्छा तथा कुशील ।
अणुव्रत के विपरीत हैं, कहते परम सुशील ॥

परतिय गमन न कीजिये, सब से बड़ा अधर्म ।
निज तिय में सन्तुष्ट हो, अणुव्रती का धर्म ॥

—: कवित्त :—

चोर से अधम कौन फिरता उलूक बना,
बिन पला श्वान सा ही दुतकार पाता है ।

वह भी अधम है जो प्रेरणा का बिन्दु बने,
अथवा जो घर निज चोर को टिकाता है ॥

चोरी का खरीद माल बनता है मालामाल,
कम नाप तौल वाला चोर ही कहाता है ।

वही कहलाता है अचौर्य व्रतधारी जन,
चोर और चोरी से न रखे कोई नाता है ॥

॥ दोहा ॥

दिया किसी ने है नहीं, किन्तु कर लिया प्राप्त ।
वह सब चोरी जानिये, हुये, लिप्त या व्याप्त ॥

जीवन में मिथ्यात्व को, करें नहीं स्वीकार।
इससे ही दुख भोगता, मानव विविध प्रकार ।।

निज प्रति सत् में प्रीति हो, हिंसा से हो त्याग।
पर हित में नित मन रमें, वीतराग से राग ।।

आर्जव, मार्दव, शील में, संयम हेतु लगाव।
निज के सम ही जगत प्रति, जागे उत्तम भाव ।।

शास्त्रों में वर्णित हुये, व्रत के रूप अनेक।
दृढ़ता पूर्वक पालिये, कहता यही विवेक ।।

—: कवित्त :—

राग अनुराग प्रति लेकर विराग व्रत,
अन्तर - विवेक पूर्ण कार्य सदा कीजिये।

ज्ञान पथ अपना के साधिये अनेक काम,
जैसे बन पाये आप मिथ्या ज्ञान छीजिये ।।

इन्द्रियों की लता नित्य चाहती अनेक खाद्य,
वेलगाम कभी इन्हें बनने न दीजिये।

जैनागम, जैन आलय, जैनमत, जैन ज्ञान,
लेकर जिनेन्द्र नाम अमृत को पीजिये ।।

—: दोहा :—

यहाँ बताये गये हैं, कछुक गृहस्थी धर्म।
जो पालेगा नियम से, पायेगा शिव - शर्म ।।

शुभ कर्मों की बेलि ही, देती सुफल महान ।
इसके द्वारा ही सरल, उत्तम पद निर्वाण ।।

पढ़े सुने अति ध्यान से, इस वर्णन के छन्द ।
मोक्ष मार्ग का बन्ध हो, बढ़े नहीं भव फन्द ।।

मुनि उपदेश वर्णन

-: कवित्त :-

राग-द्वेष से रहित, होकर के जन जब,
तीन लोक सार ज्ञान-केवल विचारता।

यही ज्ञान - केवल है शिव का स्वरूप रम्य
बोध गम्यता को जन इसमें उतारता ॥

आनंद का रूप यही और मोक्ष दाता यही,
परम हितैषी ज्ञान भरता उदारता।

करके त्रियोग जन हो के सावधान सदा,
करता प्रणाम जन - जीवन संवारता ॥

तीनों लोक मध्य भाँति-भाँति प्राणी है अनंत,
लेकर बसन्त चाह नित्य मरा करते।

सुख की तो एक बून्द मिलती कभी न इन्हें,
दुख का समूह देख नित्य डरा करते ॥

करुणा के सिन्धु गुरु परम उदार उर,
लेकर के दया-वारि नित्य भरा करते।

सुख की अनोखी सीख देकर श्रद्धालु प्रति,
अन्तर के कंचन को नित्य खरा करते ॥

जड़ता का, मूढ़ता का, अज्ञता अशिष्टता का,
भव तो अपार सिन्धु कैसे पार जाओगे।

मोह मदिरा का पान और सुखता का ध्यान,
सबल प्रकाश का न ऐसे द्वार पाओगे ।।

पूर्ण-परमात्मा को भूल मस्त झूमोगे तो,
नित्य नयी काट वाली तलवार पाओगे ।

मोह महामद त्याग बिना जन को न सुख,
भटकन मे लो और तेज धार पाओगे ।।

★

जन वन्दनीय, अभिनन्दनीय, चारित्र मनोहर मुनियों का ।
कमनीय चरित्र मनुष्यों का, सम्यक् ज्ञानी वर गुनियों का ।।

मुनि आत्म तेज की प्रकट-मूर्ति, जिन नमस्क्रिया मे लीन सदा ।
भव मान मोद से बहुत-दूर, आतम रस के आधीन सदा ।।

मुनि पंच महाव्रत धारी है, व्रत के आधीन रहा करते ।
मुनिराज महापुरुषार्थवान, भव के आघात सहा करते ।।

ये सकल व्रती तन, भोगों से, अनुपम विरक्ति उपजाते हैं ।
उर-त्याग-भाव को चिन्तन से, भावों से खूब सजाते हैं ।।

द्वादशी भावना चिन्तन से, भावना त्याग की जगती है ।
जैसे कि आग की तेज लपट, छू प्रखर वायु से लगती है ।।

जब जीव जानता आत्म रूप, तब ही मिथ्यात्व नशाता है ।
निर्वाण कहो या मोक्ष कहो, जन सुख शिवत्व पा जाता है ।।

द्वादशी भावना में क्या है ? ये थोड़े में समझाता हूं ।
मुनि मन तल्लीन जहां, रहते, कर के संकेत बताता हूं ।।

यौवन गृह, पशुधन या नारी, एकत्रित कर निज घर भर लो।
गजराज या कि वनराज सदृश, कितने ही वशीभूत कर लो॥
भव सुख तो चपला जैसा है, चंचलता जिसमें भरी-भरी।
यह इन्द्र धनुष क्षण भर का है, इसमे नय बुद्धि नहीं निखरी॥
अज्ञता यही भव के बलिष्ठ, हम को हर भाँति बचा लेंगे।
अथवा इनकी कृपालुता पा, जग में सुख स्वर्ग रचा लेंगे॥
मणि, मंत्र, तंत्र बहुतेरे हैं, मरते पर कौन बचा पाया।
अज्ञान अन्धता के घर में, कोई हो पीछे पछताया॥

—: कवित्त :—

जन गति, देव गति, तिर्यञ्च नरक गति,
अज्ञता से जन भोगता ही बार-बार है।
द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव भांति-भांति,
परावर्तनादि से न मिले सुख-सार है॥
जन जिसमें है सुख खोजता न वहाँ सुख,
कल्पना में सुख का स्वरूप है न द्वार है।
इसलिये दुख सिन्धु त्यागने में बड़ा सुख,
इसी वीतरागता से करना विचार है॥

★

शुभ अशुभ कर्म फल हैं, जितने, यह सभी जीव भोगा करता।
सुत, दारा, साथी बन न सके, कर्ता इसको भोगा करता॥
सब स्वार्थ हेतु हैं, सगे बने, मतलब तक सबसे नाता है।
संसार मोक्ष के बीच एक, आत्मा एकाकी पाता है॥

तन जीव मिला पय पानी सा, फिर भी ये दोनों एक नहीं।
है एक मानता इन्हें वही, जिसके उर विमल विवेक नहीं॥

घर, द्वार, बाग, वन, पुत्र, मित्र, सब पृथक दिखायी देते हैं।
वह ज्ञानी जन है जो इसमें, रूचि किञ्चित मात्र न लेते हैं॥

मल मूत्र रुधिर से भरा हुआ, कितना यह घिनकारी तन है।
नौ द्वारे परम घृणास्पद है, इस तन पर आश्रित जीवन है॥

बाहरी रूप मक्षिका पंख, जैसा दिखलायी देता है।
इस भांति भेद ज्ञानी प्राणी, शुद्धात्मा, पंथ - प्रणेता है॥

भव पाप पुण्य दोनों आश्रव, भव के बन्धन के कारण हैं।
ये ही दुख के निमित्त कारण, भरमाते यही अकारण हैं॥

शुभ अशुभ कर्म हितकर न, कभी ये कोई सिद्धि न देते हैं।
हितकारी बीत रागता की, ये सम्यक् वृद्धि न देते हैं॥

शुभ-भाव याकि फिर अशुभ भाव, जिसमें कुछ सक्रिय क्रिया नहीं।
निज आत्मोन्नति का रखा ध्यान, अन्यत्र किसी पर दिया नहीं॥

निज ध्यान ज्ञान से कर्मों की, आती आंधी को टोका है।
सम्वर सुभावना को पाकर, सच्चे सुख को अवलोका है॥

अज्ञानी के भी कर्मों का, निश्चित क्षण क्षय हो जाता है।
इस भांति निर्यति के आने से, जन कर्म निर्जरा पाता है॥

शुद्धता बिना खिरते न कर्म, इस भांति निर्जरा आती है।
चारित्र ज्ञान दर्शन द्वारा, आत्मा शिवत्व को पाती है॥

छह द्रव्यों से परिपूर्ण लोक, कोई न लोक निर्माता है।
कोई न लोक का पालक है, कोई न नाश कर पाता है॥

वर वीतराग की समता बिन, नित जीव भटकता रहता है।
कर्मों के चक्र व्यूह में फँस, कष्टों को सहता रहता है।।

मिथ्यादि दृष्टि से जीवात्मा, ग्रैवेयक तक हो आता है।
फिर मन्द कषायों के द्वारा, अहमिन्द्र-परमपद भी पाता है।।

लौकिक पद मिलते बार-बार, निजता का बोध नहीं होता।
पर शुद्ध बोधि एकात्म बिना, शिव पथ का शोध नहीं होता।।

मिथ्या दर्शन या मोह रहित, यह ब्रह्म धर्म कहलाता है।
जीवात्म स्वान्मुखता द्वारा, वर धर्म भावना पाता है।।

ऐसे रत्नत्रय को मुनिवर, निश्चय नय द्वारा पाते हैं।
यह रत्नत्रय का कठिन मार्ग, मुनिवर ही यह अपनाते हैं।।

–: कवित्त :–

काम क्रोध, मद, लोभ, मिथ्या, मोह, दुराचार,
परिग्रही भावनाएँ किसे सुखदायी हैं।

शुभ या अशुभ जो भी करता है कर्म, जन,
उसके भी मन निष्कामता न आयी है।।

कोई भी उपाधि मन व्याधि को न हरती है,
वासना में नित्य और आती तरुणाई है।

शान्ति और शुद्धता भी उसको नहीं है यहाँ,
रत्न-तीन ज्योति जिस उर ना समायी है।।

दया, क्षमा, करुणादि शुभ वृत्तियाँ जरूर,
लक्ष्य ये नहीं है बस सीढ़ियाँ प्रगति की।

परहित साधना से सुख मिलता अवश्य,
किन्तु जागती है वृत्ति सुरति निरति की॥

पाप-पुण्य सब यहाँ भोगने ही पड़ते हैं,
कौन नयी बात हुयी जीवन के गति की।

रत्न-त्रय ज्योति जो न हृदय समायी उर,
कौन है बढ़ाई फिर मान की या मति की॥

★

मुनियों का धर्म तपस्या हैं, तप में ही आयु बिताते हैं।
परिग्रह से कोई काम नहीं, व्रत त्याग नियम अपनाते हैं॥

आशा तृष्णा के चक्कर से, ये दूर - दूर ही रहते हैं।
कार्माण कर्म से दूर-दूर, ग्रहणीय मार्ग ही गहते हैं॥

बह ज्ञान रत्न, शुभ ध्यान रत्न, मुनि तप में युक्त रहा करते।
मिथ्या दर्शन, मोहादि-काम, मन सबसे मुक्त रहा करते॥

तप मुनियों को है पूजनीय, रत्नत्रय का वर देता है।
यह महा मोक्ष का दाता है, ज्ञानादि सिन्धु भर देता है॥

तप की चर्चाओं के द्वारा, जो केवल ढोंग रचाते हैं।
पत्थर की नौका लेकर वह, सागर के पार न जाते हैं॥

गुण हीन तपस्वी डूबेंगे, आश्रित भी पार न पाते हैं।
संकट सागर में दुःख पाते, जीवन को व्यर्थ गँवाते हैं।

चारित्र परम सुखकारी है, नरभव को श्रेष्ठ बनाता है।
इस परम सुरक्षित पथ से ही, जन मोक्ष महल तक जाता है।।

ये मोह तिमिर का नाशक है, सम्यक् दर्शन का मार्ग यही।
ये राग द्वेष संशोधक है, है श्रेष्ठ ज्ञान सन्मार्ग यही।।

हिंसा, चोरी, मिथ्या, परिग्रह, माया श्रव के यह द्वारे है।
इन घृणित घरों से मुख मोड़े, सम्यक् चारित्र दुलारे हैं।।

जो सारे-परिग्रह से विरक्त, चारित्र धर्म के स्वामी हैं।
तप चिन्तन के अनुरक्त भक्त, निज आत्मा के अनुगामी हैं।।

अणुव्रत के उत्तम साधक ही, आगे चल मुनिवर कहलाते।
भव बन्धन के जंजाल काट, निज आत्म सुधा रस सरसाते।।

—: कवित्त :—

काम, क्रोध, राग, द्वेष, मान भाव हिंसा तज,
मुनि तो अहिंसा महा व्रत सदा पालते।

झूठ बोलना है पाप, दिये बिना मृत्तिका भी,
लेते न अचौरता का व्रत अनुपालते।।

चेतना के साथ आत्मा में, हैं विलीन सदा,
महा व्रत ब्रह्मचर्य मुनिवर साधते।।

साधु संत दृढ़ता से निजता में लीन रहें,
षट् काय धारी जीवों को भी नहीं धातते।।

★

षट्काय जीव की रक्षा से, हिंसा का बल सो जाता हैं।
रागादि भाव की दूरी से, मिथ्यात्व भाव खो जाता हैं।।

त्यागी मुनिवर होते इतने, बिन दिये न कुछ भी पाते हैं।
पानी हो या फिर मिट्टी हो, नय सदा एक अपनाते हैं॥

कर ब्रह्मचर्य गुण का पालन, आत्मा आधीन रहा करते।
चेतन स्वरूप आत्मा में ही, केवल तल्लीन रहा करते॥

षट् गुणस्थान में होते मुनि, अट्ठाइस मूल गुणी - धारी।
ये पंच महाव्रत के पालक, महिमा-मण्डित शिव अधिकारी॥

चौदह प्रकार के अन्तरंग, परिग्रह न कभी अपनाते हैं।
बहिरंग दस तरह के परिग्रह, दृढ़ता से तजते जाते हैं॥

तजकर प्रमाद उस विधि चलते, हिंसा न जीव की हो जाये।
कोई ऐसी न क्रिया करते, जिससे कि कष्ट कोई पाये॥

जब कभी बोलते हैं मुनिवर, अपनत्व छलकता आता है।
कटता जाता जन मोह, जाल, सम्यक्त्व उमड़ता आता है॥

परिवार संशयो का विचित्र, भ्रम रोग नहीं रह पाता है।
मिथ्यात्व रोग से बचने को, सम्यक्त्व विजय पा जाता है॥

उत्तम कुल वाले श्रावक के, घर में आहार लिया करते।
छियालिस दोष तज स्वाद रहित, भोजन को ग्रहण किया करते॥

भव के सुख की, सुख साधन की, छाया के पास न जाते हैं।
संयम के साधन पीछी से, शीलादिक तत्व रचाते हैं॥

पीछी भी जब रखते भू पर, अथवा कि जब ग्रहण करते हैं।
देखते भली विधि भू, पींछी, जीवार्थ भावना भरते हैं॥

निर्जन्तु देखकर के भू तल, मल मूत्र निवारण करते है।
संकल्पी याकि विकल्पी हो, दोनों हिंसा से डरते है॥

सम्यक् प्रकार करके निरोध, मन का, वाणी का काया का ।
आत्मा का ध्यान किया करते, परिवार त्यागते माया का ।।

—: कवित्त :—

वीतरागी मुनिवर मन, वच, काय से भी,
शुद्ध - उपयोग - रूप, जब कभी पाते हैं ।
पंच इन्द्रियों को जीत, राग के विरोधी बन,
रस, रूप, गन्ध, शब्द दूर-दूर जाते हैं ।।
देह की भी सुधि इन्हे ध्यान में न आती रंच,
आस-पास हिरनों के झुण्ड मंडराते है ।
शान्ति का प्रकट - रूप, पत्थर समझकर,
मृग झुण्ड आकर के खाज खुजलाते हैं ।।

—: दोहा :—

अन्तरंग दस-चार से, बाहर दसधा त्याग ।
मुनिजन तजते हैं सदा, परिग्रह का अनुराग ।।
याचक भी बनते नहीं, और न रखते मान ।
अन्तर में इनके सदा, दृढ़ चारित्र प्रधान ।।
सावधान ये सब समय, करते नहीं प्रमाद ।
चलते ईर्या समिति से, शोक न हर्ष विषाद ।।
जब बोले, जग हित प्रकट, ज्यों शशि किरण कलाप ।
सुनने में सुख कर सदा, वाणी में निष्पाप ।।

रोग दूर मिथ्यात्व के, दूर मोह परिवार।
अन्तर बाहर सरस सब, भव-दधि तारण हार॥

-: कवित्त :-

वीतरागी मुनि भली विधि सामायिक कर,
प्रभु जिनवर की है, वन्दनाये बोलते।
सच्चे देव, गुरु, शास्त्र स्तुति के साथ पढ़े,
प्रति क्रम साधे, मुख व्यर्थ ही न खोलते॥
काम - उत्सर्गता का व्रत पालते हैं सदा,
तन स्वस्थता की ममता न रंच घोलते।
अन्तर की साधना में करते विहार सदा,
सिर्फ डोलने को धरती पे नहीं डोलते॥

*

तन मज्जन नहीं किया करते, तन-वस्त्र नही धारण करते।
करते न दन्त धोवन मुनिवर, बन्धन स्वीकार नहीं करते॥
आखिरी पहर जब रजनी का, आता है तब कुछ सो लेते।
कुछ समय मात्र ही भू पर कुछ, थोड़ा करवट से हो लेते॥
आहार, दिवस में एक बार, हो खड़े, हाथ में लेते हैं।
निश्चित आहार लिया करते, श्रद्धा समेत जो देते हैं॥
तन की किंचित परवाह नहीं, हाथों से केशलौंच करते।
हाः हाः रे तन दुख पायेगा, चिन्ता से हृदय नहीं भरते॥
पशु-पक्षी-कीट सर्प-आदिक, भयभीत न होते आ जाये।
कुछ मन्द बुद्धि मुनि ग्रीवा मे, काले विषधर लटका जाये॥

समता का भाव अनूठा है, सब के प्रति उर में समता है।
है नहीं किसी से राग-रोष, उर में न किसी से ममता है।।

कोई निन्दक या पूजक है, हत्यारा या अधिनायक है।
है घोर शत्रु या परम मित्र, साधक है या अराधक है।।

है कांच याकि फिर स्वर्ण ढेर, इनसे मुनियों को करना क्या ?
जब मोह लोभ को त्याग दिया, तो उपसर्गो से डरना क्या ?

बाईस तरह के परिषह पर, मुनिवर हो तो जय पाते है।
मिथ्यादि मोह के पट उतार, भव सागर से तिर जाते है।।

मुनि तत्व ज्ञान के अभ्यासी, जग के सुख दुख से लेना क्या ?
क्या है अनिष्ट है कौन इष्ट, जन सुख से लेना-देना क्या ?

हो किसी अवस्था मे भी मनि, भव सुख न विचारा करते है।
केवल अन्तर में जिनवर की, आरती उतारा करते है।।

निज रूप-रमणता से नित प्रति, चारित्र प्रकट हो जाता है।
अन्तर में जगता ज्ञान - दीप, तम तोम करीब न आता है।।

एकाकी अथवा संघबद्ध, निर्भय मुनि घूमा करते है।
बारह प्रकार का तप करते, संयम से अन्तर भरते है।।

हठ रहित सदा तप करते है, अन्तर में कोई दाह नहीं।
मुनि पूर्ण वीतरागी त्यागी, अन्तर में कोई चाह नहीं।।

त्रय रत्न सदा सेवन करते, सुविधाओं से अनुबन्ध नहीं।
दस धर्म सदा धारण करते, भव से कोई सम्बन्ध नहीं।।

-: हरिगीतिका :-

कौन ज्ञाता, ज्ञान गुण है, या गुणी है ज्ञेय हैं ।
भेद को ही त्यागने मे, मुनिवरों का श्रेय हैं ।।

तेज छैनी से शिला जन, बाँटता दो भाग मे ।
वीत रागी जन न फँसते, द्वेष में या राग मे ।।

है निजात्मा कर्म, कर्ता, औ क्रिया का रूप भी ।
ध्यान, ध्याता, ध्येय मे है, एकता चिद्रूप ही ।।

चल न पाता बिन्दुओं पर, बुद्धि कौशल अल्प भी ।
भेद वाणी का नहीं संकल्प, या कि विकल्प भी ।।

शुद्धता पाथेय है निज, आत्मा के ध्यान का ।
दर्शन प्रभाकर प्रकटता, चारित्र, सम्यग्ज्ञान का ।।

फिर श्रेष्ठ केवल ज्ञान से, वह शक्ति आती पात्र में ।
जो कर्म लतिका भूल से ही, नाशता पल मात्र में ।।

आठवीं भू मोक्ष का थल, अष्ठ गुण का बिन्दु है ।
ज्ञान नौका से सहज फिर, पार भव का सिन्धु है ।।

निर्विकारी अणुग्रही, शुद्धात्म चेतन में बसा ।
आप करता प्राप्त है, शुभ सिद्धि की अनुपम दशा ।।

।। दोहा ।।

उन सिद्धात्मा में सदा, बिम्बित लोकालोक ।
वे अनन्त तक भोगते, पाकर के शिव लोक ।।

धन्य धन्य वह जीव है, मुनि पद करता प्राप्त ।
तजकर भव संसार को, करदे भ्रमण समाप्त ॥

राग न अनुकरणीय है, और न है ग्रहणीय ।
लोभ-मोह ही त्याज्य है, अपरिग्रह कमनीय ॥

बिना ज्ञान दीपक जले, कैसे मिले प्रकाश ।
भटकाती अज्ञानता, रहता मनुज उदास ॥

बिना त्याग, तप कब मिला, सिद्धि-दशा-सुख-सार ।
फँस कर के भव सिन्धु में, पा न सका शिव द्वार ॥

त्याग-त्याग तो सब कहें, कठिन जगत मे त्याग ।
दूर भगाता त्याग को, तन-मन का अनुराग ॥

त्यागी ने सुख पा लिया, रागी ने दुख-ग्राम ।
त्यागी को शिवता मिली, रागी को भव धाम ॥

जग बन्धन का हेतु है, मान याकि अपमान ।
जग विभूति का हेतु है, आत्मा की पहिचान ॥

निज सम पर को मानिये, दर्शन पर रख दृष्टि ।
सम्यक्-ज्ञान न छोड़िये, परम तत्व की सृष्टि ॥

पढ़े सुने अति चाव से, रूचिकर मुनि उपदेश ।
गुन करके उपदेश को, बदले दुख परिवेश ॥

विजय मंत्रणा वर्णन

-: हरिगीतिका :-

मेरा नमन विश्वास से, गुण, ज्ञान के भण्डार को।
पुरुषत्व से परिपूर्ण को, बल शौर्य के आगर को।।

समता विलसती जिस हृदय, जन प्रति मृदुल व्यवहार को।
एकात्म कारक भरत नृप, वर - नवल-भू-शृंगार को।।

अर्पित रहा जो राष्ट्र को, उठती समस्या के लिये।
इतिहास है उर में रखे, जिसकी तपस्या के लिये।।

जिसकी परम शुचि नीति से, जन भूमि का उत्कर्ष है।
जिसके कि अनुपम नाम पर, यह देश भारतवर्ष है।।

★

था शुभ मुहूर्त, प्रातः बेला, मोहक संचरण पवन का था।
आनंद मग्न, आनंद सिन्धु, कोना नीलाभ गगन का था।।

दिशि-दिशि रसधार बरसती सी, भू पर अनुपम हरियाली थी।
जिस दिशा दृष्टि उठ जाती थी, खुशहाली ही खुशहाली थी।।

खगवृन्द मधुर चहचहा रहे, जलधारे गीत सुनाती थी।
डालियाँ नवल वट वृक्षों की, खुशियों से झुक-झुक जाती थीं।।

घहरा-घहरा कर मेघ सघन, पृथ्वी पर जल बरसाते थे।
तरु, गुल्म, लता, कोमल पौधे, जल पाकर के हरषाते थे।।

उठती धरती से मधुर गन्ध, दिशि-दिशि आनंद पसर जाता।
श्रम स्वेद-बिन्दुओं पर जैसे, शीतलतम पवन बिखर जाता।।

ऋषभायण
पंचम खण्ड
क्षमा
मार्दव
आर्जव
शौच
सत्य
संयम
त्याग
ब्रह्मचर्य
स्याद्वाद अनेकान्त
की अमृत-धार
१- विजय मंत्रणा वर्णन
२- विजय अभिमान वर्णन
३- भाई बहिनों का वैराग्य वर्णन
४- दूत सन्देश वर्णन
५- युद्ध निर्णय वर्णन
६- युद्ध भूमि वर्णन
७- युद्ध निश्चय वर्णन
८- युद्ध वर्णन

श्री महामहिम भरतेश्वर ने, कुछ सोंची ऐसी बेला है।
है कौन शक्ति का आदि बिन्दु, जागृत सा सुन्दर मेला है ॥

यह ठीक प्रकृति उत्पाद्य स्वयं, कब आदि, अन्त कुछ पाता नहीं।
कब ग्रीष्म याकि हेमन्त उसे, कब हो बसन्त कुछ पता नहीं ॥

यह दृष्यमती चाक्षुष भोग्या, सुख-दुख का क्रम तब लाती है।
कैसे-कैसे जीवन की गति, यह भली भांति समझाती है ॥

इसका रहस्य हम जान सकें, यह पूर्णतया आसान नहीं।
यह वही जान सकता जिसकी, आत्मा में कुछ व्यवधान नहीं ॥

निशि में जन्मा दीपक पर ही, भारी विश्वास किया करता।
तारों चन्दा को निरख-निरख, जीवन की श्वाँस लिया करता ॥

लेकिन जिसने सूरज देखा, उसके प्रकाश को जान लिया।
तारों को, दीपक चन्दा को, रवि-दास स्वय पहचान लिया ॥

तारे, चन्दा, दीपक आदिक, पाकर प्रकाश चमका करते।
हीरे, मोती, पन्ना आदिक, पाकर प्रकाश दमका करते ॥

रवि से प्रकाश को पाकर ही, यह प्रकृति नटी नाचा करती।
जन के मन में, भव के तन में, अनुपम आह्लाद सदा भरती ॥

तरु में, तृण में, सब पुष्पों में, सूरज के रंग चमकते हैं।
बर्फीले - गिरि - चट्टानों पर, सूरज के रंग दमकते हैं ॥

भव जीवन के आकर्षण में, सूरज की भारी महिमा है।
जीवनदाता, छवि जन्माता, सूरज की अद्भुत गरिमा है ॥

पुर, नगर, गाँव, भू-क्षेत्र, नदी, पर्वत, जंगल जो दीख रहे।
सूरज की नन्हीं किरणों से, ये विविध कलायें सीख रहे ॥

चन्दा, तारे, दीपक समान, राजागण राज्य किया करते।
सत्ता, सूरज से ले प्रकाश, जनगण सुख भाज्य किया करते॥

सत्ता टुकड़ों में बँट करके, पूरा जमहित कब कर पाती।
सत्ताधारी के साधन का, बस साधन बन कर रह जाती॥

सत्ता सूरज में भव-वैभव, भव-वैभव का अनुपम क्रम है।
ये तेज राशि, ये तेज पुंज, देता जग को बल-विक्रम है॥

मै देख रहा उद्दीपित रवि, कैसा यह बढ़ता आता है।
रौंदता तमचरों को, तम को, अरि दल पर चढ़ता आता है॥

मैं बसुन्धरा के अँचल में, सूरज सा बन कर दिखलाऊँ।
सुन्दर जीवन होता कैसा, मानव जीवन को सिखलाऊँ॥

॥ दोहा ॥

निश्चय दिशि बढ़ने लगे, करके नृपति विचार।
जग जीवन सौंदर्य को, भू-पति भू श्रृंगार॥

नृप मानस मे उठ रहीं, इच्छा रूप तरंग।
सभागार मे ले गयी, नृप को खींच उमग॥

सभागार बहु लोक सम, समझो भरत दिनेश।
मानों सूर्य प्रभाव सम, रमने लगा रमेश॥

★

विरुदावलि गायक ने आकर, विरुदावलि गीत सुनाये हैं।
सुनकर यथार्थ नृप की गाथा, दरबारी सब हरषाये हैं॥

सूरज-धर्मी कहकर नृप को, चारण ने भाव प्रदीप्त किये।
नृपवर ने प्रात विचारा जो, वे भाव सभी उद्दीप्त किये॥

नृप बोले-शान्त सभा देखी, गम्भीर नीर-निधि-वाणी है।
अरि के समूह को सिंह-नाद, वैसे जग को कल्याणी है॥

यह आर्यवर्त्त होकर विभक्त, बढ़ रहा प्रगति की ओर नहीं।
केवल बल का ही अपव्यय है, है कहीं शान्ति का छोर नहीं॥

सुत सम न प्रजा नृप पाल रहे, अपने हित का है ध्यान उन्हें।
इस तरह कुटिल सम्बन्धों से, मिलता न कभी सम्मान उन्हें॥

परिग्रह या स्वार्थ साधना से, नित विग्रह बढ़ता जाता है।
मुरझायी जाती प्रजाबेल, नृप-संग्रह बढ़ता जाता है॥

नृप, गढ़पति, माण्डलीक राजा, जो चाहे निज को कहता है।
झूठे मद में, गिरि के नद सा, स्वच्छंद निरंकुश बहता है॥

केवल फल के भागी शासक, रस के रसज्ञ कहलाते हैं।
जन हित की बात जहाँ आती, वे कौशल से बहलाते हैं॥

हर जगह कलह संघर्ष बढ़े, झड़पों में युद्ध उभरते हैं।
हो सकती नहीं शान्ति वर्षा, शोणित के झरने झरते हैं॥

जन में है मानसिक द्वन्द्व, तिल भर भी कहीं विकास नही।
ऐसी सुविधा, ऐसा शासन, जनता को आता रास नही॥

थी एक देह था एक गेह, परिपूर्ण नेह की आशा थी।
हो गयी आश वह खण्ड-खण्ड, जिस सर समेह की आशा थी॥

साहित्य, कला जन संस्कृतियाँ, बन्धित कारा सी लगती हैं।
इनमें जीवन संचरण नहीं, छिछली धारा सी लगती हैं॥

रुक गया सभ्यता का विकास, नूतन प्रकाश सोया सा है।
अथवा उपवन में यों लगता, जैसे जीवन खोया सा है॥

दीखते राज्य ऐसे पर्वत, जिन पर न कहीं हरियाली है।
निज आत्म-तेज से शून्य नृपति, मद की मदिरा छलकाली है।।

है ऊँच-नीच का भाव बड़ा, आँखे यथार्थ से मीचें हैं।
संघर्ष, कलह, विग्रह से ही, अपने अंतर को सींचे हैं।।

आदमी आदमी के समक्ष, छोटा या बड़ा कहा जाये।
मानव क्या पत्थर प्रतिमा है, जिससे अन्याय सहा जाये।।

जब तक जीवित हूं धरती पर, अन्याय नहीं होने दूंगा।
बल रहते सबल भुजाओं में, विश्वास नहीं खोने दूंगा।।

जनता दुखियारी रोती है, एकता सूत्र में बाँधूगा।
पथ में जो भी बाधक होगा, उस बाधा से रण ठानूँगा।।

वैभव एकत्र बिखर जाये, मुझको यह नहीं सुहाता है।
राजा सब का संरक्षक है, राजा का सबसे नाता है।।

–: दोहा :–

सभा हुयी गम्भीर तब, सुनी साहसिक बैन।
नव आशा किरणे जगीं, गई अँधेरी रैन।।

नृपति भरत ने दृश्य सब, किया प्रकट सह खेद।
भाव उदित यह क्यों हुआ, समझा एक न भेद।।

रीति, नीति, भय, प्रीति से, थे परिपूर्ण स्वदेश।
कहीं दीखता था नहीं, एकात्मा परिवेश।।

★

बोला मंत्रीवर आज्ञा ले, प्रभुवर चिन्तन समयोचित है।
हम सब मिलकर दे मूर्त रूप, कर्त्तव्य यही परमोचित है।।

उस आर्यवर्त्त की रक्षा का, जो प्रण है वह छूटे न कभी।
इस तन की श्वास भले टूटे, यह आर्यवर्त्त टूटे न कभी।।

जो परिधि बनाये पृथक-पृथक, उसको न सफल होने देंगे।
घर में मिलकर लेंगे सह सब, रिपु को न शूल बोने देंगे।।

बल से, विक्रम से, वैभव से, संयम से, शील तपस्या से।
एकता हेतु हम जूझेंगे, मिलकर हर एक समस्या से।।

हम में चारित्र उच्चता है, हम में संयम की ऋजुता है।
हम में आर्जव, औदार्य भरा, हम में प्रभुवर की प्रभुता है।।

प्रण पर प्राणों से खेलेंगे, निश्चय को लेकर लौटेंगे।
यदि पूर्ण नहीं तो यह प्रण है, प्राणों को देकर लौटेंगे।।

संरक्षण पाकर प्रभुवर का, क्या नहीं धरा पर पालेंगे ?
यदि रही कृपा प्रभु चरणों की, अभिलषित लक्ष्य लाकर देंगे।।

एकता, सर्वहित, धर्म वृद्धि, यह ही तो नीति हमारी है।
इस सुभग-नीति-आपूर्ति हेतु, रहती अपनी तैयारी है।।

संकेत नाथ का हम पाये, पूरा कर अभी दिखाते हैं।
स्वामी की सेवा में ही हम, जीवन की सीमा पाते हैं।।

—: दोहा :—

भावुकता से हो गये, सब आनन्द विभोर।
नृपति भरत के वचन सुन, मन में उठी हिलोर।।

—: कवित्त :—

एकाएक जो भी है उठाते अनबूझ पग,
परिणाम देख कर वही पछताते हैं।

जिस करनी में बुद्धि का न रंच योग होता,
बुद्धि बल के अभाव वाले हार जाते हैं ।।
कर्म करने से पूर्व योजना महत्वपूर्ण,
कोई गतिरोध फिर पास नहीं आते हैं ।
जो भी संतुलित कर्म-वीर-धीर धरती पे,
योजना से बद्ध हो के पग को उठाते हैं ।।

।। दोहा ।।

भावुकता में हो गये, हम कर्त्तव्य - विमूढ़ ।
दे प्रबोध चेतन करो, आज बने हम मूढ़ ।।
प्रभु वर दे आशीष औ, हम सब को आदेश ।
घोर तमिस्रा में प्रभो, चमके दिव्य दिनेश ।।

★

बोले राजा हे सभासदों, पाओगे जय क्या संशय है ।
बल, विक्रम, शील, पराक्रम का, अपने घर में जब संचय है ।।
प्राणों को लिये हथेली पर, जो युद्ध-पोत के साथी हैं ।
जिनके कर, पग में पवन बसा, घोड़े, पैदल, रथ, हाथी हैं ।।
वीरों ने सीखा रण-कौशल, मन मे उमंग जय पाने की ।
कटु वज्रपात की इच्छा है, अरि के सिर शर बरसाने की ।।
मद मे सोये भूपतियों को, सिहों का बोल सुनाना है ।
एकात्म सूत्र में बँधने का, उपयोगी पाठ पढ़ाना है ।।
यों एक-एक भूपतियों को, योजना - सूत्र में बंधना है ।
है एक राष्ट्र, है एक नीति, सुन्दर मणि माला बनना है ।।

जन का हित सबको सर्वोपरि, रक्षा उससे भी ऊपर है।
सब का ही स्वागत करना है, जो भी अपना इस भू पर है।।

यों तो सब कुछ सुन्दर लगता, व्यवहार किन्तु आसान नहीं।
वह कर्म कौन, वह क्षमता क्या, जिसके पथ में व्यवधान नहीं।।

पर याद रहे झरने बढते, लड़ते - भिड़ते चट्टानों से।
चूमते शीश पर्वत के भू, विष बुझे वीर के बाणों से।।

रवि किरणों से बढ़ते जाओ, घन तिमिर मिटाना है तुमको।
जिससे न उगे फिर अँधकार, वह सभी जुटाना है तुमको।।

सेना पति सुने ध्यान देकर, सब बल एकत्र किया जाये।
एकता हेतु सब ओर चलें, इस पर ही ध्यान दिया जाये।।

जब तक भय नहीं दिखाओगे, यों ही कोई क्यों मानेगा।
बल के अभाव में श्रेष्ठ ज्ञान, कोरी बातें जग जानेगा।।

वर रीति नीति प्रभुसत्ता को, सब को बतलाते जाना है।
किस तरह प्रशासन चलना है, सबको समझाते जाना है।।

हो रीति, नीति से काम प्रथम, सबके हित साज सजाना है।
व्यवहार मिले पशुता का जब, तब तो तलवार उठाना है।।

लूटना किसी का कोष नहीं, पीड़ा न कहीं पहुँचानी है।
जिससे जन का सुख साधन हो, आदर्श-रीति अपनानी है।।

बन्दी न बनाना है तुमको, उत्पात अधिक न मचाना है।
दिखला बल का वैभव प्रचण्ड, पथ पर सबको ले आना है।।

साहित्य, कला, संस्कृति दृढ़ हो, जीवन गंगा की धारा हो।
यह देश हिमालय के समान, निर्मल उद्देश्य हमारा हो।।

जन हानि या कि हो मान हानि, अधिकार हनन से होगा क्या ?
समता ममता न जगेगी यों, अभियान सृजन से होगा क्या ?

॥ दोहा ॥

सुन प्रेरक प्रभु के वचन, जन-मन उठी उमंग ।
लक्षित तट छूने चली, मानों जलधि तरंग ॥

उठी विज्ञ जन मण्डली, पहुँची नृपति समीप ।
नृप शोभा तब यों लगी, ज्यों जलनिधि मे द्वीप ॥

समता के अभियान का, करने लगे विचार ।
संग-संग प्रस्थान के, करना है व्यवहार ॥

सकल एकता सूत्र का, यही प्रथम अभियान ।
भरत सदृश ही लोग जग, करते कार्य महान ॥

–: हरिगीतिका :–

प्रस्थान हित साकेत में, रण भेरियाँ बजने लगीं ।
चतुरांगिनी जागृत हुयी, बहु टुकड़ियाँ सजने लगीं ॥

बहु अस्त्र शस्त्रों की सजग, झंकार श्रवणों ने सुनी ।
वर व्यूह रचना के लिये, सद् योजना मन मे बुनी ॥

सागर तरंगों के सदृश, उद्दीप्त उन्नत भाल है ।
वर देवियों के हाथ मे, प्रस्थान पूजा थाल है ॥

गिरिराज की चोटी सदृश, क्षण-क्षण उमगता वक्ष है ।
लक्ष्य पाने के लिये, हर वीर का पग दक्ष है ॥

॥ दोहा ॥

घर-घर हैं तैयारियाँ, निश्चित कल प्रस्थान ।
हैं सब साधन प्रकट ही, सोये सब व्यवधान ॥

विजय, लाभ, यश हेतु है, यह वर्णन पठनीय ।
आर्य वर्त्त में यह हुआ, प्रथम कर्म कमनीय ॥

विजय अभियान वर्णन

-: दोहा :-

विश्व हितैषी पंथ में, जो रहता लवलीन ।
खुशी - खुशी होते रहे, जन उसके अधीन ।।

वक्ता, तपसी, संत जन, ज्ञानी सम्यक् वीर ।
अपने सुख को त्याग कर, हरते हैं जन पीर ।।

मन पर्वत, वाणी नदी, सुख दुख दोनों कूल ।
भूमि-भूमि पति के लिए, दोनों ही अनुकूल ।।

वीर नहीं सुख खोजते, खोजे सदा अधीर ।
कष्ट नदी तरते सदा, हरते हैं जग पीर ।।

जिसने निज सिर धार ली, वीर चरण की धूल ।
उसके कवि "नागेन्द्र" है, कौन जगत प्रतिकूल ।।

✱

दिग्विजय हेतु सेनायें सज, कोसों में पंख पसारे हैं ।
जय घोष दुंदुभी के द्वारा, भू-नभ के मिले किनारे हैं ।।

आदेश प्राप्ति के लिये श्रवण, है राज-द्वार की ओर लगे ।
नैनों के घोड़े दौड़ रहे, कब हाथ आज चित चोर लगे ।।

तन का बल आज आजमाना, उठ रही बड़ी अँगड़ाई है ।
वह अवसर आज मिल रहा है, इच्छुक जिसकी तरुणाई है ।।

रण भूमि फैसला कर देगी, रण कौशल किसमें कितना है ।
उतना यश-रण में पा लेगा, रण कौशल जिसमें जितना है ।।

प्रण मिले, मिले या महा मृत्यु, इसकी कोई परवाह नहीं।
बिन लड़े वीर पद मिल जाये, ऐसी भी कोई चाह नहीं ।।

वांछित रण का क्षण मिल जाये, योद्धा ने तब सब कुछ पाया।
योद्धा का जीवन व्यर्थ गया, रण कौशल अगर न दिखलाया ।।

वह अवसर आया आज निकट, जिसको अनेक अभ्यास किये।
ऐसा कुछ आज दिखा पायें, जिसको लेकर इतिहास जिये ।।

सोचते - सोचते वीरों के, रण भेरी इतनी सघन हुयी।
अश्वों, असि, धूल गुबारों में, मानसिक शक्ति अति मगन हुयी।

रण आंगन वीर बिफरते से, दिखलायी उनको देते थे।
अरि के सुभटों को कौशल से, अपने वश में कर लेते थे ।।

उस ओर द्वार पर भीड़ बड़ी, कुछ भी न सुनायी देता है।
बढ़ रहे नृपति हैं द्वार ओर, कुछ भी न दिखायी देता है ।।

जय ऋषभदेव! जय भरतेश्वर!, नभ गूँज रहा जयकारों से।
साहस वीरों का दूना है, प्रेरणा पूर्ण हुंकारों से ।।

फिर कुल के पूज्य पुरोहित ने, शुभतिलक किया रोली द्वारा।
सर्वत्र महा मंत्री जी की, कल्लोलित हुई विजय धारा ।।

कितनों ने बढ़ आशीष दिये, विजयी माला पहनाई है।
ऐसे खुशियों के अवसर पर, रणभेरी ही शहनाई है ।।

अरि-प्राण-घातिनी असि कर में, मुख पर मुस्कान सुहाती है।
मस्तक पर चमक मुकुट की है, चपला को सहज लजाती है ।।

गजराज सदृश है मन्द चाल, सिंहों सा वक्ष कसीला है।
उन्नत ललाट, ग्रीवा विशाल, नृप का हर अंग सजीला है ।।

विदुषी रानी ने राजा की, बढ़कर आरती उतारी है।
मानों जग-हित भागीरथ ने, गंगा की धार संवारी है॥

आषीष कामना वर्षा जल, धीरे - धीरे बढ़ता जाता।
जल धारा सा साहस पारा, आगे आगे बढ़या जाता॥

देवता वृन्द सुर लोकों से, उत्सव हित आन पधारे हैं।
प्रस्थान समय आनंदोत्सव, सरिता के कहीं किनारे हैं॥

आकाश मार्ग से फूलों की, नृप आंगन में वर्षा जारी।
बह रही वायु है गंध-युक्त, मोहक मोहक प्यारी प्यारी॥

—: कवित्त :—

कोई गा रहा है गीत, विलस रही है प्रीति,
न्यारी भावना की रीति, नाचे मन-मोर है।

कहीं आशिषों की भीड़, कहीं ये सुखद नीड़,
कोई रह कर भीड़, चला चित चोर है॥

बज रहे वाद्य-यंत्र, फूंका मोहिनी का मंत्र,
मन है स्वतंत्र जैसे मानों घन घोर है।

कोई भी न व्यवधान, एक चलने की ध्यान,
जागा है विवेक ज्ञान, चलने का शोर है॥

भीड़ - धाप के समक्ष जलयान के समान,
अथवा विमान सा ही खड़ा हुआ रथ है।

सब के ही मन मे जगाता रति-भाव दृढ़,
लगता है रथ आज बना मनमथ है॥

भाग्यवान नृपति विराजने को आ रहे हैं,
विजय के हेतु आज खुला हुआ पथ है।
अद्वितीय रमणीय अवलोकनीय छवि,
रवि कवि कैसे कहे अन्त है न अथ है ।।

॥ दोहा ॥

सीमाओं से रहित है, यह शुभ विजयोल्लास।
नृपति निकट रथ आ गये, मुदित हुये सविलास ।।
भरत मध्य मन माँगते, यह वरदान विशेष।
यह जन इस अभियान, में भूले नही जिनेश ।।
एक आश, विश्वास है, और यही है टेक।
विजय-हार जो भी मिले, साथी रहे विवेक ।।

देवतावृन्द रथ शोभा लख, भीतर-भीतर हरषाये हैं।
अतिशय सुन्दर, अतिशय सुखकर, मुखसे यह वचन सुहाये हैं ।।
प्रस्थान समय की शुभ बेला, धीरे - धीरे आ पहुँची है।
जैसे नौका बढ़ते - बढ़ते, तीरे - तीरे जा पहुँची है ।।
सूरज मेघों के पाटों पर, रथ में यों नृपति विराजे हैं।
अभियान कार्य आरम्भ हुआ, गहगहे यंत्र बहु बाजे हैं ।।
सुन्दर फूलों, मोती, पन्नों, रत्नों की वर्षा बरस रही।
जैसे कि किसी पुण्यात्मा की, देहरी पुण्य से सरस रही ।।
संयम के रथ में पहिये हैं, श्रद्धा की झालर पड़ी हुयी।
हित-साधन से रथ बना हुआ, ममता जिसमें है जुड़ी हुयी ।।

सच, न्याय, अहिंसा, अपरिग्रह, तप, ज्ञान आदि के घोड़े हैं ।
सम्यक् ज्ञानी इस राजा ने, निर्लोभ भाव से जोड़े हैं ।।

निर्मल चारित्र सारथी है, दृढ़ता से रासे साधे हैं ।
है विजय-मोक्ष को चला नृपति, उर में जिनेन्द्र आराधे हैं ।।

रथ के बढ़ते, बढ़ चले सभी, गूंजा नभ जय-जयकारों से ।
चमकी नभ मे अतिशय बिजली, सब कौंध गया तलवारों से ।।

घन घटा सदृश ही गज सेना, लेती करवट सी उमड़ चली ।
निज रस से सराबोर करने, घनघोर घटा ज्यों घुमड़ चली ।।

रथ वाहन सरपट दौड़ चले, मानों सरिता ही उफन पड़ी ।
अथवा कि व्योम से तारों की, या उतर रही हो सुमन लड़ी ।।

फिर पवन - पुत्र ले पवन-वेग, आगे को भागे जाते हैं ।
भू का, नभ का हो शीघ्र मिलन, चादर फैलाते जाते हैं ।।

प्राणों को लिये हथेली पर, पैदल की चली कतारे हैं ।
कर में आयुध है, झण्डे हैं, नंगी कर में तलवारें हैं ।।

सूरज रथ साथ-साथ दौड़ा, गति की समता दिखलाने को ।
नृप के घोड़े निकले आगे, मानों गति कला सिखाने को ।।

—: कवित :—

हाथी, रथ, अश्व और पैदल के चलने से,
लगा धरती पे मचली सी तरुणाई है ।

अचला अचल सब हो गय चलायमान ।
धूलि उठने से लगा सोई अरुणाई है ।।

घनीभूत इतनी हुयी है धूलि धारा आज,
सृष्टि रंच-मात्र पड़ती न दिखलाई है।
रेणुमयी सृष्टि आज अवलोकनीय किन्तु,
सुखदायी किसी को, किसी को दुखदायी है ।।

★

वन, बाग, भूमि, सरिता तट से, सेनायें कर प्रस्थान रहीं।
पर्वत समक्ष भी झुके नहीं, मन में कर यही निदान रहीं।।

राजा का स्वागत करने का, जनता ने शुभ अवसर पाया।
राजा ने देखा मंगल है, सब ने मांगलिक गीत गाया।।

चौदह रत्नों से युक्त चक्र, सेना से आगे चलता है।
रक्षक बन चल देवता रहे, सूरज रथ देख मचलता है।।

नौ निधियाँ संग चल रही हैं, आनन्द सिन्धु लहराता है।
विजयोत्सव का अनुराग लिये, शुभ श्वेत केतु फहराता हैं।।

पावन सरिता तट गंगा की, शोभा लखकर नप हरषाये।
देवों ने नृप मुस्कान संग, बहु पुष्प व्योम से बरसाये।।

मन मोहक रेती गगा की, देखी, सैनिक ठहराये हैं।
परमेष्ठी पञ्च निशा में नृप, पूजा करके हरषाये हैं।।

भरतेश्वर ने प्रभु जिनवर से, नाना विधि यही विनय की है।
मेरी अभिलाषा है जिनवर, अब तो सर्वत्र विजय की है।।

प्रभु चरणों में श्रद्धा सचमुच, तब तो सर्वत्र विजय पाऊँ।
छल-छिद्र वृत्ति मेरी हो तो, निश्चित निगोद नगरी जाऊँ।।

अन्तर में अविरल भक्ति जगी, उर में अद्भुत विश्वास जगा।
करवटें बदलता, काल संग, सबको सुन्दर इतिहास लगा।।

सामने मगध का गर्व कोट, पाखण्ड सहेजे खड़ा हुआ।
सुख हेतु भ्रान्तियों को पाले, खोखले गर्व से अड़ा हुआ।।

-: दोहा :-

प्रभु जिनेन्द्र का ध्यान कर, और झुका कर भाल।
मगध नृपति के हेतु नृप, छोड़ा वाण कराल।।

गये निकल सब लोग नृप, सभा मध्य में बाण।
मृत्यु संदेशा द्वार पर, कहाँ मिले अब त्राण।।

उर काँपे, धीरज डिगा, नैनों मे अँधियार।
श्याम श्वेत मुख हो गये, देख मृत्यु को द्वार।।

★

दो क्षण में धीरज-भाव जगा, चटपट उस पार लगाने को।
भय-भीत दिशा मे जो सोया, जल्दी से उसे जगाने को।।

भौंहें तन कर के धनुष बनी, नैनों में खून उतर आया।
हिल उठे अधर, कांपा शरीर, रोमों का झुण्ड सिहर आया।।

नासा पुट दीर्घ हुये थोड़े, वाणी स्फुट हो बिखर गयी।
जागी प्रति शोध तीव्र ज्वाला, क्षमता की सीमा बिसर गयी।।

अल्पश्र मगध का स्वामी वह, सोचने लगा टकराने को।
लोभान्धकार में फँसा हुआ, अपना अस्तित्व मिटाने को।।

सूरज दीपक की टक्कर क्या, इनका न युद्ध जुड़ सकता है।
मच्छर से क्यों संघर्ष जुड़े, जो फूंकों से उड़ सकता है।।

बोला मंत्री मगधेश सुनो, अपने दल, बल को पहचानो।
छू चरण भरत के सुख भोगो, ये युद्ध व्यर्थ तुम मत ठानो॥

पत्थर पर्वत से टकरा कर, किस भाँति विजय कर पायेगा।
अपना सर्वस्व गंवाकर के, अवसर चूके पछतायेगा॥

जन, राज, कोश, आयुध, वैभव, कृषि, पशुधन, सब बच सकते हैं।
बोला अपूर्ण बलशाली के, कैसे रण को रच सकते हैं॥

आ गयी समक्ष में राजा के, अपनी बिसात पहचान गया।
निज के, स्वराज्य के, जन के हित, वह ठीक समय पर मान गया॥

आकर भरतेश निकट उसने, चरणों में शीश नवाया है।
कर दिये भेंट बहुमूल्य रत्न, वरदान अभय का पाया है॥

हर ओर विजय दुन्दभी बजी, दिशि-दिशि मे जय जयकार हुआ।
विजयाभियान में राजा को, यह विजय स्वप्न साकार हुआ॥

इस प्रथम विजय का समाचार, इठलाती पवन सुना आयी।
हर ओर हुये उत्सव अनूप, सोयी चेतना जगा आयी॥

॥ दोहा ॥

परिजन पुरजन पौरिजन, पाकर शुभ सम्वाद।
सबने माना भरत ने, राखी कुल मर्याद॥

धन्य हमारा जन्म है, धन्य हमारा भूप।
आत्म तेज से है प्रकट, निज मन के अनुरूप॥

है जन जन की कामना, जीवें कोटि वरीश।
आत्मिक बल के वृद्ध जन, देते हैं आशीष॥

★

इस प्रथम विजय से वीरों का, साहस हो गया चौगुना है।
आगे बढ़ने का, लड़ने का, उत्साह हो गया सौगुना है॥

मगधेश नृपति को संयम का, तप का सन्देशा देकर के।
जिनधर्म और अपरिग्रह का, सच का सन्देशा देकर के॥

प्रस्थान हेतु बज उठा बिगुल, सागर की लहरें उमड़ चलीं।
अरि-भू को डुबा बहाने को, श्यामली घटायें घुमड़ चलीं॥

सेना चलते, चल पड़ी धरा, सागर का अन्तर मचल उठा।
चल पड़ा साथ नक्षत्र लोक, चंचल मन भी हो अचल उठा॥

सब ओर उठा है कोलाहल, कुहराम सुनायी देता है।
कोसों में चलता सैनिक दल, अविराम दिखायी देता हैं॥

है पवन कह रही चले चलो, धारा कहती है रुको नहीं।
सागर की लहरों से उमड़ो, पर्वत चोटी सम झुको नही॥

आदेश मिला है सेना को, सागर तट पर रुक जाना है।
ऐसे साहस से चलना है, बाधा का शीश झुकाना है॥

इतना प्रचण्ड प्रस्थान देख, भयभीत हुये राजागण हैं।
संयम विवेक से जो कि शून्य, उनको ही भय के कारण है॥

भयभीत नृपों ने आकर के, चरणों में शीश झुकाया है।
अपने बहुमूल्य खजाने से, धन लाकर भेंट चढ़ाया हैं॥

नृप भरत भद्र की आज्ञा को, प्राणों का सम्बल माना है।
अनुयायी होकर जी लेना, इस में कौशल पहिचाना है॥

कुछ ने ललनाओं के द्वारा, बढ़कर नृप का सम्मान किया।
गजदन्त नील, मणि मुक्ता दे, बाधाओं को आसान किया॥

चमरी गायों के बाल मधुर, कस्तूरी भेंट चढ़ायी है।
बहु रत्न, स्वर्ण आभूषण की, दी भेंट परम सुखदायी है॥

जैसे सम्भव था शासन से, वरदान अनोखा पाया है।
एकता सूत्र में ही विकास, करने का अवसर आया हैं॥

कितने ही युद्ध बाँकुरों ने, सहयोगी पथ अपनाया है।
जिसने भी आँख तरेरी है, मुंह की खाकर पछताया है॥

सामारिक प्रश्न के कोट विपुल, सेना ने यों ही जीते हैं।
अन्तर्विवेक से जो जीते, वे जय का अमृत पीते हैं॥

कितनों ने शक्ति संतुलन में, अपनी स्थिति को जाना है।
गहरे सागर के चरणों को, सादर सब ने पहचाना है॥

इस भाँति नृपति चलते-चलते, गंगा सागर तट पर आये।
सेवक, सेनानी भृत्यों ने, विश्राम मनोवाँछित पाये॥

रमणीक जलस्थल गंगा का, पथ श्रान्ति मिटाये देता है।
तन मन की थकन रहे कैसे, पय पान कराये देता है॥

देवों ने अति प्रसन्न मन से, सुख साधन खूब जुटाये हैं।
देवता वृन्द को जो दुर्लभ, मनुजों ने वे सुख पाये हैं॥

—: कवित्त :—

सूरज की किरणो से पहले प्रस्थान किया,
सैनिकों के सामने न कोई व्यवधान है।

पाकर इशारा उड़ते हैं सब सेना - अँग,
जल, थल, नभ सब एक ही समान हैं॥

सेनापतियों के संग चला दक्षिण को दल,
पथ और लक्ष्य का ही सैनिकों को ध्यान है।
क्यों न उड़े बन कर सैनिक ये ज्योति पुंज,
स्वामी चक्रवर्ती जब भरत महान हैं॥

—: दोहा :—

चले सारथी साथ ले, नृपति भरत गम्भीर।
दृढ़ प्रभुत्व के प्राप्ति हित, पहुंचे सागर तीर॥

–: कवित्त :–

सारथी रुको न तुम सागर अपार देख,
मेरे बल विक्रम के अश्व पार जायेंगे।
उठती तरंगें काल-व्याल फन वाली धार,
इनको कुचल कर आज दिखलायेंगे॥
धराधर के समान उड़ता चलेगा रथ,
जल शिखरों पे अश्व अधिकार पायेंगे।
जल लोक वाणी कुछ देर में उदास होंगे,
गीत बल विक्रम के शानदार गायेंगे॥

★

आदेश सारथी ने पाया मन मे, बढ़ गया हौंसला है।
बोला सागर को जीतेंगे, मेरा भी यही फैसला है॥
बन कर अरूप सारथि बैठा, सूरज नृप आन विराजा है।
सूरज रथ-घोड़े दौड़ चले, अब और कौन अधिराजा है॥

सागर अब तक दुर्जेय रहा, उस पर यह प्रथम आक्रमण है।
रत्नाकर से टकराने का, यह उच्च कोटि का चित्रण है॥

नृप के रथ की गति को लखकर, जलचर अतिशय घबराये हैं।
यह कौन महाबलशाली हैं, जो सिन्धु विजय को आये हैं॥

आ रहे रौंदते सीमा को, निर्णय सुखदायी लेते हैं।
परवाह मृत्यु की तनिक नहीं, निर्भीक दिखायी देते हैं॥

देवाधिदेव, दुधर्ष वीर, कोई भी इधर नहीं आया।
लगता है इसको महाकाल, बल पूर्वक आज खींच लाया॥

आश्चर्य भाव के पुतले थे, आगे ही बढ़ते जाते हैं।
अविजित राक्षसी तरंगों को, छाती पर चढ़ते जाते हैं॥

द्वादश योजन कर जलधि पार, रथ को जाकर के रोका है।
मानों सागर का महादम्भ, रथ ने चूल्हे में झोंका है॥

भयभीत हुआ सागर का जल, रथ देख आप ही ठहर गया।
मानो रत्नाकर के शिर पर, भय का काला घन घहर गया॥

—: दोहा :—

निज नामांकित तीर ले, किया धनुष संधान।
ऋषभदेव के भरत को, सिन्धु गया पहिचान॥

द्वादश योजन जलधि तक, हुआ राज्य विस्तार।
मुद्रा अंकित भरत की, प्रभुता का शृंगार॥

★

रथ लौट किनारे पर आया, फहरा कर झण्डा प्रभुता का।
जैसे प्रकाश हो फैल गया, सूरज की अद्भुत विभुता का॥

आगे-आगे रथ दौड़ चला, पीछे सेना चलती जाती।
अभिमानी क्रूर नृपों का बल, सेना निर्भय दलती जाती ।।

प्रभुता सूरज फैलने लगा, भगता जाता अँधियारा है।
भरतेश नृपति का चमक गया, भारत में उच्च सितारा है ।।

वर्चस्व देख कितने राजा, बन कर आधीन पधारे हैं।
कितने भूपतियों ने अपने, सोये सौभाग्य संवारे हैं ।।

कितने राजा तज गये राज्य, छिप कर निज लाज बचाने को।
किंचित साहस न जुटा पाये, जड़कर रण-रंग रचाने को ।।

जिसकी कुछ तिरछी आंख लखी, उसके फिर प्राण न बच पाये।
वे अपने प्राण गँवा बैठे, जो विद्रोही सन्मुख आये ।।

दक्षिण से पश्चिम दिशा चले, हर जगह विजय ही पायी है।
पश्चिम से उत्तर अंचल तक, भरतेश्वर की प्रभुताई है ।।

आनन फानन नृप राज बहुत, सेना से सज्जित बल वाले।
तेजस्वी शक्ति पराक्रम से, सब अपने वश में कर डाले ।।

पहुंचे जाकर वृषभाचल पर, निज शौर्य भरत ने अवगाहा।
शुभ नाम सपाट शिला पर, तब अपना अंकित करना चाहा ।।

मैं ही तो प्रथम चक्रवर्ती, मन में विचार यह आया है।
लिखने को नृपति बढ़, पत्थर कोई भी रिक्त न पाया है ।।

फिर इतने नाम लिखे देखे, लिखने को खाली जगह नहीं।
आश्चर्य नाम को लिखने की, पर्वत पर पाई जगह नहीं ।।

हो गया गर्व गिरि चूर-चूर, क्या मैं सम्राट अनोखा हूं ?
मैं अब तक समझ रहा था यह, "मैं श्रेष्ठ विराट अनोखा हूं" ।।

फिर किसी और नृप की प्रशस्ति, अपने ही हाथ मिटाई है।
अपने कर से अपनी प्रशस्ति, लिखकर यश तृषा बुझाई है॥

॥ दोहा ॥

भरत नृपति विजयार्थ गिरि, आये तत्पश्चात्।
विद्याधर नृप भेट ले, गिरे चरण जलजात॥

नमि विद्याधर नृपति ने, दी भगिनी उपहार।
अपनाया है भरत ने, परम्परा अनुसार॥

यही पट्ट महिषी हुयीं, यही राज्य शृंगार।
परम प्रिया बन नृपति की, भोगे भोग अपार॥

—: कवित्त :—

अँग, बंग, कुरु, काशी, कामरूप, मध्यदेश,
कच्छ, चेदि, वत्स, गौड़ आदि जीत आये हैं।

कौशल, अवन्ती, पुण्ड, भिल्ल देश, मल्लदेश,
पौरुष प्रचण्ड के सम नत पाये हैं॥

ऋष्यमूक, कोलाहल, माल्य, नागप्रिय आदि,
गिरि, चेदि कृकश भी हाथों रौंद आये हैं।

गंगा, वंगा, इक्षुमती, नक्ररवा, गोदावरी,
सूकारिका, कृष्ण वेणानदियों नहाये हैं॥

जल, थल, वन, बाग, उपवन, वाटिकायें,
नदी, कूप, सर, वाणी, सागर सुहाये हैं।

पुर, गाँव, दुर्ग, कोट, राज सौध, कुटियायें,
भवनों में प्रभुता प्रसाद बाँट आये हैं ।।

गढ़पति, माण्डलीक, सेना, सेनापति, नृप,
बल के समक्ष सब नम्रीभूत पाये हैं ।

कल तक भरत थे नृपति अयोध्या के ही,
आज चक्रवर्ती बन कर घर आये हैं ।।

—: दोहा :—

दिग्विजयी वर भरत जब, घुसे अयोध्या धाम ।
कुशल क्षेम से देख कर, जन-जन किया प्रणाम ।।

अष्ट मांगलिक द्रव्य ले, गये जिनालय आप ।
तन प्रफुल्ल, मन पुलक अति, मिटा पथ का ताप ।।

निज पर कृपा विशेष लख, नृप वर श्रद्धा-तीर ।
इस प्रकार प्रकटित हुये, गद्गद् वच गंभीर ।।

—: हरिगीतिका :—

है यह अनुग्रह आपका, जो आज मैं विजयी हुआ ।
चक्रवर्ती मैं बना, ये देश जो विनयी हुआ ।।

इतनी कहाँ सामर्थ्य थी, पग-पग विजय मिलती मुझे ।
श्रद्धा सहित हर हाल में, कलिका मिली खिलती मुझे ।।

एकता के सूत्र में यह, देश बध प्रभुवर गया ।
अब नयी उपलब्धि हित, जागे सदा सागर नया ।।

झुकने न पाये देश यह, है देव अब वह शक्ति दो।
शक्ति के ही संग में, वर बुद्धि दो वर भक्ति दो ॥

-: दोहा :-

विविध भांति करके विनय, भरत चले निज धाम।
जो मुनि तिष्ठे थे वहाँ, सब को किया प्रणाम ॥

घर - घर उत्सव हो रहे, महा मंगलाचार।
दनुज - मनुज देवादि गृह, नृपवर जय जयकार ॥

विजय कामना को लिये, पढ़े विजय अभियान।
मन की आशाएँ करे पूर्ण, ऋषभ भगवान ॥

भाई बहनों का वैराग्य वर्णन

—: हरिगीतिका :—

धन्य है वह दृष्टि जो, पहचान लेती तथ्य को।
और मिथ्या धूलि से चुन, प्रकट करती सत्य को।।
छिप न पाती एक भी, जिससे कभी छल-छिद्रता।
सुजनता, निष्पक्षता, या युक्ति-संगत-भद्रता।।
यह दृष्टि हो तो व्यक्ति को, संलग्न करती भोग में।
जोड़ती है योग से या, ठेलती भव रोग में।।
जब तथ्य पुस्तक पृष्ठ का, पढ़ती कभी तो भाग है।
पथ्य को यह खोजती हैं, जागता वैराग है।।

★

सरिता के तीर सीपियों मे, चाँदी सी हँसी सुहाती है।
जन मन के आर पार जाकर, कैसी खुशियाँ बरसाती है।।
मन तो करता है सरिता के, सीपी सब एकत्रित कर ले।
भर ले सब मन के आंगन मे, खुशियाँ सब आमंत्रित कर ले।।
पर और-और की प्यास बिकट, जग कर जब विकल बनाती है।
एकाकी चाहत सीपी की, निशि-बासर चपल बनाती है।।
सीपी के सिवा निगाहों को, कुछ भी न दिखायी देता है।
द्रव्यानुयोग उसको सारा, खारा दिखलायी देता है।।
मोहादि-तिमिर का चश्मा जब, जिस समय उतर कर गिर जाता।
रह जाती याद सीपियों की, मन और दिशा में फिर जाता।।

गुरु कुशल चिकित्सक जब मिलता, नैनों का दोष मिटा देता।
उसके चरणों में मन - मतंग, सौपी - सर्वत्र लुटा देता॥

वह लगा नित्य ज्ञानांजन को, नित सत्य निहारा करता है।
निज को, पर को क्यों कष्ट मिले, पथ नित्य बुहारा करता है॥

सरिता हो, तीर सीपियाँ हों, चांदी की झड़ी बरसती हो।
मुदिता बन सरसे मनोवृत्ति, भोगों को नहीं तरसती हो॥

जन रहे कमल वत् पानी में, मोहादि जाल में फँसे नहीं।
वह चाक्षुष धर्म निभाता हो, सुख दुख पाकर के हँसे नहीं॥

प्रभु ऋषभ देव वर हिमगिरि से, फूटी वाणी - रसधार यही।
अब-जग रूपी जन-मन सीमा, दीखी प्रसन्न रससार मही॥

रस सरस रमा पर दीख पड़ा, यह सब प्रकाश की माया है।
आभा सागर प्रभु ऋषभ देव, जिन से प्रकाश यह आया है॥

प्रभु ऋषभदेव से पा प्रकाश, तम का सुख दुख है त्याग दिया।
पहिचान लिया सच्चे सुख को, इसलिये आप बैराग लिया॥

धरती पर सच्चा सुख पाना, जन को यों ही आसान नहीं।
वह कैसे सुख पा सकता है, जिसको निजता का ज्ञान नहीं॥

अभिमान कर्म का जो करता, अथवा जो कर्ता बनता है।
सुख के भागी दोनों न यहाँ, जो भी बढ़ता, सिर धुनता है॥

सुख पाने को अपने में हो, खोजते हुये लय होना है।
इस ध्यान शृंखला का मुड़ना, कुढ़ना जीवन भर रोना है॥

जिनने प्रभु वर की वाणी पर, मन से सचमुच ही ध्यान दिया।
लेकर के प्रभु से दीक्षा को, भव दुर्लभ अमृत पान किया॥

प्रभु समवशरण में भरत संग, ब्राह्मी भगिनी ने आ कर के।
अपना जीवन कर लिया धन्य, बैराग्य पंथ अपना कर के॥

अपना सुख राज भोगने के, ब्राह्मी को रोक न पाये थे।
बैराग्य पंथ पर चलने को, ब्राह्मी को टोक न पाये थे॥

बस त्याग भाव ही ब्राह्मी ने, अपने जीवन मे व्याप्त किया।
आर्यिका बनी दीक्षित होकर, गणिनी उत्तम पद प्राप्त किया॥

॥ दोहा ॥

बहन दूसरी सुन्दरी, थी रूपसि गुणवान।
अभी भोग-भव लालसा, बनी हुयी व्यवधान॥

समवशरण से भरत संग, आयी चल सुखपाल।
राज सौध भी उस समय, हुआ उसे न रसाल॥

-: कवित्त :-

रूप गुण आगरी सो सुन्दरी विभावरी सी,
बन नय नागरी सो कर्म धालने लगी।

रूप बनिता के सुख सरिता के तट-युग,
मोह ममता के कटु जाल टालने लगी॥

प्रेम, सत्य, श्रद्धा और न्याय प्रियता का भाव,
लाकर के अन्तर में दीप बालने लगी।

ऋजुता से, मृदुता से, अन्तर से, बाहर से,
होकर अनन्य जिन् धर्म पालने लगी॥

★

मोहादि त्याग का भाव स्वयं, सुन्दरि के अन्तर में जागा।
जैसे कि सूर्य की किरण देख, हो अन्धकार डर कर भागा॥

जैसे प्रभात के ओस बिन्दु, कुछ क्षण को शोभा देते हैं।
ऐसे ही भव के भोग भाव, जन को मोहित कर लेते हैं॥

जैसे प्रभात में ध्रुव तारा, देखते हुये छिप जाता है।
ऐसे ही भव के संग्रह में, कुछ अपने हाथ न आता है॥

जो आज बहुत ही मोहक है, कल तक वह बात नहीं रहती।
जो आज बुलाती कलिका है, कल को कुछ बात नहीं कहती॥

मन खोज-खोज मे कभी-कभी, सब चूर-चूर कर देता है।
जीवन के सच्चे आश्रय से, बस दूर-दूर कर देता है॥

भोगों से सच्चे जीवन की, भूतल अम्बर की दूरी है।
अज्ञान आदि के कारण से, बन्धन सहना मजबूरी है॥

लेकिन प्रकाश को पाकर के, अँधियारा किसको प्यारा है।
अज्ञान जीव को जगती में, घन-गूढ़ तमस् की कारा है॥

सुन्दरी तथ्य अब जान गयी, मानों सोते से जागी है।
तन-मन का मोह छोड़कर के, हर माया ममता त्यागी है॥

कल तक जिसमे सुख दीख रहा, दीखी अब उसमें ज्वाला है।
तत्काल सुन्दरी के सन्मुख, आया विराग उजियाला है॥

जा समवशरण में सुन्दरि ने, प्रभु का शुभ दर्शन पाया है।
दीक्षा लेकर के प्रभुवर से, मानों तन मन हर्षाया है॥

—: दोहा :—

मिटे, विरह, दुख - सुख, निचय औ रागादिक दोष।
मिली ज्ञान-सन्तोष निधि, मिला शान्ति का कोश ॥

जगी सुन्दरी के हृदय, ज्ञानराशि पद - प्रीत।
उर मे श्री अरहन्त का, जगा मधुर संगीत ॥

—: कवित्त :—

राज भोग का विचित्र, धरती पे योग रहा,
कोई इस रोग से, बचा न अधिकारी है।

जो भी इस धरती पे, मेरे ही आधीन रहे,
इस कोटि की ही नीति, सदा से विचारी है ॥

कोई रीति, कोई नीति, कोई प्रीति, कोई भीति,
राज-भोग हित नृप सब चित्त धारी है ॥

सब सुख भोगता है फिर भी न तृप्ति होती,
पालके विकार सदा बना अविकारी है ॥

*

होकर दिग्विजयी जब लौटे, दिशि-दिशि मे जय जयकार हुआ।
गहगहे निशाने झूम उठे, अनुपम स्वागत सत्कार हुआ ॥

अद्भुत घटना घट गई एक, जिससे विस्मय विस्तार हुआ।
रह गयी तर्जनी ठोड़ी पर, चिन्तित सा जय जयकार हुआ ॥

मंत्री ने आ भरतेश्वर को, संकट की बात सुनाई है।
बढ़ रहा नगर में चक्र नहीं, यह कैसी बाधा आई है ॥

जो चक्र किसी बल के आगे, पल भर को भी है रुका नहीं।
बाधाएँ कितनी ही आई, सिर कभी चक्र का झुका नहीं ।।

जल में, थल में, गिरि कानन में, सर्वत्र विजय कर आया है।
वह चक्र नगर में आ न रहा, यह किसने जाल बिछाया है ।।

तब तुरत पुरोहित बुलवाये, पूछा इसका क्या कारण है ?
अब यह विघटनकारी स्वरूप, कर रहा चक्र क्यों धारण है ?

जल के प्रवाह में सीधे पड़, धारा में मछली जाती है।
गजराज बली की धारा में, ताक़त भी काम न आती है ।।

बोले भविष्य वक्ता पण्डित, नृप की यह विजय अधूरी है।
निर्द्वन्द्व बली है, बाहुबली, इसलिये चक्र से दूरी है ।।

दिग्विजयी अभी न आप हुये, ये चक्र न पुर मे आयेगा।
जब तक बलशाली बाहुबली, आ मस्तक नहीं झुकायेगा ।।

जब सुनी पुरोहित की वाणी, मानों सुमेरु भू पर आया।
हो सकी विजय यह पूर्ण नही, मन को ईर्ष्या ने भड़काया ।।

मंत्री वर ने भरतेश्वर को, सुन्दर सी युक्ति सुझाई है।
हो सामनीति का सदुपयोग, जो सब प्रकार सुखदायी है ।।

वर बाहुबली के निकट दूत, संदेश आपका ले जाये।
जैसे उत्तर दे बाहुबली, संदेश आप तक ले आये ।।

प्रभु सत्ता मे, विश्वास करें, तब फिर अधीनता स्वीकारें।
यदि नहीं, शक्ति बल लेकर के, आये रण में ले तलवारें ।।

अभियान दिग्विजय का योंही, प्रभुवर पूरा हो सकता है।
जो फंसी पंथ में विकट पंक, यह युक्ति नीर धो सकता है ।।

॥ दोहा ॥

भरतेश्वर को बात यह, रुचिकर लगी विशेष ।
दूत पत्र ले जाये अब, बाहुबली के देश ॥

जैसे भी हो शोघ्र अब, बीते ऋतु हेमन्त ।
पुलकित वातावरण हो, आये रम्यवसन्त ॥

मानेंगे वे बात यह, मुझको है विश्वास ।
पहचानेंगे शक्ति का, सही विरोधाभास ॥

*

हो गया दूत प्रेषण निश्चय, नृप की दिग्विजय अधूरी है ।
जब तक कि दूत आये न लौट, भरतेश्वर की मजबूरी है ॥

विष बुझे तीर के विष समान, जनता तन मे विष पसर गया ।
उन्माद विजय का चढ़ा हुआ, वह क्षण भर में ही उतर गया ॥

सब सोच रहे अब क्या होगा, नृप बाहुबली क्या मानेंगे ।
अथवा अधीनता का सुझाव, सुन कर लड़ने की ठानेगें ॥

देवादि पूज्य, जीवनाराध्य, प्रभुवर ही कुछ कर सकते हैं ।
जो अन्तराल अन्तर में है, मोहादि लोभ हर सकते हैं ॥

प्रभु ऋषभदेव, प्रभु आदिनाथ, हमको सनाथ कर सकते हैं ।
करुणावतार, वे शील सिन्धु, पोड़ा सब की हर सकते हैं ॥

अब दूत लौट जल्दी आये, प्राणों मे प्राण लौट आये ।
परिणाम पक्ष में ही आये, अर्जित सब पुण्य संवर जाये ॥

विश्वास हमें है बाहुबली, कहना नृपवर का मानेंगे ।
जन के, मन के, भू मण्डल के, हित को अपना हित जानेंग ॥

सोचा नृप वर ने बाहुबली, हैं अनुज किन्तु बलधारी हैं।
नीतिज्ञ, विज्ञ हैं, सागर हैं, अन्तर्मन से अविकारी हैं॥
रण-विक्रम में अतिशय महान, अविराम शक्ति का साधक है।
वह मान वीर, वह युद्ध वीर, मानव हित का आराधक है॥
जो अन्य अनुज उनके समक्ष, संदेश दूत ले जायेंगे।
जैसी उनकी इच्छा होगी, आकर संदेश पठायेंगे॥
जो होगा, देखा जायेगा, मन में कोई संदेह नहीं।
संशय से भरे हुये मन को, मिलता है निर्मल नेह नहीं॥

॥ दोहा ॥

मंत्री वर ने नृपति के, सुन उपयुक्त विचार।
देकर के संदेश नृप, दूत किये तैयार॥
दूतों ने निज शीशधर, नृप पग तल की धूल।
आदिनाथ की बोल जय, लिया मार्ग अनुकूल॥
अश्व पवन के संग मे, भरते चले उड़ान।
लिये शक्ति संतुलन का, मान भरा व्यवधान॥

★

नृप-अनुज निकट दूतों ने जा, नृप का संदेश सुनाया है।
ऊपर से सबकुछ शान्त लगा, अन्तर मे विस्मय पाया है॥
प्रभुता सत्ता का कुटिल रूप, यह बाहुबली न पचा पाये।
इसके विरोध में कुपित भाव, नयनों में स्वतः उतर आये॥
बढ़ गई लालसा इस हद तक, भाई भी आज न भाई है।
भाई, भाई में यह दुराव, यह तो महान दुखदायी है॥

यह सब हमको रूचिकर न लगा, हमको विचार करना होगा।
क्या करें और क्या करे नहीं, हमको निर्णय करना होगा ।।

जग रही घृणा जग वैभव से, जिसमें इतना आकर्षण है।
जो पाने को कर रहा भ्रात, सारे सम्बन्ध समर्पण है ।।

यह राज्य पिता का दिया हुआ, जो सब के परम हितेश्वर हैं।
उनकी निगाह में एक सभी, अलबेले क्या भरतेश्वर हैं ।।

आदेश नाथ का पाने को, मिलकर सबको जाना होगा।
करणीय हमें इस क्षण क्या है, आदेश हमें पाना होगा ।।

—: दोहा :—

नृपति - दूत के साथ मे, किया मृदुल व्यवहार।
शयन, अशन, रुचिकर दिये, दिये विपुल उपहार ।।

राजोचित उत्तर लिखा, राजनीति अनुसार।
नृप-अनुजों ने दूत सब, विदा किये साभार ।।

—: कवित्त :—

कोई सूचना को सुन, भूल गये राव रंग,
कोई निज अन्तर से नृप अकुलाने हैं।

कोई सोचते हैं नृप भरत ने सोचा है क्या,
कोई सोचवश हुये जान कर अजाने हैं ।।

कोई अकुला के प्रभु ऋषभ का नाम रटे,
कोई जग सुख देख कर के अघाने हैं।

कोई पछताने राज भोग को ही पाकर के,
कोई कहे अब प्रभु पग ही ठिकाने हैं ।।

*

देखा सब राजकुमारों ने, प्रभु फटिक शिला पर साजे हैं ।
इस दिव्य शिला के आसपास, मुनिवर इत्यादि विराजे हैं ।।

सब ओर शान्ति है विलस रही, सुख की सरितायें बहती हैं ।
जीकर औरों को जीने दो, यह पवन लहरियाँ कहती हैं ।।

जीवन का अर्थ बताती हैं, उपवन की मतवाली डाली ।
तुम जियो सभी को जीने दो, कहती कलिका खिलने वाली ।।

प्रभु निकट शान्ति सबने पायी, जगकी चिन्ता से मुक्ति मिली ।
हो गयी मृदुल जग-ज्वाल शिला, कैसी है अद्भुत शक्ति मिली ।।

संशय का तरु निर्मूल हुआ, मन की चिन्ता निर्धूम हुयी ।
सब ओर सत्य उद्दीप्त हुआ, सब ओर सत्य की धूम हुयी ।।

गिर पड़े प्रभो के चरणों में, बोले प्रभुवर अज्ञान हरो ।
अज्ञान-तिमिर में भटक रहे, पथ दर्शक ज्ञान प्रदान करो ।।

वर्णनातीत प्रभु की महिमा, आभा में आप प्रभाकर हैं ।
जो कष्ट सिन्धु में भटक रहे, उनको तारक करुणाकर हैं ।।

भव विकट जाल में फँस हमने, अपना जीवन भटकाया है ।
जब कभी मुक्ति का यत्न किया, अपने को उलझा पाया है ।।

जग के मरु थल में बहुत भ्रमें, फिर भी न शान्ति जल पाया है ।
विपरीत पंथ के चक्कर मे, अपने को स्वयं नचाया है ।।

प्रभु ऋषभदेव के जा समक्ष, सबने ही शीश झुकाया है।
लगता हैं तपसी धरती ने, पानी का आशिष पाया है।।
कर बद्ध विनय कर आदर से, अन्तर के पट यों खोले हैं।
निर्मल मन से, अति श्रद्धा से, नृप-अनुज, देव से बोले हैं।।

-: हरिगीतिका :-

आनंद नद को खोजते, ये जन्म है रीता हुआ।
है पराजित सा दुखित, जग-युद्ध मे जीता हुआ।।
दीखता सर्वत्र सुख, पर है कही मिलता नही।
देखते बहु वृन्त है पर, मन कुसुम खिलता नहीं।।
हो थकित कहते हैं सभी, निस्सार ये ससार है।
बेकार जीवन जा रहा, मिलता न दृढ़ आधार है।।
हो चुके हम सब दुखी, झूठे जगत के शोध मे।
हम पा सके कुछ भी नहीं, मिथ्यात के अनुरोध में।।
हम दुखित जन जग क्लान्ति से, भयभीत होकर जी रहे।
शान्ति अमृत दीजिये जो, हम न अब तक पी रहे।।

★

शरणागत के सुन सरल वचन, बोले कृपालु करुणाकर हैं।
जग अन्ध तपस से व्याकुल को, नय नागर दिव्य दिवाकर हैं।।
संसार विकट यह सागर है, इसमें सुख पाना सहज नहीं।
इसमें जो मोती भरे पड़े, उनको ले आना सहज नहीं।।
परिग्रह को जन ने अपनाकर, खुद दुख का जाल बिछाया है।
संतोष हृदय से भाग गया, बदले में काल बुलाया है।।

हम घोर परिग्रह के पीछे, मतवाले बन कर फिरते हैं।
तब हाय ! हाय !! कर रोते हैं, जब काले बादल घिरते है ॥
परिग्रह में नित्य रमाकर मन, अपरिग्रह का दम भरते हैं।
कष्टों को आमन्त्रित करके, फिर उन कष्टों से डरते हैं ॥
परिग्रह जीवन का लक्ष्य बना, उपदेश जगत को देते हैं।
ऊपर से त्याग मूर्ति बनते, अन्दर घर को भर लेते हैं ॥
परिग्रह अपनाते समय कभी, मन में यह याद न आती है।
इस अनुचित संग्रह से दुनिया, व्याकुल होकर दुख पाती है ॥
सांसारिक सुख के साधन का, जब मोह त्याग कर डालोगे।
होगा न कष्ट फिर रंच मात्र, आनन्द स्वयं में पा लोगे ॥
चिन्ता-नागिन फिर-फिर न तुम्हें, पथ की बाधा बन घेरेगी।
फिर तुम्हें न संकट की कोई, दुखदायी आँख तरेगी ॥
अपने जीने से कहीं अधिक, सब के जीने की चाह रखो।
अपने अन्तर को दाह दहो, सब के सुख का उत्साह रखो ॥
संशय का बीज हृदय न पले, जिसके फल पाने पड़ जाये।
मद-मोह लोभ के फल स्वरूप, कड़वे फल खाने पड़ जायें ॥
लौकिकता की उर दाह तजो, साधन पथ राही बम जाओ।
तप, त्यागव्रती बनकर के तुम, जैनामृत मन वांछित पाओ ॥
कह उठे सभी प्रभु धन्य धन्य ! जीवन अब धन्य हमारा है।
पावक से झुलसे जीवन को, प्रभु धन का बड़ा सहारा है ॥
अन्तर में जो दुश्चिन्ता थी, उपदेश प्राप्त कर दूर हुयी।
भव के सब बन्धन काट दिये, मिथ्या माया चकचूर हुयी ॥

प्रभुवर से अनुनय विनय यही, हम पर प्रभु परम कृपालु रहे।
उपयुक्त मार्ग ही बतला दे, हम सब पर सदा दयालु रहे॥
हम सबको दीक्षा देकर के, प्यासों को आज निहाल करें।
कष्टों से पीत कपोलों को, अनुग्रह से लाल गुलाल करें॥

-: हरिगीतिका :-

दीक्षित हुये सब नृप अनुज, पाकर सु-दृष्टि कृपालु की।
सब दूर पीड़ा हो गई, पा दृष्टि दीन दयालु की॥
उग सूर्य आया ज्ञान का, तम मिट गया अज्ञान का।
सब साधना में लग गय, फैला सुयश भगवान का॥

-: दोहा :-

मोहादिक को त्याग कर, रखे न जो मन रोष।
वही जीव इस जगत मे, पाता सुख सन्तोष॥
यही तोष सुख मूल है, करता नर अभिलाष।
जिसके हृदय न तोष हैं, वही जगत का दास॥
त्याग और तप जगत में, सुख के मूल उपाय।
पढ़े और चिन्तन करें, यह सदैव चित लाय॥

दूत सन्देश वर्णन

—: सवैया :—

जग जीवन धन्य उसी का हुआ,
जिसने प्रभु नाम पुकार लिया।
छल - छिद्र की ज्योति हुयी भी नहीं,
प्रभु का उर रूप उतार लिया ।।

भव के कटु फन्द में जो न फँसी,
भव - बन्धन हेतु विचार लिया।
जल - पंकज भांति जिआ जग में,
नर जीवन आप संवार लिया ।।

भव - फन्द से नित्य ही दूर रहो,
शुभ ज्ञान का दीप जलाओ हिये।
तम - तोम प्रभंजन दूर करो,
कटुता - विष - धार हटाओ हिये ।।

जिससे सब ओर दिखे समता,
ऐसा कुछ ज्ञान जगाओ हिये।
भव के फिर कष्ट रहेंगे नहीं,
आदिनाथ, प्रभो को बसाओ हिये ।।

★

बोला मंत्री भरतेश्वर से, प्रभुवर का जाना ठीक नहीं।
दूतों के रहते राजा का, यों निर्णय पाना ठीक नहीं ।।

वर दूत एक भेजा जाये, सन्देश वहाँ देकर आये।
हो बाहुबली का निर्णय जो, आकर के नृप को बतलाये ।।

उत्तर पाकर ही हम सबको, अनुरूप कार्य करना होगा।
चिन्ता का जो सागर उमड़ा, बल से उसको तरना होगा ।।

मुझको आशा है बाहुबली, कहना न आपका टालेंगे।
है अनुज विजेता अग्रज का, आदेश आप का पालेंगे ।।

नीतिज्ञ स्वयं हैं बाहुबली, इसलिये तर्क का काम नहीं।
इसलिये दाम या दण्ड भेद, पा सकते शुभ परिणाम नहीं ।।

वर दूत पधारे पोदन पुर, मन्तव्य हमारा समझाये।
कुछ बुरा न माने बाहुबली, इस तरह नीति को अपनाये ।।

है साम नीति ही बस ऐसी, जो प्रश्नों को सुलझाती है।
बनता न सहज हो काम जहाँ, ये बिगड़े काम बनाती है ।।

भरतेश्वर को वर मंत्री का, प्रस्ताव बहुत मन भाया है।
शुभ साम नीति में निश्चय ही, बल की, विवेक की माया है ।।

वर बाहुवली बलशाली को, शुभ सामनीति उपचार भला।
सम-बल राजा के साथ, साथ, होता विवेक आचार भला ।।

ये समय हाथ कब आयेगा, इसको न हाथ से जाने दो।
हो स्वार्थ सिद्धि का आयोजन, अनुभवी-दूत को आने दो ।।

अब मंत्री ने आदेश दिया, वर दूत बुला लाया जाये।
जिस लक्ष्य पूर्ति हित जाना है, उसको फिर समझाया जाये ।।

आज्ञा पाकर, आ गया दूत, आकर के शीश झुकाया है।
हो गयी दूत पर्याय धन्य, राजा से आशिष पाया है ।।

मंत्रीवर ने तब निकट बुला, सन्देशा उसे सुझाया है।
कौशल से अपना पक्ष रखे, यह भली भांति समझाया है।।

—: कवित्त :—

"णमोकार" को उचार और जय घोष कर,
नृप - पद - पंकज की रज सिर धर के।
मन के समान गतिवान अश्व पे सवार,
करता विचार चला सज के संवर के।।
नदी, नद, वन, बाग, भूमि-भाग आदि सब,
देखे निज नैन तुंग शृंग गिरिवर के।।
ध्वज धारी अश्व पे सवार दूत आ रहा है,
देख रहे लोग सब पोदन नगर के।।

✶

शुभ नगर अयोध्या की शोभा, नयनों में अभी समाई हैं।
अब पोदनपुर को देखा तो, उर की कलिका मुस्काई हैं।।
भवनों के उँचे भागों पर, सुन्दर झण्डे लहराते हैं।
शोभायमान ऊँवे मन्दिर, दर्शक का हृदय रिझाते हैं।।
कितने ही पथ चौराहे हैं, गर्भित शोभा का सागर है।
पोदनपुर का प्रत्येक दृश्य, मन मोहक भव्य उजागर है।।
शुभ नगर बहुत मन को भाया, मन सुन्दरता में मोह लिया।
कर्त्तव्य - भाव ले चला उसे, कुछ भी न बुद्धि ने मोह किया।।
वह राज पौरि पर जा पहुँचा, अपना परिचय बतलाया है।
शुभ राजकाय हित आया है, प्रतिहारी दूत पठाया है।।

सन्देश बाहुबलि ने पाया, वर दूत नगर से आया है।
सुन्दर तन पुलक गया नृप का, अन्तर अतिशय हरषाया है।।

ले आओ दूत बुलाकर के, आज्ञा उसको है आने की।
सम्मान सहित लाओ उसको, आज्ञा है तुम्हें बुलाने की।।

जय जीव जयति जय महाराज, चरणों में नम्र निवेदन है।
आज्ञा पाऊँ, सन्देशा दूँ, यह सादर विनय अकिञ्चन है।।

आशीष नृपति से पाकर के, वर दूत बहुत हरषाया है।
है भाग्य धन्य, ये कर्म धन्य, मैंने यह अवसर पाया है।।

बोले प्रसन्न मुख बाहुबली, सब कुशल-क्षेम अब बतलाओ।
क्या सन्देशा लेकर आये, तत्काल मुझे यह बतलाओ।।

पटबाक महा, धीरज धारी, बोला शुभ भाग्य हमारे हैं।
सब ओर शान्ति का शासन है, नौबत बजती हर द्वारे हैं।।

इस आर्य भूमि के परम पूज्य, श्री युत बल बिक्रम सागर हैं।
जग शान्ति हेतु, एकता हेतु, अबतरित हुये नय सागर हैं।।

महाराज आपके अग्रज ने, सर्वार्थ सिद्धि के साधन को।
एकता हेतु व्रत साधा है, जन सेवा, प्रभु आराधन को।।

देखा प्रभुवर ने आर्य वर्त, स्वारथ के सागर मे डूबा है।
एकता सूत्र मे बँध जाये, ऐसा नृप का मनसूबा है।।

एकता बिना इस वसुधा का, हो सकता है उद्धार नहीं।
एकता बिना जन की संस्कृति, बनपाती भू शृंगार नहीं।।

यह जम्बु दीप होकर खण्डित, आभा से हीन हुआ जाता।
साहित्य कला से संस्कृति से, समता से हीन हुआ जाता।।

यह देश सदा सम्पन्न रहे, इसलिये एक अभियान चला ।
अधिकांश क्षेत्र में विजय मिली, किंचित न कहीं व्यवधान चला ।।

उद्दाम वेग वाली किरणे, पथ में रोके से रुकी नहीं ।
उठती पर्वत की ज्यों चोटी, है कभी झुकाये झुकी नहीं ।।

सर्वत्र नीतियाँ भिन्न-भिन्न, कालानुसार अपनायी हैं ।
प्रभुवर जिनेन्द्र की बड़ी कृपा, नृप ने नव निधियाँ पायी हैं ।।

जब विजय चक्र लौटा घर को, लोगों ने पर्व मनाया है ।
पर चक्र नगर के बाहर ही, अटका रस मे विष पाया है ।।

विज्ञों ने भेद यही पाया, यह यात्रा विजय अधूरी है ।
राजा हो 'भरत चक्रवर्ती', धरती से नभ की दूरी है ।।

यदि आप भरत को महाराज, अन्तर मन से स्वीकार करे ।
हो भरत चक्रवर्ती नरेश, वे एक मात्र अधिकार करे ।।

एकता सूत्र में बाहुबली, गुंथ जाये भाव सहेजा है ।
लेकर के मैं सहमति आऊँ, उद्देश्य इसी से भेजा है ।।

–: दोहा :–

सामनीति से बात कह, दूत हो गया मौन ।
बिस्मित सब श्रोता हुये, नृप उत्तर दे कौन ।।

राज भोग सुख लालसा, बढ़कर हुयी समुद्र ।
भाई भी आधीन हो, उपजी क्या मति क्षुद्र ।।

झूठे सुख का मोह ही, उपजाता अज्ञान ।
झूठे सुख के मोह को, तकता है विद्वान ।।

ऋषभ ऋषभ रटने लगे, धर उर में वर ध्यान।
मिथ्या सुख की लालसा, हुयी बड़ी बलवान।।

★

रे दूत चतुर कथन, प्रतिपादन बड़ा रसीला है।
हो सावधान निज पक्ष रखा, सेवक का कर्म सजीला है।।

मुझको सखेद यह कहना है, इतनी क्यों लता चढ़ा ली हैं।
जिसने ढक लिया ज्ञान आंगन, क्यों इच्छा तृषा बढ़ाली हैं।।

फल सभी मधुर होते न सदा, सम्भव सबका है, भोग नहीं।
केवल भोगों की जागृत है, इसको समझूं क्यों रोग नहीं।।

एकता सूत्र की बात ठीक, सचमुच विचार मिठलौना हैं।
जिसके प्रति जागी भरत दृष्टि, ये भी तो भोग-खिलौना हैं।।

प्रभुता का मद करता मदान्ध, मानव मन कौन खिलौना हैं।
जिसने भी जग नृप पद पाया, जीवन हो गया घिनौना हैं।।

मैं रहूं रहे मेरी आज्ञा, मेरा होकर ही जग जीवे।
अमृत दूं अथवा गरल पात्र, मेरी आज्ञा से जग पीवे।।

मैं के समक्ष फिर "तू" "हम" का, नाता क्यों जग में चल पाये।
सन्तोष सामने "हाँ, हाँ हो", चाहें पीछे विष छलकाये।।

सारी धरती प्रभुता मद से, श्यामल नीरद से ढक जाये।
अनवरत चले मद का प्याला, पीता पीता नृप छक जाये।।

बढ़ गयी मोह सीमा इतनी, मुझसे भी स्वीकृति मांगी है।
मैं भी उनके अधीन रहूं, सत्ता की तृष्णा जागी है।।

तुम जाकर नृप से कह देना, ये कृपा मुझे स्वीकार नहीं।
मुझको आधीन बनाने का, उनको कोई अधिकार नहीं॥

इस छीना झपटी के आगे, ये शीश न झुकने वाला है।
उगते सूरज का ये प्रकाश, रुक सका न रुकने वाला है॥

हिंसा, अन्याय चुनौती के, आगे कब शीश झुकाना है।
जो गया लोभ की गोदी में, उसका जग कौन ठिकाना है॥

आकर सुमेर भी शीश रखे, नभ का ग्रह पुंज बिखर जाये।
तब बाहुबली का नाम नहीं, कहकर के बात मुकर जाये॥

—: कवित्त :—

सुन स्वाभिमान सिक्त, रिक्त अभितान बोल,
धरती अडोल, आज आप, डोलने लगी।

जागे कौन ग्रह, जो कि विग्रह भाई भाईयों में,
भांति - भांति आज उर तोलने लगी॥

शान्ति, सुख, सुषमा की थाती क्यों बचेगी हाय,
अश्रु परिपूर्ण निज नैन खोलने लगी॥

कोई समझाओ, कोई जलती बुझाओ आग,
कोई शीघ्र जाओ धरा बोल बोलने लगी॥

—: गीत :—

जब जब मोह जागता नर में।

त्रिष्णा इतनी हो जाती है, जिसकी पूर्ति न हो पाती है,
लोभ नदी इतनी बढ़ती है, जिसमें नाव नहीं बढ़ती है,

अनगिनती इच्छा की लहरें, उठती उर सागर में।
जब जब मोह जागता उर में ॥

अन्धकार के घन घिर आते, काम उलूक आप जग जाते,
मद, मत्सर कीड़े बढ़ जाते, सात्विक भाव हंस उड़ जाते,
संशय, अविश्वास, चिन्ता के भाव जागते उर में।
जब-जब मोह जागता नर में ॥

परिग्रह के प्रति रुचि जगती है, मिथ्या मति रुचिकर लगती है,
पर-दुख पर उपचार सदृश है, पर-दुख में ही तन, मन बश है,
जग चाहें दुःख - निधि में डूबे, डूबे निज अन्तर मे।
जब-जब मोह जागता नर में ॥

★

छा गया सभा में सन्नाटा, अथवा रस में विष घोला हो।
मन के विपरीत विषमता का, परिवेश बदलकर बोला हो ॥

रह गया सन्न सुनकर उत्तर, ऐसा उसको अनुमान न था।
श्री बाहुबली ललकारेंगे यह, स्वप्न तलक में ध्यान न था ॥

हिम्मत न दूत ने हारी है, साहस को पुनः पुकारा है।
कर 'णमोकार' को नमस्कार, जिनवर की ओर निहारा है ॥

भारत अखण्ड हो साम्राज्य, महिमा जग में निज दरशाये।
अज्ञान तिमिर हो भूमि सात, नूतन प्रकाश जग बरसाये ॥

एकता सूत्र में बँध कर हम, जग को कुछ नया दिखा सकते।
साहित्य, कला के संयम से, दर्शन का ज्ञान सिखा सकते ॥

पहले सब घर के एक बने, सब को फिर एक बनायें हम।
संगठित एकता में, बल है, यह पथ पहले अपनायें हम ।।

करता मैं पुनः निवेदन हूं, आशा है आप विचारेंगे।
साकार एकता की छवि को, सादर आरती उतारेंगे ।।

विचलित न हुये सुन बाहुबली, बातों में सार नहीं पाया।
चिकनी चुपड़ी बातें सुनकर, मनमें चिन्ता घन घिर आया ।।

बोले भरतेश्वर का साधन, बनना बिल्कुल स्वीकार नहीं।
वे मुझ पर अधिकार करें, उनको ऐसा अधिकार नहीं ।।

हो मृत्यु आज या युगों जिऊँ, यश मिले, मुझे कुछ चाह नहीं।
इस उत्तर का क्या फल होगा, इसकी बिल्कुल परवाह नहीं ।।

उत्थान भरत का सुनकर के, मेरे अन्तर में दाह नहीं।
मैं झुकूं भरत के चरणों में, सीखी मैंने वह राह नहीं ।।

जाओ सन्देश सुना देना, दासता रंच स्वीकार नहीं।
हम स्वाभिमान से जीते हैं, त्यागेगें यह अधिकार नहीं ।।

हैं अन्तरंग बहिरङ्ग एक, जो करते हैं, वह कहते हैं।
अपने वचनों की रक्षा में, हम सारे दुख सुख सहते हैं ।।

-: दोहा :-

शान्ति सुधा विषमय हुयी, कुटिल बात-अभिशाप।
बाहुबली को भरत पर, हुआ अतुल संताप ।।

उत्तर सुन कर दूत ने, विधिवत् किया प्रणाम।
असफल हो चातुर्य में, चला अयोध्या धाम ।।

सभा विसर्जन हो गयी, क्षमा हो गयी दूर।
मानों प्राची दिशा से, गया दूर सिंदूर ॥

परिग्रह से विग्रह हुआ, प्रश्न बन गया गूढ़।
यही रीति जन को करे, किंकर्त्तव्य विमूढ ॥

युद्ध निर्णय वर्णन

—: गीत :—

जब तक शुद्ध नहीं आचार।
तब तक ही रुचिकर लगता है, मोहादिक संसार।।
नीरस रसा रसों की रानी, कहता है जग में अज्ञानी,
प्यासा मृग सा घूम रहा है, परवश होकर झूम रहा है,
कृष्ण पक्ष के कोमल शशि सा, घटता जाता है आकार।
जब तक शुद्ध नही आचार।।
संध्या सुधा न दे पाती है, ममता ज्वाला सुलगाती है,
यों ही आयु निकल जाती है, जैसे बर्फ पिघल जाती है,
कुम्भकार के कुटिल चक्र पर, जगता रचना का ससार।
जब तक शुद्ध नहीं आचार।।
जो न घातियां कर्म नशाता, सुख-दुख जाल उलझता जाता,
मृग मरीचिका मे फंस जाता, तृष्णा से जुड़ जाता नाता,
संशय के घिर आते बादल, चिंता का जल अम्पार।
जब तक शुद्ध नहीं आचार।।

*

असफल हो दूत लौट आया, जैसे बादल घिर कर छाया।
सब को यह आशा बंधी, दूत कोई शुभ सन्देशा लाया।।
हर ओर तृप्ति सी बरस पड़ी, आशा वल्लरियाँ हरषायीं।
होकर सब सजग नहीं बैठे, तब तक कि बदलियाँ घिर आयीं।।

सन्देश बाण गति से पहुँचा, राजा का मुख ज्यों कमल खिला ।
सम्मान सहित उसको लाओ, प्रतिहारी को आदेश मिला ।।

हो सावधान श्रोता बैठे, वर वर्णामृत की आशा से ।
शंकाकुल अन्तर काँप रहे, नेही उर बसी दुराशा से ।।

आकर समक्ष भरतेश्वर के, वरदूत सहित आशीष हुआ ।
सब मौन हुये सुनने को कुछ, वरदूत आज बागीश हुआ ।।

नृप बाहुबली की सेवा में, मैंने जाकर निज पक्ष रखा ।
सन्देश आपका कौशल से, मैंने उनके सम कक्ष रखा ।।

लेकिन नर्काश्रित बाहुबली, सन्देश काटते जाते थे ।
मैं पंथ बनाता जाता था, वह पथ पाटते जाते थे ।।

आखिर बोले यों बाहुबली, मुझ पर कोई अधिकार नहीं ।
एकता नाम पर दास वृत्ति, कहना मुझको स्वीकार नहीं ।।

मोहादि बड़ा इस सीमा तक, सबको आधीन बनाना है ।
सम्पूर्ण प्रगति की आड़ लिये, सम्राठ स्वयं कहलाना है ।।

अपना मद पूरा करना है, जग को परहित दिखलाना है ।
बन कर के यों पर-उपकारी, अपना साम्राज्य जुटाना है ।।

बरगद से पसर रहे भू पर, कोई पौधा क्यों पनपेगा ।
अब तो लगता इस धरती पर, साकेत नृपति ही चमकेगा ।।

इससे न अधिक मैं सुन पाया, वे अग्नि मुखी थे बने हुये ।
मेरी बातों पर ध्यान न था, केवल अपनी पर तने हुये ।।

यदि आप कहें तो एक बार, निर्णय हित पुनः चला जाऊँ ।
उनको यदि समझा सके आप, तो सादर यहाँ बुला लाऊँ ।।

गम्भीर नीर निधि के समान, भरतेश्वर नृप यों बोले हैं।
सुनकर के कथन दूत का यों, उर के कपाट फिर खोले हैं॥

बढ़ गया मान उसमें इतना, व्यवहार-विवेक गँवाया है।
सम्बन्ध रक्त तक का उसने, लगता है सभी भुलाया है॥

अग्रज की आज्ञा का पालन, लगता उसको स्वीकार नहीं।
क्या समय कि भाई-भाई पर, रखता बिल्कुल अधिकार नहीं॥

क्या समय आ गया भाई को, अब भाई पर विश्वास नहीं।
यह तो खुली अवज्ञा है, उत्तर में तनिक मिठास नहीं॥

इक्ष्वाकु वंश का भरतेश्वर, सब के समक्ष प्रण करता है।
निश्चय इसका बदला लूँगा, ये खड्ग न उससे डरता है॥

किसका खाना, किसका पीना, सम्मान बिना क्या जीना है।
इक्ष्वाकु वंश का होकर के, यह कड़वा घूँट न पीना है॥

यदि मान नहीं तो मृत्यु भली, सम्मान रहे तो जीना है।
मैंने जो यश तोरण बांधा, इस बाहुबली ने छीना है॥

—: कवित्त :—

राज, धन, धाम, मेरे साथ ना रहेंगे सब,
सॉस चलने ही तक अपने कहावेंगे।

हाथी, साथी, घोड़े, रथ, विकट-कटक यूथ,
ढूंढ - ढूंढ कर भी न मुझे कहीं पावेंगे॥

मंत्री, हितू, राज-कोष, कोटि धर्म कर्म आदि,
एक दिन सब सोच - सोच पछतावेंगे।

जीना जितने भी दिन मान संग जो ले यहाँ,
फिर कब साधन ये काम तेरे आवेंगे ।।

॥ दोहा ॥

बाधक जो हो लक्ष्य का, वही शत्रु अपवित्र ।
साधन हो जो लक्ष्य का, वही हमारा मित्र ।।

बदला ले अपमान का, वही वीर बलवान ।
प्राण बाद की वस्तु है, पहले जग में मान ।।

बिना मान का पुरुष क्या, बिना ज्ञान का दान ।
बिना ज्योति का नैन क्या, देह बिना क्या प्रान ।।

★

भाई भी अगर विरोधी है, उसको भी दण्डित करना है ।
पथ का अवरोधक पर्वत है, उसको भी खण्डित करना है ।।

यदि भू धर टूट पड़े सिर पर, भू पर नक्षत्र उतर आये ।
नदियाँ पर्वत की ओर चलें, रत्नाकर भले बिखर जाये ।।

चाहे जो भी संकट आये, आना हो मौत चली आये ।
जो भी होना हो, हो जाये, होनी क्यों पीछ पछताये ।।

ये प्राण हुये प्राण को अपर्ण, अब तो नौका मँझधार चली ।
इस पार लौट कर क्यों आये, डूबो अथवा उस पार चलो ।।

पीछे न हटेगा बढ़ा कदम, बढ़ने को कदम बढ़ाया है ।
अपने निश्चय के साथ-साथ, प्राणों का हँस उड़ाया है ।।

निर्णय से अवगत सभा हुयी, सबके समक्ष निश्चय आया ।
भाई - भाई मे ये विरोध, ये सोच हृदय ने दुख पाया ।।

निश्चय राजा का निश्चय है, हमको अनुयायी होना है ।
मानो यदि अगर अपेक्षित है, हमको विष पायी होना है ।।

सब का जीवन अब तो समान, सुखदायी है, दुखदायी है ।
हम सब हैं नौका पर सवार, मंझदार स्वयं ही आयी है ।।

बोला मंत्रीवर सोच समझ, स्वामी निश्चय का स्वागत है ।
होकर कृपालु सुनिये नृपवर, मेरा विचार अभ्यागत है ।।

महती मति स्वामी भरतेश्वर, एकता हेतु चिन्तन शुचि है ।
है काम मनुज करता उतना, जितनी जिसकी जिसमें रुचि है ।।

निश्चय ही आप युद्ध ठाने, निर्णय प्रभु का अविरोधी है ।
उससे तो युद्ध ठना करता, जो अपना प्रबल विरोधी है ।।

पर एक निवेदन मेरा है, यदि आप इसे स्वीकार करें ।
यह महा युद्ध किससे होगा, इस पर गम्भीर विचार करें ।।

प्रभु आप और फिर बाहुबली, दोनों ही बल के सागर हैं ।
इक्ष्वाकु वंश अवतंस आप, कुलभूषण जगत उजागर हैं ।।

भाई-भाई मिल युद्ध करे, दोनों ही जो नय नागर हैं ।
दोनों जग भाग्य विधाता है, दोनों जग हेतु विभाकर हैं ।।

इतिहास कहेगा क्या हम पर, कैसे मतिवान धनुर्धर थे ।
आपस में भ्राता लड़ बैठे, कैसे वे वीर धुरन्धर थे ।।

आपसी फूट ये ठीक नहीं, वैचारिक ही निपटारा हो ।
ये परम्परा जन्मे हम से, ये जग का बड़ा सहारा हो ।।

मति से तन बड़ा न हो सकता, मति से व्यवहार समूचा है ।
तन तो पाया बहुतेरों ने, मति से ही तो जन ऊँचा है ।।

मति से ही मत ने जन्म लिया, मति का जग खेल निराला है।
जो हुआ जगत-मति का स्वामी, पहिनी उसने जयमाला है ।।
मेरा अनुरोध यही प्रभु से, थोड़ा कुछ और विचार करें।
बच जाये युद्ध शाप से हम, इसलिये विनय स्वीकार करें ।।

-: दोहा :-

मंत्रीवर निज बात कह, उर में लिये प्रमोद।
बैठ गये अति हर्ष से, जा आसन की गोद ।।
सकल सभा चिन्तित हुई, होगा क्या परिणाम।
इस चिन्ता से मुक्ति को, भेषज ऋषभ ललाम ।।
राजभोग में कौन सुख, रहे न मिलकर नैन।
परिग्रह में कब चैन है, सिर्फ त्याग मे चैन ।।

*

मंत्री जी बात सही कहते, मैंने भी यही विचार किया।
निर्णय पर सत्य हँसेगा युग, यह भली भाँति स्वीकार किया ।।
भाई - भाई पर व्यंग करे, कैसे स्वीकार किया जाये।
ऐसे भाई का निश्चय ही, बढ़कर उपचार किया जाये ।।
परिग्रही बता करके मुझको, मुझमे ही दोष निकाला है।
उस बाहुबली ने पता नहीं, कब का ये रोष निकाला है ।।
वर आर्य वर्त्त की शुभ भू को, सुन्दरतम और बनाने को।
देते सुझाव कुछ बाहुबली, जाता मैं उन्हें मनाने को ।।
जग का हित और अधिक बढ़ता, विग्रह का नाम नहीं आता।
संयम से यदि करते विचार, परिग्रह का नाम नहीं आता ।।

सहयोग न देते रंच मात्र, होता मुझको संताप नहीं।
निर्णय म युद्ध का मैं लेता, चढ़ता मेरे सिर पाप नहीं ।।

मैंने जग का, भू का, जन का, युग का केवल हित चाहा था।
वह बाहुबली को रुचा नहीं, सब ने ही जिसे सराहा था ।।

दिग्विजय चाहते बाहुबली, दिग्विजयी उन्हें बना देता।
मैं अनुज हेतु दीक्षा लेता, या पंथ और अपना लेता ।।

आते कहते कुछ निज मुख से, मेरा भी हृदय देख पाते।
अपनी आँखों से आकर के, सब बात सहज ही सुलझाते ।।

अब भावुकता का काम नहीं, लोहा लोहे को चाटेगा।
है कौन अधिक रखता पानी, लोहा लोहे को काटेगा ।।

मैं हारूँगा या जीतूंगा, इस से सम्बन्ध नहीं अपना।
ये प्राण रहेंगे या कि नहीं, कोई अनुबन्ध नहीं अपना ।।

लड़ना है मुझको लड़ना है, संग्राम नियति अब मेरी है।
सग्राम सुरति अब तो मेरी, सग्राम विरति अब मेरी है ।।

हो गया अहम् इतना घायल, उसका कोई उपचार नहीं।
घुटने टेके अरि के समक्ष, भरतेश अभी लाचार नहीं ।।

छोड़े चर्चायें और सभी, निर्णय पर पुनः लौट आये।
जिस युद्ध भूमि से आये है, उस पर ही पुनः लोट जाये ।।

हो गये मौन कहते - कहते, आँखों में खून उतर आया।
भर गया गला आँखें उभरी, साँसों का वेग उभर आया ।।

निर्णय विकल्प की चर्चा का, सबने ही विषय विसार दिया।
पर्वत से पर्वत जूझेगा, सबके उर ने स्वीकार किया ।।

॥ दोहा ॥

सभा विसर्जित हो गयी, सुमिरि ऋषभ भगवान।
सबके ही मन बस गया, एक युद्ध का ध्यान॥

जब अन्तर की धारणा, पाती कुछ विपरीत।
तभी जगत मे गूँजता, संघर्षण भयभीत॥

कोई कभी न चाहता, हो उससे संग्राम।
किन्तु अहं की शल्य मे, दुखद युद्ध परिणाम॥

अहं मेघ ही घुमड़ कर, दिन को करता रात।
ज्वालामुखियों की निठुर, होती है बरसात॥

तजे पाप पाखण्ड को, अन्तर से उद्भ्रान्त।
पढ़ें सुने अध्याय यह, ले उर कोमल कान्त॥

युद्ध भूमि वर्णन

-: गीत :-

आशा लता बड़ी सुन्दर है।

जिसके उर में जग जाती है, उसको नींद नहीं आती है,
कण-कण में दिखलायी देती, पर मन तो रहता वे घर है।
आशा लता बड़ी सुन्दर है॥

आशा से जीता मरता मन, आशा हे अमृत पीता जन,
आशा है इतिहास भाव का, जिसमें कुछ होने का डर है।
आशा लता बड़ी सुन्दर है॥

आशा ने साम्राज्य दिये हैं, आशा ने अविभाज्य किये हैं,
आशा जिसको छू लेती है, जगत में उसको सरल डगर है।
आशा लता बड़ी सुन्दर है॥

★

भाई - भाई में ठनती है, सूचना हुई यह घर घर है।
ये युद्ध नहीं कालोचित है, चर्चा गूंजी प्रलयंकर है॥

सम्राट हो गये भरतेश्वर, फिर भी सन्तोष नहीं पाया।
भाई का राज्ल हड़पने को, यह पापी भाव उभर आया॥

सम्पूर्ण भूमि पर अब केवल, अपना सिक्का चलवाना है।
कुछ कहते निज बलविक्रम का, सारे जग को दिखलाना है॥

कुछ कहते भरतेश्वर मद को, अपने उर में न पचा पाये।
कर रहे पूर्ण अपनी इच्छा, चाहें संसार वहीं जाये॥

कुछ कहते बाहुबली को ही, क्यों यह विरोध की आग जगी।
कोई तो बात हुयी होगी, जो अन्तर में यह आग लगी।।

शायद उनकी भी इच्छा हो, सम्राट - श्रेष्ठ - पद पाने की।
है कौन कि जिसके उर न जगे, लालसा-विश्व पर छाने की।।

है म्यान एक, तलवारें दो, कैसे मिलकर रह पायेंगी।
कितना ही संयम क्यों न रखे, आपस मे ही लड़ जायेंगी।।

संयम, विवेक, शुचि-शान्ति, न्याय हम पर भी डाले जाते हैं।
जब खुद पर लागू होते है, तब तर्क निकाले जाते है।।

जो है समर्थ, उसको न दोष, जग उसे कहाँ समझाता है।
यदि कोई समझाने जाता, वह नहीं लौट कर आता है।।

जो बुद्धि वीर, बन चाटुकार, तर्कों मे बुद्धि खपाते हैं।
आश्रयदाता का हित चिन्तक, सद्भाव सदा उपजाते हैं।।

वे नहीं सोचते, इस विधि से, केवल नृप का हित होता है।
दुख का लहरा जाता सागर, उन तक सुख सीमित होता है।।

भाई - भाई आकर रण मे, अपना कौशल दिखलायेंगे।
हम ज्ञान शून्य भी लड़ा करे, शायद ये ही सिखलायेंगे।।

इतिहास और क्या रक्खेगा, सामान्य वर्ग क्या सीखेगा।
जब लड़ कर हम दिखलायेंगे, इतिहास बिलखता चीखेगा।।

ऐसे निर्णय को सुनकर हम, हँस सकते और न रो सकते।
हमको जयकार बोलनी है, निर्णायक हम कब हो सकते।।

इस भाँति युद्ध के निर्णय को, जन ने न रंच स्वीकार किया।
हितकारी युद्ध न हो सकता, जनता ने सिर्फ विचार किया॥

निर्णायक तो राजा होता, जिसकी इच्छा सर्वोपरि है।
जो कहता ठीक वही होता, उसकी स्वेच्छा सर्वोपरि है॥

जब जब जनता ने निर्णय कर, राजाओं का प्रतिकार किया।
राजाओं ने मद में आकर, निर्णायक शीश उतार लिया॥

पर यहाँ कथा कुछ और हुयी, वह अनुपम कथा सुनाता हूं।
संयम व्रत रहे लेखनी पर, वाणी को शीश नवाता हूं॥

है युद्ध भूमि अतिशय प्रचण्ड, पग बढ़ते पर कतराते हैं।
रण वीर पुरुष भी बहुत बार, बढ़ते - बढ़ते रुक जाते हैं॥

वाणी से यही निवेदन है, यह कलम वीर बढ़ता जाये।
इतिहास पृष्ठ मे घटना जो, उसका वर्णन करता जाय॥

—: कवित्त :—

उमड़ - घुमड़ के घटाये घिर आयी जैसे,
जिससे तरंग या मतंग कोई दीखे ना।

चली आ रही प्रलम्ब रथों की कतारें बढ़ी,
गति चलने की जिससे कि कोई सीखे ना॥

पैदल सवार चले टिड्डी दल जैसे बढ़े,
किसका विनाश हुआ किसी को भी दीखे ना।

कोलाहल इतना उठा है आज भूमि मे कि,
किसको पड़ी है सुने चीखे या कि चीखे ना॥

प्रलय के काल जैसे रवि का कठोर जाल,
पोर-पोर फैला हाय जीवन कसैला है।

अपना विराना आज दीखता किसी को नहीं,
बन गया आदमी को आदमी विषैला है॥

जीवन के तत्त्व भी तो आज दुखदायी हुये,
हर तत्त्व आदमी को विष भरा थैला है।

तुंग शैल श्रेणियों से गह्वर अनन्त तक,
चतुरंग सैन्य का समूह आज फैला है॥

★

दीखता दूर तक गज समूह, ज्यों श्याम घटा घिर आयी हो।
छाया कि कोहरा घनों घना, फैली सर्वत्र चढ़ाई हो॥

अथवा लगता है प्रलय समय, जल मेघ गरज कर आये हों।
मानों सर्वत्र प्रलय करने, घिर-घिर कर बादल छाये हों॥

चू रहा स्वेद गण्डस्थल से, मानों अरि पक्ष डुबाने को।
अपनी सुण्डों को, उठा-उठा, कहते हो कहर बुलाने को॥

इतने उत्तेजित दिखते हैं, अरि पाकर तुरत मसल डालें।
छाती पर चढ़ कर रक्त पिये, पैरो से शत्रु कुचल डाले॥

पर्वत भी आ जाये समक्ष, उसको भी चकनाचूर करे।
मजबूत वक्ष से रिपु दल को, हम झुकने पर मजबूर करे॥

सागर हो उसे रौंद डाले, बन को उजाड़ करके फेंके।
अरि छिपे गुफाओ में जाकर, पग उसकी छाती पर टेंके॥

अम्बारी कसी हाथियों पर, यौद्धा तैयार विराजे हैं।
जैसे आज्ञा पायें नृप की, सब साज युद्ध के साजे हैं॥

हैं लगी कतारें घोड़ों की, ज्यों श्वेत घटायें आयी हों।
चपला ज्यों चमक-चमक जाती, गर्जन सुनकर मुसकायी हों॥

हौंसले उछलते हैं पल-पल, पल भर का जिनको चैन नहीं।
सरपट आगे बढ़ जाने को, है कौन अश्व बेचैन नहीं?

आज्ञा मिलते ही स्वामी की, अरि से निज वक्ष जुड़ा देंगे।
ये तनिक इशारा पाकर के, दुश्मन का शीश उड़ा देंगे॥

क्षत - विक्षत देह बना करके, मिट्टी मे उसे मिला देंगे।
अब तक जो भू पर खिले नहीं, ऐसे कुछ फूल खिला देंगे॥

मन की गति से चल के तुरंग, हरिणों को आज लजा देंगे।
अरि के लोहू से खेल-खेल, धरती की देह सजा देंगे॥

वज्राङ्ग देह वाले सवार, हथियार भयंकर बाँधे हैं।
जीत कर, दिखाना, कौशल है, आशायें उर मे साधे है॥

ये घुड़सवार ही दुश्मन के, सिर पर सवार हो सकते हैं।
अरि दल की आँधी आने पर, ये चमत्कार हो सकते हैं॥

रथ सजे खड़े सेनाओं से, रंगीन मेघ ज्यों आये हों।
पाकर अनुकूल सुखद मारुत, अपने बहु रूप दिखाये हों॥

रथ हैं अनेक घोड़ों वाले, चाहें वे जहाँ उतर जायें।
जल में, थल में अथवा नभ में, जो चाहें जहाँ विचर जायें॥

बैठे सब सजे धनुर्धर हैं, जिनका कि अचूक निशाना है।
कैसा ही दुश्मन आ जाये, मुश्किल इनसे बच पाना है॥
इसलिये शान्ति धारे बैठें, पहले नृप की आज्ञा पायें।
फिर तो गिरिराज पलट दें ये, किंचित न प्रलय से सकुचायें॥

जब बाण साधते हैं, धनु पर, सब ओर प्रलय मच जाती है।
तब मृत्यु दौड़ती है जी भर, वह नया खेल रच जाती है॥
पैदल हैं अपरम्पार खड़े, मेघों में ज्यों डूबा दिन है।
दीखते नहीं, रवि, शशि, तारे, जय की आकुलता प्रति छिन है॥

जिस ओर दौड़ पड़ते पैदल, बस हाहाकार मचा देते हैं।
ये ही रण की दीवारें हैं, ये ही रण सघन रचा देते हैं॥
ये ही रण में झौंके जाते, ये ही ध्वज को लहराते हैं।
गज-बाजि-मनुज के रक्त सिन्धु, ये तैर किनारा पाते हैं॥

रण दीवारों का इनको तुम, ईंटें न कहो, गारा समझो।
या किसी दुखद आन्दोलन का, इन वीरों को नारा समझो॥

—: कवित :—

दूर-दूर कोसों तक, फैला हुआ सैन्य दल,
शान्ति भरे जगत की शान्ति को बसाने को।
थामे बल्लमें वीर साधे हैं खड्ग आदि,
रण चण्डिका के घर शीश को चढ़ाने को॥

मर्त्यवीर आज मृत्यु से न डरता है रंच,
छोड़े हैं प्रपंच पुरुषत्व दिखलाने को।

देखिये न जन में जगी है कैसी लालसा कि,
हो रहा विकल इतिहास बन जाने को ।।

जन के सुमन-यश-गंध सा बसा हुआ है,
अन्तर से व्याकुल है जग झांक आने को।

अपना पराया यश-पंक्ति में न दीखता है,
मतवाला घूमता है बस यश पाने को ।।

भूमि-भूमि तल से ही ऊर्ध्व लोक नभ तक,
अन्तर से व्याकुल है ऊधम मचाने को।

यश अपयश के ही फांस के कुचक्र जन,
रहता निबद्ध सदा, भव बीच आने को ।।

—: दोहा :—

उभय पंथ का सैन्य दल, उभय दिशा एकत्र ।
एक युद्ध का ध्यान है, भूले पुत्र कलत्र ।।

रण जीवन, रण विभव है, रण ही तन रण प्राण ।
रण के हित बल देह मे, रण से ही कल्याण ।।

निज स्वामी के हेतु है, बल विक्रम अवशेष ।
श्वास-श्वास में रम रहे, जिनवर परम जिनेश ।।

आज्ञा हित ठहरे हुये, उभय पक्ष बलवान ।
हार जीत से क्या इन्हें, युद्ध कर्म का ध्यान ।।

तन मन सब अर्पण किये, स्वामी सेवा हेतु ।
आकाङ्क्षा निज नृपति का, लहराये यश केतु ।।

★

भरतेश्वर बाहुबली दोनों, रण में अब आने वाले हैं।
तैयार खड़े है यौद्धा गण, बस आज्ञा पाने वाले हैं।।

इन्द्रादि देवता चिन्तित हैं, असमय क्या होने वाला है।
कौन से जन्म का कर्मोदय, अपना मुख धोने वाला है।।

कैसी दोनों में बुद्धि जगी, अथवा दुर्भाग्य जगा युग का।
अथवा कालुष्य सिमट करके, माथे पर आन लगा युग का।।

आ रहे बन्धु दोनों लड़ने, आँखे क्या हाय! निहारेगी।
लज्जा से हाय गढ़ी जाती, यह क्यों कर पंथ बुहारेगी।।

भगवान ऋषभ के पुत्रो मे, धरती पर ही जब रण होगा।
सामान्य वर्ग के लोगों मे, क्यों कर अनुसरण नही होगा।।

कल की आने वाली जनता, ढूंढेगी तनिक न गहराई।
इतिहास लिखेगा जूझे थे, आपस मे दो भाई भाई।।

इसलिये युद्ध यदि टल जाये, तब तो सौभाग्य हमारा है।
हे ऋषभदेव प्रभु दया करो, देखो उठ रहा दुधारा है।।

बज रहे घोर रण वाद्य यत्र, मानों मत्री से कीले हैं।
बस युद्ध-युद्ध के क्रूर भाव, हो रहे आज चमकीले है।।

घन-घोर स्वरो में कोई स्वर, अब नहीं सुनायी देता है।
आज्ञा पर कान लगाये, हर योद्धा दिखलायी देता है।।

रण दर्शनार्थ सुरबालाये, अब व्योम मार्ग मे छायी हैं।
घनघोर युद्ध के दर्शन की, इच्छाये मन में लायी हैं।।

योगिनियों के अगणित समूह, सब तृप्ति हेतु जुड़ आये हैं।
अतिशय प्रसन्न सब विचार रहे, दिन बड़े भाग्य से पाये हैं।।

जन-जन चिन्ता से सूख रहा, परिणाम न जाने क्या होगा ?
यह धरा रहेगी या कि नहीं, अंजाम न जाने क्या होगा ?

॥ दोहा ॥

भय, चिन्ता, शंका विपुल, खेल रही चहुँपाश ।
आज सभी को दिख रहा, आता पास विनाश ॥

आज सभी कह रहे हैं, मनुज काल का दास ।
बदल रहा करवट स्वयं, युग अपना इतिहास ॥

सेनाओं की भांति हो, प्रभु पद अर्पित होय ।
युद्ध भूमि का कथन यह, पढ़े सुने सब कोय ॥

युद्ध निश्चय वर्णन

-: गीत :-

प्रथम जगे वह अविकारी है।

सुख तो आलस उपजायेगा। त्रिषा हेतु रस बरसायेगी।।
झूठे सुख की चमक दमक में। अपना पथ भूल जायेगी।।
अन्धकार के, फस कुफेर में, चलना जन की लाचारी है।

प्रथम जगे वह अविकारी है।।

जब से जीव भंवर में आया। सारा साहस ज्ञान गंवाया।।
अब तो करनी नहीं देखता। क्यों टूटी नौका को लाया।।
औषध-दया बचा सकती है, घेरे उसे महामारी है।

प्रथम जगे वह अविकारी है।।

क्या करना, क्या हमे न करना। क्या जाने किस किससे डरना।।
जिसने जो बोया सो काटा। सोच-सोच इसको क्या मरना।।
कर्म क्षेत्र मे कर्म-बेलि-फल, पाने का जन अधिकारी है।

प्रथम जगे वह अविकारी है।।

जीवन का क्रम आना-जाना। जिसने जीवन भ्रम पहचाना।।
जो निर्द्वन्द हुआ सुख-दुख से। उसका भव में नहीं ठिकाना।।
जो औरों को साथ ले चले, भव में बड़ा क्रांतिकारी है।

प्रथम जगे वह अविकारी है।।

बोले भरतेश सुनो मंत्री, युद्धार्थ यहाँ हम आये हैं।
किस लिये रुके सेना दल हैं, आदेश न इनने पाये हैं।।

आवश्यक युद्ध लड़ा जाये, कुछ भी विचार को शेष नहीं।
इतनी सी देर रही बाकी, पाया सब ने आदेश नहीं।।

आदेश दे दिया जाये अब, निर्णायक युद्ध संवरने को।
थक रहे खड़े सब वीर पुरुष, लालायित हैं कुछ करने को।।

सार्थक हो जाये वीर जन्म, रण कौशल का आवाहन हो।
ये खड्ग आज पतवार बने, ये खड्ग वीर का वाहन हो।।

जीवन का क्या, मिलता रहता, संग्राम न नित्य मिला करते।
पाकर समक्ष अपने समान, वीरों के वक्ष खिला करते।।

जन खड्ग धार अवगाहन को, जीवन भर लोग तरसते हैं।
बादल तो अवसर पर घिरते, लेकिन वे कभी बरसते हैं।।

अतिशयता हर्षित है मुझको, रण प्रांगण आज बुहारुँगा।
आओ तुम मुझसे और लड़ो, दुश्मन को खूब पुकारुँगा।।

जो चट्टानों से रुक जाये, बढ़ते दरिया का पानी क्या ?
दुश्मन को देख सिहर जाये, वह चढ़ती हुयी जवानी क्या ?

जिसने न शीश तोड़े अरि के, तो भुज दण्डो का पानी क्या ?
जो बढ़े लक्ष्य की ओर नहीं, वह मस्ती भरी रवानी क्या ?

अब तो बस युद्धारम्भ करें, जाओ मंत्रीवर जाओ तुम।
जी भर पुरुषत्व आजमा ले, कहकर के मंत्री आओ तुम।।

मंत्रीवर शीश झुका कर के, दुस्सह उर पीड़ा सहने को।
व्याकुल अन्तर से आप चला, आरम्भ युद्ध हो कहने को।।

देखा कि सामने से मंत्री, प्रभु बाहुबली का आता है।
दोनों ही हैं मिल रहे गले, दोनों को खेद सताता है।।

बोला भरतेश्वर का मंत्री, बोलो क्या हाल तुम्हारे हैं।
अब युद्ध भूमि में खड़े हुये, अपने दो ऋषभ दुलारे हैं।।

प्रारम्भ करे, रण बाहुबली, कहने यह सेवक आया है।
अति कुटिल कल्पना जिस क्षण की, वह दुखदाई क्षण पाया है।।

बोला आगन्तुक मैं भी तो, ये ही कहने को आया हूं।
पाकर प्रकाश बिफरे सैनिक, सन्देशा - दीपक लाया हूं।।

गज, रथ, पैदल योद्धा सवार, कोसों तक पांव जमाये हैं।
हम जूझेंगे, विजयी होंगे, अन्तर में लगन लगाये हैं।।

आज्ञा मिलते ही उद्धत हो, निज निज पौरुष से झूमेंगे।
कितने आकाश निहारेंगे, कितने धरती को चूमेंगे।।

फँस कर कितने ही चक्रों में, जीवन भर को खो जायेंगे।
हो गयी पूर्ण जीवन आशा, शमशानों में सो जायेंगे।।

लड़-लड़ कर खड्ग तोड़ देंगे, फिर भी सन्तोष नहीं होगा।
जीवन की धार मोड़ देंगे, ठण्डा आक्रोश नहीं होगा।।

रख कर अपार बल बिक्रम को, केवल विनाश से खेलेंगे।
जो जन के संकट हर सकते, वे ही अब संकट झेलेंगे।।

वह शान्ति न दिखलायी देगी, अब तक जो यहां विलसती है।
अब तो कुछ क्षण भी शेष नहीं, चहुं दिशि में क्रांति बरसती है।।

॥ दोहा ॥

सुनकर ठेठ यथार्थ को, मंत्रीवर है मौन।
युद्ध भूमि में नृपति को, सीख सिखाये कौन॥

भाई के संग्राम को, भाई झेले आज।
जन बलि - वेदी क्यों चढ़े, युग-युग हँसे समाज॥

कहें इसे हम कालगति, याकि कर्म का भोग।
भाग्य लेख इसको कहे, या अतृप्ति का रोग॥

—: कवित्त :—

तन में अपार बल विक्रम तो पाये हुये,
खेलना न सीख पाये जन हैं जवानी से।

बुद्धि का वितान जन तान चुका विश्व में है,
खेलना सरल नहीं आज आग - पानी से॥

इतना विवेक शील आदमी हुआ रे हाय !
सुमति विदाई हुयी आज राजधानी से।

इससे न बढ़ कर होगी जड़ता की बात,
खेलने चले हैं दोनों कुटिल कहानी से॥

*

जो शत्रु जगत में हिंसा के, वे ही हिंसा अपनायेंगे।
हम ही तो मात्र अहिंसक हैं, कैसे जग को बतलायेंगे॥

कोई समझेगा उस युग में, सन्देह लतायें पलती थीं।
कोई यथार्थ का पग न उठा, केवल बातें ही चलती थीं॥

अन्यथा कौन सी बात रही, जो शान्ति-वृक्ष था फल न सका।
ज्ञानी, मुनियों, केवलियों के, होते भी जो रण टल न सका ।।

आओ कुछ देर विचारें हम, शायद कोई हल मिल जाये।
जो रण वाला रण-मरुथल है, शायद है पंकज खिल जाये ।।

जिससे न भयंकर हिंसा हो, दोनों का प्रण भी रह जाये।
कोई न जगत में बुरा कहे, यह 'रण' धारा में बह जाये ।।

दोनों प्रण हेतु समर्पित हैं, दोनों समरांगण आये हैं।
युद्धार्थ उभय तैयार खड़े, बहु कटक कटीली लाये हैं ।।

वर-द्वन्द्व-युद्ध भी पूरा हो, सिद्धान्त हमारे बच जाये।
इतिहास अनोखा बन जाये, ऐसा कुछ अनुपम रच जाये ।।

यदि युद्ध हुआ तो शोणित के, भू पर सागर लहरायेंगे।
जो शान्ति-ध्वजा के पुण्य - स्थल, हाहाकारी बन जायेंगे ।।

रण के सागर में कितने ही, डूबेंगे या उतरायेंगे।
वीरों के पुष्ट अंग कट कर, कोमल भू पर छितरायेंगे ।।

अरि दल की नाव डुबाने को, हर लंगर खोला जायेगा।
किसके तन में कितना बल है, खड्गों से तोला जायेगा ।।

कर, पांव, शीश, कटि, वक्षस्थल, गिर-गिर कर धरती चूमेंगे।
जो वीर बचेंगे इस रण में, वैरागी बन कर घूमेंगे ।।

तलवार, गंडासे, धनुष, बाण, धरती पर बिलख रहे होंगे।
कुछ पड़े तोड़ते होंगे दम, जिनने असि वार सहे होंगे ।।

कितनों की आशायें क्वांरी, बस एकाकी रोती होंगी।
कुछ कर न सके, अरमान रहे, आंसू से मुख धोती होंगी ।।

गज, बाजि आदि होकर घायल, बन शिलाखण्ड बिखरे होंगे।
लेकर के वीर जवानों को, भू में निष्प्राण धरे होंगे॥
मुख उठा-उठा कर वीरों के, दृग में पानी भरते होंगे।
उद्दण्ड पवन के झोंकों से, सहमें भय से डरते होंगे॥

सर्वस्व विनाशक हिंसा से, ताण्डव जब मनुज रचायेगा।
तब छद्म अहम् की रक्षा से, मानव को कौन बचायेगा॥
हिंसा-हिंसा की जननी है, हिंसा से शान्ति नहीं होगी।
सब ओर दिखे नतन विकास, हिंसा से क्रान्ति नहीं होगी॥

हिंसा के सबल सहारे से, भू पर साम्राज्य नहीं होते।
हिंसा को गले लगाने से, अन्तर - साम्राज्य नहीं होते॥
जिसने भी हिंसा अपनायी, उसको न जगत सम्मान मिला।
जग झुका नही उसके आगे, उल्टा उसको अपमान मिला॥

शाश्वत सद्भाव अहिंसा मे, जिससे विकास ही सम्भव है।
हिंसा सर्वस्व विदारक है, जिससे विनाश ही सम्भव है॥
यदि हम विकास प्रति यत्नशील, तब एक अहिंसा का पथ है।
जिस पर चलकर के रुका नहीं, कोई सक्रिय जीवन रथ है॥

पथ एक अहिंसा का ही है, जिसको सब अपना सकते है।
जो है अनभिज्ञ अहिंसा से, उसको सब समझा सकते हैं॥
कायरता नहीं अहिंसा है, वीरता सदा सिखलाती है।
जब कभी चूमने लगता जन, आलोक सत्य दिखलाती है॥

हिंसा-हिंसक का जीवन कम, इतिहास हमें बतलाता है।
जीवित जग सदा अहिंसक है, अनुभव जन का जतलाता है॥

जन काम, क्रोध के वशीभूत, हिंसा पथगामी होता है।
परिणाम सामने जब आता, केवल पछताता रोता है॥

कहता पथ एक अहिंसा है, जिसको भूला मैं भटक गया।
गन्तव्य आप में पा न सका, पथ में जीवन रथ अटक गया॥

फल सके न हिंसा वृत्ति यहाँ, ऐसा पथ हमको चुनना है।
हिंसा न फले, रण हो जाये, ऐसा विचार-पट बुनना है॥

है एक युक्ति बोला मंत्री, सुनिये उसको बतलाता हूँ।
यदि उचित लगे, चुनिये अवश्य, प्रत्येक अंग समझाता हूं॥

भरतेश्वर बाहुबली के हित, सेना बल उमड़ा आया है।
लड़ने को दल तैयार खड़ा, आदेश न अब तक पाया है॥

आज्ञा मिलते ही प्रलयंकर, घातक हिंसा जग जायेगी।
जैसे शाखों की घर्षण से, दावानल ही लग जायेगी॥

फिर कौन पराया या अपना, जन को क्या दिखलायी देगा।
अस्त्रों की धाड़ धाड़ होगी, उनको क्या दिखलायी देगा॥

नृप का निर्णय, अन्तिम निर्णय, जिसमें विचार की जगह नहीं।
आज्ञा का पालन करना है, जिसमें नकार होगा न कहीं॥

ले अस्त्र-शस्त्र ये सेना दल, आज्ञा पाकर संग्राम करे।
हिंसा को गले लगा कर के, सब कुछ विनाश, परिणाम करे॥

भाई-भाई हो आपस मे, अपने बल की पहचान करे।
रण में उतरे बन युद्ध वीर, अपना ही घर वीरान करे॥

सेनायें दर्शक बनी रहे, स्वामी-स्वामी का बल निरखें।
कतिना किसमें है रण कौशल, बल, विक्रम, शौर्य फलित परखें ॥
हिंसा से मुक्त युद्ध होगा, तो यह आदर्श कहायेगा।
यों हार जीत परिणाम सहज, सबके समक्ष हो जायेगा ॥

—: कवित्त :—

हिंसा असमानता की नीति आज मन्द होगी,
बन्द होगी भव भीति हिंसा की प्रताड़ना।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि युक्त जन,
मुक्त जन होगा उर पड़ेगा न फाड़ना ॥
न्याय का दया का, ममता का, समता का भाव.
भाव का प्रभाव होगा, मारना न ताड़ना।
सफल अहिंसा होगी जगहितकारी मंत्र,
शस्त्र की स्वतंत्र साध किसी का बिगाड़ना ॥

★

चल कर के हम दोनों मंत्री, निज-निज स्वामी को समझाये।
जो सत्य अहिंसा के साधक, वे हिंसा पथ क्यों अपनायें ॥
बस हार जीत का ही निर्णय, दोनों वीरों को वरना है।
यों ही बस प्राण न लेना है, जग का विध्वंश न करना है ॥
रण भांति-भांति से युद्ध वीर, करके मन तपन बुझा डाले।
जिसमें सन्तोष मिले मन को, कैसे निज मन को समझा ले ॥
जन की, धन की, पशु, वैभव की, लीला विनाश रच सकती है।
किंचित संयम से मनोवृत्ति, यह धर्म युद्ध रच सकती है ॥

है उभय अहिंसा के सेवक, आशा है दोनों मानेंगे।
हिंसा बलवती न हो पाये, बस कुछ ऐसा रण ठानेंगे ।।

—: दोहा :—

गये मंत्रणा साध उर, निज-निज स्वामी पास।
मुख पर है उल्लास अति, अन्तर में विश्वास ।।

ज्यों विलम्ब हो रहा है, बढ़ता जाता क्लेश।
शीघ्र कहो हे ! मन्त्रिवर, बोले यों भरतेश ।।

*

क्या कारण आज मार्ग में हैं, अब तक न खड्ग झंकार हुयी।
गज, बाजि, पदाति नहीं फैले, अब तक न धनुष टंकार हुयी ।।

हो कहीं न ऐसा आज, युद्ध निर्णय के पथ से हट जाये।
सम्राट भरत का जग मे यश, बातो - बातों मे घट जाये ।।

चरणों में शीश झुका मंत्री, बोला नृप से संयत स्वर मे।
प्रभु के विपरीत चला जाये, ऐसा कुछ कहो न अन्तर में ।।

नृप बाहुबली के मंत्री से, सहसा पथ में यह बात चली।
लड़ने से कैसे बच पाये, भाई भरतेश्वर बाहुबली ।।

इसका निष्कर्ष यही निकला, हिंसा का नृत्य न चल पाये।
दुखदायी रक्तपात का रण, जैसे सम्भव हो टल जाये ।।

हे नृपति आपकी आज्ञा से, झनझना उठेंगी तलवारें।
शीशों पर शीश बिछे होंगे, गरजेगी असि की हुंकारें ।।

हिंसा की पावक भड़केगी, धू-धू करती दूनी होगी।
फिर आप दृश्य यह देखेंगे, अधिकांश माँग सूनी होगी ।।

बस हार जीत का निर्णय ही, सम्पूर्ण युद्ध से होना है।
तब एक पक्ष को हँसना है, फिर एक पक्ष को रोना है।।

सेनाएँ क्यों कर द्वन्द्व करें, हिंसा का काला बोध बढ़े।
परिणाम जगत भोला भोगे, युग युग के जो प्रतिरोध बढ़े।।

भाई - भाई मिल युद्ध करें, सेनाएँ खड़ी हुयी देखें।
निर्णय पर रण को बन्द करें, आशाएँ बढ़ी हुयी देखें।।

नृप भरत बीच में ही बोले, मैंने निर्णय स्वीकार किया।
निश्चय ही आप बुद्धिधर हैं, निश्चय ही विमल विचार दिया।।

उस पल की हमे प्रतीक्षा है, क्या बाहुबली का निर्णय है।
स्वीकार उन्हें भी होगा यह, मुझको यह बिल्कुल निश्चय है।।

-: कवित्त :-

तुमने ही बुद्धि का किया है उपयोग सद्,
सुनके विचार शुभ बाहुबली बोले हैं।

न्यायशीलता के बन्ध खुले जिससे कि सब,
जड़ अन्धता के सिंह आसनादि डोले हैं।।

भोले भाले जन सदा क्रूरता के जाल फँसे,
मोह, लोभ, ममता के देश बड़े पोले हैं।

पालकी उठा दी आज हिंसा असमानता की,
सारे अहिंसा श्रेष्ठ पथ आज खोले हैं।।

✱

हिंसा की आदि क्रूरता की, उमड़ी घन घटा घटा दी है।
जिससे जन थे भयभीत आज, वह छाया क्रूर हटा दी है।।

बच गया धरित्री का आँचल, जलता हिंसा की ज्वाला से ।
क्या बचा कभी कुछ अग जग में, मद अहंकार की हाला से ।।

हिंसा के मिस अन्तर ज्वाला, आदमी शान्त करता आया ।
सद्भाव, सुमति के आंगन में, क्रूरता आग भरता आया ।।

निज के अन्तर का अन्धकार, बल से जन छाता आया है ।
चिन्ता भय जैसे विपुल रोग, निज मे पन पाता आया है ।।

लड़ युद्ध अहिंसा अनुगामी, नूतन इतिहास लिखाना है ।
रणभेरी के हिंसालय को, हिंसा का पाठ भुलाना है ।।

यह हार जीत का निर्णय तो, हिंसा तज कर आ सकता है ।
इस शुद्ध अहिंसा के पथ को, कोई भी अपना सकता है ।।

अर्न्तविवेक से यदि जन मन, हिंसादि वृत्ति का त्याग करे ।
पथ प्रेम अहिंसा अपनाकर, निर्मलता से अनुराग करे ।।

सूचना भेज दो नृपवर को, रण करने आज पधारें वे ।
स्वागत को रण प्रांगण में हूं, यह नूतन युद्ध निहारें वे ।।

॥ दोहा ॥

शुद्ध अहिंसा युद्ध का, निश्चय हुआ विशेष ।
बाहुबली के साथ ही, अवगत हुये नरेश ।।

दोनो वीरों ने किये, अर्पित अपने प्राण ।
करता किसका आज है, क्रूर काल कल्याण ।।

निश्चय वर्णन जो पढ़े, ले जन हित का राग ।
जगे अहिंसा धर्म से, हिंसा का अनुराग ।।

युद्ध वर्णन

-: हरिगीतिका :-

महा मोह - आतंक - शमन को, जो कि शक्ति रखते हैं।
संयम-शील-विवेक न्याय प्रति, जो कि भक्ति रखते हैं।।

क्षमा, दया, आर्जव, मार्दव से, उर से जुड़े हुये हैं।
जो कि आत्म विस्तार हेतु, माया से मुड़े हुये हैं।।

जो तप के समक्ष धरती पर और न कुछ गुनते है।
सुखद शान्ति अपरिग्रह वाला मधुर पंथ चुनते हैं।।

समता, स्वाभिमान, आतम बल लेकर बड़े हुये है।
वही बाहुबलि काल चक्र से रण में खड़े हुये हैं।।

काल चक्र की अपनी गति है इससे कौन बचा है।
बाहर भीतर सभी क्षेत्र में सब में द्वन्द्व रचा है।।

लेकिन जो निर्लिप्त रहा वह आत्म शक्ति सागर है।
श्रद्धा, स्नेह, प्रेरणादिक सह पूज्य हुआ वह नर है।।

पर्वत सुमेरु पर सूर्य-बिम्ब, दीखा कि अग्नि का गोला है।
हैं कांप रहे तरु खड़-खड़, मानो रस में विष घोला है।।

अथवा आँखे हैं लाल-लाल, रोषाग्नि लिये भू झांक रही।
कितनी भू पर हरियाली है, आयाम विश्व का आंक रही।।

भयभीत खड़े वन, पर्वतादि, मानों जीवन अब बीत चला।
जीवनदाता सूरज सुनँन, अन्तर सनेह जब रीत चला।।

सरितायें दौड़ चलीं निधि को, आशंका प्रिय मिलने की है।
खिल रहे सुमन गिर रही कलीं, आशंका फिर खिलने की है।।

सब उभय पक्ष के सैनिक गण, शंकित नैनों से देख रहे।
कुछ किये भरोसा करनी पर, कुछ भाग्य रेख उल्लेख रहे।।

आ आकर मारुत कानों में, जीवन सन्देश सुनाता है।
चिर स्वाभिमान से वीरों के, जीवन का सच्चा नाता है।।

निश्चय प्रण के ही साथ-साथ, अर्पण कर दो निज प्राणों को।
पीकर अमरत्व कर्म का तुम, झेलों हँस-हँस कर बाणों को।।

यह तो शरीर क्षण भंगुर है, मिथ्या शरीर की ममता है।
तन के प्रति मोह भंग रक्खो, सच्ची प्राणी प्रति समता है।।

तन वस्त्र तुम्हारा फट जाये, जल्दी से इसे बदल लेना।
राही तुम उत्साही बनकर, जल्दी से वस्त्र बदल देना।।

जीना क्या कायरता में है, जिसमे श्वासों का मोह रहे।
सिर पर स्वार्थों का साया हो, सबके प्रति मन में द्रोह रहे।।

यदि जिये किसी को दुख देकर, अपने जीवन का नाश किया।
वह जीवन भी तो व्यर्थ गया, जिसने इच्छा का दास किया।।

सुख दुख हो या फिर हानि लाभ, जीवन मे आते जाते हैं।
जो जग हित निज को जीते हैं, वे ही यश-अमृत पाते हैं।।

रण के प्रति प्राण समर्पित कर, जीवन का पंथ सुधारो तुम।
अंकित इतिहास पृष्ठ पर हो, ऐसी आरती उतारो तुम।।

कहता यों मारुत निकल गया, वीरों के मन का सुमन खिला।
मानों कि एक आराधक को, अपने प्रभु का सन्देश मिला।।

उपदेश ऋषभ का मारुत ले, वीरों के हेतु यहाँ लाया।
वीरों ने ज्यों उपदेश सुना, मानों सबने अमृत पाया॥

जीवन रहस्य जाना सबने, संसार लगा क्षण भंगुर है।
अज्ञान तोम घेरे न हमें, ये ही जीवन का अंकुर है॥

दोनों पक्षों के विपुल वीर, अन्तर में ज्ञान उतारे हैं।
जय वृषभदेव जय जगदीश्वर, जग में प्रभु आप हमारे हैं॥

जब सबने यह संवाद सुना, ये युद्ध अहिंसात्मक होगा।
कितनों को सुख की साँस मिली, सबने मन ही मन सुख भोगा॥

॥ दोहा ॥

दृष्टि युद्ध, जल युद्ध अरु, मल्ल युद्ध के रंग।
निज-निज बल प्रस्तुत करे, भरकर युद्ध उमंग॥

सेनाये, नृप आदि हों, दर्शक न्यायाधीश।
सब पर परम कृपालु हों, ऋषभनाथ जगदीश॥

जन, धन, श्यामल फसल का, हो किंचित न विनाश।
शुद्ध अहिंसा वृत्ति मे, उज्ज्वल हो इतिहास॥

-: हरिगीतिका :-

जन कष्ट देकर यदि जिआ, तब बुद्धि का क्या योग है।
बल बुद्धि यदि मिलकर बढ़े, तब जीव का संयोग है॥

आत्मबल के साथ ही यदि, विश्व का हित ध्यान है।
सर्वत्र ही एसे सुजन का, पूज्य जग में ज्ञान है॥

इक्ष्वाकु कुल के सिंह दो, तज ने जगत हिंसा चले।
रण अहिंसात्मक लड़े, दुनियां न हिंसा में जले॥

इक्ष्वाकु कुल भूषण उभय, प्राची दिशा के सूर्य हैं।
जग अहिंसा पर चले, इस भाव के हित तूर्य हैं॥

★

दो योद्धा रण के आंगन में, रण करने आज पधारे हैं।
रण-सरिता सहज उतरने को, नौकाये लगी किनारे हैं॥

पहले रण दृष्टि युद्ध होगा, तेजस्वी कौन अनूठा है।
है कितना किसमें आत्म तेज, अथवा किसने यश लूटा है॥

आमने सामने जब दोनो, भरतेश बाहुबली आये हैं।
पर्वताकार बढ़ते जलधर, रण - गगनांगण में छाये है॥

दो भीम रूप देखे रण मे, कायर अन्तर सकपका उठा।
हा भयद दृश्य होगा रण में, डरपोक हृदय कपकपा उठा॥

मारुत प्रवाह से हो प्रेरित, दो मेघ चले टकराने हैं।
टुकड़े - टुकड़े चंचला शान्ति, पाने को चले ठिकाने हैं॥

श्री बाहुबली, भरतेश्वर से, सब देख रहे अति ऊँचा है।
तन बाहुबली का यों लगता, मानों गिरिराज समूचा है॥

विस्मय चहुं ओर उमड़ आया, बहुमुखी हो गई शंकाये।
आमने सामने जूझेंगी, सागर सी दो विभीषिकाये॥

अब दृष्टि युद्ध प्रारम्भ हुआ, दोनों ने दृष्टि मिलायी है।
दोनों में अनुपम तेज भरा, तन मे समान तरुणाई है॥

वर बाहुबली ने निर्निमेष, भरतेश ओर अवलोका है।
मिथ्यात्व पूर्ण भरतेश दृष्टि, मानो ज्ञानो ने टोका है।।

वह दिव्य दृष्टि रवि किरण, सदृश निर्भीक बिलोके जाती थी।
ऊपर उठती भरतेश-दृष्टि, क्षण-क्षण बाधा उपजाती थी।।

इस ज्योति पुंज की टक्कर से, भू लोक आप भरभरा उठा।
आकाश मार्ग से सुरपति का, साहस अपार चरमरा उठा।।

चल पड़े मेघ उनचास तुरत, धरती की तपन बुझाने को।
जग जल न जाये यों हरा-भरा, अंचल संतप्त बचाने को।।

कुछ अधिक देर भरतेश नयन, शायद वह तपन न सह पाये।
हम तेजस्वी, हम वर्चस्वी, शायद वह नमन न कह पाये।।

झुक गये पलक, निस्तेज नमन, रथ और दिशा को मोड़ चले।
मानो यों हार मान ली है, मैदान नयन का छोड़ चले।।

-: दोहा :-

दृष्टि युद्ध में हो गयी, भरत नृपति की मात।
चले प्रात की सोचकर, मिली तमस की रात।।

आज तेज की मूर्ति यों, जन-मन को साकार।
बाहुबली की हो गई, चहुँ दिशि जयकार।।

दृष्टि युद्ध में हारकर, भरत न मानी हार।
और-और रण के लिये, करने लगे पुकार।।

★

बढ़ रहा क्रोध का ज्वार प्रबल, अपना स्वरूप दिखलाने को।
दो क्षण में इतने चूर हुये, मस्ती का मजा चखाने को।।

घायल भुजंग सा है व्याकुल, प्रतिशोध आग में जलता सा।
घिर गया धुंए सा उमड़-घुमड़, बेचैन करों को मलता सा॥

जिसको जीवन में आस न थी, उस विकट पराजय को देखा।
हो गयी पराजय विक्रम की, जिसमे केवल जय को देखा॥

यदि विजय नहीं तो क्या जीवन, जीते जी मरते जीना है।
केवल स्वासों को भरना है, विष के घूंटों को पीना है॥

या मृत्यु मिले या विजय मिले, जीवन साकार वीर होना।
जीवन को आर-पार करता, साथी, विष बुझा तीर होना॥

अन्तर वासी प्रभु आदिनाथ, मेरा उद्धार तुम्ही से है।
रण में बस मन वांछित पाऊँ, मेरा श्रृंगार तुम्ही से है॥

जल युद्ध हेतु सरवर के तट, दोनों यौद्धा रण ठाने हैं।
जल का भीषण रण देखेंगे, दर्शक भी परम सुहाने हैं॥

दोनों रण शूर घुसे सर में, पर्वत उग आये सागर मे।
दो धूम केतु आकाश भरे, दिग्गज घहराय सागर मे॥

ज्यों उठे क्षितिज तल के बादल, भयभीत हुआ जग कांप गया।
अघटित कुछ घटने वाला है, दर्शकगण का मन भांप गया॥

हर दिशा बढ़ा सन्नाटा है, लाचार पवन को धीर नहीं।
निस्तब्ध खड़े हैं यौद्धागण, अब कोई भी रण वीर नही॥

रण हेतु उपस्थित है जल में, दोनों प्राणों पर खेलेंगे।
जी भर कर नीर उछालेंगे, आक्रमण नीर के झेलेंगे॥

लो देखो रण आरम्भ हुआ, दोनों प्राणो पर खेल रहे।
दे रहे उछाले हैं, जल के, दोनों वारों को झेल रहे॥

अन्तर ज्वाला से ज्यों सागर, उत्ताल तरंगे भरता हो।
एसे व्याकुल जल उछल रहा, नभ छू ले, उपक्रम करता हो।।
अगणित जल कण मुक्ता बनकर, सब ओर बिखरते जाते हैं।
मानो सागर में छिपे देव, सुमनांजलियाँ बरसाते हैं।।
अथवा हिमगिरि पर हिम आँधी, घनघोर घटा सी घिर आयी।
दर्शक गण देख नहीं पाते, घिर आयी आँधी फिर आयी।।
अथवा असख्य हँसों के दल, शंका से उठ कर भाग रहे।
लग रहा, कुन्द कलियों के बन, सब एक साथ हो जाग रहे।।

-: कवित्त :-

बाहुबली के समक्ष, बलधारी भरतेश,
तान - तान वक्ष बलहीन हुये जाते थे।
गिरती अपार जल धार निराधार टोके,
सहते प्रहार नैन भी न खेल पाते थे।।
नीर को उछालते पे शीश वीर छू न पाते,
हूल हूले अन्तर सा, अन्तर घटाते थे।
दे न पाते एक बार झेलते अनेक बार,
बार - बार अन्तर का बल आजमाते थे।।

★

पर बाहुबली से वारों पर, होता कोई भी असर न था।
भगकर के कहाँ भरत जाते, इनको कोई भी विवर न था।।
जल के अति कुटिल प्रहारों से, व्याकुलता बढ़ती जाती थी।
भरतेश वीर की थकी सांस, ऊपर को चढ़ती जाती थी।।

पानी के सबल प्रहारों से, पीछे को हटते जाते थे।
हे आदिदेव अब कृपा करो, बस यों ही रटते जाते थे ।।

हो गये शिथिल अब भरतेश्वर, निज नैन भली विधि बन्द किये।
सम्पूर्ण अंग हो रहे, शिथिल, बस त्राहिमाम् स्वच्छन्द किये ।।

निश्चेष्ट देख भरतेश्वर को, कर्त्तव्य परम कल कान्त किया।
यों वीर बाहुबलि ने खुद ही, जल के रण को तब शान्त किया ।।

निर्णय दे दिया दर्शकों ने, हो गयी हार भरतेश्वर की।
जय बाहुबली ! जय बाहुबली, इन पर है कृपा जिनेश्वर की ।।

देवता वृन्द चिन्तित विशेष, अघटित ही कहीं न घट जाये।
ज्यों नियत समय से पहले ही, सागर पर्वत से पट पाये ।।

इक्ष्वाकु वंश के नर-पुंगव, बल विक्रम आज निहार रहे।
किस पर बरसाये आज पुरुष, सुरपति यह आज विचार रहे ।।

दूसरे चरण मे भरत नृपति, पा सके विजय उपहार नहीं।
हो गये शिथिल घायल असफल, अब तो कोई उपचार नहीं ।।

जैसे कि किसी मणि पन्नग की, बातो में मणि ही लुट जाये।
क्रोधाग्नि सहेगा कौन सहज, जिसका साहस ही छुट जाये ।।

आहत मृग राज पड़ा हो ज्यों, इस तरह हुये भरतेश्वर हैं।
जाना न छोड़ कर रण प्रांगण, रण का क्षण ही प्राणेश्वर हैं ।।

॥ दोहा ॥

बाहुबली से युद्ध में, हार हुयी दो बार।
व्यर्थ हुयी सब साधना, जीवन हुआ असार ।।

अंतर में प्रतिशोध की, जगी भयंकर आग।
किन्तु विजय की ओर भी, कम न हुआ अनुराग॥

जैसे भी हो विजय का हो, विश्राम विशेष।
अब भरतेश्वर को रहा, मल्ल युद्ध ही शेष॥

★

भूतल पर समतल बना एक, मल्लों का यही अखाड़ा है।
वीरों की कोमल शय्या है, दर्शक को मात्र अखाड़ा है॥

सेवक, सेना, सेनप, मंत्री, दर्शक नृपराज पधारे हैं।
निर्णायक युद्ध देखने को, मन में उत्सुकता धारे हैं॥

चहुं दिशि है छायी भीड़ सघन, वर्षा में घन ज्यों घिरते हैं।
भू अँचल जो सुख से चचल, उस सुख के जल कण गिरते हैं॥

जय ऋषभदेव ! जय भरतेश्वर, जय बाहुबली का नारा है।
हिंसा प्रतिहिंसा को तजकर, प्रिय सबके धर्म किनारा है॥

दहले न हृदय बलहीनों का, चमके केवल बलवीर नहीं।
जीवे सात्विक का दण्ड यहाँ, चमके केवल शमशीर नहीं॥

वैसे तो जग में विग्रह का, होता सुन्दर परिणाम नहीं।
प्रभु वृषभदेव वह कृपा करें, डूबे जो रण कुल नाम नहीं॥

आ गये क्षेत्र में युद्ध वीर, पर्वत दो दिये दिखाई हैं।
जलयान प्रकट दो सागर में, लहरें करती पहुनाई हैं॥

दो धूम केतु गगनांगन में, आकर के मानों ठहरे हैं।
इक्ष्वाकु वंश के देवदारु, क्या हिलें कि बैठे गहरे हैं॥

भरतेश्वर उर की कठिन ज्वाल, बाहर आने को व्याकुल हैं।
दो बार हार हो चुकी, अभी इसलिये बहुत शंकाकुल हैं।।
हो विजय हार परवाह नहीं, प्रण रण मंजिल तक जाना है।
रण की भू पर प्रण वीरों के, अर्पित हो जाना माना है।।
निर्णायक युद्ध यही होगा, साथी बस वर माला होगी।
पायेगा एक अयश थाती, विजयी उर जय माला होगी।।
रण मल्ल अखाड़े में आये, गहगहे नगाड़े बाजे हैं।
दोनों ही दल हँस रहे आज, सब साज अनूठे साजे हैं।।

—: कवित :—

हाथी दो बिशाल काय सागर के मध्य खड़े,
द्वन्द्व कर दोनों तन - बल आजमायेंगे।
बार - बार एक दूसरे पे झोंक देंगे बार,
भाँति-भाँति दोनों दांव-घात दिखलायेंगे।।
कर - कर निज कर से प्रहार बार - बार,
मानों पत्थरों के खण्ड - खण्ड बरसायेंगे।
अरि के वितुण्ड का प्रचण्ड तोड़ कर शुण्ड,
वश मे रहा तो चण्ड प्राण चाट जायेंगे।।

★

फट पड़ा एक दम ज्वालमुखी, दोनों ने हाथ मिलाये हैं।
तक रहे सिंह गति से दोनों, मानों पर्वत टकराये हैं।।
हो रही शिलायें चूर - चूर, आपस में ही टकरा करके।
भिड़ पड़े अखाड़े में दोनों, ज्यों बज्र गिरे चकरा करके।।

दोनों के सिंह जब टकराये, तब भीषण हाहाकार हुआ।
जैसे दो बादल टकराये, नभ में स्वर अपरम्पार हुआ ।।

अथवा सागर की रण लहरें, टकराकर कूल गिराती हों।
अपने तन का ज्यों बल विक्रम, दर्शाती, शोर मचाती हों ।।

चल रहे दांव पर दांव सघन, जैसे वर्षा का कोप बढ़ा।
इस दांव पेंच की वर्षा से, दोनों का पारा और चढ़ा ।।

है उछल मुस्तिका खूब रही, जैसे पर्वत का लावा है।
हो रहा आज भीषण निनाद, अम्बर तक शोर शराबा है ।।

हो रही आज है सन्न पवन, सब ओर एक सन्नाटा है।
श्री बाहुबली है भीमकाय, भरतेश्वर का कद नाटा है ।।

बन गये काल हैं भूतल पर, अब तो विकराल अखाड़ा है।
बाहूबलि ने भरतेश्वर को, अनगिनती बार पछाड़ा है ।।

पर भरत हार क्यों कर माने, तन का बल हुआ न रीता है।
इस लिये मल्ल रण बाहुबली, दोनों को ही बिन जीता है ।।

लड़ रहे नाग न्यौला बनकर, निर्णायक समर दिखाना है।
इक्ष्वाकु वंश रणवीरों के, विक्रम का कहाँ ठिकाना है ।।

गति पवन भुजाओं में इनके, उद्दाम सिन्धु वक्षस्थल हैं।
हिमगिरि समान उन्नतललाट, मुख घेरे किरणें चंचल हैं ।।

मानों जननी ने हाथ फेर, दोनों ही सुत हैं एक किये।
देखा कि भरत ने थक कर के, दोनों ही घुटने टेक दिये ।।

जय बाहुबली, जय बाहुबली, हर ओर बड़ा जयकार हुआ।
इस पराक्रमी का बल विक्रम, जगती भर को स्वीकार हुआ ।।

—: सवैया :—

अब क्रोध की आंधी उठेगी बड़ी,
तब ज्ञान का दीप जलेगा कहाँ ?

अभियान का रोढ़ा बढ़ेगा जहाँ,
तब मान का वृक्ष फलेगा कहाँ ?

तप त्याग का भाव जगाये बिना,
भव का कटु फन्द टलेगा कहाँ ?

कुछ और को आप सहेजे रहो,
बिन ज्ञान के काम चलेगा कहां ?

★

भरतेश्वर हुये पराजित हैं, क्षण भर में ही जग जान गया।
हैं बाहुबली अति पराक्रमी, यह भू मण्डल पहचान गया ।।

ये निरभिमान नृप बाहुबली, इसलिये पराजित क्या होते।
लड़ रहे अहं की पूर्ति हेतु, भरतेश्वर अविजित क्या होते ।।

अब क्या होगा इस चिन्ता से, सबका मुख मंडल पीत हुआ।
कैसे अब शान्ति जमेगी हा:, चिन्ता से जन भयभीत हुआ ।।

थे बाहुबली चुपचाप खड़े, तब तक कि एक हुँकार उठी।
खोये मणि घायल विषधर को, क्रोधाग्नि तप्त फुंकार उठी ।।

फुंकार सुनी रोमांच हुआ, जन-जन में हाहाकार मचा।
लगता अब बाहुबली नृप ने, क्रोधाग्नि पूर्ण संसार रचा ।।

वश चले भरत का तो भू को, सागर में अभी डुबा डाले।
आकाश चूमते तुंग शिखर, क्षण भर में धूल बना डाले ।।

नदियाँ पश्चिम की ओर चलें, सागर नभ को उठकर छूले ।
नक्षत्र गिरें भू पर आकर, प्रतिशोध अनल अम्बर छूले ।।

ले लिया भरत ने अजय चक्र, जिसका न कभी उपयोग हुआ ।
भाई पर आज उठेगा वह, कैसा विचित्र संयोग हुआ ।।

दुधर्ष चक्र, वह अमोघास्त्र, जल्दी से भरत उठा लाये ।
परिणाम न सोचा क्या होगा, हिंसा पर शीघ्र उतर आये ।।

हिंसा का कुटिल प्रयोग किया, भाई पर चक्र चलाया है ।
मानों यह चक्र चला कर के, चिर अपयश निकट बुलाया है ।।

सब हाय ! हाय ! कर चीख पड़े, यह दुराचरण का परिचय है ।
दुधर्ष चक्र का सचालन, आ रहा मरण यह निश्चय है ।।

अब क्या होगा हाः क्या होगा, राजा जब अत्याचारी है ।
हे ऋषभदेव ! अब कृपा करो, हम सबकी तो लाचारी है ।।

हैं आदिनाथ अन्तरयामी ! अब तो दयालु वे होंगे हीं ।
सारे जग के आरत हर हैं, तब तो कृपालु वे होंगे हीं ।।

हिंसा किस भांति पराजित हो, यह आज समीक्षा होनी है ।
हारे न अहिंसा आज कहीं, प्रभु सफल परीक्षा होनी है ।।

–: कवित्त :–

छोड़ के अचूक चक्र बाहुबली मृत्यु हेतु,
प्रतिशोध क्रोध अब बल आजमाया है ।

उपहास परिहास जो भी चाहे करे जग,
बन्धु के विरोध बीच बोध को बुलाया है ।।

संयम के सिन्धु और सुन्दर विवेक मूर्ति,
दृढ़ता के बाहुबली लोक ने बताया है।

छू न सका वंश का प्रचण्ड तपा हुआ मन,
चक्कर लगा के चक्र आप लौट आया है ।।

★

हो गयी अहिंसा है विजयी, हिंसा की भारी हार हुयी।
क्रोधाग्नि समंदर हार गया, विजयी गंगा की धार हुयी ।।

तिल भर न डग मगे बाहुबली, साहस ही निर्भय खड़ा रहा।
भरतेश्वर का विजयी घमंड, अपमानित, बेबस पड़ा रहा ।।

भरतेश घृणा के पात्र हुये, खुलकर अनीति अपनाने से।
यह कार्य मनुष्योचित न हुआ, क्रोधी मानी बन जाने से ।।

कितना कलंक निज शीश लिया, सारी सत्ता हथियाने को।
मर्यादाओं को भूल गये, ऊँचा सिंहासन पाने को ।।

देवता वृन्द ने इस कृत को, अनुचित कहकर धिक्कार दिया।
नृप भरत नीति पर नहीं चले, ये सबने ही स्वीकार किया ।।

रणवीर बाहुबलि ने सोचा, नृप का का मद कितना निर्मम है।
सत्ता के लिये हुआ कैसा, हिंसा अनीति का संगम है ।।

माना मैं रण में जीत गया, यह विजय मुझे स्वीकार नहीं।
क्या करना है ऐसी जय का, जिसका महान आधार नहीं ।।

हो गये भरत इतने मदान्ध, कुछ भी न दिखायी देता है।
सत्ता का लोभ कलंकित है, निर्णय उल्टे ही लेता है ।।

पद का यह मिथ्या आकर्षण, उनको अमरत्व पिलायेगा।
सम्राट उन्हें पद छोटा था, पद कोई बड़ा दिलायेगा।।

धन, राजकोष, सेना सेनप, पाकर के भी सन्तोष नहीं।
सब कुछ पाया, सब कुछ भोगा, पर मिला न्याय का कोष नहीं।।

क्या पता कभी क्या कर बैठे, मुझ पर जब चक्र चलाया है।
मैं शान्त लोक में सोया था, किस विधि से मुझे जगाया है।।

धिक्कार राज सुख राज-पाठ, इस मीठे विष की चाह नहीं।
धिक्कार चलूँ जो इस पथ पर, उर में कोई उत्साह नहीं।।

इक्ष्वाकु वंश का बाहुबली, जीता पर भव से हारा है।
इस झूठे भव सुख के समक्ष, निश्चय नय सबल सहारा है।।

नृप-राज-भोग भोगे कोई, अपने चिन्तन का विषय नहीं।
दो क्षण पहले जो पायी थी, वह मेरी असली विजय नहीं।।

ये राज भोग कोई साधे, रोगों का एक पिटारा है।
भव भोगों की सुन्दर धारा, योगों का कटा किनारा है।।

इच्छा भोगों की जननी है, क्षण भंगुरता पनपाती है।
इनसे न किसी को शान्ति मिली, यह तृष्णा और बढ़ाती है।।

ये कोट, भवन, ये मीनारे, सारे बन्धन के कारण हैं।
ये बाहुबली के योग्य नहीं, जो चाहें करले धारण हैं।।

ये भाव प्रकट जब सुने गये, घेरे मुख आन उदासी ने।
दासी धृति बनी अभी तक थी, घेरे जन चिन्ता प्यासी ने।।

—: कवित्त :—

हाय दुर्दैव कैसी रचना रची है आज,
बना हुआ खेल जाने किसने बिगाड़ा है।

शान्ति सुधा सिन्धु तट जन सुख भोगते थे,
कोई हवा चली राग रोष का अखाड़ा है।।

किसने दिया है मद-मोह मदिरा का पात्र,
शील, समता का फल एक-एक झाड़ा है।

जहाँ पर-उपकार वाली वृत्ति जनमी थी,
बजा उसी भूमि से, ये कुटिल नगाड़ा है।।

*

चल दिये छोड़ सब बाहुबली, सर्वत्र निराशा छायी है।
सब सोच रहे हैं खड़े-खड़े, किसने रण मे जय पायी है।।

भूचाल भरत मे भी आया, पर तीर हाथ से छूट चुका।
अब देह भूमि पर बिलख रही, सम्बन्ध न्याय से टूट चुका।।

वे मौन खड़े हैं गिरिवर से, सिर पर बस पवन झकोरे है।
हैं भरत आज उस वृक्ष सदृश, झोके किसको झकझोरे हैं।।

क्या करे नहीं क्या आज करे, झझा में वृक्ष अकेला है।
बाहर भीतर से टूट रहे, सम्मुख संकट की बेला है।।

हो गया युद्ध का दुखद अन्त, निर्णय भी रहा अधूरा है।
अपयश ही आज हाथ आया, मन चाहा हुआ न पूरा है।।

—: कवित्त :—

गिर गया शीश पर जैसे हो सुमेरु गिरि,
दूर-दूर आशा की किरण है न बाती है।
ढूंढने चले थे सब नूतन प्रकाश पुंज,
मिल पायी जिसको न कोर है न धाती है ।।
वही दशा इस रण भूमि में हुयी रे हाय !
जैसे एकाएक कहीं बाती बुझ जाती है।
आशा अभिलाषा मर गयी प्रति पग नयी,
जैसे गयी हुयी सांस लौट के न आती है ।।

।। दोहा ।।

बाहुबली त्यागी हुये, सम्मुख था निर्वाण।
रोक न पाये भव विभव, मिला पंथ कल्याण ।।
भरत स्वयं इस काण्ड से, हुये बहुत बेहाल।
ज्यों कि प्रभंजन भार से, झुकी वृक्ष की डाल ।।
पढ़े सुने इस खण्ड को, जागे विमल विवेक।
छूटे जग की चाहना, एक ऋषभ प्रभु टेक ।।

राज्याभिषेक वर्णन

-: हरिगीतिका :-

ज्ञान का है अर्थ जीवन, ज्ञान जीवन सार है।
ज्ञान नौका से चलो भव, सिन्धु समझो पार है।।

ज्ञान ही इस विश्व भर में ध्यान करने योग्य है।
ज्ञान ही अति पूज्य है सम्मान करने योग्य है।।

सत्य, संयम, शील, तप सब ज्ञान निधि के बिन्दु हैं।
ज्ञान नदियों ने भरे भव ग्रस्त गहरे सिन्धु हैं।।

ज्ञान ही शिवरूप है भव ज्ञान ही कमनीय है।
ज्ञान भव का प्राण है, जग ज्ञान आदरणीय है।।

ज्ञान पथ को छोड़ के जन भोगता बहु क्लेश है।
ज्ञान में ही युक्ति का गर्भित परम उपदेश है।।

धन्य बनने के लिये सदज्ञान अपनाते रहो।
ज्ञान बल को साथ रख सर्वत्र जय पाते रहो।।

*

अति उन्नत परम सुशोभित गिरि, जग जीवन धन्य बनाते हैं।
भव के बहु रोग मिटाने को, अगणित औषध अपनाते हैं।।

जग के हित को हैं बड़े हुये, जग हित को वैभव पाया है।
जग में जितने भी बड़े हुये, शुभ ज्ञान इन्ही से पाया है।।

पर्वत कन्याये सरिताये, बढ़ती सौरम्य लुटाती हैं।
तट आता पाता नीर स्वादु, जगती की तपन मिटाती हैं।।

ऋषभायण
षष्ठ खण्ड
क्षमा
मार्दव
आर्जव
शौच
सत्य
संयम
त्याग
ब्रह्मचर्य
स्याद्वाद अनेकान्त
की अमृत-धार
१- भरत राज्यभिषेक वर्णन
२- चतुर्वर्ण व्यवस्था वर्णन
३- भरत स्वप्न वर्णन
४- भरत विदेह-वृत्ति वर्णन
५- स्वयंवर वर्णन
६- युवराज-जयकुमार वर्णन
७- भरत न्याय वर्णन
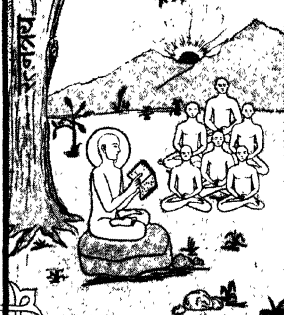
वन सघन उपजते दोनों तट, फसलें नूतन उपजाती हैं।
जन जीवन धन्य बना देती, धरती की देह सजाती हैं।।

जल धारा या यश धारा में, जो कोई कभी नहाता है।
अतिशय हो जाता मन प्रसन्न, जन कष्ट मुक्त हो जाता है।।

राजा गिरिवर के सदृश यहाँ, परहित का वैभव पाया है।
शासन स्वरूप जल धारा से, जग जीवन धन्य बनाया है।।

जितना विवेक नृप में होता, पर्वत जैसा यश पाता है।
जन जन का संकटहारी है, भूमण्डल को सुख दाता है।।

पर हित को सदा तरसते हैं, परहित को जीवन जीते हैं।
करके जन हित के शुभ साधन, सन्तोष सुधा रस पीते हैं।।

प्रभु की पर्याय यही बनते, प्रभुता सम्पन्न हुआ करते।
रखकर प्रभुत्व करते न मान, परहित का धनुष अस्त्र धरते।।

राजा में और प्रजा में तो, जग पिता पुत्र का नाता है।
वात्सल्य और सेवा व्रत से, उपयोगी सुख उपजाता है।।

जनता जिन का यश गाती है, मारुत यशगीत सुनाता है।
अन्तर मे गाथा को समेट, युग-युग में छवि चमकाता है।।

राजा में ज्ञान न यदि होगा, कर्त्तव्य हीन हो जायेगा।
तब तो जनता का जीवन भी, दुख में विलीन हो जायेगा।।

सद्वक्ता, वर नीतिज्ञ विज्ञ, अन्तर मन से हितकारी हो।
हो प्रजानिष्ट अति सहनशील, हर विधि वह पर उपकारी हो।।

इक्ष्वाकु-वंश-अवतंस - भरत, मानव हित पंथ विचारक थे।
तन से, मन से, बल, वैभव से, हर विधि से पर उपकारक थे।।

-: कवित्त :-

भव का विभव सदा ज्ञान से है काम आता,
और अज्ञता में नृप आप डूब जाता है।
स्वार्थ परता के, जड़ अज्ञता के, अंधता के,
फंस बुरे फेर जगती के दुख पाता है।।
सब ओर उसको तो व्यस्ततायें घेरती हैं,
विज्ञ सुख साधनों के स्रोत ढूँढ लाता है।
नर होकि, नारि होकि, बाल होकि वृद्ध होकि,
प्राण के समान ज्ञान हो तो काम आता है।।

★

नृप आये लौट अयोध्या को, सबने ही जय जयकार किया।
जैसी जिसकी सामर्थ्य रही, सबने स्वागत सत्कार किया।।
जय बाहुबली की हुयी मगर, उनने न उसे स्वीकार किया।
सम्राट हुये यों बाहुबली, सबने यों विमल विचार किया।।
ऐसी जय लेकर क्या करते, भाई प्राणो का ग्राहक हो।
भाई - भाई संघर्ष करे, भाई ही स्वयं विनाशक हो।।
भव की पदवी को युद्ध करे, भव के सुख को जो लड़ता हो।
भव के सुख का इच्छालु रहे, भव सुख के लिए झगड़ता हो।।
उनने भव सुख से मुख मोड़ा, जग के सुख से नाता तोड़ा।
तप, संयम, इन्द्रिय निग्रह से, अपरिग्रह से नाता जोड़ा।।
सब कुछ तप के हित त्याग दिया, अग्रज भरतादिक भोग करें।
जिसमें उनको सन्तोष मिले, एकत्र वहीं संयोग करें।।

टूटे मन से भरतेश्वर ने, नृप रहना ही स्वीकार किया।
इक्ष्वाकु वंश मर्यादा की, रक्षा का तनिक विचार किया।।

मंत्री, सेना, सेनप, सेवक, सबने भरतेश मनाये थे।
जो हुआ नृपति उसको भूले, नाना प्रकार समझाये थे।।

अनमने नृपति घर लौटे हैं, अन्तर में बड़ा बवण्डर है।
गल रहे ग्लानि से भीतर ही, अन्तर में द्वन्द्व भयंकर है।।

भाई पर दल बल सहित चढ़ा, जीभर कर वज्र प्रहार किये।
प्रतिशोध क्रोध की लपटों से, घातक रण बारम्बार किये।।

सो गया ज्ञान बिल्कुल मेरा, अज्ञान तिमिर ने घेर लिया।
रण करने को कोई न मिला, अपना भाई ही टेर लिया।।

धिक्कार मुझे, धिक्कार मुझे, न्यायी या ज्ञानी कहलाऊँ।
सत्ता के मद ने घेर लिया, अब इस पर कैसे जय पाऊँ।।

मेरे सिर पर जो अहं चढ़ा, वह स्वयं ही दूर हुआ।
भटका मेरा अभिमानी मन, मिथ्याभिमान चक चूर हुआ।।

जन हित से कैसे मुख मोड़ू, इक्ष्वाकु वंश की गरिमा है।
राजा बन जग को सुख देना, इक्ष्वाकु वंश की महिमा है।।

—: दोहा :—

मंत्रीवर ने नृपति को, समझायी बहु बात।
विभावरी बीती तभी, आया नवल प्रभात।।

भांति-भांति के आ रहे, भरतेश्वर को ख्याल।
आया आकर डस गया, हाय! अहम का व्याल।।

समझेगा इस जगत में, कौन हृदय की पीर।
जगत चरित के हनन को, सबके कर शमशीर ॥

कौन यहाँ पर है अमर, किसे न व्यापे पीर।
जो ज्ञानी सो मुक्त है, ज्ञानी मुक्त शरीर ॥

जो आये सो जा रहे, तू क्यों नहीं अधीर।
खड्ग हाथ ले ज्ञान को, काट कर्म जंजीर ॥

★

जग में रहकर जग का होना, यह भी दायित्व हमारा है।
निज बल से जग सुन्दर करना, यह भी कर्त्तव्य हमारा है ॥

संसार सरोवर में हम को, हँसते सरोज सा जीना है।
हँसते ही आज पार होना, धारा के बीच सफ़ीना है ॥

जग में रहना, होना न लिप्त, जग तो विकास का साधन है।
कर्त्तव्यों का सुन्दर सागर, इसमे विकास का कानन है ॥

प्रायश्चित यही सफल होगा, जग की सेवा मे लीन रहूं।
पहुँचे न किसी को कष्ट रंच, सदा व्रत मे आधीन रहूं ॥

सेवा करके जग जीतूं मैं, जितना मैं जग मे हारा हूँ।
उतना ही श्रेष्ठ बनूंगा मैं, जितना जग मे धिक्कारा हूँ ॥

यदि कुछ न करूँ बस मौन रहूं, किस तरह ग्लानि गल पायेगी।
अवसर पा करके ये दुनिया, छवि पर ईर्ष्या छलकायेगी ॥

बहु जाति, धर्म, भाषाओं के, द्वन्द्वो मे जीवन टूट रहा।
स्वार्थादि भरे, रोगों के मिस, छल से बल से जग लूट रहा ॥

एकता सूत्र के अन्तर्गत, कुछ दिन पहले अभियान चला।
लोगों ने इसे ठीक माना, जन साथ-साथ सत् मान चला ॥

हम पुनः राष्ट्र के हित सोचे, फिर से अपना अभियान चले।
हम निज से ऊपर उठ जाये, जीवन बनता मतिमान चले ॥

सर्वोपरि सुखकर राष्ट्र लाभ, उसको ही अर्पित होना है।
सेवा व्रत सदा हमारा है, सेवा का पंथ सलोना है ॥

पहले अपना व्रत पा लें हम, पीछे विचार में लगे रहें।
सब कुछ सम्भव हो सकता है, हम जबकि निरन्तर जगे रहें ॥

—: कवित्त :—

जो भी जागता है जग वही देखता है सब,
सोने वाला नर बस मिथ्या सुख पाता है।

मिथ्या सुख से प्यास बुझती है जीवन को,
और सुख हेतु जन जागता ही आता है ॥

ज्यों मिथ्या सुख पाता दुख उपजाता और,
सुख दुख में ही जीव और ललचाता है।

जब तक जागता न जन में है सेवा भाव,
तब तक उसको न तोष कभी आता है ॥

-: दोहा :-

जनता ने भरतेश की, पीड़ा ली पहचान।
तप के मन की शांति को, किया ऋषभ का ध्यान ॥

साल रहा नित भरत को, अन्तर का अनुताप।
बुरा बड़े से हो गया, निशि दिन पश्चाताप ।।

भांति भांति से झांकते, नित प्रति उर में भाव :
प्रायश्चित हित उमगता, नित प्रति सेवा चाव ।।

★

बोला मंत्री सुनिये नृपवर, इच्छा जनता के उर की है।
प्रभु महाराज अधिराज हुये, आवाज यही अन्तर की है ।।

इक्ष्वाकु वंश का गौरव हो, शासन का भार उठाना है।
जो चलन प्रमुख है धरती के, प्रभुवर को आज निभाना है ।।

अवरुद्ध कंठ से नृप बोले, जो करना कर्म करूँगा मैं।
आ गयी रिक्तता जो भी है, सेवा से आज भरूँगा मैं ।।

इक्ष्वाकु वंश के हर जन को, सेवा का भार उठाना है।
सेवा से प्राप्त हुआ शुभ फल, प्रत्येक व्यक्ति को पाना है ।।

जो सेवा हो बेखौफ कहो, सेवा का अपना निश्चय है।
हम तो बस इतना समझ सके, शासन सेवा का परिणय है ।।

बोला मंत्री सुनिये राजन, राज्याभिषेक अब होना है।
हैं आप चक्रवर्ती महान, अब किंचित समय न खोना है ।।

जनता का मैं तो सेवक हूं, करना कुछ नहीं विचार मुझे।
वह चाहें जैसी सेवा ले, हर शर्त आज स्वीकार मुझे ।।

राज्याभिषेक भी आवश्यक, हैं विजित बहुत से राज्य हुये।
हम सब प्रयत्न से एक हुये, हम हर प्रकार अविभाज्य हुये ।।

मण्डप प्रभुवर तैयार हुआ, आशा है आप पधारेंगे।
प्रभु राजाओं में श्रेष्ठ हुये, उन्नत किरीट को धारेंगे ।।

प्रभुवर कृपालु, अतिशय दयालु, सुन्दर यह अवसर आया है।
सब ओर कुशलता विलस रही, यह ऋषभदेव से पाया है ।।

तीर्थोदक प्रक्षालित पथ है, भरतेश्वर नृपति पधार रहे।
देवता, प्रजा, राजा मिलकर, सादर आरती उतार रहे ।।

।। दोहा ।।

विधि विधान कुल रीति से, हुआ भरत अभिषेक।
भरत चक्रवर्ती हुये, उत्सव हुये अनेक ।।

लोक रीति, कुल रीति के, साथ धर्म की नीति।
जो भी राजा पालता, जनता करती प्रीति ।।

राष्ट्र एकता के लिये, हुयें विपुल अभियान।
जनता ने भरतेश का, रखा सदा सम्मान ।।

नयी प्रगति के हेतु नृप, करने लगे विचार।
जन हित नृप का कर्म, यह नृप जीवन का सार ।।

-: कवित्त :-

देश - देश परिवेश पाकर के वेश नया,
प्रगति दिशा की ओर आप बढ़ा जाता है।

गज, रथ, अश्व और पैदल अपार बल,
कोट, राज कोष, जैसे रवि चढ़ा जाता है ।।

हीरे, मणि, मोती, पन्ना, लाल, पुखराज से हैं,
वैभव पुरुष मानों नित्य मढ़ा जाता है।

हिंसा असमानता से, परिग्रही भावना से,
भरतेश द्वारा धर्म युद्ध लड़ा जाता है ।।

—: दोहा :—

ले जग हित की कामना, भरत हुये संलग्न ।
सेवा व्रत की साध मे, हो सम्पूर्ण निमग्न ।।

जो चिन्ता से मुक्त हो, चाहे यदि निर्वान ।
मनसा, वाचा, कर्मणा, पढ़े ऋषभ धर ध्यान ।।

चतुर्थवर्ण व्यवस्था वर्णन

॥ दोहा ॥

कुछ नूतन हो, भाव जन. उपजाता है चाव।
तब उसके अनुरूप ही, उर जगता अनुभाव ॥

सतत कर्म की प्रेरणा, हो जब सत् के साथ।
सदा सफल होता मनुज, करता जगत सनाथ ॥

जीवन सार्थक है तभी, जब हो कर्म ललाम।
शुभ्र कर्म को ही सतत, करता जगत प्रणाम ॥

*

मेरे द्वारा कुछ नूतन हो, जन की अभिलाषा होती है।
नव पग पर जय पाऊँगा मैं, उर में ये आशा होती है ॥

आगे बढ़ने को अन्तर में, साहस का शौर्य उमगता है।
रुकने देता पल भर न उसे, प्रेरक जो उर में जगता है ॥

आंधी उठती है अन्तर में, कल्पना पंख फैलाती हैं।
सोते, जगते, चलते, फिरते, चिन्ता नव सृष्टि रचाती हैं ॥

फिर और और की आशा में, घर बनते और बिगड़ते हैं।
संयोगी भाव सृजन करते, विपरीत भाव ही बढ़ते हैं ॥

जब तक निश्चय पथ मिले नहीं, तब तक ही मन की भटकन है।
तब तक ही साधन टूटन है, तब तक ही मन की चटकन है ॥

संयमी पुरुष करते विचार, निश्चय से वे जुड़ जाते हैं।
निश्चयी साधनों के बल से, लक्ष्य की ओर मुड़ जाते हैं ॥

ऐसे धीरात्मा निश्चय पर, रह अडिग सफलता पाते हैं।
जिनके मन में दुविधा रहती, परिणाम देख पछताते हैं।।

मतिवीर श्रेष्ठ भरतेश्वरने, अन्तर में विमल विचार किया।
त्रय वर्णनात्मक रचना करके, ऋषभेश्वर ने उपकार किया।।

सारे वर्णों के अलग - अलग, प्रभुवर ने कर्म बताये हैं।
सब अपने - अपने कर्म करें, सुखदाता पंथ सुझाये हैं।।

लेकिन जग तो परिवर्तनीय, क्षण भर में रूप बदलता है।
अस्थिर नश्वर क्षण भंगुर को, मानव मन सदा मचलता है।।

हो वर्ण व्यवस्था फिर से अब, नृप के मन मे विचार आया।
कैसे क्या-क्या बदला जाये, निश्चित मन ने विचार पाया।।

नूतनता सब को रुचिकर है, नव के प्रति चाव अधिक होता।
कैसी नवीनता सम्भव है, यह चिन्तन स्वाभाविक होता।।

-: दोहा :-

वर्ण व्यवस्था विषय पर, करने लगे विचार।
कैसे मानव को मिले, मानव के अधिकार।।

एक वर्ण हो और भी, तीन वर्ण से ज्येष्ठ।
ज्ञान, मान, व्यवहार मे, सब वर्णों में श्रेष्ठ।।

✱

प्रत्येक क्षेत्र से योग्य रूप, प्रतिनिधि स्वरूप बुलवाना है।
सबकी सहमति से सम्मति से, नूतन निर्माण रचाना है।।

अपने घर सबका स्वागत कर, निज जीवन धन्य बनाऊँगा।
सबको सब विधि सुविधाये दे, जन जन में सुख उपजाऊँगा।।

सुख पूर्व नियोजित वस्तु नहीं, सुख तो विकल्प निज मन का है।
सुख किसमें कौन मान लेगा, अन्तर में निश्चय जन का है ॥

सबको दे उचित मार्ग दर्शन, सबको सब ही हितकारी हो।
इस श्रेष्ठ व्यवस्था के द्वारा, फैलो घर घर उजियारी हो ॥

वे ज्ञान सिन्धु के सुखद बिन्दु, जब उमड़ - उमड़ लहरायेंगे।
सत् न्याय अहिंसा समता के, जग में जय ध्वज फहरायेंगे ॥

जब कभी मेघ श्यामल-श्यामल, जन जीवन पर घहरायेंगे।
यह ही निर्भीक बनाएँगे, चिन्ता से मुक्ति दिलायेंगे ॥

किस समय किसे क्या करना है, तत्काल उसे समझायेंगे।
तुम यह न करो, तुम यही करो, करणीय सदा बतलायेंगे ॥

हर काम अकेला ही राजा, कैसे सम्पन्न करायेगा।
हर गांव नगर जाकर के वह, सबको कैसे समझायेगा ॥

अपने यह सब प्रतिनिधि होंगे, ये नैतिक अधिकारी होंगे।
अणु व्रतधारी होने से ये, निर्मल मन अविकारी होंगे ॥

हर उठा प्रश्न उत्तर पाकर, जीवन को धन्य बना देगा।
होकर के मुक्त समस्या से, हितकारी पथ पा जायेगा ॥

—: दोहा :—

देश देश भेजे गये, उक्ताशय के पत्र।
पहुँची अधिकृत सूचना, यत्र तत्र सर्वत्र ॥

देश देश के नृपों ने, चुने श्रेष्ठ विद्वान।
तन से, मन से, कर्म से, क्षमता को पहिचान ॥

परहित को ही जो रहे, पर हित कारी प्राण ।
परहित में ही दीखता, अपना भी कल्याण ।।

★

राजा ने सबके स्वागत को, सुन्दर से पथ दो बनवाये ।
मखमली घास का एक पंथ, दूजे पर कपड़े बिछवाये ।।

खाने, पीने की, रहने की, देवोपम हुयी व्यवस्था है ।
आ रहा द्वार पर अतिथि बना, देवों के सदृश अवस्था है ।।

ऐसे आसन पर बैठे नृपवर, दोनों पथ सहज निहार सकें ।
आन्तरिक भाव के संग-संग, गति आकृति, उर में धार सके ।।

प्रत्येक देश के अनुपालक, कुछ विज्ञ जनों को लाये हैं ।
तप, शील, न्याय अपरिग्रह के, व्रत के गुण सहज सुहाये हैं ।।

नृप ने देखा आ रहे लोग, जिनको पथ का कुछ ज्ञान नहीं ।
किस पथ से जाना उन्हें उचित, इसका उनको अनुमान नहीं ।।

कुछ कहना क्या आगन्तुक से, जैसी मति चलता आता है ।
जितना जिसमें बल संयम है, वैसा वह स्वागत पाता है ।।

मखमल सी दूर्वा दल को कुछ, पैरों से रौंदे आते हैं ।
कुछ ने इस पथ को चुना नहीं, दूसरा पन्थ अपनाते हैं ।।

आकर आगन्तुक बैठ गये, सबको स्वागत सत्कार मिला ।
राजा तो पिता तुल्य होता, सबको ही मृदुल दुलार मिला ।।

कोई न अभी यह जान सका, किस हेतु बुलाया गया हमें ।
यात्रा का कौन प्रयोजन है, किस कारण लाया गया हमें ।।

अपने भावों में लीन सभी, मन में यह उत्सुकता छाई।
क्यों हमें बुलाया है इसकी, समझे न कदाचित गहराई ।।

सब नृप की ओर निहार रहे, जिज्ञासा मन में धारे हैं।
नृप बोले आप धन्य हैं, जो पाकर आदेश पधारे है ।।

इस अतिथि कक्ष तक आने के, हमने दो मार्ग बनाऐ हैं।
हमको यह कारण बतलायें, दोनों पथ क्यों अपनाऐ हैं ?

नृप का सुनकर यह प्रश्न, सभी सहसा सन्नाटे मे आऐ।
आश्चर्य चकित इसका उत्तर, सब सोच रहे मुख लटकाऐ ।।

इस जटिल प्रश्न से पहिले तो, सब उत्तरदाता मौन रहे।
मन मे थी भारी उथल पुथल, नृप के सन्मुख कुछ कौन कहे ।।

फिर उत्तर तो देना ही था, राजा को प्रथम प्रणाम किया :
साहस बटोरकर इस प्रकार, कुछ ने उत्तर अभिराम दिया ।।

मैंने पथ में मखमली घास देखी, तो यह विचार आया।
इस छलिया सुन्दरता से ही, मानव मन ने धोखा खाया ।।

सोचा इस पथ पर चलने से, निर्मम हिंसा हो जाऐगी।
इसमें जो अगणित सूक्ष्म जीव, उनकी हत्या कहलाऐगी ।।

नृप राज आपके अनुयायी, हम तो हिंसा के त्यागी हैं।
जो सुन्दर पथ से आये हैं, वे ही हिंसा के भागी हैं ।।

नृप बोले हमने इस प्रकार, भावों का परिचय जाना है।
हिंसा का और अहिंसा का, सच्चा स्वरूप पहिचाना है ।।

दूसरा पंथ पट निर्मित है, जो इस पर चल कर आये हैं।
वे सत्य अहिंसावादी हैं, उनमे विशेष गुण पाये हैं।।
आशा है इनसे आशाये, जन-जन के हित पूरी होगी।
एकता पथ मे बाधक जो, उनसे उनकी दूरी होगी।।
ऐसे लोगों को राजा ने, बहु दान, मान सम्मान दिया।
उनकी इस दूरदर्शिता का, मानों नृप ने गुणगान किया।।

॥ दोहा ॥

ब्रह्म-सूत्र शुभ नाम का, लिया यज्ञ - उपवीत।
धारण कर व्रत सूत्र को, अवसर बना पुनीत।।
सब पण्डित शोभित हुये, प्रतिभा के अनुरूप।
देकर के सम्मान को, हुये प्रफुल्लित भूप।।
षड् आवश्यक धर्म का, श्रावक कर्म समान।
इस नव मज्जन वर्ग को, दिया कर्म का ज्ञान।।
विद्वानों का वर्ग यों, हुआ सहज तैयार।
शुभ मति से परहित लिये, शुभ आचार विचार।।
हुये जगत मे पूज्य वे, होकर के शास्त्रज्ञ।
कर्म मर्म ज्ञाता हुये, हुये परम धर्मज्ञ।।

*

फिर एक दिवस भरतेश्वर के, मन में सुन्दर विचार आया।
अब ऋषभदेव प्रभु पर पहुँचे, निश्चय का यही सार पाया।।
मैंने जो ब्राह्मण वर्ण रचा, यह उचित याकि फिर अनुचित है।
प्रभुवर ही बतला पायेंगे, यह कार्य कहाँ तक समुचित है।।

चल दिये भरत निश्चय करके, जैसे हो धनु से तीर चला।
अथवा लक्षित परिपूर्ति हेतु, कोई प्रणपालक वीर चला॥

पहुँचे कैलाश शिखर पर हैं, आसन पर प्रभु नय नागर हैं।
अतिशय प्रसन्न ज्यों स्वच्छ व्योम, वे शान्ति सुधा के सागर हैं॥

हर ओर विराजा है जीवन, हर दिशा धर्म बरसाती है।
प्रत्येक कली औषधियों की, सन्तोष गंध सरसाती है॥

नृप ने श्रद्धा से चरण छुये, छूते ही शुभ आशिष पाया।
जिस सुख का अनुभव किया नहीं, सुख सिंधु समीप उमड़ आया॥

सब कुशल क्षेम कह बुद्धि वीर, मन मे वर भाव उमग आये।
वर ब्राह्मण वर्ण रचा क्यों है, कारण प्रभुवर को बतलाये॥

यह उचित हुआ या अनुचित है, प्रभु त्रिकाल दर्शी बतलाये।
पथ दर्शन का अभिलाषी हूं, जो समुचित हो पथ दरशाये॥

वर ब्राह्मण वर्ण रचा तुमने, यह कार्य तनिक समयोचित है।
लेकिन भविष्य के चिन्तन से, उतना ये बिल्कुल अनुचित है॥

इस समय चुना जो वर्ग गया, कर कार्य सफल दिखायेगा।
जो तनिक पंथ से विचल रहे, उनको ये पथ पर लायेगा॥

ये सत्य अहिंसा अनुरागी, अपरिग्रह पथ अपनायेंगे।
अपनाकर सामाजिक समता, समता का पथ बतलायेंगे॥

नय, क्षमता, दया, मया, ममता, सरला, ऋजुता अपनायेंगे।
सद् गुण निज जीवन में उतार, सारे जग को दिखलायेंगे॥

विद्वान वर्ग का सब समाज, वैसे ही आदर करता है।
उनसे प्रशस्त पाता पथ है, बेखटके चलता फिरता है॥

उन सम विद्वान और होंगे, उन सब की प्यारी सन्तानें।
परिवेश कौन सा तब होगा, हम अभी आज से क्या जाने ।।

तपहीन, अज्ञ, संशय - समूह, जब कभी राह दिखलायेंगे।
तब अल्प बुद्धि के धारक भी, पथ पर चलते सकुचायेंगे ।।

तब जबकि अहं घायल होगा, कैसे निज को रख पायेंगे।
सम्मान भरा यश का प्याला, कैसे - कैसे चख पायेंगे ।।

इनके फिर भ्रष्ट विचारों के, पाखण्ड झुण्ड बन जायेंगे।
जो आज नीति के स्वामी हैं, कल को उद्दण्ड कहायेंगे ।।

ये ही कमियों को खोजेंगे, तर्कों से तथ्य उड़ायेंगे।
हिंसा का पथ अपनाकर के, तर्कों से सत्य जुड़ायेंगे ।।

तब नये नये पथ निर्मित कर, जनता में भ्रम फैलायेंगे।
होगा विरोध हिंसा हिंसा, आपस मे रक्त बहायेंगे ।।

निज गढ़ के बन के माण्डलीक, ध्वज अलग-अलग फहरायेंगे।
इस तरह अकारण जनता पर, चिन्ता के घन घहरायेंगे ।।

इसलिये नहीं ये ठीक हुआ, मुझको इतना ही कहना है।
कर चुके आज हम जोकि कर्म, उसके फल को तो सहना है ।।

-: दोहा :-

इस प्रकार सुन भरत को, चिन्ता हुयी विशेष।
तीर धनुष से जा चुका, केवल तरकष शेष ।।

प्रभु से वर आशीष ले, नृपवर गये स्वदेश।
अबतो अन्तर जगत का, बदल गया परिवेश ।।

जो कुछ करना है तुझे, सोच कर्म परिणाम।
बस ललाम के चक्र में, लग जाये न विराम ॥

भरत स्वप्न वर्णन

—: कवित :—

खोज रहे अपने अन्तर में,
जो अनन्त का भेद अपार।
जो अपने समान ही रखते,
हैं धरती से प्रेम अपार ।।
जिनके जीवन का प्रति पग है,
सदाचरण का चिन्ह ललाम।
ऐसे वृषभ देव हितकर को,
मेरा शत् शत् वार प्रणाम ।।

*

भरतेश नृपति ने राका में, अन्तर कल्पना संवारी है।
मधु राका ने मानों बढ़कर, नृप की आरती उतारी है ।।
मन में उमग सी पुरवाई, अँगड़ायी लेती आयी है।
मानों सुख पाल पड़े सोये, मचली शैया तरुणाई है ।।
सो गये किन्तु मन की तरग, पा सकी कहीं विश्राम नहीं।
पर क्या चंचला कुमारी को, मिल पाता है विश्राम कहीं ।।
जब रहा रात्रि का एक चरण, निद्रा में नृप गहराये हैं।
तब भाँति-भाँति सोलह सपने, निद्रा में बड़े सुहाये हैं ।।
जब तक निद्रा का राज्य रहा, तब तक सब सुन्दर सुन्दर था।
कल्पना लोक का साम्राज्य, चरणों मे पड़ा निरक्षर था ।।

उस स्वप्न लोक की दुनियां में, आनन्दित अति अन्तर-तल था।
जब आँख खुली कुछ और न था, स्वप्नों से मिला निकट धरातल था।।

स्वप्नों ने मन झकझोर दिया, मन हटता नहीं हटाये है।
सपने थे बीत गये लेकिन, जिज्ञासा अभी जगाये है।।

आगे न समय अब अच्छा है, सब स्वप्न स्वयं बतलाते हैं।
दुख की इस क्षणिक कल्पना से, कल्पित गढ़ ढहते जाते है।।

लगता है मेरी ओर उमड़, उत्ताल तरंगे आती हैं।
यह मुख फैलाये नागिन सी, जीवित ही खाये जाती है।।

आगे इनका फल क्या होगा, चिन्ता अब बढ़ती जाती है।
नौका न पार तक आ पायी, जलधारा चढ़ती जाती है।।

क्या फल सोचूं इन स्वप्नों का, कुछ भी न समझ में आता है।
जैसे पिंजड़े में फंसा विहग, छुटकारे को अकुलाता है।।

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी प्रभु के, अब तो समीप जाना होगा।
फिर सूक्ष्म दृष्टि से स्वप्नों के, तब गूढ़ भेद पाना होगा।।

।। दोहा ।।

चिन्ता शीतल गरल है, जो भी करता पान।
ऊपर से कुछ दीखता, अन्दर धुंआ महान।।

ज्यों लक्कड़ में धुन लगे, या फसलों में कीट।
त्यों चिन्ता की टीस से, कब बच सका किरीट।।

परिजन पुरजन साथ ले, चले वीर भरतेश।
जहाँ ऋषभ भगवान थे, जाकर किया प्रवेश।।

★

जब कृपा सिन्धु नभ नागर के, नृप ने जाकर दर्शन पाये।
तब व्याकुलता से मुक्ति मिली, मुख कमल देख रवि मुस्काये।।

जागे अन्तर में शुभ्र भाव, गद्‌गद् हो, हृदय उमग आया।
मानों भूले भटके मन ने, कुछ सहज मनोवांछित पाया।।

श्रद्धा के जलधर घिर आये, नैनों में नीर छलक आया।
श्रद्धास्पद प्रभुवर के आगे, सब ने सादर मस्तक नाया।।

है देव विकट संकट मे हम, इस बाधा से निस्तार करो।
हम आकुल व्याकुल आये हैं, चिन्ता सागर से पार करो।।

अन्दर से सब कुछ अस्थिर है, बाहर सब नीरम लगता है।
मन को कोई जकड़े बैठा, सर्वत्र छा रही जड़ता है।।

संकट सागर से नैया को, प्रभुवर ही पार लगायेंगे।
अब प्रभुवर पथ दर्शन द्वारा, हम को निर्भीक बनायेंगे।।

अन्तर ज्ञानी प्रभुवर बोले, चिन्ता का कारण बतलाओ।
चिन्ता से मुक्ति तुम्हें होगी, निष्कामी हो मत घबराओ।।

भव के निधि की ये लहरें हैं, जो उमड़ उमड़ कर आती हैं।
जीवन को कभी चूर करती, अथवा मोती दे जाती हैं।।

हे नाथ स्वप्न सोलह देखे, क्रम से यह सभी सुनाता हूं।
इनका फलितार्थ समझने में, अनभिज्ञ स्वयं को पाता हूं।।

हैं एक सिंहनी का बच्चा, घोड़ा गज भार अपार लिये।
बकरे सूखे पत्ते खाते, गज कांधे बानर भार लिये।।

कौए उलूक को सता रहे, प्रेतादिक मोद मनाते हैं।
है मध्य भाग में सूखे सर, तट पर ही पानी पाते हैं।।

है धूलि धूसरित रत्न राशि, नैवेद्य श्वान मिल खाते हैं।
बैलों की जोड़ी सुघर युवा, शशि-मण्डल परम सुहाते हैं॥
दो बैल मिल रहे रूप रंक, रवि मेघों से आच्छादित है।
छाया से हीन वृक्ष देखे, पत्ता - पत्ता निर्वासित है॥

—: दोहा :—

स्वप्न-लोक की सुन कथा, घोर व्यथा का मूल।
फल इन स्वप्नों का भरत, नहीं तुम्हें अनुकूल॥
आने वाले समय में, होगा बड़ा अनिष्ट।
साधारण समझो नहीं, सपने अशुभ विशिष्ट॥
चिन्तित अब होना नहीं, काल चक्र परिणाम।
काल सदा चंचल बड़ा, इसे नहीं विश्राम॥
केवल ज्ञानी ऋषभ ने, लिया सभी कुछ जान।
स्वप्न-स्वप्न के हेतु है, फल का किया बखान॥

★

तुमने तेईस सिंह देखे, फिर एक अलग है विचर रहा।
अन्तिम तीर्थंकर सम्मति के, युग में नय निर्भर बिखर रहा॥
चल रहा सिंह सुत के पीछे-पीछे, हरिणों का मेला है।
परिग्रही बुलंदी युग में भी, अपरिग्रह "वीर" अकेला है॥
है घोड़ा गज के भार दबा, गुण हीन बहुत सज्जन होंगे।
पांचवें काल का यह प्रभाव, पथ में व्यवधान बहुत होंगे॥
हैं अजा सुतों का झुण्ड जो, सूखे पत्तों को चरता है।
बढ़ रहे दुराचारी दुर्जन, जिनसे समाज घर भरता है॥

पांचवें स्वप्न में हाथी के, कन्धे पर देखा बानर है।
हैं नृपति वंश तो डूब रहे, बढ़ रहे पिशाच निशाचर हैं।।

कौए उलुक को त्रास रहे, जन जगत क्लेश को पायेंगे।
धर्माथ छोड़कर मुनियों को, अन्यत्र खोजने जायेंगे।।

नाचते भूत देखे, उससे, देवोपासना कम होगी।
व्यन्तर होवेंगे उच्चदेव, अब उनकी ही पूजा होगी।।

रह गया किनारों पर जल है, धर्मत्व सूखता जायेगा।
इस आर्य-खण्ड के प्रांगण मे, म्लेच्छों का वास सुहायेगा।।

अब नवम स्वप्न का फल जानो, पांचवे काल मे जन होंगे।
वर रत्न-राशि है धूलि भरी, ग्राहक फिर सुजन नही होंगे।।

सत्कार प्राप्त कुत्ता भी जब, नैवेद्य चुरा कर खायेगा।।
व्रतहीन गठित ब्राह्मण समाज, सम्मान जगत मे पायेगा।

एकादश सपने का फल है, मुनि व्रत को सहज न पालेंगे।
वे तरुण अवस्था में ही बस, केवल मुनि व्रत को धारेंगे।।

मण्डलायुक्त शशि दर्शन का, हे भरत सुनो फल यों होगा।
वर अवधि ज्ञान, मन पर्यय ज्ञान, मुनियों को सुनो नहीं होगा।।

दो बैलों की जोड़ी देखी, मुनि अलग नही रह पायेंगे।
एकाकीपन का कठिन भार, कैसे - कैसे सह पायेंगे।।

घन आच्छादित जो रवि देखा, सुनिये उसका यह फल होगा।
पांचवे काल के आने पर, शुभ केवल ज्ञान नहीं होगा।।

फल, पुष्पहीन सूखे तरू को, देखा वह युग भी आयेगा।
पुरुषों के संग नारियों का, चारित्र भ्रष्ट हो जायेगा।।

सूखे पत्तों का ढेर लखा, रोगों से भव अकुलाएगा।
काष्टादि मूल औषधियों का, परिणाम लोप हो जाएगा।।

॥ दोह ॥

निशि के षोडस स्वप्न का, फल जाना भरतेश।
है अतीत अच्छा नहीं, चिन्तित नृपति विशेष।।

यों उर में चिन्ता जगी, सोच भविष्यत् बात।
ज्यों रोगी को कष्टमय, लगती आती रात।।

जान मानसिक कष्ट को, प्रभुवर परम कृपालु।
ऋषभनाथ कहने लगे, होकर परम दयालु।।

हे भरत राजा चिन्ता न करो, चिन्ता से हल क्या होना है।
हम उस युग को ही धन्य करें, इसमे अब समय न खोना है।।

है वर्तमान मे करना क्या, इस पर विचार ही करना है।
आ रहा गर्त अपने समक्ष, पहले उसको ही भरना है।।

शुभ कर न सके अपने युग को, उसका जीवन तो भार हुआ।
जिसने निज युग को धन्य किया, उसका जीवन ही सार हुआ।।

कमजोर समझना निज युग को, कमजोरी मानी जायेगी।
यदि काम करोगे साहस के, जय स्वागत करने आयेगी।।

जो साधन हैं सार्थक कर लो, ये ही सामर्थ्य कहायेगी।
साहस की बल्ली ले उतरो, हिम्मत तट पर पहुंचायेगी।।

कोई नाविक सरिता को लख, यदि हवा देख घबरायेगा।
जो नौका में बैठे यात्री, किस तरह पार पहुंचायेगा।।

नाविक जीवन की सार्थकता, नौका को पार लगाने में।
जैसे ज्ञानी की सार्थकता, भटकों को दिशा दिखाने में ।।

केवल भविष्य की चिन्ता से, कोई फल कैसे सब पाये।
श्रम बिना बगीचे मे कैसे, कोई प्रसून दल खिल पाये ।।

अपने युग को ही धन्य करो, बल बिक्रम को लेकर उतरो।
सब ओर सफलता को पाओ, साहस से जीवन सफल करो ।।

ये ठीक कि आने वाला युग, धुंधला दिखलायी देता है।
है सफल वही पहले से ही, जो उस पर निर्णय लेता है ।।

पाँचवां काल जब तक आये, क्या तब तक चुप ही रहना है।
बढ़ने देना है और बोझ, अथवा सबसे कुछ कहना है ।।

इसलिये मौन को आज त्याग, जीवन को धन्य बना डालो।
इक्ष्वाकु वंश का जो व्रत है, उत्तम जो है उसको पालो ।।

इस युग में सोलह स्वप्नों का, कोई तात्पर्य नहीं होगा।
पाँचवे काल में दुष्प्रभाव, जाकर के प्रकट कहीं होगा ।।

।। दोहा ।।

इस प्रकार सुन कर कथन, सत्य तथ्य से पूर्ण।
भरत हृदय की भ्रान्तियाँ, स्वयं हो गयी चूर्ण ।।

श्रद्धा पूर्वक नमन कर, उर में धार निदान।
परिजन प्रियजन साथ ले, नृपति किया प्रस्थान ।।

पढ़े सुने अति चाव से, लिये ऋषभ प्रभु ध्यान।
जन चिन्ता से मुक्त हो, पाये पद निर्वाण ।।

भरत विदेह वृत्ति वर्णन

—: पद्य :—

आत्म निरीक्षण जो करता है,
नयी शक्ति पाता है।
नयी शक्ति से ही चिन्तन का,
जीवन का नाता है।।
नाता जो अपने तक रखता,
बेलि न लहराता है।।
वही भरत बन कीर्ति पताका,
जग में फहराता है।।

★

संयम जिसको छू जाता है, कंचन जीवन बन जाता है।
जो भी संयम से विमुख रहा, जीवन भर वह पछताता है।।
इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं कब, ये तो अशान्ति का कारण है।
मिलने देती क्षण भर न चैन, दुख देती यही अकारण है।।
यदि एक बार भी ये सुयोग, जैसे - तैसे पा जाती है।
ये भ्रमरी या मधुमक्खी बन, फिर लौट-लौट मंडराती है।।
जब स्वाद् इन्हें लग जाता है, तब कुछ न दिखायी देता है।
चाहें कितना ही घातक हो, सुख कर दिखलायी देता है।।
हर ओर पनपती व्याकुलता, सब उजड़ा सा दिखलाता है।
कोई भोगी बन अन्तर मे, निशि-वासर उसे जगाता है।।

ये पेट देखने में छोटा, सागर से गहरा होता है।
सुनता न किसी का भी दुख है, मतलब को बहरा होता है ।।

सब कुछ समेट कर रख लेता, फिर भी न तृप्ति मिल पाती है।
तृष्णा तरू सींचा करती है, फिर भी न कली खिल पाती है ।।

जगता उर मे फिर असन्तोष, जन जन पर क्रुद्ध हुआ करते।
इस असन्तोष के कारण ही, दुखदाई युद्ध हुआ करते ।।

जीवन अशान्त हो जाता है, कटुता भू पर बिछ जाती है।
आते जिस पर फल मधुर नहीं, वह गरल-बेलि सिंच जाती है ।।

यदि शान्ति सुधा की निधि चाहो, तो संयम का पथ अपनाओ।
इतिहासों में यह गाथाएँ, जितनी तुम चाहो, पढ़ जाओ ।।

भव-मरू में निज मन मृग को, तुम जितना-जितना भटकाओगे।
उतनी ही तृषा बढ़ाओगे, उतने दुख मे फँस जाओगे ।।

घी से कब आग बुझा करती, पानी कब प्यास बुझाता है।
भव सुख से तोष मिला किसको, ये तो सर्वत्र भ्रमाता है ।।

अज्ञान आदि के कारण से, मिथ्यात्व भरा सुख भाता है।
बलि के पथ पर बढ़ता पशु, ज्यों पत्तों को चरता जाता है ।।

ओसों से प्यास बुझाने का, असफल प्रयास तो चलता है।
जब हाथ नहीं कुछ आता है, केवल हाथों को मलता है ।।

आशा के मेघ गरज करके, मन का मयूर भटकाता है।
यों जीवन रिसते रहने से, अन्तिम क्षण में पछताता है ।।

।। दोहा ।।

तृष्णा दुख का मूल है, पर तृष्णा से प्यार ।
जो संकट का मूल है, वही भूल स्वीकार ।।

बंजर भू में खोजता, सुख का सिन्धु अपार ।
सुख-सरिता की प्राप्ति पर, करता नहीं विचार ।।

तोष बिना सुख है कहाँ, रवि बिन कहाँ प्रकाश ।
अन्धेरे में व्यक्ति के, पंथ न आता पास ।।

★

भरतेश नृपति सम्राट हुए, वैभव अपार के स्वामी थे ।
एकता भाव को अर्पित थे, वे मनुज मात्र हितकामी थे ।।

भव का वर वैभव पाकर भी, जागा उनमें अनुराग नहीं ।
वैभव का करके दुरुपयोग, था दिया विभव को दाग नहीं ।।

प्रभु ऋषभदेव के विज्ञ पुत्र, नृप भरत कमल-वत जीते थे ।
जो मिला उसी में खुश रहते, सन्तोष सुधारस पीते थे ।।

केवल भोगों के हित जीना, जीवन को गरल पिलाना है ।
भोगों से दूर - दूर रहना, जीवन को सरल बनाना है ।।

हर समय यत्न उनका रहता, सेवा के हित में जगा रहे ।
तन से, मन से, यश, वैभव से, प्राणी सेवा में लगा रहे ।।

भव सुख के पीछे जो फिरते, वे ही जन व्याकुल रहते हैं ।
मानव जीवन को पाकर भी, रोते पछताते रहते हैं ।।

आक्रोश रोष की कठिन आग, अन्तर में जलती रहती है ।
मोहादि कुप्रभावों की लतिका, दुखदाई पलती रहती है ।।

अधपके कलश सा मानव मन, क्षण में खण्डित हो जाता है।
जड़ता के वशीभूत निज को, निर्जन वन में भटकाता है।।

अलगाव भाव भोगों के प्रति, जब तक जन मिटा न पाता है।
अज्ञान तिमिर में भटक-भटक, जीवन को व्यर्थ गँवाता है।।

भव जीवन स्वप्न देखना सा, जन को सुखदायक लगता है।
भव का सुख मिथ्या तब लगता, जब पूर्णतया जन जगता है।।

सपने का सुख अथवा साधन, जगने पर ही मिट जाता है।
जैसे कि ज्ञान के साधन से, चादर से मल हट पाता है।।

केवल बातों या इच्छा से, जन से भव छूट नहीं पाता।
जिस विकट जाल से जकड़ा है, मण्डन से टूट नहीं पाता।।

इसलिये ज्ञान की नौका का, जिसने भी लिया सहारा है।
उसने न भार भव का ढोया, उसने शिव पंथ निहारा है।।

जो संयम व्रत धारण करता, सुख निधियों का अधिकारी है।
जगती जन को हितकारी है, जग में वह ही अधिकारी है।।

—: कवित्त :—

मोह आदि दुखदायी काटने को पाश-पुंज,
ज्ञान की कृपाण अभिमान बिना धारिये।

काटिये न शाखा-शाखा, बाँटिये न निज दुख,
जड़ता का तरू जड़ मूल से उखाड़िये।।

रोकिये मतंग को न, टोकिये तुरंग को न,
छोड़ सब को ही निज मन को संवारिये।

आदिनाथ ! विभुनाथ !! पाहिमाम्-पाहिमाम् !!!
ऋषभ - ऋषभ जय ऋषभ पुकारिये ।।

भोगी और योगी नृप भरत थे एक साथ,
भोग के समक्ष कभी झुक नहीं पाये थे ।।

भव के असंख्य सुख चारों ओर फैल रहे,
जिन्हें देख भरत न कभी हरषाये थे ।।

कर्त्तव्य पूर्ति हेतु धारे रहे अधिकार,
जन हित साधना को साधन सजाये थ ।

रूपवती अप्सरा सी भवन में रानियाँ थीं,
जिनके अचूक - शर आप मुड़ आये थे ।।

★

रंग रूप पूर्ण सौन्दर्य वती, सुख राशि रानियां रहती थी ।
आपस में देव अँगनाये, जिनकी ही बाते कहतीं थीं ।।

मुस्कान एक पर देवों को, भू पर उतार कर ला सकतीं ।
सुरराज याकि हो अन्य और, क्षण भर में ही बहला सकतीं ।।

जो अपने एक इशारे पर, सूनी बगिया महका सकतीं ।
अपनी वाणी से कोयल को, जब चाहे वे चहका सकतीं ।।

वे जिसे देख लें एक बार, चरणों में सौ - सौ बार झुके ।
निर्द्वन्द्व चला जाता पथ पर, देखे तो सौ-सौ बार रुके ।।

तारे देखें मुस्करा उठें, शशि निरखे सहज रूप पाये ।
रवि देखे पाये तरुणाई, सागर में सहज ज्वार आये ।।

मद भरी दृष्टि से जब देखे, अरबिन्द हजारों खिल जायें।
पुरवा पश्चिम की ओर चले, नदियाँ सागर की दिशि धायें॥

बज उठे आप ही शहनाई, सब में मादकता छा जाये।
मदिरा हो सरिता धारा मे, फिर नयी जवानी आ जाये॥

संध्या अथवा वर्षा रानी, जिन से मुस्काना सीखीं हैं।
नैनों का तीखापन देखा, तब से मुस्काने तीखीं हैं॥

रति याकि शची दोनों देवी, दासी बनने की चाह लिये।
जब तब बस आती रहती हैं, उर सेवा का उत्साह लिये॥

रानियाँ इस तरह की पाकर, भोगों के फंद न आये है।
जिनसे आगे को दुख मिलता, इतने न अधिक हरषाये हैं॥

भोगों को भोग नही भोगा, भोगा केवल पालन को है।
भोगों में रही अनिच्छा है, भोगा जग के पालन को है॥

समता जीवन की चर्या है, अनुराग सभी के प्रति सम है।
देदीप्यमान सूरज सा पति, पाया सबने ही अनुपम है॥

सब यही समझती मुझमें ही, प्रिय का अनुराग अनूठा है।
हमने पुण्यों का फल पाया, पति के बिन जग तो झूठा है॥

-: दोहा :-

दान, धर्म के काम में, रहे मगन भरतेश।
काम, क्रोध, मद, त्याग से, बदल रहे परिवेश॥

दया, क्षमा नित बढ़ रही, ज्यों सागर में नीर।
निज निज घर में सब सुखी, नहीं किसी को पीर॥

★

आहार दान दे मुनियों को, सन्तोष नित्य ही पाते थे।
भव वैभव को सार्थक करके, वे फूले नहीं समाते थे।।

उत्साह नित्य देखा जाता, प्रात: से तैयारी करते।
पाकर के साधन मनोकूल, निज अन्तर में खुशियाँ भरते।।

राजा तो पिता प्रजा का है, वात्सल्य भावना करता है।
अनुरण सुतों को करते लख, अद्भुत भावों से भरता है।।

जब नगरी में मुनिगण आते, पुरजन आनन्द बहुत पाते।
श्रद्धा पूर्वक विधि सहित उन्हें, आहार दान दे हरषाते।।

आहार धर्म की होड़ लगी, उर में श्रद्धा का सागर था।
जितने तत्पर थे महाराज, उतना तत्पर हर नागर था।।

लग गयी होड़ सी जनता में, आहार धर्म पर चलने की।
जैसे सूरज के उगने पर, कमलों के वन में खिलने की।।

नृप रात दिवस चिन्तित रहते, ये उदय कौन से कर्मों का।
अवसर मुझको मिल रहा नहीं, आहार आदि के धर्मों का।।

दुर्बल हो चले नृपति वर हैं, कारण भी सबने जाना है।
मुनिवर तो एक वीत रागी, कब जायें कहाँ ठिकाना है।।

राजा में और प्रजा में तो, मुनियों को रहती समता है।
तप से उनमें अद्भुत क्षमता, अन्तर में सबकी ममता है।।

निश्चय के व्रत के साथ जहाँ, आहार दान मिल सकता है।
हैं राजा प्रजा एक मुनि को, निश्चय न तनिक हिल सकता है।।

राजा ही लगे दुखी रहने, वे अपना दोष मानते थे।
भोगना कर्म का फल निश्चित, इसको कब दोष ठानते थे।।

निज खान पान दैनिक चर्या, मिलना जुलना सब सपना था।
सब अन्य-अन्य था दीख रहा, व्याकुल अन्तर ही अपना था॥
थे निरपराध भरतेश्वर नृप, मन में कोई अभिमान न था।
जनता में है अतिशय श्रद्धा, भरतेश्वर को कुछ ज्ञान न था॥
इसलिये कसक रहती प्रतिदिन, दुबले तन होते जाते थे।
आहार दान के बिना नृपति, मन में नीरसता पाते थे॥

—: कवित्त :—

एक दिन देखा नृप नभ मे प्रकाश पुंज,
पृथक - पृथक छविमान बढा आता है।
लगता है एक साथ दो दो रवि नभ मे हैं,
बढ़ता प्रकाश सिन्धु और उमगाता है॥
उर की प्रसन्नता का प्रतिबिम्ब मुख पर,
चिन्ता की विमुक्ति का ही हेतु मिला जाता है।
अरे ! अरे ! देखो ऋद्धि धारी मुनियों का युग्म,
मेरी ओर बढ़ उर श्रद्धा उपजाता है॥

★

तत्काल नमोस्तु नमोस्तु बचन, उच्चैर भरत ने उपचारी।
कह अत्र अत्र तिष्ठः ठः ठः, पड़गाये मुनी ऋद्धि धारी॥
सब ओर विलसने शान्ति लगी, यों लगा कि जीवन पाया है।
बीती चिन्ता की कठिन रात, रवि का प्रकाश भर आया है॥
रह गये खुले के खुले नयन, वाणी में नेह उतर आया।
अनवरत यत्न के बहुत बाद, फल पाने का अवसर आया॥

मुनिवर्य पधारें थल उज्जवल, अब जीवन धन्य हमारा है।
मन, वचन, काय से हो पवित्र, नृप ने दी फिर जलधारा है॥

फिर त्रय प्रदक्षिणा दे करके, नृप ने अतिशय सुख पाया है।
गुरु चरणों में कर नमस्कार, श्रद्धायुत शीश झुकाया है॥

मन वचन काय आहार शुद्ध, चल कर के प्रभु आहार करें।
बाहर भीतर सब हैं पवित्र, आहार नीति अनुसार करें॥

मुनिराज भरत पीछे-पीछे, धीरे - धीरे चलते जाते।
ईर्यापथ पूर्वक भूमि देख, पीछे - पीछे चलते जाते॥

द्वारे पर सभी रानियों ने, सज्जित आरती उतारी है।
सुन्दरता आकर पसर गयी, शशि ने आरती संवारी है॥

कोकिल बयनी मृगनयनी ने, मांगलिक गीत उच्चारे हैं।
आहार दान के दर्शन को, द्वारे पर देव पधारे हैं॥

फिर विविध भांति पूजा करके, नव भक्ति युक्त व्यवहार किया।
अतिशय प्रसन्न मन से होकर, मुनिवर को वर आहार दिया॥

श्रद्धालु हृदय से राजा ने, कर भक्ति स्वयं को तृप्त किया।
आहार दान निर्विघ्न हुआ, राजा ने मन संतृप्त किया॥

॥ दोह ॥

रत्नादिक वर्षा हुयी, राज महल के बीच।
मानों पुण्योदय हुआ, दिया महल को सींच॥

व्योम मार्ग से देवगण, करते जय जयकार।
भरत विदा करने गये, मुनि कर गये विहार॥

रत्न स्वर्ण की राशि को, करवा कर एकत्र ।
दीन गरीबों को दिया, ढूँढ - ढूँढ सर्वत्र ।।

*

नित ज्ञान-चक्षुओं से नृपवर, निज आत्म निरीक्षण करते थे ।
कितनी आयी है त्याग वृत्ति, वे नित्य परीक्षण करते थे ।।

पाकर मुनियों का अनुशासन, शासन संचालित करते थे ।
जैनागम के पथ पर चल कर, उसको परिपालित करते थे ।।

प्रत्येक कर्म वह करते थे, जैनास्था जिससे पोषित हो ।
ऐसे विचार करने जिससे, जिनवर वाणि उद्‌घोषित हो ।।

नित प्रति जिन मंदिर मे जाकर, जिनवर का ध्यान किया करते।
जैनेन्द्र भक्ति में लीन हुये, जैनामृत पान किया करते ।।

जिन दर्शन ही जीवन दर्शन, जीवन पथ मे अपनाते थे ।
सुनते श्रद्धा से बातें सब, जिन् दर्शन वही समझाते थे ।।

तीर्थंकर की जिन वाणी पर, आस्था श्रद्धा रखते थे ।
बनवाकर अगणित चौबीसी, श्रद्धा का अमृत चखते थे ।।

आध्यात्म देह धारी नृप की, श्वासे ही वन्दन माला थीं ।
घर, द्वार, सभा, चौराहों पर, चौबीसी वन्दन माला थीं ।।

श्री राज पोरि पर चौबीसी, चौबीसी सिहासन आगे ।
चौबीसी जीवन प्राण बनी, मानों चौबीसी हित जागे ।।

जनता ने नृप अनुकरण किया, मन चौबीसी मे ढाल दिया ।
मन को अनुरूप भूप के कर, मन्तव्य नृपति का पाल लिया ।।

जागे कितने ही कलाकार, वन्दन माला के रूप सजे।
भूपति के अन्तर की इच्छा, सब कलाकार अनुरूप सजे॥

—: दोहा :—

नृपति भरत का हो गया, अन्दर बाहर एक।
आत्म निरीक्षण का जगा, उर में विमल विवेक॥

तन से, मन से, वचन से, होकर परम पवित्र।
सब के प्रति समता जगी, कोई शत्रु न मित्र॥

वीत रागता पर रखे, यह पवित्र श्रद्धान।
भव बन्धन से मुक्त हो, पाये मोक्ष महान॥

स्वयंवर वर्णन

—: पद्य :—

जीवन और जगत मे निश्चय,
बहुत बड़ा संयम है।
भाग्य और पुरुषार्थ सबल का,
सुन्दरतम संगम है।।

जो निश्चय के संग रहे हैं,
वे अमृत - पायी हैं।
वे विनयी हैं, नीव सुदृढ़ हैं,
जग को सुखदायी हैं।।

*

नृप भरत बड़े न्यायी राजा, उनकी मैं कथा सुनाता हूं।
अपराधी सुत को दण्ड दिया, उनके प्रति शीश झुकाता हूं।।

जो दारा, सुत, भाई के प्रति, अन्याय न करने वाला है।
जो उचित न्याय का पोषक है, वह जैन धर्म रखवाला है।।

जो न्याय नही कर सकता है, सम्मान कदापि न पायेगा।
अन्यायी होकर दुनिया मे, वह बेईमान कहायेगा।।

जन साधारण से राजा तक, न्यायी का होता मान रहा।
अन्यायी ने भू मण्डल मे, हर जगह सदा अपमान सहा।।

जीवन तो उड़ती चिड़िया है, कुछ समय नजर में आयेगी।
देखते - देखते पता नही, किस ओर किधर उड़ जायेगी।।

इतना नश्वर जो जीवन है, पापों से पंकिल करना क्या ?
दो क्षण के क्षणिक प्रमाणों को, अन्याय कीच से भरना क्या ?
यदि जीवन गया निरर्थक तो, मानव जीवन बेकार रहा।
हो ज्ञान शून्य पाया जीवन, पशुवत् जीवन स्वीकार रहा।।

जीवन की न्याय कसौटी है, जिस पर बस खरा उतरना है।
जैसे भी हो, जैसा भी हो, सत् पथ पर जीना मरना है।।
जीवन साँसों का पुतला है, कब आये और नहीं आये।
वह कर्म करें जिसके द्वारा, जीवन भर कभी न पछताये।।

सुत हो या शत्रु न्याय सम हो, इक्ष्वाकु वंश की महिमा है।
जग को सिखलाया नया पाठ, लोकान्तर व्यापी गरिमा है।।
सुनिये न्यायिक सुन्दर घटना, अन्तर से सुनने लायक है।
अनुकरण योग्य है ये घटना, हितकारी है सुखदायक है।।

—: कवित्त :—

जीवन के सुख - दुख रचते चरित - पट,
जिसको जगत युग तक है निहारता।
कोई त्याग मोह आदि धारता विराग भाव,
निज करनी से शुभ जीवन संवारता।।

कौन करणीय और कौन करणीय नहीं,
शुभ या अशुभ भली भाँति से विचारता।।
जो भी निज जीवन को ज्ञान से संवारता है,
उसके लिये ही युग - युग है पुकारता।।

★

ऐतिहासिक नगरी काशी में, नृप एक अकम्पन नामी थे।
सुप्रभा सुहानी रानी थी, जिसके वे अन्तर-स्वामी थे॥

जनता की सेवा के द्वारा, यश की अक्षय निधि पायी थी।
अपनी जनता के लिये सुखद, नय नीति सदा अपनाई थी॥

पुत्री सुलोचना एक मात्र, अभिलाषाओं की धारा थी।
सुन्दरता की साकार मूर्ति, वह हृदय गगन की तारा थी॥

वह हँस सुता, लावण्यमयी, कोकिलवयनी, वर लतिका थी।
उत्फुल्ल कौमुदी रजनी की, वह भावुक कवि की कविता थी॥

हँसती तो फूल झरा करते, भौंरे आगे पीछे चलते।
छकते जाते गिरते जाते, मद के अनगिन प्याले ढलते॥

देखती जिधर होता प्रकाश, जीवन के चरण सँवर जाते।
आ जाती सब में तरुणाई, भावों के पुञ्ज के ढेर बिखर जाते॥

वह सरस्वती की पात्रा है, लक्ष्मी की रुचिकर प्रतिमा थी।
शुभ शील-चूनरी ओढ़े वह, प्रतिक्षण नूतनतम प्रतिमा थी॥

वह पाणिग्रहण के योग्य हुयी, नृप की चिन्ता का कारण थी।
सिर के ऊपर पानी न बहा, इसलिये अभी साधारण थी॥

लेकर सलाह मंत्रीवर से, नृप ने यह निश्चय पाया है॥
मैं करूँ स्वयंवर आयोजित, निश्चित विचार मन आया है॥

राजा का निश्चय सुनकर के, जनता ने मोद मनाया है।
जब स्वयं स्वयंवर देखेंगे, यह सुन्दर अवसर पाया है॥

—: दोहा :—

देश - देश के नृपति को, भेजा नृप संदेश।
सुता योग्य निज कुंवर को, भेजे सभी नरेश ।।

सुन्दर सुता सुलोचना, कर वर स्वयं चुनाव।
जय माला पहिनायगी, स्वीकारें प्रस्ताव ।।

★

दूतों ने देश - देश जाकर, सुन्दर सन्देश सुनाया है।
यह सुलोचना को पाने का, अति दुर्लभ अवसर आया है ।।

रमणीक नगर के बाहर हो, शुभ मण्डप रचा मनोहर है।
सर्वतोभद्र नामक मण्डप, लगता था शिल्प धरोहर है ।।

स्वर्णाभि विपुल सिहासन है, आकर्षण में अति रुचिकर है।
जन जन के मन को मोह रहा, मानों शोभा का सागर है ।।

ऊपर जो तना चंदोवा है, मानों वितान नभ नीला है।
अगणित तारे ज्यों टके हुय, लगता आकाश सजीला है ।।

द्वादश द्वारे हैं मण्डप के, जो सिंहासन से मिलते हैं।
जैसे अरविन्द सरोवर में, रवि की किरणों से खिलते हैं ।।

जो पूर्व दिशा का श्रेष्ठ द्वार, वरनी के हेतु सुरक्षित है।
इसमें सब कुछ मर्यादित हो, इसलिये द्वार आरक्षित है ।।

सेबक सेवा के हेतु सजग, सज गया नगर खुशियों से है।
मानों आशा की मेंहदी से, रच गया नगर खुशियों से है ।।

जो नृपति था कि फिर नृप कुमार, काशी में आते जाते हैं।
सेवा, सेनप, सेना समेत, सुमनांजलि पाते जाते हैं ।।

-: कवित्त :-

बड़े - बड़े गढ़पति और मण्डलीक बड़े,
राजा महाराजा लोग लोक को सुहाये हैं।
सुफल सुलक्षणा है सुन्दर सुलक्षता में,
कीर्ति सुनकर अर्ककीर्ति भी लुभाये हैं ॥

सुविनमि, नमि और विनमि सुनमि आदि,
भूमि गोचरी के साथ विद्याधर धाये हैं।
सेनापति भरत के आए हैं कुमार जय,
युवराज अर्ककीर्ति संग-संग आये हैं ॥

★

सब सजे धजे आकर बैठे, सबने सिंहासन पाये हैं।
मै ही सुलोचना योग्य यहाँ, मन मे विश्वास जगाये हैं ॥
सब नेत्र द्वार की ओर लगे, सन्मुख सुलोचना आयेगी।
सब को आशा है मुझको ही, वह वरमाला पहिनायेगी ॥
आशा ही दुख का कारण है, आशा ही नाच नचाती है।
यह आशा विविध स्वरूपों मे, अगणित उत्पात मचाती है ॥
आशा के झूले पर चढ़कर, इन्सान फूलता रहता है।
विधि की अति विचित्र लीला मे, सर्वत्र झूलता रहता है ॥
फिर भी आशा की नौका पर, जन को विश्वास घनेरा है।
आशा की रजनी बीत रही, स्वर्णिम आ रहा सवेरा है ॥
वह राजकुमारी सर्व प्रथम, जिसकी हर आशा क्वांरी है।
सज्जित होकर पहिले जिनेन्द्र, मन्दिर की ओर पधारी है ॥

हे आदिनाथ केवल ज्ञानी, तुम मुझ पर आज कृपा कर दो।
देकर मनवांछित वर मुझको, मेरी सूनी झोली भर दो॥

तुम हो अशरण के शरण देव, तुम ही विधि विमल विधायक हो।
तुम हो सागर की दृढ़ नौका, तारक हो परम सहायक हो॥

तुम आशुतोष, वर वरदानी, मैंने तुम को ही जाना है।
करुणा कर प्रभु की कृपा कोष, अब मेरा ठौर ठिकाना है॥

कहते कहते हो गयी मौन, नैनों में नीर पुलक आया।
आशीष शीश पर अक्षत रख, माँ ने पुत्रों को सजवाया॥

बढ चली मधुर मन्थर गति से, मण्डप के द्वार निकट आयी।
चिन्ता की रजनी बीत गयी, निखरी ज्यों रवि की तरुणाई॥

कंचुकि महेन्द्र पीछे - पीछे, चलता है राजकुमारी के।
आँखे नृप नृपति कुमारों की, चलती संग सुषमा धारी के॥

इस कनक पुंज को देख देख, अपने सब होश गँवाये हैं।
इस परम सुंदरी को सब ही, अपने मन-मण्डप में पधराये हैं॥

आशाये सभी समेटे हैं, ये दीपशिखा मिल जाय हमे।
इस अन्ध तमस् के सरवर में, स्वार्णाभि कमल खिल जाय हमे॥

—: दोहा :—

सुलक्षणा के रूप की, धूम मची चहुँ ओर।
सुलोचना से मिलन की, सब में उठी हिलोर॥

नारि अधर अमृत बसा, तन मे प्रखर प्रकाश।
हाय चाह फिर भी नई, रखती नित्य उदास॥

कर में लेकर सज्जित माला, "गंगा" सागर की ओर चली।
मन वांछित हीरा जहाँ मिले, उस रत्नाकर की ओर चली॥

वह जिधर देखती उधर सहज, मीठी मुस्कान बिखर जाती।
जिसको निहार लेती उसकी, ललचायी दृष्टि निखर आती॥

रजनी मे चंचल दीप शिखा, गाती - मुस्काती चलती है।
जिसके समीप जाती उसके, अन्तर में कलिका खिलती है॥

जिसके सम्मुख से दीप शिखा, जब आगे को बढ़ जाती है।
लगता है पकी फसल पर ऋतु, निर्मम ओले बरसाती है॥

थी आर्ककीर्ति को यह आशा, मै ही वरमाला पाऊँगा।
संदेह नहीं था चित में यह, मै भी निराश रह जाऊँगा॥

सेनानायक सुत जयकुमार, रूपसि ने आज विलोका है।
मानों कि मदन ने आकर के, मन में तरंग को रोका है॥

जब जयकुमार की छवि देखी, नयनों को तुरत बन्द पाया।
वरमाला आकर्षित करती, अन्तर में जयकुमार आया॥

अब तो सब सुध बुध भूल गयी, ढीली अब धनु की डोरी है।
वह सुलक्षणा हो गयी धन्य, चन्दा को प्राप्त चकोरी है॥

अब जयकुमार मनमीत हुआ, आई उमंग मे अरुणाई।
अन्तिम निर्णय ले वरमाला, प्रिय जयकुमार को पहनाई॥

जल उठा एक दम आर्ककीर्ति, मानों उर वज्राघात हुआ।
जो आश संजोये बैठा था, उस पर कठोर अघात हुआ॥

आशाओं का डूबा जहाज, अम्भीर निराशा सागर में।
क्षण भर में सब कुछ बदल गया, अब ईर्ष्या और अनादर मे।

तब आग बबूला आर्ककीर्ति, यह असंतुलित होकर बोला।
मूरख सुलोचना यह तूने, मर्महित मृत्यु द्वार खोला॥

यह जय कुमार मेरे होते, तू कभी नहीं वर पायेगी।
अज्ञान भरे इस निर्णय पर, तू जीवन भर पछतायेगी॥

दासानुदास की यह हिम्मत, इसका फल आज चखाऊँगा।
क्षण भर में तू यह देखेगी, इसको यमलोक पठाऊँगा॥

निश्चय ही यह मेरे विरुद्ध, सबने मिल जाल बिछाया है।
मुझको अपमानित किया गया, यह मिली भगत की माया है॥

वह शीश करूँगा चूर-चूर, जिसमे पहिनी वरमाला है।
अब रक्त स्वयंवर सब देखे, जो क्षण में होने वाला है॥

जो नृपगण कुशल चाहते हों, तत्क्षण अपने घर को जाये।
जो जय कुमार के साथी हों, रुक कर रुकने का फल पाये॥

छा गया सभा में सन्नाटा, मानों वर मंडप गूँगा है।
आ गिरा शीश पर भय पर्वत, अथवा विषधर ने सूंघा है॥

धर-धीर सुता के सरल पिता, फैली भय अग्नि बुझाते हैं।
हे आर्ककीर्ति तुम धैर्य धरो, मृदु वाणी में समझाते है॥

जो भी इस मण्डप में बैठा, बल शाली है यश धारी है।
पर मनचीता वर चुनने को, यह सुलोचना अधिकारी है॥

इक्ष्वाकु वश के होकर के, क्यों लघुता आज दिखाते हो।
है जयकुमार का दोष नहीं, क्यों उस पर रोष जमाते हो॥

बोला क्रोधित हो आर्ककीर्ति, मैं इसको मजा चखाऊँगा।
यह भूल गया मर्यादा को, मैं इसको पाठ पढ़ाऊँगा॥

अपना बल आज आजमा ले, रण वाद्य अभी बजवाता हूं ।
अरमान न कोई रह जाये, आ रण थल अभी सजाता हूं ।।

गम्भीर नीर निधि जय कुमार, बोला, मेरा कुछ दोष नहीं ।
स्वीकार, चुनौती मिलने पर, अब भी मुझको कुछ रोष नहीं ।।

हो गया रंग में भंग बढ़ा, नृप-नृप कुमार मुख मोड़ चले ।
जो आशा लेकर आये थे, अब उस आशा को तोड़ चले ।।

—: दोहा :—

आर्ककीर्ति रोषास्त्र से, बढे तोड़ते द्वार ।
जयकुमार पीछे गये, मन में विनय अपार ।।

जय जग में है सत्य की, अरु असत्य की हार ।
आओ रण देखें सघन, ले उद्विग्न विचार ।।

युवराज जयकुमार युद्ध वर्णन

—: कवित्त :—

जिसके समीप धर्म, अर्थ और काम मोक्ष,
बनके सुपात्र आप - आप मंडराते हैं।

जिसको नवीन-चिर, अगम, अभेद, शुभ,
सृष्टि का परम तत्व जिसमें बताते हैं।।

जिसकी विशालता को कोई भी न पा सका,
वाद या विवाद सब जिसमे समाते हैं।

जिससे न किसी काल में भी रूप बदला है,
ऐसे शिव तत्व सत्य अपनाये जाते हैं।।

★

जब परम धुरंधर सूरज ने, तम को धरती पर सुला दिया।
जो बड़ी सजीली धरती थी, उसको बाणों से रुला दिया।।

तम अंधकार गजराजों की, उमड़ी घन घटा मोड़ दी है।
घावों से निकली रुधिरधार, धारा से सहज जोड़ दी है।।

छिड़ गयी नयी सुर लहरी है, कुछ और दिखायी देता है।
अब तो केवल संघर्ष भाव, चहुँ ओर सुनाई देता है।।

लड़ रही रंगी किरणें आकर, दूर्वा की सुन्दर नोकों पर।
संघर्ष मचाती फिरती हैं, मारुत के मनहर झोंकों पर।।

मन्त्री ने सोचा रण होगा, टलना कठिनाई लगती है।
युवराज हृदय में रोष-अग्नि, लेकर तरुणाई जगती है।।

इक्ष्वाकु वंश में वह होगा, जिसका न रंच विश्वास यहाँ।
राजा सेनापति युद्ध करे, अब शान्ति बचेगी पास कहाँ॥

युवराज क्रोध की ज्वाल मुखी, सत्वर फटने को तत्पर है।
सेना समूह भी सजा खड़ा, जिसका परिणाम भयंकर है॥

फिर बाढ़ कठिन सी धारा की, अपने ही तट को काटेगी।
निज पक्ष गिरेंगे कट-कट कर, रण चण्डी लोहू चाटेगी॥

नृप वीर अकम्पन भी कितना, ले युद्ध हृदय मे चिन्तित है।
फिर अर्ककीर्ति रोषाग्नि लिये, युद्धार्थ आज संकल्पित है॥

समझाकर नृपति लौट आये, क्या भली स्वयंवर रचना है।
वर सुलोचना ने सही चुना, फिर भी अनहोनी घटना है॥

मैं भी कुछ कोशिश करता हूं, शायद मिल जाय सफलता है।
यदि सफल हुआ तो धन्य भाग, मुख खोले घड़ी बिफलता है॥

इक्ष्वाकु बंश का गुरु गौरव, शायद अनुनय से बच जाये।
इससे बढ़कर के बात कौन, ऐसी रचना यदि रच पाये॥

—: कवित्त :—

हंसपोतिका सी शान्ति सुमति न जाये उड़,
इसलिये एक बार चलना ही चाहिए।

उग आया पथ में है शूल को उखाड़े आशु,
भ्रम की घटा को आज ढलना ही चाहिए॥

लग जाये आग यों ही उपवन में न हाय!
कोई सा उपाय शीघ्र मिलना ही चाहिए।

दुख अब मानना न भोगना पड़े जो यहाँ,
युद्ध का निषेध धर्म पलना ही चाहिये।

*

प्रणवीर सिन्धु-बल अर्ककीर्ति, शुभ शान्ति हेतु तुम जलधर हो।
इक्ष्वाकु वंश के गौरव हो, जग रक्षक वीर धनुर्धर हो॥

क्यों जगा अकारण रोष प्रभो, सेवक को नाथ क्षमा करिये।
है दास तुम्हारा जयकुमार, सेवक पर देव दया करिये॥

वर सुलोचना ने स्वयं चुना, है जयकुमार का दोष नहीं।
प्रभु तो क्षमता के सागर हैं, समुचित है उस पर रोष नहीं॥

विश्वेश्वर प्रभु भरतेश्वर के, अभियान विजय में साथ रहा।
बन ढाल रहा बढ़ता आगे, आज्ञा को झुकता माथ रहा॥

सेवक ये देव आपका है, गुणगान आपके गाता है।
इक्ष्वाकु वंश के नायक के, चरणों में शीश झुकाता है॥

सेवक से रण में लड़कर के, युवराज आप क्या पाओगे।
यदि जीत गये, जीते ही हो, यदि हार गये पछताओगे॥

कल को जब आप नृपति होंगे, दुनियाँ का ध्यान किधर होगा।
जो इस रण का निर्णय होगा, सबका विचार उस पर होगा॥

अनुरोध यही है अर्ककीर्ति, सार्थक कर नाम दिखाना है।
केवल यश ही जीवित रहता, अपयश का कौन ठिकाना है॥

छोटी सी बात बढ़ा कर के, मत रण को पास बुलाओ तुम।
यह विनय हमारी स्वीकारो, रण के प्रण को ठुकराओ तुम॥

मंत्रीवर आप ठीक कहते, सुन कर के बहुत प्रभावित हूं।
रोषाग्नि हृदय में सुलगी है, जिसकी उष्मा से तापित हूं ॥

जब तक न युद्ध में खेलूँगा, तब तक न शान्ति मिल पायेगी।
यह भुजा फड़क कर अब, अपना कौशल रण में दिखलायेगी ॥

तन रहे याकि फिर मिट जाये, यश मिले याकि अपयश पाऊँ।
रण को भुजबल द्वारा जीतूं, अथवा परास्त हो पछताऊँ ॥

अर्पित रण के हित प्राण हुये, चाहें जैसे भी त्राण मिले
युद्ध स्थल मे निर्णय होगा, अब मृत्यु मिले या प्राण मिले ॥

मैं नहीं चाहता जीते जी, उस जय कुमार का मुख देखूं।
घाती कुलघाती, दुखदायी, धिक् जयकुमार सम्मुख देखूं ॥

छिप जाये दुर्ग कोट मे जा, गाढ़े गढ़ आज पलट दूंगा।
छिप जाये धरती के अन्दर, धरती को आज उलट दूंगा ॥

यदि मेरे सम्मुख आयेगा, टुकड़े - टुकड़े कर डालूँगा।
छिप जाये किसी व्यूह में जा, बाणों से खोज निकालूंगा ॥

मेरे होते यह शत्रु जिये, यह कभी मुझे स्वीकार नहीं।
इसके टुकड़े-टुकड़े न करे, तो यह मेरी तलवार नहीं ॥

गरदन वह आज उड़ा दूंगा, जिसमें माला डलवाई है।
यह गदा आज बतला देगी, कितनी पायी तरुणाई है ॥

इस अर्ककीर्ति के रहने पर, क्यों अंधकार रह पायेगा।
इक्ष्वाकु वंश का यह स्वरूप, कैसे कोई सह पायेगा ॥

-: दोहा :-

जहाँ अहं तहँ बल नहीं, लोभ मध्य विश्वास।
मिथ्या में जीवन कहाँ, जहाँ क्रोध तहँ नाश।।

अहं भूमि से उपज कर, बढ़ता है जब क्रोध।
विष सम चुभता है सदा, बोध भरा अनुरोध।।

अर्ककीर्ति की अहमता, पिये तामसिक भाव।
गुस्सा शान्त न कर सका, शान्ति भरा प्रस्ताव।।

★

मंत्रीवर मन मसोस कर के, अपना मुंह लिये लौट आये।
समझा न सके नृप के सुत को, इस होनहार पर अकुलाये।।

वे समझ गये अपयश के घन, दिशि-दिशि से अब घहरायेंगे।
इक्ष्वाकु वंश के गढ़ पर दृढ़, अपयश के ध्वज लहरायेंगे।।

अज्ञान तिमिर हो रहा सघन, उस पर स्वार्थों की आँधी है।
अब कहाँ रहेगी जो इनके, पुण्यों ने सीमा बाँधी है।।

रण वाद्य इधर प्रारम्भ हुये, मानो यम का घननाद हुआ।
आदर्श, शील, संयम का गढ़, अब पूर्णतया बरबाद हुआ।।

घिर आये भीषण श्याम मेघ, गर्जन से दिल दहलाते हैं।
हाथी, सैनिक, रथ, अश्व आदि, आये सब धूलि उड़ाते हैं।।

ज्यों चमक रही चंचल चपला, खड्ग चमकाते आते हैं।
नाना रंगों के काल मेघ, झण्डे फहराते आते हैं।।

बढ़ रहे झुण्ड के झुण्ड विपुल, ज्यों बादल घिरते आते हैं।
सुख शान्ति आदि सम विहगवृन्द, नीड़ों को उड़ते जाते हैं।।

रोषाग्नि लिये पागल मारुत, दौड़ता डुलाता फिरता है।
जो क्षमा अहिंसा वृक्षों को, तोड़ता हिलाता फिरता है।।

युद्धातुर यौद्धा विचर रहे, वर्षा को घन ज्यों व्याकुल हों।
अरमानों से धरती के कण, जल-रक्त बिन्दु को आकुल हों।।

घायल विषधर फणीश जैसा, युवराज क्रुद्ध फुंकार उठा।
युवराज वीर के साथ-साथ, सैनिक समूह हुँकार उठा।।

बज उठी भयंकर रणभेरी, स्वांसों मे ज्वार उभर आया।
रण वीरों का रण कौशल मन, कण कण मे आज मुखर पाया।।

लग रही जवानी सार्थक है, उद्दाम वेग सागर का है।
अरि तट को आज मिटा डाले, वह प्रखर वेग सागर का है।।

संयम का बाँध हुआ खण्डित, जब सुनी अर्क की रणभेरी।
तब जय कुमार को भी. निर्णय लेने में लगी नहीं देरी।।

यह अर्ककीर्ति मानेंगे क्यों, उठता सा उर में दाह लगा।
फिर अरि से आज जूझने को, बरबस उर मे उत्साह जगा।।

यों शीश झुकाकर जीना क्या, अब शत्रु खड़ा ललकार रहा।
अपमानित भाँति-भाँति से कर, लड़ने को मुझे पुकार रहा।।

निर्दोष रोष की अग्नि सहूँ, फिर भी क्या प्रान बचा लूंगा।
जीना तो मान सहित जीना, चाहूं तो मृत्यु रचा लूंगा।।

मैं हार जीत को सोचूं क्या, अब स्वाभिमान हित लड़ना है।
कितना बलिष्ठ मेरा अरि है, उसका दुःसाहस पढ़ना है।।

कैसा परिणाम निकलता है, अब यह चिन्ता का विषय नहीं।
अब उस ईर्षालु विरोधी से भी, करना है किंचित विनय नहीं।।

अब सन्मुख रण का सागर है, साहस से पार उतरना है।
जब युद्ध शीश पर आन पड़ा, अब रण से तनिक न डरना है।।
हे खड्ग ! मित्र है अब तू ही, भुजबल को साथी रहना है।
रे ! शीश तुझे बन कर सुमेरु, अगणित वारों को सहना है।।

॥ दोहा ॥

देख सत्य के पक्ष को, लिये हाथ शमशीर।
निज दल बल को साज कर, उठे अकंपन वीर।।
और पाँच राजा उठे, सुमिर ऋषभ का नाम।
लिये शरासन हाथ में, जो भी हो परिणाम।।
अर्ककीर्ति के वाद्य रण, करें तुमुल घननाद।
जयकुमार को टेरते, तोड़ रहे मर्याद।।

★

दोनों की सेना रण थल में, सन्मुख डटकर हो गई खड़ी।
आपस में मिलकर भिड़ने को, कैसी अनहोनी बनी कड़ी।।
गहमा गहमी में वीरों को, कुछ भी न दिखायी देता है।
है श्रवण इस समय जाग रहे, निधि रोर सुनायी देता है।।
तब अर्ककीर्ति ने, अरि दल पर, आक्रमण हेतु मुख खोल दिया।
जब तक कि संभल पाता अरि दल, वीरों ने धावा बोल दिया।।
हो गया युद्ध प्रारम्भ विकट, देहों से आयुध खेल रहे।
चल रहा खेल हथियारों का, आक्रमण देह पर झेल रहे।।
कटु काल व्याल से कुटिल बाण, बढ़ते लहराते आते हैं।
विष बुझे तीर निर्मम गति से, आफत बरसाते जाते हैं।।

चुभ रहे तीर, बुझ रहे तीर, तीरों की दुनिया न्यारी है ।
हैं तीर वक्ष पर झेल रहे, वीरों पर यश बलिहारी है ।।

चल रहे भयंकर विकट बाण, है त्राण कहीं पर बचा नहीं ।
बस एक प्राण की रक्षा को, है व्यूह कौनसा रचा नहीं ।।

मूसलाधार वर्षा करता, बाणों का बादल छाया है ।
मिल गया उसी को निकट बाण, जो बाणों को ललचाया है ।।

शर ही शर दिखलाई देते हैं, रच गयी सृष्टि है बाणों की ।
योद्धाओं पर अति घमासान, हो रही वृष्टि बाणों की ।।

वीरों ने जीवन धन्य किया, शर की गंगा में नहा-नहा ।
लगता है रण को अर्घ्य दिया, तन के लोहू को बहा-बहा ।।

तब अर्ककीर्ति ने अग्निबाण, अरि की रण भू-पर बरषाये ।
अब भस्मसात् सब हो जायें, अरि शेष न कोई रह पाये ।।

उत्तर में जय कुमार ने भी, जलबाण तुरत ही बरषाये ।
सब आग बुझाते चले गये, बादल काले घिर कर आये ।।

फिर अर्ककीर्ति ने बाणों से, धरती पर उपल वृष्टि की है ।
शर जयकुमार ने बरसा कर, दुश्मन पर कुटिल दृष्टि की है ।।

रण-भू पर हाहाकार मचा, पड़ रहे जान के लाले हैं ।
भिड़ रहे धनुर्धारी कितने, तलवारों भालों वाले हैं ।।

घोड़े आगे बढ़ते जाते, टापों से धूल उड़ाते हैं ।
पैदल भी आगे बढ़-बढ़ कर, सीनों में अस्त्र भिड़ाते हैं ।।

सीने पत्थर की चट्टानें, शर लगते हैं मुड़ जाते हैं ।
यह दशा देख कर धनुधरी, मन ही मन में कुढ़ जाते हैं ।।

हाथी मतवाले घूम रहे, अरि देह फाड़ते जाते हैं।
ये वीर न हो, हों शाल वृक्ष, जिनको उखाड़ते जाते हैं।।

बैठे यौद्धा अम्बारी में, व्यापारी ये प्राणों के हैं।
जो आज जान पर खेल रहे, व्यापारी ये बाणों के हैं।।

अगणित किरणें धारी सूरज, बरसाते किरणे फिरते हैं।
व्याकुल ये भी तब दिखते हैं, जब-जब मेघों से घिरते हैं।।

लग रहे घाव कितने तन पर, इनको कोई परवाह नहीं।
बन रही राह, बढ़ रही चाह, कम हुआ किन्तु उत्साह नहीं।।

चल रहा इधर गम्भीर समर, यौद्धा-यौद्धा से जूझ रहे।
साहस का कहाँ खजाना है, सब एक एक से बूझ रहे।।

गिर रही शीश पर चट्टाने, चट्टानें चकनाचूर हुयी।
टूटे न शीश, फूटे न शीश, चट्टाने ही मजबूर हुयीं।।

अगणित बाणों की वरसा भी, वीरों को तनिक रुका न सकी।
रुक गयी आप ही शर बरसा, शीशों को तनिक झुका न सकी।।

—: कवित्त :—

जहाँ, तहाँ झुण्ड-झुण्ड, पड़े हुये रुण्ड झुण्ड,
रौंदते वितुण्ड, वीर बढ़े चले जाते हैं।

जहाँ-तहाँ भरे हुये, शोषित विशाल कुण्ड,
तेग, तलवार, ढाल डूबे उतराते हैं।।

जहाँ-तहाँ पक्ष हीन होकर के वीर पड़े,
युद्ध न मिलेगा पछताते मरे जाते हैं।

जिनके भी हाथ थोड़े विक्षत हुये हैं कम,
मूँछ को मरोर कुछ कहे चले जाते हैं ।।

★

हैं भांति-भांति के कुटिल व्यूह, युवराज वीर ने रच डाले ।
पर जयकुमार को ये सब हैं, जाने कब के देखे भाले ।।

इस तरह नष्ट हो रहे व्यूह, जैसे मकड़ी के जाले हों ।
सब सैनिक ऐसे लगे कि ज्यों, वे वीर न हों, रखवाले हों ।।

अब अर्ककीर्ति क्रोधित होकर, वीरों को हांक लगाता है ।
अरि भाग न जाये जीवित ही, वीरों को पुन. जगाता है ।।

कम्पति सम अन्तर कम्पित है, ऊपर से साहस बांधे है ।
कर खड्ग रक्त से रंजित है, तूणीर अनोखा कांधे है ।।

लाशों पर लाशे बिछी हुयी, रोषाग्नि हो रही शान्त नही ।
जय की आशा मे विचर रहा, मन अभी हुआ है क्लान्त नहीं ।।

अब जयकुमार मे यह उमंग, प्रलयंकर धावा बोला है ।
अरि को परास्त करने को अब, फिर नया मुहाना खोला है ।

अब भाग न जाये अर्ककीर्ति, डाला कुछ ऐसा घेरा है ।
इक हाक सुनाकर ऊँची सी, सेनापतियों को टेरा है ।।

हे देवि घात चल रहे विपुल, क्या पता हँस कब उड़ जाये ।
क्या पता देह का प्राणों का, सम्बन्ध बाण से जुड़ जाये ।।

प्राणों को लिये हथेली पर, ग्राहक प्राणों के डोल रहे ।
किस मे कितना दम खम रण में, रणवीर परस्पर तोल रहे ।।

अब जयकुमार सीना ताने, अरि दल को दलता जाता है ।
ज्यों सूर्य इस समय संध्या का, छिपने को ढलता जाता है ।।

बहु बार कर चुके अर्ककीर्ति, पर नही शत्रु पर जय पायी ।
छा गयी भाल पर श्यामलता, उड़ गयी बदन से अरुणाई ।।

वे जयकुमार पर बार-बार, वारों पर वार किये जाते ।
उगते सूरज से जयकुमार, फूलों के भार लिये जाते ।।

रण का जहाज है जयकुमार, सब को ही पार लगा देगा ।
जो अर्ककीर्ति अन्यायी है, निज नौका आज डुबा लेगा ।।

ले नागपाश कर मे कराल, रण जयकुमार ने साध लिया ।
फिर जयकुमार ने बढ़ कर के, रिपु आर्ककीर्ति को बाँध लिया ।।

मिल गया धूलि मे राजमुकुट, हो गये गर्व गिरि खण्डित हैं ।
श्री जयकुमार सेनापति सुत, बस गये युद्ध के पण्डित हैं ।।

इस समय अकम्पन नृप ने आ, श्री जयकुमार को समझाया ।
तब क्षमा दान दिलवा कर के, फिर नागपाश को खुलवाया ।।

हिंसा का ताण्डव नृत्य देख, अन्तर भी अस्थिर कम्पित है ।
बस, चीत्कार, हाः हाः पुकार, रण भू से आज प्रचण्डित है ।।

हो चुका क्रोध का विकट खेल, दो हृदय न मिल कर रह पाये ।
वे आज समर में आकर के, केवल रण बर्बर सह पाये ।।

-: दोहा :-

देवी सत्य सुलोचना, दुविधा की प्रतिमूर्ति ।
चली हृदय अनुकूल पर, हुयी हाय कब पूर्ति ।।

लिया कार्य-उत्सर्ग व्रत, कर अर्पित प्रिय प्राण ।
विजयी पति आया अगर, पाया पद निर्वाण ।।

कहा पिता ने पुत्रि हे !, मिला विजय का हार ।
जयकुमार ही है बना, रण-भू का शृंगार ।।

-: हरिगीतिका :-

नृप पूर्ण प्रण को प्राप्त कर, उर मे अधिक हर्षित हुये ।
आशिषों के सुमन अगणित, शीश पर वर्षित हुये ।।

नृप ने सराहा भाग्य को, बहु पुण्य हैं अर्जित किये ।
भगवान पूज्य जिनेश को, श्रद्धा सुमन अर्पित किये ।।

शुभ-लोचना ने धैर्य धर, व्रत सहज उद्यापन किया ।
प्रण पूर्णता को हृदय से, जैनागमित साधन लिया ।।

मन से, वचन से, कर्म से, जय को वरा, कुल रीति से ।
वर स्वयंवर मिल गया है, नीति से उर प्रीति से ।।

शुभ-लोचना कुल रीति से, है अब विवाहित हो गयी ।
श्रेष्ठतम सौभाग्य पुष्पों से, वह सुवासित हो गयी ।।

वह कुन्द कलिका, कौमुदी, शोभित सुखद शुकसारिका
है आज सुर-मन मोहिनी, मंदाकिनी शृंगारिका ।।

।। दोहा ।।

जय सुलोचना यों मिले, मिले क्षीर अरु नीर ।
नैन चार ज्यों ही हुये, हुआ नेह गम्भीर ।।

जय होती है सत्य की, यही बात विख्यात।
जयकुमार विजयी हुये, जय का हुआ प्रभात।।

भक्ति भाव से जो पढ़े, पाये विजय महान।
जग में यश भागी बने, पावे पद निर्वाण।।

भरत न्याय वर्णन

॥ दोहा ॥

दुखदायी घटना यद्यपि, अनचाही घट जाय।
निराकरण के ढूंढते, विज्ञ सदैव उपाय ॥

स्वयं न खुल अ य कहीं, अंधकार के द्वार।
यत्र तत्र सर्वत्र हो, आलोकित ससार ॥

प्रेम भावना परस्पर करे सभी स्वीकार।
सुखी रहे सब यही है, जैन धर्म का सार ॥

★

युवराज उचित अवसर पाकर, हैं अपने नगर लौट आये।
क्या घटना काशी मध्य घटी, यह खुल कर बता नहीं पाये ॥

नृप रहे प्रतीक्षा मे यों ही, आ अर्ककीर्ति बतलायेंगे।
किस तरह स्वयंवर रचा गया, घटना क्रम से समझायेंगे ॥

युवराज सुनाते कुछ जाकर, उसमे ही प्रथम दूत आया।
राजेश नृपति भरतेश्वर के, चरणों में सादर सिर नाया ॥

मैं दूत अकम्पन नृप का हूं, काशी नगरी मे आया हूं।
सन्देश एक समयानुकूल, काशी नरेश का लाया हूं ॥

राजादि पूज्य विश्वेश्वर नृप, जग चिन्तक जन हितकारी हो।
जन हित को आप समर्पित है, जग को प्रभु मगलकारी हो ॥

प्रभु धैर्य सिन्धु, नय-गुण-आगर, अपराध यहाँ बहुतेरे हैं।
हम अल्प बुद्धि, अनुभव विहीन, जड़तादिक भाव घनेरे हैं।।

हो चुका स्वयंवर का विधान, बलवान काल की माया है।
दुहिता सुलोचना ने रुचिकर, मन वांछित वर अपनाया है।।

वर जयकुमार को वर चुनकर, वर माला उस को पहनाई।
दोनों का पाणिग्रहण हुआ, पाई प्रभात ने तरुणाई।।

प्रभु अर्ककीर्ति फिर जयकुमार, दोनों रण-भू तक जा पहुँचे।
इस तरह लड़ इस तरह भिड़े, दोनों हिंसा तक आ पहुँचे।।

दोनों ने रण - भू - काली में, घनघोर युद्ध का व्यूह बुना।
इतिहास जानता हो शायद, हमने ऐसा रण नहीं सुना।।

पर्वत हिल हिल कर चूर्ण हुये, गंगा का पानी लाल हुआ।
युग-युग तक याद करेंगे जन, रण में कुछ यही कमाल हुआ।।

प्रभुवर को नृपति अकम्पन ने, करबद्ध निवेदन भेजा है।
जैसे हो हमें क्षमा कर दे, यह नम्र निवेदन भेजा है।।

दुहिता ने अपनी इच्छा से, अपनी पसन्द का वर पाया।
युवराज इसी पर बिगड़ पड़े, उनको अपमान नजर आया।।

चल पड़ी अचानक तलवारें, कुछ भी कहना बेकार रहा।
था जयकुमार भुज बलधारी, रण थल पर वही सवार रहा।।

उस न्याय पथी का मिलकर के, हम ने भी रण में साथ दिया।
जो सत्य पथी, जो न्याय पथी, जग ने कब उसे अनाथ किया।।

इक्ष्वाकु वंश का सेवक हो, संयोग कि अब जामाता है।
हे परम पूज्य तव-कृपा दृष्टि, हम सबको जग में त्राता है।।

कुछ घटा अचानक ही ऐसे, प्रभु को भी नहीं बुला पाये।
सूखे नैनों में सब बीता, अभिलाषा नहीं भुला पाये ।।

जो भी अघटित घट चुका यहाँ, दोषी हूँ नाथ क्षमा करिये।
आशीष दीजिये हे स्वामी !, दोनों पर देव दया करिये ।।

–: कवित्त :–

अतिशय रुचिर नम्र, बोल सुन सुन्दर से,
सत्य अनुरागी नृप खूब हरषाये हैं।

देख के विषम सम दशा अकुलाये नहीं,
नाम अनुरूप उनने तो गुण पाये हैं ।।

सुभग सुलोचना ने पाया मन भाया वर,
व्यर्थ कटुता के तरु अर्क ने उगाये हैं।

वर वरनी को बहु आशिष दिये हैं नृप,
कोटि-कोटि धन्यवाद नृप को पठाये हैं ।।

।। दोहा ।।

दूत गया निज देश को, पाकर शुभ आशीष।
रजनी बीती पा गया, यामावर प्राचीश ।।

भरत नृपति सज्जन बड़े, सुनी बात धर धीर।
शुभ चिन्तन से दह गयी, चिन्ता की प्राचीर ।।

जो जितना गम्भीर है, उतना वही महान।
निज जीवन को भोगता, देता जीवन दान ।।

गुणागार संसार है, ढूँढ सके तो ढूँढ ।
आलस तुझे बनायगा, किंकर्त्तव्य विमूढ़ ।।

★

भरतेश नृपति ने अर्ककीर्ति, अब सभागार में बुलवाये ।
श्री अर्ककीर्ति आज्ञा पाकर, भरतेश्वर के सम्मुख आये ।।

करके प्रणाम, आशिष पा के, बैठे समुचित आसन पर है ।
हे परम पूज्य जगवन्द्य पिता, सेवा मे सत्वर तत्पर है ।।

हे अर्ककीर्ति तुमने कुल की, मर्यादा को ठुकराया है ।
जो धर्म अहिंसा का पालक, उस पर धब्बा लगवाया है ।।

इक्ष्वाकु वंश का यश वैभव, सब धूलि-धूसरित कर डाला ।
केवल वरमाला की खातिर, अपयश का किया बोल बाला ।।

हिमगिरि का शीश गिरा भू पर, सूरज धरती पर उतर पड़ा ।
पर्वत सुमेरू पर निधि का जल, हँसता धरती पर खड़ा खड़ा ।।

जिसकी न कल्पना थी हमको, कल्पनातीत यह आप हुआ ।
तेरे ही कारण अर्ककीर्ति, जीवन भर का अभिशाप हुआ ।।

यदि जयकुमार की ग्रीवा में, वर माला उसने पहनाई ।
ये सुलोचना का विषय रहा, क्यों हुयी क्रोध की पहुँनाई ।।

यों तो अमर्ष उत्कर्ष देख, जन में अक्सर उग आता है ।
गम्भीर व्यक्ति वह कभी नहीं, जिसमें अमर्ष जग जाता है ।।

जब जगा क्रोध, तब ज्ञान कहाँ, अज्ञानी सब कुछ करता है ।
जो तनिक ज्ञान भी रखता है, वह अनुचित करते डरता है ।।

तुम हुये इस तरह से मदान्ध, जो अपनापन भी भूल गये।
लड़ने को मिला नहीं, कोई, अपनों के ही प्रतिकूल गये।।

मेरी छाती ठण्डी होती, शेरों को भूमि सुला आते।
रखते न युद्ध की आकांक्षा, आदर्श न्याय का दरषाते।।

तुम लड़े, लड़े भी अपने से, उसमें भी दूध लजा आये।
तुम बहुत बड़े आज्ञाकारी, सारा सम्मान गवां आये।।

जो जयकुमार सब विजयों में, छाया सा अपने साथ रहा।
जिसका सदैव ही इस कुल को, झुकता चरणों में माथ रहा।।

वरमाला गले न पड़ पायी, इसलिये युद्ध ही ठान दिया।
अपने घर का, उनके वर पर, अपयश दाता अपमान किया।।

लज्जा से शीश झुका जाता, माथे कलंक ले आये हो।
पीढ़ी दर पीढ़ी के यश को, सब एक साथ दे आये हो।।

ऐसी आसक्ति रूप की क्या, अपना स्वरूप खो आये हो।
पथ कौन स्वच्छ कर पायेगा, इतने काँटे वो आये हो।।

यदि सह न सके उत्कर्ष बन्धु, चुपचाप लौट कर आ जाते।
इतनी सामर्थ्य नहीं तुमने, यह व्यवहारिकता दिखलाते।।

हिंसा पर स्वयं उतर आये, मर्यादा तुमने तोड़ी है।
इक्ष्वाकु वंश की यह नौका, विपरीत दिशा को मोड़ी है।।

-: कवित्त :-

काम अन्धता ने तुम्हे जड़ता से बाँध दिया,
जिसके लिये कि युग - युग पछताओगे।

हिंसा असमानता के और स्वार्थ परता के,
धरती पे आदि बिन्दु मान लिये जाओगे ।।

अपनों के साथ रहकर के है युद्ध होता,
इस कटु व्यंग से कब बच पाओगे ।

अपयश की जो बेलि फैलेगी कराल यहां,
कहां - कहां दौड़कर नाम को बचाओगे ।।

॥ दोहा ॥

हुआ पुत्र के कर्म पर, पिता भरत को खेद ।
अब हो सकता कुछ नहीं, जग में काल अभेद ।।

अर्ककीर्ति को आज है, हुआ बहुत अहसास ।
अपनी करनी पर हुआ, मन में अति संत्रास ।।

गया समय, धनु हाथ से, हो छूटा ज्यों तीर ।
कहां गया, किसके लगा, जगी हृदय में पीर ।।

पानी पानी हो गये, कौन उठाये नैन ।
गये मौन ही भवन को, लिये हृदय बेचैन ।।

★

उस नयी नवेली रूपसि को, पाकर भोगों में लीन हुये ।
श्री जय कुमार विजयी होकर, उस रमणी के आधीन हुये ।।

उस रूप राशि की मदिरा का, कुछ दिन बेसुध हो पान किया ।
भोगों के वशीभूत होके, भोगा कर्षण पर ध्यान दिया ।।

कुछ दिवस डूबते उतराते, यौवन सरिता में बीत चले ।
श्री जयकुमार को यों लगता, प्रति क्षण मिलता मन मीत गले ।।

जब दूत अयोध्या से आया, आकर सन्देश सुनाया है।
उस घटना से सन्तोष स्वयं, अब भरतेश्वर ने पाया है॥

नृप राज अकम्पन को नृप ने, सन्देश अनोखा भिजवाया।
जो घटा, न उसको बुरा कहा, अन्तर विशालतम दरशाया॥

ऐसे उदार, सत् अनुयायी, हितकारी के दर्शन पाऊँ।
मैं साथ प्रिया को लेकर के, अब नगर अयोध्या को जाऊँ॥

वह वीरव्रती वर जयकुमार, निज बल को तुरत सजा करके।
नृपराज अकम्पन धन्य हुये, पुत्री को आज विदा करके॥

वे पवन पुत्र वाले रथ से, साकेता नगरी मे आये।
भरतेश्वर नृप की आज्ञा से, स्वागत सत्कार बहुत पाये॥

मार्गों, गलियों, चौराहों पर, स्वागत में बन्धनवार बँधे।
इस वीर व्यक्ति के स्वागत को, घर द्वारे विविध प्रकार सजे॥

गम्भीर व्यक्ति प्रिय जयकुमार, भरतेश्वर नृप यह बोले हैं।
क्या स्वाभिमान होता जन का, तुमने रहस्य यह खोले है॥

अवधेश-पुत्र-प्रिय-अर्ककीर्ति, युवराज समझ तुम झुक जाते।
पुरुषत्व पूर्ण जीवन में तुम, कर्तव्यों के प्रति चुक जाते॥

तुमने न युद्ध करना चाहा, युवराज क्रोध मे कूद पड़े।
पा गये क्रोध का कड़वा फल, अब सोच रहे बेकार लड़े॥

तुम धैर्यवान संयमी व्रती, तुम तो हर भाँति दुलारे हो।
प्रत्येक समय तुम साथ रहे, कैसे कह दूँ तुम न्यारे हो॥

दोनों ही कुल की शोभा हो, मर्यादा के रखवारे हो।
वह प्राण और तुम भुजा सदृश, दो नयन हमारे हो॥

उपहार वस्तु बहुमूल्य हार, प्रिय जयकुमार को देकर के ।।
दोनों ही प्रणयी, धन्य किये, आशीष मनोहर देकर के ।

प्रिय अर्ककीर्ति को बुलवाकर, दोनों अतिशय हरषाये हैं ।।
दोनों के हृदय हुऐ निर्मल, दोनों के उर मिलवाये हैं ।

—: हरिगीतिका :—

जो शान्ति के, सद्धर्म के, हितकर सुपथ को जानता ।
ऐसे परम धीमान को, हर व्यक्ति जग पहचानता ।।

जो न्याय के, शुभ कर्म के, सत्मार्ग को पहचानते ।
प्रिय पुत्र अथवा मित्र को, वे एक सा गर दानते ।।

जो दूरदर्शी है नहीं, वह कल विवश पछतायेगा ।
यदि आत्म बल होगा नहीं, तो टूटता ही जायेगा ।।

प्राप्त कर समता विषमता, लिप्त जो होता नही ।
ऐसा मनुष ही धन्य है, यश को कभी खोता नही ।।

जो न्याय कारी है सदा, यश केतु फहराते रहे ।
मानों समय के व्योम में, यश मेघ घहराते रहे ।।

भरतेश वर विश्वेश के, गुण जान सकता कौन है ।
'नागेन्द्र' भी फिर क्या कहे, वाणी नहीं जब मौन है ।।

—: दोहा :—

जीत जगत में सत्य की, और सत्य से प्रीत ।
सफल न कोई सत्य के, हुआ कभी विपरीत ।।

न्याय नीति पालन करो, कहते यह जिन ग्रन्थ।
अपरिग्रह के प्रेम से, मिलता शिव सुख पन्थ॥

अर्ककीर्ति की कीर्ति को, कौन करेगा याद।
जयकुमार की जीत ने, पाया आशीर्वाद॥

जीवन व्यापी ये कथा, नहीं मात्र उपदेश।
पढ़ो सुनो पाते रहो, जीवन का सन्देश॥

ऋषभायण
सप्तम खण्ड
मार्दव
आर्जव
शौच
सत्य
संयम
त्याग
ब्रह्मचर्य
की अमृत-धार
१- भरत कैलास आगमन वर्णन
२- निर्वाण महोत्सव वर्णन
३- भरत दीक्षा वर्णन

भरत कैलाश आगमन वर्णन

—: हरिगीतिका :—

आदि प्रभाकर, काल विभाकर, गुण रत्नाकर नमो ! नमो [
भव भय नाशक, ज्ञान प्रकाशक, शान्ति सुधाकर नमो ! नमो !!
न्याय, नीति भवहित शुभ चिन्तक, मोह विदारक नमो ! नमो !
जय भव त्यागी, आत्मानुरागी, जय हितकारक नमो ! नमो !!
शील, सत्य के परम प्रकाशक, गुणाकार संसार प्रभो।
सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह छवि, मधुर चषक रसधार प्रभो ।।
आर्जव, मार्दव क्षमा आदि के, संयम के सुखसिन्धु प्रभो !
जगत क्लान्ति से थके हुये के, मात्र एक तुम बन्धु प्रभो !!
जो भी आता, सब कुछ पाता, मुझ पर भी प्रभु कृपा करो।
दया सिन्धु हो विश्व बन्धु हो, सारे जग पर कृपा करो ।।
तुम सम स्वामी, अन्तर्यामी, जग हितकामी कहाँ प्रभो।
बाट जोहता जय करुणाकर, भक्त तुम्हारा यहाँ प्रभो ।।

★

सूरज की किरणें लाल लाल, भरती सब ओर उजाली है।
ये नाच रहीं जल थल पर हैं, इनकी नव ज्योति निराली है ।।
जिसमें जितनी क्षमता रहती, उतना प्रकाश पा लेता है।
जिसमें जितनी विशालता है, उतना विकास पा लेता है ।।
किरणें अपार लाती प्रकाश, इसमें कम लोच नहीं होता।
इनसे चाहें जितना ले लो, इनमें संकोच नहीं होता ।।

इनमें प्रकाश मधुराका का, सारा अस्तित्व समाया है।
जीवन के कण कण में उसके, उज्जवल प्रकाश मुस्काया है।।

जीवन के गूढ़ रहस्यों को, ये ही प्रकाश सुलझाता है।
सोती कलियों के अधरों पर, ये ही प्रकाश मुस्काता है।।

सब फूल, पात, तरू, गुल्म लता, पाकर प्रकाश हरषाते हैं।
दुर्लभ जीवन को पाकर के, दुर्लभ जीवन सरसाते हैं।।

सब ओर विलसता जीवन है, नूतन प्रकाश को पाकर के।
सम्पन्न काव्य हो विघ्न रहित, पग छूता दिव्य दिवाकर के।।

—: कवित्त :—

आदि नाथ दिन नाथ, के समान नाशते हैं
क्रूर पुंज धरती का तोम तप तीर से।

भव के विकट बन्धनों में फँसे रोये और,
चीखते रहे जो रात भर पड़े पीर से।।

किस को रही है पीर पाकर कृपालु-प्रभु,
जिसने भी बाँधे घाव अमिताभ चीर से।

उसको अदृश्य कौन जगती के मध्य रहा,
जिसने भी धोये नैन, ज्ञान-शुद्ध नीर से।।

★

प्रभु आदिनाथ दिननाथ सदृश, सबको प्रकाश के सागर हैं।
जो चाहे मुक्ता ले जाये, प्रभु वृषभदेव रत्नाकर हैं।।

निज आत्म निरीक्षण के द्वारा, उनने प्रकाश यह पाया है।
वे स्वयं इसी से जागे हैं, जगती को सतत जगाया है।।

शुभ समवशरण में ये प्रकाश, सारे जग को दिखलाया है।
चारित्र कौन अनुकरण योग्य, विस्तार सहित बतलाया है ।।

क्या करे और क्या करे नहीं, कैसे भव-भंजन बन जाये।
कौन सी रीति, कौन सी नीति, अपने जीवन में अपनाये ।।

सच्चे जीवन का क्या स्वरूप, यह सब जीकर दिखलाया है।
क्या धर्म, कर्म, संयम चरित्र, अपरिग्रह, न्याय सिखाया है ।।

अज्ञान तिमिर में फँस करके, कोई भी जीवन खो देगा।
कर ज्ञान धार में घुस कर, वह जीवन के कलमष धो लेगा ।।

जिसको निज पर मे भेद नहीं, वह सच्चा जिन पथ-गामी है।
जो मात्र स्वयं में लिप्त रहे, स्वार्थी जिन पथ प्रतिगामी है ।।

निस्वार्थ भावना में बँधकर, सब का चिन्तन ही शुभकर है।
जन हिताय का अनुगामी, कहलाता नय का निर्झर है ।।

सतधर्म, ज्ञान, चारित्र प्रखर, भरतेश्वर नृप ने पाया है।
अपरिग्रह, सत्य, शील, संयम, व्रत को सदैव ने अपनाया है ।।

यह यत्न रहा भरतेश्वर का, जो सीखा सदा प्रयोग करे।
निज को ही नहीं प्रजा को भी, उपलब्ध सभी संयोग करे ।।

इसलिये प्रजा होकर प्रसन्न, अन्तर में मोद मनाती है।
दस धर्म प्राप्त कर जीवन में, धर्मों से पंथ सजाती है ।।

जीवों पर दया क्षमा करके, जनता शुभ पुण्य कमाती है।
आने वाली संतति को भी, ये धर्म पंथ समझाती है ।।

सुख देकर ही सुख मिलता है, जनता ने मन से ठाना है।
प्रभु ऋषभदेव को श्रद्धा से, जीवन का स्वामी माना है ।।

नृप महाबली भरतेश्वर ने, जीवन का बहुविधि पान किया।
रण यात्रा की, रण झेला भी, जय के रस पर भी ध्यान दिया॥

बहु लोभ मोह के युद्ध हुये, जिनमें हारे भी जीते भी।
हीरे मोती लेकर लौटे, लौटे खाली कर रीते भी॥

जीवन संग्राम अनूठा है, सब को ही लड़ना होता है।
अनिवार्य रूप से ये पर्वत, सब को ही चढ़ना होता है॥

जो भी इसमें होते न लिप्त, संग्राम वही जीता करते।
जिनके जीवन निर्लिप्त रहे, अमृत से जीवन घट भरते॥

वह कभी नहीं हारा जग में, जिसने कर्मों पर ध्यान दिया।
हिंसा को जिसने त्याग दिया, अपना स्वरूप पहचान लिया॥

भरतेश बली, अपना स्वरूप, पहचान हेतु हैं, लगे हुये।
मन वाचा और कर्मणा से, जनहित को लेकर जगे हुये॥

दिन रात सोचते रहते हैं, कैसे जग का हित साधन हो।
कैसे हो श्रेष्ठ आत्म चिन्तन, कैसे प्रभु का आराधन हो॥

अपना अथवा जन का जीवन, कैसे सम्पन्न बनाऊँ मैं।
वह ज्योति कभी जो बुझे नहीं, कैसे वह ज्योति जगाऊँ मैं॥

जीवन यदि सार्थक हुआ नहीं, तब तो आना बेकार रहा।
कुछ श्रेष्ठ छोड़ कर जा न सके, तब तो जाना बेकार रहा॥

—: कवित्त :—

जग हित साधनों को ऐसे अवराधते कि,
जन हित साधना की साध ही न टूट जाय।

जिससे लिया है धन, मान ज्ञान आदि सब,
रुचिर समाज वाला भाग ही न छूट जाय ।।

निज स्वार्थ साधना की पूर्ति को मनाता रहूं,
मानवीयता का श्रेष्ठ मान ही न लूट जाय ।

इतना भगायें नहीं जीवन का रथ देह,
काम अन्धता में कहीं श्वास ही न रूठ जाय ।।

★

प्रभु त्रिकालज्ञ, अन्तरयामी, ऐसे उदाहरण सुनाते थे ।
जो धर्म प्रेरणा देते थे, ज्ञानामृत नित्य लुटाते थे ।।

अरहन्त देव का विशद ज्ञान, प्रभु धर्मामृत बरसाते थे ।
अपनी वाणी से ऋषभ देव, जन जीवन सरल बनाते थे ।।

कैलाश शिखर पर कर विहार, प्रभु पौष पूर्णिमा को आए ।
चिर परिचित वातावरण देखा, प्रभुवर मन में अति हरषाये ।।

शुभ समवशरण की जिनवाणी, दे उपदेशामृत कान्त हुयी ।
कर लिया मौन प्रभु ने धारण, मुखरित वाणी अब शान्त हुयी ।।

करके निरोध योगों का प्रभु, अब मौन हुये अन्तर्यामी ।
साधा अन्तर में ध्यान योग, अरहन्त हुये अन्तर स्वामी ।।

भरतेश नृपति के स्वजनों ने, स्वपनों मे निशा बितायी है ।
कुछ उषा काल को याद रहा, उनकी कल कथा सुनायी है ।।

भरतेश्वर ने कनका चल को, लम्बायमान जब देखा है ।
निस्पन्द पड़ा क्यों मन्द्राचल, धर ध्यान बड़ा तब देखा है ।।

भव रोग नाश, निश्चिन्त हुआ, भव से कर रहा किनारा है।
रूचिराकर वृक्ष महा-औषध, भरतेश सुपुत्र निहारा है ।।

गृहपति ने देखा मनवाँछित, देता जन-जन को सुफल बड़ा।
कल्पवृक्ष है जाने को, अब स्वर्ग लोक तैयार खड़ा ।।

मंत्रीवर देखा रत्नाद्वीप, जिसने जनता को मान दिया।
कल्याण जगत का पूरा कर, आकाश ओर प्रस्थान किया ।।

देखा पटरानी ने सपना, शोकाकुल होते देखा है।
इन्द्राणी के संग सासों को, सिर धुनते रोते देखा है ।।

इस तरह स्वप्न गाथा सुनकर, भरतेश हृदय मे आकुल हैं।
परिणाम न जाने क्या होगा, वे अन्तर मन से व्याकुल हैं ।।

॥ दोहा ॥

स्वप्न अर्थ को भरत जी, गये पुरोहित पास।
कुछ कुछ मन अनुमान कर, मुख हो रहा उदास ।।

कुशल पूछ कर नृपति से, आसन दिया महान।
किस कारण आये नृपति, प्रश्न किया विद्वान ।।

कही कथा सब स्वप्न की, नृपति सहित विस्तार।
क्या फल होगा स्वप्न का, करिये पूज्य विचार ।।

साधा है कैलाश पर, योग निरोधी ज्ञान।
पावेंगे प्रभुवर ऋषभ, मोक्ष धाम निर्वाण ।।

अब लेंगे निर्वाण प्रभु, यही देह का धर्म।
यही साधना का सुफल, नहीं दुखावे मर्म ।।

नृप ने आकर प्रभु स्वप्न सुफल, स्वजनों को आन सुनाया है।
तब तक आनंद व्यक्ति ने आ, प्रभु योग निरोध सुनाया है।।

नृप ने परोक्ष से ही प्रभु को, श्रद्धा परिपूर्ण नमन किया।
अपनी तो अभी दशा यह ही, जीवन प्रभु ने निष्काम किया।।

गुण, ज्ञान, ध्यान, ध्येय, सम्मुख रखकर नृप ने शुभ ध्यान किया।
प्रभु की समस्त शिक्षाओं का, भरतेश्वर ने शुभ ध्यान किया।।

पुनि सावधान हो भरतेश्वर, अन्तर में विमलाचार हुये।
प्रिय जन, पुरजन परिवार सहित, चलने को सब तैयार हुये।।

चल दिये सभी सब कुछ तजकर, प्रभु के दर्शन का ध्यान किया।
जा रहे सभी बैठे - वाहन, पथ का साथी प्रभु ज्ञान किया।।

पहुँचे आकर कैलाश शिखर, वाहन रोके हैं घाटी में।
जय ऋषभदेव ! जय ऋषभदेव !, है सभी एक परिपाटी में।।

प्रभु वृषभदेव के दर्शन की, जन मन उत्कट अभिलाषा है।
आराध्य देव पग पूजन की, चातक सा हृदय पियासा है।।

॥ दोहा ॥

जब जगतीउर लालसा, प्रभु दर्शन की चाह।
खुलते अन्तर नैन है, मिल जाती है राह।।

बिना लगन मिलता न कुछ, मोक्ष लाभ या काम।
करके अनुपम साधना, पाता व्यक्ति ललाम।।

रह जग में क्या पायेगा, जिसे न अन्तर्बोध।
कुछ करने से पूर्व ही, निज अन्तर को शोध।।

कर्त्ता फल पाता सदा, निष्क्रिय मलता हाथ।
साधक पाता मोक्ष है, बाधक सदा अनाथ ।।

पढ़े सुने सत् - भाव से, ले जिनेन्द्र की टेक।
आदि कृपा से विमल उर, निश्चय जगे विवेक ।।

निर्वाण महोत्सव वर्णन

-: हरिगीतिका :-

जय जगत पति, जय जगत कारण, दुख निवारण कीजिये ।
प्रभु दर्शकों को द्वार पर, परमेश दर्शन दीजिये ।।

तुम सा जगत में कौन, जिसकी शरण में जायें विभो ।
वह दीजिये जिसमें कि, हो सर्वत्र ही मंगल प्रभो ।।

यह गत भवों का पुण्य है, आये शिखर कैलाश हैं ।
हम भक्त जन दर्शकों के आप ही, विश्वास हैं, अभिलाष हैं ।।

निज आत्म शोधन कर सके, वह ज्ञान हमको दीजिये ।
ये जन्म सार्थक हो सके, वर भक्ति संयुक्त कीजिये ।।

प्रभु की कृपा की दृष्टि से, रस वृष्टि जग में हो रही ।
जड़, अंधता से वकिला, भू आज आंचल धो रही ।।

प्रति पग सजगता आ गयी, सोया सहज मिथ्यात्व है ।
हम जनों को प्रभु कृपा ही, एक अमृत तत्व है ।।

-: कवित्त :-

दूर-दूर तक फैली, तुंग शैल श्रेणियां हैं,
हिम से ढकी हैं जो कि हिम ही प्रधान है ।

उछल रहा है, हिम बरस रहा है हिम,
एक यही तत्व मानो सृष्टि का विधान है ।।

विलस रही है शान्ति, मुनियों के मन जैसी,
और देखिये, कि कहीं भी न व्यवधान है ।।

फैला हुआ हिम मानो, प्रभु की प्रसन्नता है,
मुक्ति रूपी मुक्ता प्रति सब का ही ध्यान है ।।

मिथ्या का न आचरण खेलता यहाँ है कभी,
शुद्ध वृत्ति का ही मृदु फल यहाँ फलता ।

खेलते कषाय के न रंच भी प्रपंच यहां,
आचरण से ही यहाँ मिलती सफलता ।।

जीत हार जैसे खेल, खेले जाते यहां नहीं,
समता ही समता का चक्र यहां चलता ।

जो भी एक बार भर नेत्र है निहार लेता,
बार-बार उसका ही मन है मचलता ।।

ध्येय, ध्यान, ध्याता, वाणी का न कोई है विकल्प,
और किसी को न यहाँ भेद दृष्टि आता है ।

निज का स्वभाव कर्म, आत्म भाव से न भिन्न,
क्रिया कर्ता तो भी यह तो आप ही कहाता है ।।

दृग - ज्ञान - व्रत तीन ध्यान एक रूप बसे,
यही एक रूप तो अभेद को बताता है ।

इसलिये निज आत्मा में जो विलीन हुआ,
खिन्नता का, भिन्नता का भेद मिट जाता है ।।

★

देखा सबने प्रभु आत्म लीन, मुख मण्डल परम प्रभाकर है ।
आलोक चतुर्दिक बिखर रहा, मुख मण्डल दिव्य विभाकर है ।।

जो शान्ति नहीं देखी अबतक, अनुभव सर्वत्र हुआ पाया।
जीवन वीणा झनझना उठे, सुन्दर सा तार हुआ पाया ॥

मन में विरागता जाग रही, सब कुछ सपना सा लगता है।
अन्तर में कोई ज्योति लिये, सन्देशा देता जगता है ॥

तन मन मे शीतलता छायी, मानो अमराई पायी है।
कर रही दीप्त कोना-कोना, मानो रबि की तरुणाई है ॥

प्राचीर सुदृढ़ के जमे मैल, बरषा से धुलते लगते हैं।
बालू से घुलने लगते हैं, पीड़ा से खुलते लगते हैं ॥

इस तरह हृदय के सब कल्मष, धीरे - धीरे छटते जाते।
प्रतिकूल वायु को पाकर के, ज्यों मेघ घने फटते जाते ॥

—: कवित्त :—

पुण्य के प्रताप का दिनेश जब जागता है,
तब रजनीश - दल आप अकुलाता है।
काम, क्रोध, मद, लोभ, कन्दरा में सोते आप,
आप अन्धता में पड़ा जीव अकुलाता है ॥

पाकर के मन अनुरूप अभिभूत होता,
मन का मयूर अनुकूल मेघ पाता है।
होकर हजार धार बढ़ती जो रसधार,
यही जल गंगा का अनूप रूप पाता है ॥

★

कैलास शिखर पर प्रभु बैठे, मुख पूर्व दिशा की ओर किये।
अन्तर जग में मन रमा रहे, अन्तर्मन आप विभोर किये ॥

विद्याधर, देव मनुज आदिक, प्रभु के समक्ष कर जोड़े हैं।
प्रभु के चरणों का ध्यान किये, बन्धन से नाता तोड़े हैं॥

प्रभु मौन हुये पर्वत समान, फिर शान्ति बर्फ सी फैली है।
परिवेश, लग रही ज्यों छाया, संध्या में छवि मटमैली है॥

जग क्लान्ति भ्रान्ति मिट गयी सभी, जब से प्रभु दर्शन पाया है।
ये दर्शन तभी सुलभ होते, पहले यदि पुण्य कमाया है॥

त्यागी अनुरागी सब बैठे, प्रभु उपासना में लीन हुये।
अनुरूप मानसिक वाँछा के, प्रभु भक्ति नीर पाठीन हुये॥

जीवन का लक्ष्य सामने है, अब चिन्तनीय कुछ रहा नहीं।
वह कौन वृत्ति का गढ ऊँचा, इसके समक्ष जो बहा नहीं॥

जन के जीवन का धन्य पर्व, निर्गंध-धूम सा बिखर रहा।
वचनीय रहा जो कभी नहीं, वह रूप आज है निखर रहा॥

समरसता दीख रही दिशि-दिशि, कल्मष का कोई बिन्दु नहीं।
यह एक बिन्दु जीवन का है, जिसकी समता को सिन्धु नहीं॥

लगता प्राची की दिव्य प्रभा, आकर समीप मुस्काती है।
मुसका मुसका करके मानो, जीवन का अर्थ बताती है॥

जड़ जीव, याकि पुद् गल समेत, सब मौन पिये हैं, शान्ति पिये।
जिसने भी पल दो पल भोगा, मानो उसने शत कल्प जिये॥

मन कहते चचल घोड़ा है, घोड़ा काबू से बाहर है।
चचल घोड़े का पता नहीं, देखा विवेक का सागर है॥

मन ने रासें ढीली कर दीं, निश्चिंत देव के चरणों में।
सब कुछ ही अर्पित कर बैठा, कोमल कृपालु प्रभु चरणों में॥

कुछ पता नहीं नर-देवों को, कब दिवस गया कब रात गयी।
कब गयी दिवस की दोपहरी, जाने कब गहरी रात गयी ।।

-: कवित्त :-

बीत गये तेरह दिन योग का निरोध किये,
माग कृष्ण चौदस की आयी तिथि भायी है।

कब गये दिन और कब रात बीत गयी,
किसी ने भी इस बात की न सुधि पायी है ।।

उषा काल चौदस का मंजुल प्रभात हुआ,
दिशि-दिशि मांगलिक आभा भव्य छायी है।

मेंटने अघातियों के कर्म का विशाल पुंज,
शुक्ल-ध्यान रूपी असि प्रभु ने चलायी है ।।

: दोहा :

शुक्ल ध्यान असि कर लिये, ऋषभदेव भगवान।
तेरहवें से प्रभु गये, चौदहवें गुणस्थान ।।

तब आयोग प्रभु केवली, वचन और मन-काम।
कर्म त्रयोदश नाश का, केवल शेष उपाय ।।

लघु अक्षर उच्चारण में, लगती जितनी देर।
किये शुक्ल असि ध्यान से, कर्म त्रयोदश ढेर ।।

शिखर लोक आत्मा गयी, पायी मुक्ति महान।
मिली सिद्धि प्रभु ऋषभ को, शास्त्र कहें निर्वाण ।।

जयति ऋषभ जय जय ऋषभ, ऋषभ जयति ध्वनि कान।
जयति ऋषभ जय जय ऋषभ, उतरे विपुल महान॥

★

वह सिद्धि पा गये ऋषभदेव, देवता जिसको दुलर्भ कहते।
निर्वाण पंथ के दर्शन कब, देवता सदा हतप्रभ रहते॥

निर्वाण वही जिसको तप सी, पाने को लालायित रहते।
उपलब्धि कि जिसको वैरागी, साधना पंथ का श्रम सहते॥

वह प्राप्य सम्पदा से जिसको, अब तक कोई पा सका नहीं।
वह मृत्यु कि जिसने भी पायी, भव बन्धन मे आ सका नही॥

राजा समस्त वैभव देकर जिसको, न तनिक पा सकता है।
यह मृत्यु मुक्ति की सगी बहिन, कोई क्यों अपना सकता है॥

निर्वाणमौक्ति मिलता जिसको, उसका ही जीवन धन्य हुआ।
यह मुक्ति जिसे मिली नहीं, उसका जीवन अन्यान्य हुआ॥

यह मुक्ति नही छल का प्रतीक, सच मानो सच की सूरत है।
उपलब्धि नहीं बल बिक्रम की, यह तो संयम की मूरत है॥

वे ही घबराते मृत्यु देख, जीवन में जो असफल रहते।
बचने की वे कोशिश करते, आंसू जिसके अविरल बहते॥

संतोष जिन्हें मिल सका नहीं, तन अन्त देख घबराते हैं।
प्रभु के सम मुक्ति देखकर के, बस वाणी से ललचाते है॥

यह मुक्ति वही पाता है जो, जीवन भर पुण्य कमाता है।
मन मे, वाणी मे, कर्मों में, सत्यता जो कि अपनाता है॥

जिसने न ज्ञान की कुटिया की, प्यारी चौखट को चूमा है।
यह मुक्ति नहीं दर्शन देगी, जो सिर्फ लोभ वश घूमा है ।।

हिंसा परिग्रह हित कुण्ठायें, जिसके अन्तर में पलती हैं।
मोहादि कषायों की उर में, अनगिनत मशाले जलती हैं ।।

मुख और हाथ से और और, वाणी से और बहाने है।
इस मुक्ति सुधा के आंगन में, ऐसों को कहाँ ठिकाने है ।।

इस परम मुक्ति के दर्शन से, लोगों में कोई क्षोभ नहीं।
कुछ हर्ष नही कुछ शोक नहीं, कुछ त्याग नहीं, कुछ लोभ नही ।।

रह गये लिखे से लोग सभी, बहुतों को समझ नहीं आया।
सब लोग देखते रहे सिर्फ, जाने कब हंस गया आया ।।

-: हरिगीतिका :-

जो अमरता के पुत्र हैं, वे मृत्यु से डरते नहीं।
जो शत्रु हन्ता है प्रबल, वे शत्रु से डरते नहीं ।।

जो आत्म बल के हैं निचय, वे जगत बल से क्या डरे।
जो आत्म सुख में लीन हैं, वे जगत सुख का क्या डरें ।।

जो आत्म बल से हीन हैं, वे ही जगत मे दीन हैं।
वे प्राप्त करके शुभ घड़ी, बस जगत सुख के मीन है ।।

ऐसे जनों को मृत्यु का ही, शब्द भयकारक रहा।
मृत्यु भय का बोझ भी, कायर पुरुष ने ही सहा ।।

जो जन्म के रण से सुनिश्चित, फिर उन्हें सन्देह क्या ?
उस देह को जग सुख न कुछ, फिर क्लेश क्या रस मेह क्या ?

ये मृत्यु अथवा जन्म नो, दिन रात का क्रम हैं यहाँ।
क्या पता ये दिन यहाँ, तो रात फिर बीते कहाँ॥

वे मृत्यु से प्रभु क्या डरे, जो निर्जरा निग्रह हैं।
सत्य, संयम, शील, तप से, जिनके सतत सद्पंथ हैं॥

जो जन्म को भी, मृत्यु को भी, खेल सा ही मानते।
मोक्ष पथ का द्वारा तक, जो इस तरह पहचानते॥

—: दोहा :—

प्रभु पाया निर्वाण पद, आये तब देवेश।
हर्ष शोक से रहित फिर, देखा है परिवेश॥

ऋषभ सब रट रहे, भक्ति भावना लीन।
मुख की आभा भव्य है, सब कुछ दिखा नवीन॥

इन्द्र सभी चेतन किये, दे प्रभु का जयकार।
जैसे सब को मिल गया, सत्य जीवनाधार॥

★

कल्पना अभी तक जिसकी थी, वह मूर्त सत्य अब आया है।
हों ध्यानलीन अब तक प्रभुवर, ऐसा जन जन ने पाया है॥

सिद्धात्म मोक्ष की ओर गया, कैदी जो तन का कारा में था।
साधना यान पा गया तीर, अब तक भव की धारा में था॥

भव बल को शक्ति साधना से, जीवन के रण को जीत गया।
मानो कि तमस् से भरा हुआ, जीवन का घट ही रीत गया॥

ये देह मल साधन का है, जो डिगा वही गिर सकता है।
जिसका अन्तर निर्भय न हुआ, वह ही पीछे फिर सकता है॥

संयम सीढ़ी से तपोनिष्ठ, प्रभु सिद्धि शिला का थल पाया।
बाधिका न पथ की बन पायी, सुन्दरी जगत की कल माया ॥

दुर्जेय शिखर प्रभु जीत लिया, जन नही कल्पना कर सकता।
वीतराग और तपस्वी ही, इस रिक्त पूर्ति को भर सकता ॥

माया तो निज कल छल बल से, नाना विधि आर रिझाती है।
कर्मों के बन्धन कटे नहीं, यह विविध भांति बहकाती है ॥

जो वीर बली निस्पृह जीवन, संयम का पथ अपनाते हैं।
ये एक निष्ठ कर्त्तव्य निष्ठ, शिव पथ पर सीधे जाते हैं ॥

भव के रोगों या भोगों ने, संयोगो ने जब तक टोका।
ये सत्यव्रती पर रुक न सके, मिथ्यात्व बन्धनों ने रोका ॥

श्रद्धा समेत सब देवों ने, वर भक्ति पूर्ण अनुरूप की है।
परिवर्तन कितना उपादेय, ये देवों ने शिक्षा ली है ॥

छू बार-बार प्रभु चरणों को, जीवन को धन्य बनाया है।
इस अपरिग्रह की महिमा को, देवों ने शीश झुकाया है ॥

संयम, तप, त्याग, आत्म चिंतन, यह आत्मानुभूति की धारा है।
जो भोगों में ही लिप्त रहे, उनको मिलता न किनारा हैं ॥

—: कवित्त :—

देह जिसको कि यहीं पे विकास मिला,
शीश वही जिस पर मुकुट विराजा था।

भाल वही रवि भी न समता को पा सका,
नैन वही जिनमें कि ज्योति पुंज ताजा था ॥

ग्रीव वही जिसमें कि कभी वरमाल पड़ी,
कर वही जिसने कि जग हित साजा था।

वक्ष वही जिसमें कि सदा गंगाधार रही,
वही यह ऋषभ तन जो कि कभी राजा था॥

छवि का अनूप जल, पाकर प्रभूत फल,
मोहती उसे न कल, हँसता हँसाता था।

जग के अपार सुख, दिखलाते निज मुख,
कोई भी उसे न दुख, आप बाँध पाता था॥

मन के अमित रस, इसको लगे ज्यों विष,
हुआ न किसी के वश, निज से ही नाता था।

करता कभी न रोष, ज्ञान कल्पना का कोश,
निजता में पाके तोष, ओस को लुटाता था॥

माटी से ही पाया, जन्म, माटी पर ही धरे पाँव,
छाया पाके माटी की ही फूला फूल माटी का।

माटी में ही खेल कूद, माटी को बनाया स्वर्ण,
फूला न समाया देख तन स्वर्ण - माटी का॥

माटी देख मोह जगा, पुण्य सब माटी हुये,
फिर भी न मेटे मिटा, ये प्रभाव माटी का।

मोक्ष पथ माटी हुआ, माटी से जगा के राग,
जिसके भी माथे लगा, टीका आज माटी का॥

: दोहा :

आत्म रहित लख देह को, हृदय हुआ दो टूक।
लगा धैर्य बादल फटा, उठी हृदय में हूंक ।।

हाय पिता कह भरत नृप, खा कर गिरे पछाड़।
कोलाहल सब कर उठे, मानो गिरे पहाड़ ।।

शोकाकुल रनिवास सब, कर कर विविध बखान।
रूप, शील, गुन, तेज का, प्रकट हुआ अनुमान ।।

★

सुरराज इन्द्र ने शोकाकुल, विस्तृत समूह समझाया है।
तुम सभी जानते जाता है, जो भी भव-वन मे आया है ।।

जब तक देही मे प्राण रहे, तब तक ही जग का नाता है।
जब हुआ प्राण का पटाक्षेप, क्या सगा मात या भ्राता है ।।

तब तक सम्बन्ध जगत के हैं, जब तक श्वासों का मेला है।
सब यही पड़ा रह जाता है, उड़ जाता हँस अकेला है ।।

हम जिससे भी सुख पाते हैं, स्मृति में अश्रु गिराते हैं।
इस मिथ्या जग की लीला पर, माया वश धैर्य गंवाते हैं ।।

ये ही भ्रम जाल प्राणियों को, व्याकुल करके भटकाता है।
भव सागर में मारा फिरता, पल भर को चैन न पाता है ।।

है चिन्तनीय प्रभु ऋषभ नहीं, जिनकी चिन्ता से आकुल हो।
पा गये अलोकिक प्रभुवर पद, क्यों व्यर्थ भरत तुम व्याकुल हो।।

है हुआ नहीं होगा भी क्या, निर्वाण-लोक का अधिकारी।
भव-सागर में भी रहकर प्रभु, वे रहे सदा महिमाधारी ।।

संशय, भय, मोह आदि उनको, अन्दर तक कभी न छू पाये।
तप, त्याग और अपरिग्रह व्रत ही, जीवन भर उनने अपनाये॥

वे राजपाट, धन-धाम आदि, प्रभुवर को नहीं बाँध पाये।
ऐसे त्यागी, वैरागी को हे !, भरत आप क्यों अकुलाये॥

भरतेश कहा - देवेन्द्र सुनो, जो कहा आप, हम जाना है।
आपके यहाँ है मृत्यु नहीं, ये शोक नहीं पहचाना है॥

हम भी औरों को ऐसे ही, उपदेशों से समझाते हैं।
जब शोक स्वयं पर आता है, तब यों ही सब अकुलाते हैं॥

है चिंतनीय प्रभु ऋषभ नहीं, उनने ललाम पद पाया है।
वे ऊर्ध्व लोक के साधक हैं, उनमें शिव तत्व समाया है॥

यह सच सोलह आने सच है, जन मन अन्तर में रमे हुये।
मिथ्यात्व नहीं छूने देंगे, जन जन प्राणों मे जमे हुये॥

हम देह जनों को नर तन का, कुछ तो आकर्षण रहता है।
अब कहाँ दिव्य मुख देखेंगे, रह रह कर अन्तर कहता है॥

-: दोहा :-

गंधोदक का पात्र ले, धोये प्रभु विमल देह।
लेके द्रव्य अनेक तन, मन ले विपुल सनेह॥

अग्नि देवों ने निज कर से, रचा मनोरम कुण्ड।
नेह सहित सज्जित किये, अष्ट गंध के खण्ड॥

तीन कुण्ड रचि रुचिर शुभ, रखे देह अवशेष।
मुकुट छुआ कर प्रकट की, अग्नि प्रखर रसमेह॥

चन्दन चर्चित धूम्र में, लो उठी कराल।
छूने को प्रभु के तेज को, चूम रही नभ भाल ।।

★

लपटों में लिपटी अवशिष्ट देह, नयनों में ज्योति समाई है।
धूं-धूं करके जल रही चिता, नयनों अरुणाई छाई है ।।

चट चट कर भदक रही मज्जा, चहुँ दिशि सुगंध बिखराती है।
प्रभुवर की यह अन्त्येष्टी क्रिया, जीवन की ज्योति जगाती है ।।

उड़ रहीं अनगिनत चिनगारी, देहिक अस्तित्व बताती है।
मोहान्धकार में नभ सोया, देदीप्य आतम की बाती है ।।

देखी कुछ क्षण में शान्त हुई चिता, रह गया देह का चिन्ह नहीं।
रह जाता चिन्ह देह का यदि, कहलाती फिर तब वह्नि नहीं ।।

नृप भरत इन्द्र ने मिलकर के, शुचि एक पात्र में राख भरी।
जैसे मंझधार फँसे को हो, मिल गयी आप ही नयी तरी ।।

रह गयी नाथ की एक याद, पथ नव्य भव्य दिखलाने को।
प्रेरणा स्रोत रह गयी याद, जन जीवन धन्य बनाने को ।।

सुरराज इन्द्र ने हर्षित हो, उत्सव आनन्द मनाया है।
यह पर्व मनाया देवों ने, जब जब कल्याणक आया है ।।

देवता ऋषभ के जीवन से, अन्तर से हुये प्रभावित हैं।
सम्पर्क ऋषभ का पाकर के, जीवन हो गया प्रमाणित है ।।

॥ दोहा ॥

देव गये निज लोक को, हर्षित हुये दिनेश।
भरत हृदय में ऋषभ का, व्यापा वियोग विशेष ।।

वृषभ सेन गणधर प्रमुख, साधक जग गम्भीर।
भाँति-भांति उपदेश दे, दिया भरत को धीर।।

—: कवित्त :—

सुनिये भरत नृप, करिये न शोक कुछ,
जग नाशवान आत्मा ही अविनाशी है।
भव के विकट वन साधन तमस मध्य,
ज्ञान रवि के समान परम प्रकाशी है।।
पुद्गल इसको न करता, प्रभावित है,
स्वयं ही प्रकाशवान और सुखराशी है।
आत्मा स्वतंत्रता से रहती प्रसन्न सदा,
जागतिक भोगने को देह दासी है।।

★

देही आत्मा यों मिले दिखते, ज्यों दूध और पानी मिलते।
जब पृथक रूप क्षण में दिखता, फिर नहीं मिलाये से मिलते।।
जब तक न कर्म से रिपुओं का, नाश नहीं हो जाता है।
तब तक ही आत्मा देही में, यों ही बस आता जाता है।।
जब ज्ञान राशि की ले मशाल, रिपुओं को जला मारता है।
तब मोक्ष सुधा के सागर मे, आत्मा को आप डालता है।।
इतना कह वृषभसेन ने फिर, प्रभु के भव विभव सुनाये हैं।
शीतल वाणी का जल पीकर, नृप पुनः चेतना पाये है।।
आशीष प्राप्त कर गणधर से, भरतेश्वर ने प्रस्थान किया।
कण में, तृण में, तरू, गुल्मों में, प्रभु ऋषभदेव का ध्यान किया।।

भरतेश नृपति को यों लगता, सब में ही प्रभुवर झांक रहे।
जिस तरह ताकता मैं सबको, सब इसी तरह हैं ताक रहे॥

-: हरिगीतिका :-

सुख, शान्ति की, सन्तोष की, स्नेह धारा बह चलीं।
निर्वाण जीवन लक्ष्य है, बहती हवायें कह चलीं॥

संसार साधन मात्र है, बस साध्य तम-अज्ञान है।
वह साध्य करता प्राप्त है, जिसको कि इसका ज्ञान है॥

जिस व्यक्ति का निज आयु मे, तप त्याग प्रति अनुराग है।
जो विषमता के मध्य समता, देखता बेदाग है॥

मोह मिथ्या आदि का, अंकुर नहीं जमने दिया।
आत्मा को छोड़ जिसने, मन नही रमने दिया॥

धन्य जीवन हो गया, इस भव-विकट संसार मे।
प्रभु कृपा समक्ष क्या, हार में, उपहार मे॥

मोक्ष को कर लक्ष्य ही, निज आत्म बल का शोध हो।
कौन हो तुम लक्ष्य क्या, बस तुम्हें इसका बोध हो॥

॥ दोहा ॥

राग बन्ध का हेतु है, त्याग मोक्ष का मूल।
सत्य, अहिंसा, शील, व्रत, तप संयम अनुकूल॥

त्यागी बन बढ़ते रहो, ले जिनेन्द्र का नाम।
बनता इसी प्रमाण से, जीवन सदा ललाम॥

इस जीवन के भवन का, तभी पूर्ण निर्माण।
आंगन उजियाला रहे, अन्त एक निर्वाण ।।

ऋषभ-ऋषभ जपते रहो, लिये अटल विश्वास।
आत्म निरीक्षण भाव हो, पूजेगा जन आश ।।

पढ़े सुने निर्वाण यह, पावे विमल विचार।
महत् मोक्ष दातार हैं, ऋषभ देव सुखकार ।।

भरत दीक्षा वर्णन

-: हरिगीतिका :-

भव के सुखों का सिन्धु तो, जन-बन्धनों का हेतु है।
फँस कर निकलना है कठिन जग, मोह मिथ्या हेतु है।।

है सत्य मिथ्या भासता, जब तक बसा अज्ञान है।
मोह में सुख खोजने से, कब मिला निर्वाण है।।

और यत्नों की समझ में, बात है आती नहीं।
सूर्य दिन जानते सभी कि, रात है जाती नहीं।।

किन्तु मिथ्या साधनों में, लोभ फिर भी लग रहे।
नींद आती जा रही है, किन्तु कहते जग रहे।।

अन्तर्मुखी हो व्यक्ति सोचे, शोध ले निज भावना।
आत्मा सुख मे लीन हो, कर आदि प्रभु आराधना।।

त्याग की ही वृत्ति में, रमने लगे जन कामना।
शील संयम आदि से, आदीश की नीराजना।।

★

स्मृति के साधन झरोखों से, झांकते हुये सब आये हैं।
जो है स्मृति के विषय बने, अन्तर्मन अभी सुहाये हैं।।

नदियां, पर्वत, बन, बाग, विपुल, शोभायुत पंथ निहारा है।
दीखा न कहीं पर राग रोष, सर्वत्र शान्ति की धारा है।।

जीवन का सहज रुप देखा, मद, मोह आदि का नाम नही।
आत्मानंद में सभी लीन, चिन्ता परिग्रह का नाम नहीं।।

सब नगर अयोध्या में आये, प्रभु ऋषभ देव गाथा गाते।
हर्षा - दिभाव की धारा में, आये हैं बहते - हर्षाते ।।

निर्वेद भाव है अन्तर में, रागादि भाव हैं छूट गये।
भव के वैभव की शक्ति प्रबल, निस्सार देख सब छूट गये ।।

संशय के मेघ छँट गये हैं, सुख का आकाश सुहाना है।
तप त्याग आदि की नदियों को, मानो मिल गया मुहाना है ।।

शुचि शान्ति नीर की धारा है, व्रत-त्याग मयी गहराई है।
तप के समान उज्ज्वलता है, मन के समान तरूणाई है ।।

अपने में होकर आनंदित, अन्तर-मन की गति बाँधे है।
जो चाहे पानी पी जाये, निर्वाण सिन्धु मन साधे है ।।

कैलाश शिखर के विपुल हृदय, अब भी अन्तर मे जगे हुये।
जिनकी कुछ अपनी सत्ता है, वे सम्मोहन मे लगे हुये ।।

पर्वत से उठकर बनो बड़े, बस स्वाभिमान लेकर जी लो।
अन्तर की गंगा दो जग को, हिमशीतल नीर आप पी लो ।।

निज लक्ष्य हेतु निश्चय उर में, साधना अनूठी जगी रहे।
मिथ्यादि भाव को तजे हुये, भावना अनूठी लगी रहे ।।

भोगने भोग आये न यहा, छोड़ने रोग हम आये हैं।
आने - जाने के चक्कर से, अकुलाये हैं, भर पाये है ।।

जब तक न जाग कर देखेंगे, तब तक न रोग उपचार यहां।
फिर भौतिकता के वशीभूत, हो जाता मन लाचार यहां ।।

शुभ-अशुभ कर्म के चक्र विपुल, बंधन का कार्य किया करते।
अब छोड़ दिया कल ढूढूंगा, ऐसे ही बाँध लिया करते ।।

छूटते नहीं, बँधते जाते, कुछ भी न समझ में आता है ।
कुछ कर न सके चुक गयी आयु, सोचता मनुज पछताता है ।।

जब तक ममता मल जले नहीं, शुचिता-धृत नहीं मिला करता ।
श्रद्धा-सर में, रवि-भक्ति बिना, पंकज तो नहीं खिला करता ।।

अज्ञान तिमिर की साम्रगी, रजनी को शान्ति न मिल पाती ।
सब यत्न सार्थक तब ही है, जब किरण सूर्य की मिल जाती ।।

—: कवित्त :—

ज्ञान से महान विद्यमान मे न और कुछ,
जो भी देखते हैं वह ज्ञान का प्रकाश है ।

ज्ञान के ही नाम पर भ्रम पालता है जो नर,
धरती पे वही जन रहता उदास है ।।

ज्ञान-अध-हानि कर, शुचिता बसाता मन,
और रम्यता का नित्य करता विकास है ।

ज्ञान से ही शिवता का, ज्ञान से ही समता का,
ममता का, क्षमता का जन में निवास है ।।

भ्रम पालकर के नही कोई सुख पाता यहाँ,
भव - सुखपाल का भी सुख नहीं मिलता ।

भ्रम नीर निधि मध्य जो भी डूब जाता कभी,
उसके तो ऊपर है नीर ही उछलता ।।

फँसा हुआ भ्रम जाल, यत्न करता है तो भी,
फाँस लेती उसे और, उसकी चपलता ।

भ्रम-जाल रख लेता जो भी है संभाल कर,
उसके लिये नहीं कभी मोक्ष फूल खिलता ॥

॥ दोहा ॥

नृपति भरत के हृदय में, जगा त्याग का भाव ।
रोम-रोम पर हो रहा, प्रभु का विमल प्रभाव ॥

उदय काल है सूर्य का, गयी मोह की रात ।
जागी तप की ज्योति है, सोयी मिथ्या बात ॥

भोग रोग सोये सभी, और न चाहत योग ।
यह जीवन होवे सफल, मिले एक संयोग ॥

त्याग भाव के मेल से, मिलता यह उपयोग ।
बस मन को ही बांधना, कठिन एक संयोग ॥

—: कवित्त :—

मन से विचित्र तो है सृष्टि का प्रपंच भी न,
कभी जुड़ता है और कभी छूट जाता है ।

जो न चाहे उसके भी, पीछे पड़ जाता कभी,
और कभी उससे ही आप रूठ जाता है ॥

जाग कर कभी यही जाता समरांगण में,
और कभी लड़ कर के भी टूट जाता है ।

गति में तो मन की समानता मिली न कहीं,
इस की कला का घड़ा आप फूट जाता है ॥

★

जैना गम के अनुसार नृपति, सेवा का व्रत पालने लगे।
एकत्र हुये शुभ अशुभ कर्म, धीरे - धीरे घालने लगे।।

निस्पृह जीवन जी रहे नृपति, सुख साधन की कुछ चाह नहीं।
जो सिखा गये प्रभु ऋषभदेव, अब और भरत को रहा नहीं।।

सुनते तो बस प्रभु की चर्चा, चर्चा ही प्रभु की करते थे।
मन को उपदेशों में रखते, चर्चा से अन्तर भरते थे।।

प्रभु भक्ति भाव में डूब रहे, अन्तर का साधन करते थे।
मन, वाणी और कर्म से नृप, प्रभु का आराधन करते थे।।

प्रभु मय ही जीवन करने की, नृप के मन में अभिलाषा है।
भव से, भव सुखों से नृप को, बढ़ती जा रही निराशा है।।

कितनी सत्ता है भव सुख की, नृप भली भाँति पहचान चुके।
जग आत्म ज्ञान के बिना न कुछ, अब भली भाँति यह जान चुके।।

सब कुछ जाने इस धरती पर, इससे पहले निज को जाने।
कितने पानी में तैर रहे, निज बल की सीमा पहचाने।।

सब को अपना कर के जाने, यह सुन्दर है, उपयोगी है।
जो प्रथम जान ले निज को ही, वह ज्ञानी है, उद्योगी है।।

जीवन की सार्थकता क्या है, जब तक न समझ में आयेगा।
अहसास बिना जन धरती पर, आखिर कैसे कुछ पायेगा।।

जब तब मुनियों का स्वागत कर, संतोष हृदय में पाते थे।
पाल अहिंसा के व्रत को, दृढ़ता पूर्वक अपनाते थे।।

भव के सुख की सार्थकता क्या, सब को ही नृप समझाते थे।
वर भक्ति भावना का सागर, जन मानस में लहराते थे।।

बतलाते परिग्रह से जन को, मिथ्यात्व मोह ही जगता है।
अज्ञान तिमिर के जगने से, मिथ्या सुख सच्चा लगता है।।

इस भ्रम के त्याग बीच सुख है, बातों से त्याग न आता है।
इसका फल वह ही पाता है, जो इसमें हृदय रमाता है।।

उपभोग लालसा जहां अभी, है त्याग भाव का जन्म कहाँ।
जब तक उपयोग नहीं छूटे, तब त्याग भाव का जन्म कहाँ।।

जो कुछ भी परम अपेक्षित है, उस ओर ध्यान कम जाता है।
कुछ पड़ सकता है कष्ट बड़ा, इसलिये शिथिलता पाता है।।

जो आज नहीं जग पाया है, जागेगा कल क्या आशा है?
कल आज नहीं कल में ही बस, आती बस हाथ निराशा है।।

लगना जिस ओर लगो तत्क्षण, बीता क्षण हाथ न आता है।
जो दुविधा में उलझा रहता, वह केवल संशय पाता है।।

इसलिये जागना श्रेयस्कर, यह खिड़की बड़ी रसीली है।
हो जाते तथ्य उजागर है, जन-जागृति बड़ी छबीली है।।

-: कवित्त :-

भव के विभव अंतरंग मोह मिथ्या आदि,
राग रोष परिग्रह प्रबल प्रताप है।

सांच की न आंच सह पाता है भवेश कभी,
जगत में झूठ से बड़ा न कोई पाप है।।

जो न देख पाता धरती पे जाग कर तथ्य,
फिर भी समर्थ कहे, मानो कोई श्राप है।

बुद्धि बल जागरूकता का चिन्ह एक ही है नित्य,
भोगे जगती जब रमे न अभिशाप है ।।

–: दोहा :–

त्याग तपस्या आदि प्रति, जाग रहा अनुराग ।
तन, मन बुद्धि प्रताप का, मानो यह अनुभाग ।।

अब तो विष सम लग रही, भव सुख साधन बात ।
मानो बीती काल निशि, आता नवल प्रभात ।।

सब में ही प्रभु लग रहे, अन्तर बाहर एक ।
भक्ति भाव में रम रहे, जगा भाव विवेक ।।

ज्ञान राशि उपदेश प्रभु, करें वृत्ति उपचार ।
देख रहे नित जगत को, उर में हर्ष अपार ।।

★

प्रभु ऋषभदेव की आकृति की, मूर्तियाँ बहुत सी बनवायी ।
अति कुशल मूर्ति कारों द्वारा, बहु भाव-भंगिमा दरशायीं ।।

मूर्ति स्थापना के हेतु विविध, मन्दिर विशालतम बनवाये ।
जैनेन्द्र धर्म के गौरवमय, यशवर्द्धक उपवन महकाये ।।

जय ऋषभदेव, जय ऋषभदेव, जिनमें संकीर्तन होता है ।
जो निर्मल धर्म भावना भर, अन्तर का कालुष धोता है ।।

अर्चना वन्दना, प्रभु चर्चा, सब ओर सुनायी देती है ।
श्री जैन धर्म की विमल दृष्टि, सर्वत्र दिखाई देती है ।।

सत्यता, न्याय और समता का, साम्राज्य दिखाई देता है ।
अपरिग्रह का बढ़ता प्रभाव, अविभाज्य दिखाई देता है ।।

मिथ्यात्व, दम्भ, पाखण्ड चण्ड, जाकर के कोने सोये हैं।
प्रभु ऋषभदेव ने धरती पर, ऐसे प्रकाश कुछ बोये हैं॥

जन-जन अणुव्रत का धारी है, जन जन प्रभु का आराधक है।
छाया जय घोष अहिंसा का, आचरण मनुज का साधक है॥

साम्राज्य ऋषभ उपदेशों का, जन-जन को मंगलकारी है।
समुदाय स्वतः धीरे - धीरे, हो चला सहज अविकारी है॥

इस तरह चन्द्र-भरतेश्वर ने, किरणे पुण्यों की बिखरायी हैं।
जिन की सर्वत्र गंध फैले, ऐसी नव-कलियाँ महकायी हैं॥

सब ओर धर्म का सुन्दर ध्वज, फर-फर करता फहराता है।
निस्सीम पयोदधि के तट पर, श्रद्धा का जल लहराता है॥

नृप भरत अयोध्या में आकर, अति भिन्न-भिन्न से रहते थे।
वे भव का वैभव निरख-निरख, मन-खिन्न-खिन्न से रहते थे॥

साम्राज्य अटारी राजमहल, भूपति को आज डराते थे।
रह दूर-दूर मोहादि भाव, भूपति को आँख दिखाते थे॥

मन राज कार्य मे बिल्कुल भी, कब भरतेश्वर का न लगता था।
दिन रात नृपति के अन्तर मे, निर्वेद भाव ही जगता था॥

जग रही हृदय मे ज्ञान ज्योति, मोहादि कीट झुलसते थे।
मुख्य बदल-बदल कर वैरागी, अन्तर में भाव सरसते थे॥

रस और किसी मे रहा नहीं, प्रभु अनुचिन्तन करते थे।
जो हुयी हृदय में रिक्त बड़ी, प्रभु ध्यान रुचिर से भरते थे॥

फिर एक दिवस वैराग्य कथा, श्री बाहुबली की मन गामी।
सर्वस्व त्याग की मेघ घटा, अन्तर मे सहज उतर आयी॥

अब दिशि से बढ़ी उदासी है, अब लगने लगा अँधेरा है।
एकान्त ध्यान ने प्रभुवर के, नृप मन में डाला डेरा है।।

वैराग्य हेतु नित चिन्तन को, अन्तर में द्वादश भाव जगे।
संसार नीर निधि तरने को, साधन सारे खोजने लगे।।

फिर राज भार से छूटने का, आखिर में विमल विचार किया।
सुत अर्ककीर्ति को बुलवाकर, सब राज पाट का भार दिया।।

—: कवित्त :—

मैं हूं अज्ञ, मैं हूं विज्ञ, और सर्वज्ञ भी हूँ,
मैं ही कर्ता हूँ यहाँ, सोचना न ज्ञान है।

ज्ञानी मानना भी निज को है एक अभिशाप,
इस भावना से सदा आता अभिमान है।।

अभिमान आज तक किसका रहा है यहाँ,
पाल के अमर्ष कौन पाता रहा मान है।

मान अपमान जन को न चैन लेने देते,
बचने को एक बस ऋषभ का ध्यान है।।

देवराज चन्द्र याकि धनिक कुबेर भी न,
कोई तपस्वी न मुझे पार कर पायेगा।

धन, धाम, पुत्र, मित्र, सेना, सेनापति से भी,
जीवन का रण-धाम जीता भी न जायेगा।।

दिन रात सबको भी देते रहो तन, मन,
मोक्ष फल तोड़कर कोई भी न लायेगा।

तब तक मन को न रंच भी मिलेगा चैन,
ऋषभ का नाम जब तक तू न गायेगा ।।

।। दोहा ।।

त्राहिमाम् कहते हुये, हहुँचे गणधर पास ।
अगम अथाह समुद्र से, नृप वर हुये उदास ।।

वृषभसेन के हृदय में, नृप प्रति करुणा व्याप्त ।
अति श्रद्धा के भाव से, जिन् दीक्षा की प्राप्त ।।

नृप विचार करने लगे, करते धर्म प्रचार ।
आत्म-निरीक्षण ध्यान संग, करते ज्ञान प्रसाद ।।

पढ़े सुने अति चाव से, ले श्रद्धा का भाव ।
भक्ति मिले ऋषभदेव की, रत इन्हीं का चाव ।।

भक्ति सहित जो भी पढे, लिये आत्म विश्वास ।
निश्चय ही होगी सभी, मन की पूरी आश ।।

—: हरिगीतिका :—

यह विमल गाथा ऋषभ की, भव - जीव-सर्वाधारिणी ।
कल्याणकारी जन - कथा, सम्पूर्ण आतप हारिणी ।।

जन-जन जगा ले आप ही, जब त्याग की शुभ भावना ।
फिर किसी के सामने, करनी पड़े क्यों याचना ।।

जग के दुखों का बिन्दु है, कटु - परिग्रही - दुर्भावना ।
और इसके शमन को, आलोक द्वादश - भावना ।।

जीतता वह ही यहाँ, जो व्रत अहिंसा पालता।
जीत करके शत्रुओं को, मन व्रतों में ढालता।।

गाकर विशद यश ऋषभ का, उर में परम संतोष है।
इह ऋषभ की गाथा मनोहर, भक्ति श्रद्धा कोश है।।

अब और कुछ क्या चाहिये, संतोष है जब पा लिया।
पा लिया सब कुछ स्वतः, वृष धर्म जब अपना लिया।।

✶

यह काव्य रस का अगम निधि, जन को अगर रुचिकर लगा।
तब समझ लो 'नागेन्द्र' का है, भाग्य अति उज्ज्वल जगा।।

यश की न है कुछ लालसा, केवल मर्णिति का मान हो।
यह ऋषभ प्रभु का चरित है, इसकी सदा पहिचान हो।।

मेरा नहीं कुछ, ऋषभ का, कल्याण कारी चरित्र है।
तप, त्याग, संयम, शील की, मृदु पवन ही संचरित हैं।।

अभिलाष है "नागेन्द्र" की, हिंसा अधर्म विनाश हो।
प्रभु ऋशभ पावन चरित पर, श्रद्धा सहित विश्वास हो।।

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ से लेकर २४वें तीर्थंकर महावीर तक की परम्परा

श्री आदिनाथ जी

नाभि नृपति औ मरुदेवी के गृह मे प्रथम प्रधान।
चौथे अव-सर्पिणी काल मे जन्मे ऋषभ महान।।
आदि सभ्यता सर्वोदय दिया धर्म - विज्ञान।
भरत, बाहुबलि, ब्राह्मी, सुन्दरि, जग प्रसिद्ध सन्तान।।
जैन धर्म का ध्वज फहराया जग में चारों ओर।
इनके ज्ञान कोष का जग को अब तक मिला न छोर।।

श्री अजितनाथ जी

अजित नाथ तीर्थंकर का, जब जन्म हुआ जयकार।
नृप जित शत्रु, विजय सेना को मिला प्रमोद अपार।।
शौर्य निरख कर, अजित नाम इन्द्रों ने किया प्रदान।
अँगूठे में चिन्ह देख गज बनी यही पहिचान।।
अजितनाथ ने वसु कर्मों का कर तप में परित्राण।
चैत्र शुक्ल पंचमी भोर में शिव को किया प्रयाण।।

श्री सम्भव नाथ जी

अणिमा, महिमा ऋद्धि सिद्धियाँ धारी महिमावान।
चमका श्रावस्ती में मुखरित, धर्माश्रित उद्यान।।
कार्तिक पूनम को चन्द्रोदय जग मे हुआ महान।
कार्तिक वदी चौथ को तप से पाया केवल ज्ञान।।
चौदह वर्ष अखड तपस्या रही आपके साथ।
चैत्र सुदी छठ को जा पहुँचे शिवपुर सम्भव नाथ।।

श्री अभिनन्दन नाथ जी

उनका क्या अभिनन्दन, जो हैं श्री अभिनन्दन नाथ।
जिनकी विमल छत्र छाया में बनते भक्त सनाथ॥

माघ शुक्ल द्वादशि को जन्मे प्रभो धर्म आधार।
मिलो पौष सुदि चौदस को केवल ज्ञानी महकार॥

एक हजार नरेश सहित जैनेश्वरी दीक्षाधार।
हुए षष्ठ वैसाख सुदी को भव सागर से पार॥

श्री सुमति नाथ जी

चैत्र शुक्ल एकादशी का दिन महिमा का भण्डार।
तीन लोक में हुआ सुमति का व्यापक जय जयकार॥

जैनागम के तप से पाया केवल ज्ञान विधान।
गणनातीत सुमति दाता हैं सुमति नाथ भगवान॥

दिया अट्ठारह क्षेत्रों में धर्मोपदेश गुण - ज्ञान।
चैत्र शुक्ल एकादशि के दिन किया मोक्ष प्रस्थान॥

श्री पद्म प्रभु जी

जम्बू द्वीप भरत गढ़ में कौशम्बी नगर निहाल।
कार्तिक कृष्ण त्रयोदशि के दिन, जन्मे पद्म विशाल॥

लाल कमल सा सुन्दर तन था, अपनी आप मिसाल।
मुक्ति रमा से पहिनी, सम्मेदाचल पर जयमाल॥

सहस मुनि सहित फाल्गुन शुक्ला चतुर्थ सायंकाल।
पद्मप्रभो की चली मोक्ष को जलती हुई मशाल॥

श्री सुपार्श्वनाथ जी

पूरब क्षेत्र विदेह धातकी, खण्ड मनोरम दीप।
पुण्य पुरुष ही इस वसुधा पर जनमे महामहीप।।

नन्द षेण नृप के गृह प्रकटे धन्य सुपार्श्व महान।
फाल्गुन वदी षष्ठम को प्रभु ने पाया केवल ज्ञान।।

फाल्गुन वदी सप्तमी को कर वसु कर्मो का अवसान।
गिरि शैलेन्द्र प्रवास कूट से शिव को किया प्रयान।।

श्री चन्द्र प्रभु जी

मन्दर मेरु महाविदेह मे विद्युत माली नाम।
वैभव युक्त सुगन्धि देश मे श्री पुर शोभित धाम।।

पौष वदी एकादशि को बिखरा नवीन उल्लास।
नृप श्रीषेण गेह में, चन्द्र प्रभु ने किया प्रकाश।।

चन्द्र सदृश चर्चित था प्रभु का मुख मण्डलाकार।
तीर्थंकर के इस अतिशय को नमस्कार, शतवार।।

श्री पुष्पदन्त जी

पुण्डरीकनी से प्रसिद्ध प्रभु पुष्पदन्त का नाम।
ग्यारह अंग रूप आगम के पारगत निष्काम।।

मगसिर सुदी प्रतिपदा को, अवतरित हुए यशधाम।
हुऐ पौष वदी चौदस को केवलज्ञानी सरनाम।।

सम्मेदाचल पर तपसी को मिला सफल परिणाम।
अष्टम सुदि आसौज का तप से मोक्ष मुकाम।।

श्री शीतल नाथ जी

पूर्व मन्दराचल विदेह में नगर भद्रपुर सार।
धर्मनिष्ठ दृढ़रथ नरेश की योग्य सुनन्दानार॥

माघ कृष्ण द्वादश को प्रगटे शीतल प्रभु दिनमान।
कल्पवृक्ष की छाया में गूँजा जयकार महान॥

शुभ दिन वन विहार कर दीक्षा मग्न दिगम्बर धार।
अश्विन शुक्ल अष्टमी को जा पहुँचे मोक्ष मंझार॥

श्री श्रेयांस नाथ जी

फाल्गुन कृष्णा एकादशि को यश फैला चहुँ ओर।
हुए नलिन नृपनार सुनन्द आत्मानन्द विभोर॥

प्रभु श्रेयांस नाथ के तन की कान्ति सुवर्ण समान।
कृष्णा मास अमावस्या को पाया केवल ज्ञान महान॥

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को कर भविजन का कल्याण।
तीर्थंकर श्रेयांस नाथ ने प्राप्त किया निर्वाण॥

श्री वासुपूज्य जी

एक मास आयुष्य शेष पर, किया देशना बन्द।
वन मन्दार गिरि में काटे, वसु कर्मों के फन्द॥

तरु कदम्ब के नीचे तिष्ठे, धारा आत्म ज्ञान।
शुक्ला माघ द्वितीया के दिन, पाया केवल ज्ञान॥

पूरे आर्यावर्त में करके जिनवर धर्म-प्रसार।
भादो शुक्ल चतुर्दशि को शिव मन्दिर गये पधार॥

श्री विमल नाथ जी

भरत क्षेत्र काम्पिल्य नगर में, इक्ष्वाकु वंश महान ।
जय श्यामा रानी के गृह जन्मे विमल नाथ भगवान ।।

माघ चतुर्थी शुक्ला को की जिन दीक्षा स्वीकार ।
माघ सुदी अष्टम को पाया केवल ज्ञान अपार ।

गूँजा भव्य सुवीर कूट पर नभ चुम्बी जयकार ।
हुआ कृष्ण अष्टम असाढ़ को मोक्ष गमन अधिकार ।।

श्री अनन्त नाथ जी

जिनके यश का अन्त नहीं ऐसे अनन्त भगवान ।
कृष्णा जेष्ठ द्वादशी को जन्मे प्रभु महिमावान ।।

सिंह सेन राजा के गृह मे हुआ मंगलाचार ।
थे अनन्त तो प्राप्त हुई महिमा अपरम्पार ।।

कृष्णा चैत्र अमावस के दिन पाया केवल ज्ञान ।
चैत्र अमावस कृष्ण तिथि को किया मोक्ष प्रस्थान ।।

श्री धर्म नाथ जी

रत्न पुरी नगरी के राजा भानु सेन गुणवान ।
पटरानी सुव्रता के चक्र मे अरुणोदय अम्लान ।।

शुक्ला माघ त्रयोदशी को शुभ पाया धर्म प्रसाद ।
धर्मनाथ का हुआ अवतरण, गूंजा हर्ष निषाद ।।

कर्म घातियाँ नष्ट किये जब पाया केवल ज्ञान ।
शुक्ला ज्येष्ठ चतुर्थी को पा लिया मोक्ष वरदान ।।

श्री शान्ति नाथ जी

हस्तिनापुर कुरु जांगल में पग-पग पर जल जात।
राजा विश्वसेन पटरानी ऐरावती विख्यात।।

कृष्णा ज्येष्ठ चतुर्दशि को दिन भरणी नखत महान।
जन्मे शान्ति प्रसाद लिए, श्री शान्तिनाथ छविवान।।

कठिन तपस्या द्वारा पाया, केवल ज्ञान प्रमान।
शुक्ल ध्यान से कर्म नष्ट कर, किया मोक्ष प्रस्थान।।

श्री कुन्थ नाथ जी

सूरसेन राजा के गृह में, खुले हर्ष के द्वार।
गजपुर में गर्भावस्था में, बरसे रत्न अपार।।

कामदेव मन्त्री तीर्थंकर हुये कुंथ भगवान।
शुभित वैसाख शुक्ल पड़वा को, हुआ जन्म सुख दान।।

शुक्ल चैत्र तीज को तप से पाया केवल ज्ञान।
स्वल्प काल में घात घातिया पाया मोक्ष महान।।

श्री अरह नाथ जी

अवधि ज्ञान धारी श्रुत के बलि अरहनाथ यशवान।
शुक्ला मगसिर चतुदर्शी को, दिया धरा को मान।।

कठिन तपस्या द्वारा किया अरि कर्मों का विनाश।
हुआ शुक्ल कार्तिक द्वादशि को केवल ज्ञान प्रकाश।।

कृष्णा चैत्र अमावस तिथि शुभ बेला सायंकाल।
चक्रवर्ती पद धारी शिव जा पहुंचा मुक्त मराल।।

श्री मल्ली नाथ जी

राजा कुम्भ, प्रभावती रानी, मिथला नगर विशेष ।
मगसिर सुदि ग्यारह को, जन्मे मल्लिनाथ अखिलेश ।।

अविवाहित रह, नग्न दिगम्बर जिनवर मुद्रा धार ।
निर्जर वन में दुर्दर तप से, किया कर्म संहार ।।

पौष मास में बदी दूज को पाया केवल ज्ञान ।
फाल्गुन सुदी पंचमी को पा लिया मुक्त निर्वान ।।

श्री मुनिसुव्रत नाथ जी

नृपति सुमित्रा सोमारानी इनके गेह मंझार ।
मगसिर सुदी एकादशी को जन्मे प्रभु हितकार ।।

ग्यारह वर्ष अखण्ड मौन धारण में किये व्यतीत ।
हुए कृष्ण बैसाख नवम् को, केवल ज्ञान प्रणीत ।

फाल्गुन वदी द्वादशी को कर कमलों का अवसान ।
गये मोक्ष सम्मेदाचल से मुनिसुव्रत भगवान ।।

श्री नमि नाथ जी

एक लाख योजन का जम्बूद्वीप मध्य विस्तार ।
इसमें सात क्षेत्र हैं, इनमें भरत क्षेत्र साकार ।।

मिथिला नगरी नृपति विजय श्री रानी वपिला नाम ।
अश्विन कृष्ण दूज को जन्मे प्रभु नमिनाथ ललाम ।।

फाल्गुन सुदी पूर्णिमा को पाकर केवल्य अपार ।
इक्किसवें तीर्थंकर ने शिव पद पर पाया अधिकार ।।

श्री नेमि नाथ जी

महा यशस्वी तीर्थंकर प्रभु नेमिनाथ भगवान।
जीवों की रक्षा से पाया जग में सुयश महान।।

राजुल जैसी मीनाक्षी का किञ्चित किया न मोह।
बैरागी बन कर विवाह से क्षण भर में किया बिछोह।।

शुक्ल आषाण अष्टमी तिथि को आत्म लक्ष्य पहिचान।
प्राप्त किया गिरनार शिखर से निष्कंटक शिव धाम।।

श्री पार्श्व नाथ जी

रोम रोम में व्याप्त विश्व में पार्श्वनाथ का नाम।
मस्तक पर फठा मण्डप शोभित दृढ़ता का परिणाम।।

कमठाचर के उपसर्गो मे पाई विजय महान।
कालजयी है पारस का, उपसर्गी केवल ज्ञान।।

कठिन परीषह पर विजयी हैं मोक्षागमन सरनाम।
पार्श्वनाथ के दुर्गम तप को शत शत बार प्रणाम।।

श्री महावीर जी

अन्तिम तीर्थंकर हैं सन्मनि, वर्धमान अति वीर।
विविध नाम धारी उपकारी महावीर गुण धीर।।

करुणा दया अहिंसा का सर्वोत्तम दिया विधान।
जिनके पद चिन्हों पर चल मानव बने महान।।

जन जन के हित जैन धर्म के खोले द्वार उदार।
ऐसे विश्व बंद को शशि का नमस्कार शतवार।।

संक्षिप्त आचार्य परम्परा

इन्द्र भूति गणधर–

वसुमति - सुत इन्द्रभूति गणधर हुये,
धार-दस-विद्या-निधि-सागर गंभीर के।
समवसरण हेतु विपुल अचल गये,
देख मान-स्तम्भ गले मान मान-वीर के ।।
महावीर दिव्य ध्वनि 'द्वादशांग' रूप हुयी,
अद्वितीय शिष्य भगवान महावीर के ।।
पाके 'ज्ञान केवल' को धन्य हुये गणधर.
अद्वितीय शिष्य भगवान महावीर के ।।

जम्बू स्वामी–

भव-विषयो की भोग लालसा से दूर रहे,
लोक-राग अनुराग टोक भी न पाया है।
परम कृपालु स्वामी पाकर सुधर्म गुरु,
जम्बू सुकुमार उपदेश मन भाया है ।।
मन की परीक्षा कर गुरु से सुदीक्षा पायी,
तप की प्रचण्डता मे निज को रमाया है।
तीस-आठ वर्ष वीर शासन प्रचार किया,
अन्तिम केवली ने निर्वाण पद पाया है ।।

भद्र बाहु–

श्रुत केवली तो भद्र बाहु हुये धरती पर,
दोनो आम्नाय जिन्हें मानते समान हैं।

बुद्धि सम्पदा के स्वामी जोकि एक मात्र हुये,
तीनों काल का कि जिन को कि रहा ज्ञान है ।।
चन्द्रगुप्त जैसा वीर जिनका शिष्य हुआ,
लोक-परलोक का जिन्हें कि सदा ध्यान है।
संघ की परम्परा न यहां तक टूट पायी,
कौन भद्रबाहु सम जग में महान है ।।

धृति सेन–

अटक निकट सिन्धु तीर आ सिकन्दर ने,
साधु सघ श्रेष्ठ धृतिसेन को बुलाया था।
धृतिसेन राग-द्वेष-रोष से विमुक्त हुये,
उनको बुलावा रंचमात्र भी न भाया था ।।
सुनके प्रभावित सिकन्दर विशेष हुआ,
सुनने को उपदेश निकट में आया था।
अन्तकाल नृप-प्राण शान्ति के सहित गये,
उपदेश धृतिसेन-शिष्य ने सुनाया था ।।

गुणधर, धरसेन, पुष्प दन्त और कुन्दकुन्दाचार्य–

'पेज्जदोस पाहुड़' की रचना की गुणधर,
बचा लिया लुप्त-गुप्त होते अंगज्ञान को।
धरसेन अष्ट - अंग पारगामी विज्ञवर,
परम विशुद्ध किया जग मंत्र ज्ञान को ।।
पुष्पदन्त, भूतबली दोनों अर्कबली शिष्य,
जिन-वाणी हेतु किया दक्ष-चित्त ध्यान को।

कुन्दकुन्द जैसे ज्ञानियों ने किया धरती पे,
परम सरलतम मोक्ष के निधान को ।।

उमा स्वामी–

कुन्दकुन्दाचार्य बाद विज्ञ उमा स्वामी हुऐ,
जिनने बनाये रखा जैन साधु क्रम को ।

करके अखण्ड तप साधते जिनेश रहे,
नित्य जगाते रहे आत्म पराक्रम को ।।

करते विहार जनता को उपदेश दिये,
कहते विशेष रहे श्रेष्ट-कर्म-श्रम को ।

बुद्धि बल, आत्म बल, तप बल द्वारा सदा,
लोक से भगाते रहे जड़ता के भ्रम को ।।

समन्त भद्र–

जिनको सरस्वती का अमित प्रसाद मिला,
काव्य रचना मे जिनका कि बड़ा भाग है ।

रचनाएँ जिनकी कि जिन् को बखानती हैं,
पग-पग जिनमें कि हित अविराम है ।।

पाकर के जिन्हें यह धन्यवती भूमि हुयी,
प्रतिभा से जो भी दिशा हुयी अभिराम है ।

अमिट समन्त भद्र का है मरी यश फैला हुआ,
जिसको कि जन-जन करता प्रणाम है ।।

वीरसेन–

चन्द्रसेन, आर्यनन्दी, वीरसेन गुरु हुये,
शिष्य जिनके कि जिनसेन हुये, जाना है ।

वीरसेन विज्ञवर 'धवला' जो टीका लिखी,
प्रतिमा अनूप फल जग पहचाना है ।।

अरिहन्त गुणगान मे ही तो वसन्त देखा,
जीवन का स्तर तत्त्व बस यही माना है ।

शुभाशुभ कर्म सब तप से विनष्ट करो,
फिर देखिये कि यहां आना है न जाना है ।।

जिनसेन--

बुद्धिवीर वीरसेन शिष्य जिनसेन हुये,
जिनने रची कि 'जय धवला' सी टीका है ।

जिनकी कि श्रेष्ठ प्रतिभा का प्रतिफल देख,
प्रतिपक्षियों का मन हुआ आप फीका है ।।

रचके 'पुराण आदि' दे दिया प्रकाश रवि,
पढ़ मिट जाता तम जिसे, जन श्री का है ।

रचनाएँ मानव को ज्ञान का अपार कोश,
जिनसेन का चरित्र जगति को नौका है ।।

आचार्य विद्यानन्द--

जैनादर्श, जैन-दृष्टी और जैन दर्शनार्थ,
श्रेष्ठ प्रतिभा को हँस जिनने लगा दिया ।

श्लोक वार्तिकादि नव कृतियों को भेंटकर,
दिशा-विदिशा में रमे मन को पगा दिया ।।
जगत उपाधियों से मन को हटाया और,
ज्ञान की कटार थाम भय को भगा दिया ।
काम, क्रोध, परिग्रह भावना को त्याग कर,
दिशा चले, नहीं मन को दगा दिया ।।

चन्द्रसूरि--

चन्द्रसूरि अमृत ने निज बुद्धि बल से ही,
ज्ञान की लता को आप और सरसा दिया ।
लोग कुन्दकुन्दाचार्य को न भूल जाये यहाँ,
लिखके विपुलता से मन मे बसा दिया ।।
करके प्रकट ज्ञान का प्रकाश वान रवि,
मानो मुरझाया कुंज और विकसा दिया ।
'पुरुषार्थ सिद्धियुपाय' लिखके स्वतत्र ग्रथ,
फिर से सदा को जैनागम परसा दिया ।।

अमित मति--

जिनकी अमितगति जग मे बखानी गयी,
जिनकी कि काव्यकला जन-मोदमयी है ।
दस सदी बीत चुकी फिर भी नवीनता है,
रवि की किरण के समान पार गयी है ।।
तत्त्व भावनादि सप्त रचनाएँ दी प्रकृष्ट,
प्रतिपाद्य जिनका कि नित्य पाप क्षयी है ।

सुकवि अमिल मति भोज दरबारी रहे,
कीर्ति जिनकी कि धरती पे नित्य नयी हैं ।।

नयसेन–

सुगुरु नरेन्द्र सूरि शिष्य नयसेन हुये,
गुरु के समान शिष्य बुद्धि में विशाल था ।

धर्मज्ञान, कर्मज्ञान, भाषा ज्ञान में महान,
रत्न-त्रय ज्ञान, नयसेन मालामाल था ।।

काव्य-कल्पना को कवि कण्ठहार करजिआ,
कविता में और धर्म में न अन्तराल था ।

ग्रन्थ 'धर्मामृत' का पान कर लोग कहे,
नयसेन कविता मे बड़ा ही कमाल था ।।

पण्डित आशाधर–

पण्डित प्रवर आशाधर जिन-ज्ञानी हुये,
प्राप्त ज्ञान दीपक की ज्योयि उकसाते थे ।

अध्यापन द्वारा नित्य ज्ञान आप बाँटते थे,
भारती के ज्ञानवान पुत्र कहलाते थे ।।

नागदेव प्रेरणा से घर द्वार त्याग दिया,
अन्तर में नित्य सुधार-वारि बरसाते थे ।

कभी-कभी टीकाएँ कविताएँ रचते थे,
जनता में नित्य ही जिनत्व उपजाते थे ।।

मानतुंगाचार्य-

'भक्तामर' रचना को रच के अमर हुये,
जो भी देखता है शुभ रचना, सराहता।
जो भी पाठ करता है दुख को विमोचता है,
पाता है प्रसन्नता को फिर न कराहता॥

मान तुंग मान त्याग आदि का अनन्य भक्त,
निज के समान जग को बनाना चाहता।
कदाचित् इसीलिए जन सुखधाम छोड़,
मोड़ निज मन 'भक्तामर' अवगाहता॥

जैनमुनि उपमिकाएँ तपस अनेक हुये,
जिनने जिनत्व ध्वज आप फहराया है।
बरसा के ज्ञान-वारि त्रिष्णा मिटायी जग,
जब-जब जड़ता का घन घहराया है॥

परिग्रह मे न सुख, सुख सत्य साधनों में,
'णमोकार मंत्र' नित्य नित्य दुहराया है।
जीवन प्रषम्य धरती पर किस भांति बने,
श्रेष्ठ इस हेतु जिन-ज्ञान ठहराया है॥

भट्टारकाचार्य, कवि, टीकाकार बड़े-बड़े,
जिन्-ज्ञान शृंखला मे जीवन जुड़ा गये।
परिग्रह, जड़ता को हिंसादिक परिक्षाएँ,
पाप के हयोधरों को क्षण में उड़ा गये॥

ज्ञान का प्रकाश इस भांति से प्रचण्ड हुआ,
अघ-झुण्ड आप यम दिशा को मुड़ा गये।
ज्ञान के अभाव मध्य जो भी भ्रमलीन हुये,
पाकर जिनत्व-ज्ञान बन्धन तुड़ा गये।।

आदिनाथ, आदीश्वर, त्रिपुरारी, आदि, प्रभु,
ऋषभ या वृषमेश, नाम मन लाइये।
असि, कृषि, मसि आदि सभ्यता का मूल बिन्दु,
क्षण मात्र को भी नहीं मन से भुलाइये।।

जोभी आज दीखते हो, कृपा आदिनाथ की है,
प्रभु का चरित्र नित्य मन में मनाइये।
किसी काल, किसीलोक दुख का मिले न बिन्दु,
इसलिये कृपा-सिन्धु के ही गुन गाइये।।

'आरती' (नीरांजना)

ऋषभ नाथ आरती तुम्हारी।
मंगल करन अमंगल हारी ।।

तुम हो आदि पुरुष त्रिपुरारी,
आदि सभ्यता के सञ्चारी,
ऋषभायन आरती तुम्हारी,

विघ्न विनाशक मंगलकारी।
ऋषभ नाथ आरती तुम्हारी ।।

चक्री भरत विश्व हितकारी,
बाहुबली दुर्द्धर तप धारी,
ब्राह्मी और सुन्दरी नारी,

चारों वंशज यश विस्तारी।
ऋषभ नाथ आरती तुम्हारी ।।

ऋषभ नाम दुख हर लेता है,
भक्तों की नैया खेता है,
मन वांछित शुभ फल देता है,

दर्शन पाता भक्त पुजारी।
ऋषभ नाथ आरती तुम्हारी ।।

आदि नाथ के चरण पखारें,
मन मन्दिर में रूप निहारें,
भक्ति - भाव आरती संवारें,

अन्तर्यामी शिव भण्डारी।
ऋषभ नाथ आरती तुम्हारी ॥

ऋषभ आरती सुने सुनाये,
उसके संकट पास न आये,
आवागमन मिटे शिव पाये,

'ऋषभायण' लोक लोक भयहारी।
ऋषभ नाथ आरती तुम्हारी ॥

नोट :—कृपया प्रत्येक खण्ड समाप्त होने पर यह आरती की जाए।

आदिनाथ की विविध मूर्तियों की वन्दना

वद्री विशाल

वद्री विशाल की भव्य मूर्ति नयनों में रस सरसाती है।
यह सौम्य दिगम्बर आदि मूर्ति अध्यात्म धर्म वरसाती है।।

यह जैन मूर्ति श्रद्धा पूर्वक, जनता में पूजी जाती है।
अपने विशाल आकर्षण से, जन जन का हृदय लुभाती है।।

गढ़वाल श्रीनगर अलकनन्दा

गढ़वाल श्री नगर में मोहक आदीश्वर मूर्ति सुहाती है।
गतिमान अलकनन्दा जी के, तट पर यह शोभा पाती है।।

इस अतिशय धारी प्रतिमा की, बहुचर्चित महिमा छाई है।
उसने अपने संवर्धन से सर्वत्र मान्यता पाई है।

वोरी तल्ली बम्बई

वोरी तल्ली बम्बई नगर शोभा त्रिमूर्ति से पाता है।
पंतिस फुट ऊँची विम्वों का, यह धर्म केतु फहराता है।।

इस आदिनाथ की प्रतिमा से सब आत्मशान्ति पा जाते हैं।
नमि सागर तथा शान्ति सागर इसके प्रेरक कहलाते हैं।।

अयोध्या जी

खड़गासन विम्व अयोध्या की लालित्य पूर्ण कहानी है।
अनुपम निर्माण कलाओं की कहती स्वमेव कहानी।।

यह मूर्ति इकत्तिस फुट ऊँची सर्वत्र महत्ता छाई है।
आचार्य देश भूषण द्वारा यह दुर्लभ महिमा पाई है।।

बड़वानी बावन गजा

बड़वानी बावन गजा मूर्ति चौरासी फिट अतिशय धारी।
उन्नत विशाल, धार्मिक मशाल, तप के पुण्यों की फुलवारी॥
यह ऋषभमेश्वर तीर्थंकर, महिमा मण्डिता कहानी है।
शिव गये यहां से इन्द्रजीत यह धर्म-ध्वजा बड़वानी है॥

मुक्तागिरि मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश मे मुक्तागिरि, जिन की यश गाथा गाती है।
मद्मासन आदीश्वर प्रभु की प्रतिमा का ध्वज फहराती है॥
ये महिमा मण्डित वंदनीय अभिनण्दित पुण्य धरातल है।
अकलंक देव वैज्ञानिक की, यह धरती मुखर तपस्थल है॥

कोल्हापुर

आदीश्वर की खड़गासन छवि तैंतिस फुट मन हरने वाली।
लगता है शिल्प कलाओ ने मिलकर ऐसी प्रतिमा ढाली॥
शत वन्दनीय इस प्रतिमा का सर्वत्र महायश छाया है।
इसकी विशाल तम रचना ने, कोल्हापुर को महकाया है॥

नांदणी महाराष्ट्र

आराध्य ३१ फिट ऊँची खड़गासन शोभा पाती है।
नांदणी धरा इसके द्वारा अतिशय तीरथ कहलाती है॥
विख्यात मूर्ति आदीश्वर की यह जन जन को सुखदाई है।
स्वामी जिनसेन यशस्वी से निर्माण प्रेरणा पाई है॥

थूवोन

अट्ठारह जिनवर चैत्यालय अति दुर्लभ धर्म धरोहर है।
सत्ताइस फिट के वंदनीय आकर्षक श्री ऋषमेश्वर है।।

दो वार यहां पर चतुर्मास मुनिवर विद्या सागर द्वारा।
तप के महिमा का बहा गया जंगल मे मंगल की धारा।।

चाँद खेड़ी

यह मूर्ति जहां पर निकली थी, उसने यह महिमा प्रगटाई।
ले जाना चाहा और कहीं तो, तनिक नहीं हिलने पाई।।

मन्दिर बनवा कर इसी जगह, यह चमत्कार दरशाया है।
अन जाना नाम चांद खेड़ी, दुनिया के मुख पर आया है।।

कुण्डल पुर

दश फुटी मूर्ति पद्मासन यह फैला तीरथ पर उजियाला।
कुण्डलाकार कुण्डलपुर को शोभित इसमें पर्वत माला।।

सरनाम बड़े बाबा हैं यह, सबको यह नाम लुभाता है।
जो आदिनाथ का विजय केतु गगनांगन मे फहराता है।।

केशरिया जी

इस तीथराज केशरिया की गरिमा तीर्थों से न्यारी है।
लगता है तीरथ बहुत बड़ी अनुपम केशर की क्यारी है।।

भक्तों के द्वारा यह केशर जितनी नित चढ़ती रहती है।
यह आदिनाथ की प्रतिमा पर, मानो धारा बन बहती है।।